ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिविरचितः

षट्खण्डागमः

बन्ध-स्वामित्व-विचयः

तृतीयखण्डः

अष्टमो ग्रन्थः

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका

(गणिनीज्ञानमती विरचिता-स्वकृत भाषानुवादसहिता च)

मंगलाचरणं

सिद्धान्नष्टाष्टकर्मारीन्, नत्वा स्वकर्महानये।
ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो नम्यते मया।।१।।

हिन्दी टीका का मंगलाचरण

जन्मदीक्षाऽद्वयं यस्यां, श्री चन्द्रप्रभ पार्श्वयोः। सा पौषैकादशी कृष्णा, तीर्थेशौ तन्ति च स्तुमः।।१।।

मंगलं पार्श्वनाथोऽर्हन्, उपसर्गजयी प्रभुः। मंगलं केवलज्ञान-महिच्छत्रं च मंगलम्।।२।।

जिस तिथि में श्री चन्द्रप्रभ भगवान एवं पार्श्वनाथ के जन्म और दीक्षाकल्याणक हुए हैं, वह पौष कृष्णा एकादशी है। दोनों तीर्थंकर भगवन्तों की एवं उनके दो-दो कल्याणकों की हम स्तुति करते हैं।।१।।

कमठकृत उपसर्ग विजयी अर्हंत भगवान पार्श्वनाथ मंगलकारी होवें, उनका केवलज्ञानकल्याणक मंगलकारी होवे एवं यह अहिच्छत्र तीर्थ मंगलकारी होवे। अहिच्छत्र तीर्थ पर मैंने पौष कृ. ११ को यह हिन्दी अनुवाद प्रारंभ किया है। ।।२।।

संस्कृत टीका के मंगलाचरण का हिन्दी अनुवाद

सिद्धपरमेष्ठी भगवान, जिन्होंने अष्टकर्मरूपी शत्रुओं को नष्ट कर दिया है, ऐसे अनंतानन्त सिद्धों को अपने कर्मों को नष्ट करने के लिए नमस्कार करके मैं 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के ग्रंथ का वर्णन करता हूँ। मेरे द्वारा यह 'बंधस्वामित्वविचय' नाम का तृतीय खण्ड ग्रंथ कहा जाता है।।१।।

श्रीमत्-ऋषभदेवस्य, श्रीविहारोऽस्ति सौख्यकृत्।
जगत्यां सर्वजीवाना-मतो देव! जयत्विह।।२।।
यास्त्यनन्तार्थगर्भस्था, द्रव्यभावश्रुतान्विता।
सापि सूत्रार्थयुङ्मान्या, श्रुतदेवि! प्रसीद नः।।३।।
श्री धरसेनमाचार्यं, पुष्पदंतगुरुं स्तुमः।
श्रीभूतबलिसूरिं च, द्रव्यभावश्रुताप्तये।।४।।
धवलाटीकया कीर्तिं, धवलां प्राप यो मुनिः।
श्रीवीरसेनमाचार्यं, वन्दे तं तामपि स्तुवे।।५।।
कषायप्राभृतं ग्रन्थं, तत्कर्तारं यतीश्वरम्।
श्रीगुणधरमाचार्यं, वन्दे भक्त्या श्रुताप्तये।।६।।
चूर्णिसूत्रग्रथिता यः, श्रीयतिवृषभो गुरुः।
तिलोयपण्णत्यादीनां, कर्ता च तं तानपि स्तुवे।।७।।
तत्त्वार्थसूत्रकर्ता य, उमास्वामियतीश्वरः।
नमस्कारोऽस्य मीमांसा-प्तस्याभूत्तं च तां नुवे।।८।।

श्रीमान् ऋषभदेव का 'श्रीविहार' जगत में सभी जीवों के लिए सौख्यकारी होवे, इसलिए हे ऋषभदेव! आप यहाँ सारे विश्व में जयशील होवें।।२।।

भावार्थ—वीर सं. २५२४ सन् १९९८ में 'भगवान ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार'' का रथ प्रवर्तित हुआ है। भगवान का समवसरण चैत्र कृष्णा नवमी को उन्हीं के जन्मजयंती दिवस पर उद्घाटित हुआ और पुनः दिल्ली में तालकटोरा स्टेडियम से तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा प्रवर्तित होकर सारे भारत में घूमा है। लाखों-करोड़ों भव्यात्माओं ने भगवान ऋषभदेव के समवसरण का दर्शन करके अनंतपुण्य संचित करके अनंत पापों का नाश किया है। उसी समवसरण श्रीविहार से पूर्व इस तृतीयखण्ड की सिद्धान्तचिंतामणि टीका मैंने मगसिर शुक्ला त्रयोदशी को हस्तिनापुर में प्रारंभ की थी।

जो अनन्त अर्थ गर्भित द्रव्य, भाव श्रुतज्ञान सहित हैं वे श्रुतदेवी हैं। वे सूत्र और अर्थ सहित मान्य हैं। ऐसी हे श्रुतदेवी! आप हम सभी पर प्रसन्न होवो।।३।।

श्री धरसेनाचार्य का हम स्तवन करते हैं एवं श्री पुष्पदंताचार्य गुरु की और श्री भूतबलि आचार्य की भी हम द्रव्यश्रुत और भावश्रुत की प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं।।४।।

जिन मुनिराज ने 'धवलाटीका' से धवलकीर्ति को प्राप्त किया है उन श्री वीरसेनाचार्य की एवं उनकी धवलाटीका की भी हम स्तुति करते हैं।।५।।

कषायप्राभृत ग्रंथराज की एवं उस ग्रंथ के कर्ता महायतीश्वर श्री गुणधराचार्य की हम श्रुतज्ञान की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।।६।।

कषायप्राभृत के ऊपर चूर्णिसूत्र के कर्ता गुरुवर्य श्री यतिवृषभाचार्य हुए हैं, उन्होंने ही ''तिलोयपण्णत्ति'' आदि ग्रंथ लिखे हैं, उन आचार्यदेव की और उन ग्रंथों की भी हम स्तुति करते हैं।।७।।

जो तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ के कर्ता श्री उमास्वामी यतीश्वर हुए हैं। उनका इस ग्रंथ का 'नमस्कार श्लोक' आप्त की मीमांसा हो गया है, उन आचार्यदेव को एवं उस 'आप्तमीमांसा' को भी हम नमस्कार करते हैं।।८।।

यश्चाप्तस्य मीमांसां, कृत्वा भुवि समंततः।
भद्रं चकार तं वन्दे, समंतभद्रस्वामिनम्।।९।।
भट्टाकलंकदेवं तं, चाष्टशतीमपि स्तुवे।
विद्यानंदगुरुं चाष्ट-सहस्रीं नौमि भक्तितः।।१०।।
श्रीकुंदकुंदयोगीन्द्र-ममृतचन्द्रसूरिणम्।
श्रीजयसेनमाचार्यं, स्तुमश्चाध्यात्मसिद्धये।।११।।
द्वादशांगांशवेत्तारो, ग्रथितारश्च योगिनः।
पूर्वाचार्यप्रवाहेण, वक्तारस्तानपि स्तुमः।।१२।।
देवशास्त्रगुरून्नत्वा, गीर्वाणीभाषयाधुना।
ग्रन्थतृतीयखण्डस्य, टीकेयं लिख्यते मया।।१३।।
ऋषभेशस्य भक्त्या मे, बुद्धिः शक्तिश्च वर्धते।
श्रद्धानमेतदस्त्यद्य, ततः कार्यं हि सेत्स्यति।।१४।।

तीर्थकरस्य भगवतो यदा केवलज्ञानमुत्पद्यते तदा सौधर्मेन्द्रस्याज्ञया कुबेरदेवः पृथिवीतलादुपरि

जिन्होंने आप्त—सर्वज्ञदेव की मीमांसा—परीक्षा को करके—लिखकर इस भूतल पर सब तरफ से भद्र—कल्याण को किया है उन सार्थक नाम वाले श्री समंतभद्रस्वामी की हम वंदना करते हैं।।९।।

श्रीमान् भट्टाकलंकदेव की एवं 'अष्टशती' ग्रंथ की भी हम स्तुति करते हैं तथा गुरुदेव विद्यानंद आचार्य को एवं 'अष्टसहस्री' ग्रंथ को हम भक्तिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।१०।।

भावार्थ—श्री तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण ''मोक्षमार्गस्य नेतारं'' आदि एक श्लोक को लेकर—आधार बनाकर श्रीसमंतभद्र स्वामी ने 'आप्तमीमांसा' ग्रंथ बनाया। उस ग्रंथ पर श्री अकलंक देव ने 'अष्टशती' नाम से भाष्य लिखा है। पुनः लगभग १००० वर्ष पूर्व श्री विद्यानंद आचार्यदेव ने 'आप्तमीमांसा एवं अष्टशती' को आधार बनाकर 'अष्टसहस्री' नाम से महान् ग्रंथ—दर्शनशास्त्र लिखा है। इस अष्टसहस्री ग्रंथ का मैंने सन् १९६९-७० में हिन्दी अनुवाद किया है।

श्री कुन्दकुन्दयोगीन्द्र की हम स्तुति करते हैं एवं श्री अमृतचन्द्रसूरि तथा श्री जयसेनाचार्य की भी हम अध्यात्म ज्ञान की सिद्धि के लिए स्तुति करते हैं।।११।।

भावार्थ—श्री कुंदकुंददेव ने समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय आदि ग्रंथ लिखे हैं। पुनः श्री अमृतचन्द्रसूरि ने एवं श्री जयसेनाचार्य ने इन ग्रंथों की संस्कृत टीकाएं लिखी हैं। इसमें से समयसार ग्रंथ की दोनों टीकाओं का मैंने हिन्दी में अनुवाद किया है।

जो द्वादशांग के अंशों के ज्ञाता हैं एवं उनको ग्रंथरूप से लिखने वाले हैं तथा पूर्वाचार्यों के प्रवाहरूप—परम्परा से कहने वाले वक्ता हैं, उन सभी आचार्यों की हम स्तुति करते हैं।।१२।।

देव, शास्त्र, गुरु को नमस्कार करके अब मेरे द्वारा षट्खण्डागम ग्रंथ के तृतीय खण्ड की गीर्वाणी भाषा में—संस्कृत में (सिद्धातचिंतामणि नाम से) यह टीका लिखी जा रही है।।१३।।

श्री ऋषभदेव की भक्ति से मेरी बुद्धि और शक्ति वृद्धिंगत होती रहती है, यह मेरा आज दृढ़ श्रद्धान है, इसीलिए यह कार्य सिद्ध होगा, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।।१४।।

तीर्थंकर भगवान को जब केवलज्ञान उत्पन्न होता है तब सौधर्मेन्द्र की आज्ञा से कुबेर देव पृथिवीतल से

गगनांगणे पंचसहस्रधनुषामुपरि समवसरणरचनामकरोत्। यदा भगवतः श्रीविहारो भवति तदानीं सर्वत्र सर्वमंगलं भवति—

उक्तं च—

विजयी विहरत्येष, विश्वेशो विश्वशान्तये।
धर्मचक्रपुरस्सारी, त्रिलोकी तेन संपदा।।१४।।
वर्धतां वर्धतां नित्यं, निरीतिर्मरुतामिति।
श्रूयतेऽत्यम्बुदध्वानः, प्रयाणपटहध्वनिः[१]।।१५।।

आसंवत्सरमात्मांगैः प्रथयन्प्राभवीं गतिं। भासते रत्नवृष्ट्याध्वाभरोत्यैरावतो यथा।।१०५।।
अनुबंधावनिप्रख्यं दिवि मार्गादि दृश्यते। त्रिलोकातिशयोद्भूतं तद्धि प्राभवमद्भुतं।।१०६।।
पटूभवन्ति मंदाश्च सर्वे हिंस्रास्त्वपर्धयः। खेदस्वेदार्तिचिंतादि न तेषामस्ति तत्क्षणे।।१०७।।
विहारानुगृहीतायां भूमौ न डमरादयः। दशाभ्यस्तयुगं भर्तुरहोऽत्र महिमा महान्।।१०८।।
विभूत्योद्धतया भूत्यै जगतां जगतां विभुः। विजहार भुवं भव्यान् बोधयन् बोधदः क्रमात्[२]।।१०९।।
''तित्थयरस्स विहारो लोअसुहो।'' अन्यत्रापि एवमेव कथितं वर्तते।

ऊपर आकाश में अधर पाँच हजार धनुष ऊपर—बीस हजार हाथ ऊपर समवसरण की रचना करते हैं। भगवान का जब 'श्रीविहार' होता है तब सर्वत्र सर्वमंगल होता है। कहा भी है—

भगवान के श्रीविहार के समय मेघों के शब्दों को पराजित करने वाला देव दुंदुभियों का यह प्रस्थानकालिक शब्द सुनाई पड़ रहा था कि धर्मचक्र को आगे-आगे चलाने वाले ये जगत् के स्वामी विजयी भगवान सब जीवों के वैभव के लिए विहार कर रहे हैं। इन प्रभु के इस श्रीविहार से तीनों लोकों के जीव संपत्ति से वृद्धि को प्राप्त हों—सबकी संपदा वृद्धिंगत हो और सब अतिवृष्टि आदि ईतियों से रहित हों।।१४-१५।।

जिस मार्ग में भगवान का श्रीविहार होता है वह मार्ग अपने चिन्हों से एक वर्ष तक यह प्रगट करता रहता है कि यहाँ भगवान—तीर्थंकर देव का श्रीविहार हुआ है तथा रत्नवृष्टि से वह मार्ग ऐसा सुशोभित होता है जैसा नक्षत्रों के समूह से ऐरावत हाथी सुशोभित होता है। जिस प्रकार विहार से संबंध रखने वाली पृथिवी में मार्ग दिखलायी देते हैं उसी प्रकार आकाश में मार्ग आदि दिखाई देते हैं, सो ठीक ही है, क्योंकि तीन लोक के अतिशय से उत्पन्न भगवान का वह अतिशय ही आश्चर्यकारी होता है। उस समय मंदबुद्धि मनुष्य तीक्ष्णबुद्धि के धारक हो जाते हैं। समस्त हिंसक जीव प्रभावहीन हो जाते हैं और भगवान के समीप रहने वाले लोगों को खेद, पसीना, पीड़ा तथा चिंता आदि कुछ भी उपद्रव नहीं होता है।

भगवान के श्रीविहार से अनुगृहीत भूमि में दो सौ योजन तक विप्लव आदि नहीं होते हैं अथवा दश से गुणित युग अर्थात् पाँच-पाँच से गुणित दश—पचास वर्ष तक उस भूमि में कोई उपद्रव आदि नहीं होता है। यह भगवान की बहुत भारी महिमा ही समझनी चाहिए।

इस प्रकार उत्कृष्ट विभूति से युक्त, बोध को देने वाले जगत् के स्वामी भगवान नेमिनाथ ने भव्य जीवों को संबोधित करते हुए जगत् के वैभव के लिए क्रम से पृथ्वी पर श्रीविहार किया था।

इस प्रकार से हरिवंशपुराण में श्रीनेमिनाथ के श्रीविहार का वर्णन आया है।

तीर्थंकर भगवान का श्रीविहार लोक में सुख के लिए है। ऐसा अन्यत्र भी कहा है।

---

१. हरिवंशपुराण, सर्ग ५९, पृ. ६९५। २. हरिवंशपुराण सर्ग ५९, पृ. ७०३।

'वर्तमानकाले भगवतां समवसरणं नास्त्यतो जिनप्रतिमायाः श्रीविहारे नैषा महिमा भवितुं शक्यते ?' नैतदाशंकनीयं। किंच—

जिनबिंबदर्शनस्यापि महिमा षट्खण्डागमग्रन्थे दृश्यते—

''जिणबिंबदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्मकलावस्स खयदंसणादो[१]।''

पुनश्च— दर्शनेन जिनेन्द्राणां पापसंघातकुंजरं।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा[२]।।

एतादृक भगवान् ऋषभदेवः, तस्य जिनबिंबानि च सर्वजगतां मंगलं कुर्वन्तु, इति भक्तिभावेन मया जिनचरणारविंदेषु प्रार्थ्यते।

षट्खण्डागमविषयः —

श्रीमद्भगवद्धरसेनाचार्यवर्यमुखकमलादधीत्य श्रीपुष्पदन्तभूतबलिसूरिभ्यां भव्यजनानुग्रहार्थं षट्खण्डागमनामधेयो ग्रन्थो विरचितः। अस्मिन् आगमे जीवस्थान-क्षुद्रकबंध-बंधस्वामित्वविचय-वेदनाखण्ड-वर्गणाखण्ड-महाबंधाश्चेति षट्खण्डाः सन्ति।

अत्र षष्ठखण्डमन्तरेण पञ्चखण्डेषु षट्सहस्र-अष्टशत-एकचत्वारिंशत्सूत्राणि सन्ति। तद्यथा—

अस्मिन् परमागमे प्रथमखण्डे द्विसहस्र-त्रिशत-पंचसप्ततिसूत्राणि, द्वितीयखण्डे षड्न्यूनषोडश-शतसूत्राणि, तृतीयखण्डे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, चतुर्थखण्डे पंचविंशत्यधिकपंचदशशतसूत्राणि, पंचमखण्डे त्रयोविंशत्यधिक-सहस्राणि सूत्राणि सन्ति।

वर्तमानकाल में भगवन्तों का समवसरण नहीं है अतः श्रीजिनप्रतिमा के विहार में ऐसी महिमा होना शक्य नहीं है ? ऐसी आशंका नहीं करना चाहिए[३]। क्योंकि—

जिनबिम्ब के दर्शन की महिमा भी षट्खण्डागम ग्रंथ में देखी जाती है—

"जिनबिंब के दर्शन से निधत्त और निकाचित भी मिथ्यात्व आदि कर्मसमूह का क्षय देखा जाता है।"

पुनरपि कहा है—

जिनेन्द्र भगवन्तों के दर्शन से पापसमूहरूपी पर्वत के सौ-सौ खण्ड हो जाते हैं जैसे कि पर्वत पर वज्र के गिरने से उसके खण्ड-खण्ड हो जाते हैं।

ऐसे श्री ऋषभदेव भगवान और उनकी प्रतिमाएं सारे विश्व में मंगल करें, इस प्रकार भक्तिभावपूर्वक मैंने जिनेन्द्रभगवान के चरणकमलों में प्रार्थना की है।

षट्खण्डागम का विषय—

श्रीमान् भगवान श्री धरसेनाचार्य के मुखकमल से अध्ययन करके श्री पुष्पदंत, श्री भूतबलि आचार्यों ने भव्यजनों के अनुग्रह के लिए षट्खण्डागम नाम का ग्रंथ लिखा है। इस आगम में जीवस्थान, क्षुद्रकबंध, बंधस्वामित्वविचय, वेदनाखण्ड, वर्गणाखण्ड और महाबंध ये छह खण्ड हैं।

इनमें से छठे खण्ड को छोड़कर पाँच खण्डों में छह हजार आठ सौ इकतालीस सूत्र हैं। उसे कहते हैं—

इस परमागम में प्रथम खण्ड में दो हजार तीन सौ पचहत्तर, द्वितीय खण्ड में छह कम सोलह सौ, तीसरे खण्ड में तीन सौ चौबीस, चौथे खण्ड में पंद्रह सौ पचीस और पाँचवें खण्ड में एक हजार तेईस सूत्र हैं।

१-२. षट्खण्डागम पु. ६, धवला, पृ. ४२७-४२८। ३. ईसवी सन् १९९८ में भगवान ऋषभदेव के समवसरण का—"भगवानऋषभदेव समवसरण श्रीविहार" नाम के रथ का प्रवर्तन दिल्ली से कराने की तैयारी चल रही थी, उस समय का यह प्रकरण है।

जीवस्थाननाम्नि प्रथमखण्डे सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगम नामाष्टानुयोगद्वाराणि, नवचूलिकाश्च सन्ति। द्वितीयखण्डे क्षुद्रकबंधे बन्धकानां प्ररूपणायां ''एकजीवेन स्वामित्वं, एकजीवेन कालः'' इत्यादि एकादशानुयोगद्वाराणि सन्ति। बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे—बंधपदेन बंधकर्ता कथ्यते। अत्र ग्रंथे ''किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ? किं उदयः'' इत्यादि त्रयोविंशति पृच्छास्तासां उत्तराणीत्यादिरूपेण ज्ञानावरणादि कर्मणां कारणादीनि कथ्यन्ते।

पुनश्च द्वितीयाग्रणीयपूर्वस्य पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध-बुद्धाश्चेति चतुर्दशाधिकाराः सन्ति। तेभ्यः 'चयनलब्धि' नामपंचमवस्तुनो विंशतिप्राभृतेषु चतुर्थं 'महाकर्मप्रकृतिनाम' प्राभृतं वर्तते। अस्य प्राभृतस्य चतुर्विंशति-अनुयोगद्वाराणि-कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्तनिकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध-अल्पबहुत्वानि चेति।

वेदनानाम्नि चतुर्थखण्डे कृति-वेदनानामद्वि-अनुयोगद्वारयोर्विस्तृत-विवेचनमस्ति। वर्गणानाम्नि पंचमखण्डे शेषस्पर्शादिद्वाविंशत्यनुयोगद्वाराणां कथनं ज्ञातव्यम्।

एवं नामनिरूपणरूपेण संक्षेपेण पंचखंडग्रन्थानां विषयविवेचना सूचितास्ति।

अधुना अस्य बंधस्वामित्वविचयनामतृतीयखण्डस्य विषयः कथ्यते—

अस्य खण्डस्य 'बंधस्वामित्वविचयो' नाम। बंधस्य स्वामिनो जीवाः तेषां विचयः—विचारणः

जीवस्थान नाम के प्रथम खण्ड में सत्प्ररूपणा-द्रव्यप्रमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम नाम के आठ अनुयोगद्वार एवं नौ चूलिकाएँ हैं। द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत क्षुद्रकबंध में बंधक जीवों की प्ररूपणा में एक जीव के साथ स्वामित्व, एक जीव की अपेक्षा काल" इत्यादि ग्यारह अनुयोगद्वार हैं। बंधस्वामित्वविचय नाम के तृतीय खण्ड में बन्ध पद के द्वारा बन्धकर्ता का कथन किया गया है। यहाँ इस ग्रंथ में "क्या बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है ? उदय क्या है ? इत्यादि तेईस प्रश्न हैं, उनके उत्तर इत्यादि रूप से ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारण कहे गये हैं।

पुनश्च द्वितीय अग्रायणीय पूर्व के पूर्वान्त-अपरान्त-ध्रुव-अध्रुव-चयनलब्धि-अध्रुवसंप्रणिधान-कल्प-अर्थ-भौमावयाद्य-सर्वार्थ-कल्पनिर्याण-अतीतकालसिद्ध-अनागतकालसिद्ध और अनागतकालबुद्ध ये चौदह अधिकार हैं। उनमें से 'चयनलब्धि' नामक पंचम वस्तु के बीस प्राभृतों में चतुर्थ "महाकर्मप्रकृति" नाम का प्राभृत है। इस प्राभृत के चौबीस अनुयोगद्वार हैं—कृति-वेदना-स्पर्श-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व।

वेदना नाम के चतुर्थ खण्ड में कृति-वेदना नाम के दो अनुयोगद्वारों का विस्तृत विवेचन है। वर्गणा नाम के पंचम खण्ड में शेष स्पर्श आदि बाईस अनुयोगद्वारों का कथन जानना चाहिए।

इस प्रकार नाम निरूपण के द्वारा संक्षेप में पाँच खण्डों में विभक्त ग्रंथों की विषय विवेचना सूचित की गई है।

अब इस 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड का विषय कहते हैं—

इस खण्ड का 'बंधस्वामित्वविचय' यह नाम है। बंध के स्वामी जीव हैं, उनका विचय अर्थात् उनकी

मीमांसा परीक्षा इति। अस्मिन् तृतीयखण्डे कीदृशः कतितमो वा बंधः-कर्मबंधः कस्मिन् कस्मिन् गुणस्थाने पुनश्च कस्यां कस्यां मार्गणायमिति विवेचनास्ति।

बंधस्य व्याख्या—जीवकर्मणोः मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगैः एकत्वपरिणामो बंधः कथ्यते। अयं बंधोऽनादिकालात् सर्वेषां संसारिजीवानां अनन्तानन्तानामपि अस्ति। एतस्मात्बंधात् मुक्ताः जीवाः सिद्धाः कथ्यन्ते। सिद्धपदप्राप्त्यर्थमेव एतेषां ग्रन्थानां स्वाध्यायो टीकालेखनमध्ययनं अध्यापनं चिंतनं अभ्यासादिकं क्रियते।

अस्य ग्रन्थस्य विषयः—

कृति-वेदनादिचतुर्विंशत्यनुयोद्वारेषु तत्र बंधनं नाम षष्ठमनुयोगद्वारं।

एतत् षष्ठबंधननामानुयोगद्वारम् चतुर्विधं विवक्षितं-बंधो बंधको बंधनीयं बंधविधानमिति।

तत्र प्रथमबंधाधिकारो जीवस्य कर्मणां च संबंध नयापेक्षाया निरूपयति। अस्माद् बंधादेव तृतीयो बंधस्वामित्वविचयोऽस्ति। ततश्च विस्तरः—

बंधकोऽधिकारः एकादशानियोगद्वारैः बंधकान् प्ररूपयति। इमे एकादशाधिकाराः—१. एकजीवापेक्षया स्वामित्वानुगमः २. एकजीवापेक्षया कालानुगमः ३. एकजीवापेक्षयान्तरानुगमः ४. नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगमः ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगमः ७. स्पर्शनानुगमः ८. नानाजीवापेक्षया कालानुगमः ९. नानाजीवापेक्षया अन्तरानुगमः १०. भागाभागानुगमः ११. अल्पबहुत्वानुगमश्चेति।

एतेषां एव एकादशानियोगद्वाराणां क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे विस्तरोऽस्ति।

विचारणा, मीमांसा और परीक्षा इसी का नाम विचय है। इस तृतीय खण्ड में कैसा अथवा कौन सा बंध होता है ? वह कर्मबंध किस-किस गुणस्थान में पुनः किस-किस मार्गणा में होता है ? इस ग्रंथ में यही विवेचना की गई है।

अब बंध की व्याख्या बताते हैं—

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम है वह बंध कहलाता है। यह कर्मबंध अनादिकाल से अनन्तानन्त भी सभी संसारी जीवों के है। इस बंध से मुक्त हुए जीव 'सिद्ध भगवान' कहलाते हैं। इस सिद्धपद की प्राप्ति के लिए इन ग्रंथों का स्वाध्याय, टीकालेखन, अध्ययन, अध्यापन, चिन्तन और अभ्यास आदि किये जाते हैं।

इस ग्रंथ का विषय कहते हैं—

कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोग द्वारों में 'बंधन' नाम का एक छठा अनुयोगद्वार है।

यह छठा 'बंधन' नाम का अनुयोगद्वार चार प्रकार से विवक्षित है—बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान।

उसमें से प्रथम बंधाधिकार जीव और कर्मों के संबंध को नय की अपेक्षा से निरूपित करता है। इस बंध से ही यह तीसरा 'बंधस्वामित्वविचय' बना है।

इसी का विस्तार यह है—

दूसरा बंधक अधिकार ग्यारह अनियोगद्वारों से बंधकों का प्ररूपण करता है। इन ग्यारह अधिकारों के नाम—१. एकजीव की अपेक्षा से स्वामित्वानुगम २. एक जीव की अपेक्षा से कालानुगम ३. एक जीव की अपेक्षा से अन्तरानुगम ४. नाना जीवों की अपेक्षा से भंगविचयानुगम ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा से कालानुगम ९. नाना जीवों की अपेक्षा से अन्तरानुगम १०. भागाभागानुगम और ११. अल्पबहुत्वानुगम।

इन्हीं ग्यारह अनुयोगद्वारों का 'क्षुद्रकबंध' नाम के दूसरे खण्ड में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है।

बंधननाम्नः चतुर्भेदेषु तृतीयं बंधनीयं भेदोऽस्ति। अत्र त्रयोविंशतिवर्गणाभिः बंधयोग्यमयोग्यं च पुद्गलद्रव्यं कथयति। इमाः त्रयोविंशतिवर्गणाः वर्गणाखण्डे वर्णिता—वर्णयिष्यन्ति।

बंधविधानस्यापि चतुर्भेदाः—प्रकृतिबंधः, स्थितिबंधः, अनुभागबंधः प्रदेशबंधश्च। प्रकृतिबंधोऽपि द्विविधः—मूलप्रकृतिबंधः उत्तरप्रकृतिबंधश्च। उत्तरप्रकृतिबंधस्य द्वौ भेदौ—एकैकोत्तरप्रकृतिबंधः अव्वोगाढ-उत्तरप्रकृतिबंधश्च। तत्रापि एकैकोत्तरप्रकृतिबंधस्य चतुर्विंशति अनुयोगद्वाराणि-समुत्कीर्तना-सर्वबंध-नोसर्वबंध-उत्कृष्टबंध-अनुत्कृष्टबंध-जघन्यबंध-अजघन्यबंध-सादिबंध-अनादिबंध-ध्रुवबंध-अध्रुवबंध-बंधस्वामित्व-विचय-बंधकाल-बंधान्तर-बंधसन्निकर्ष-नानाजीवापेक्षया भंगविचय-भागाभागानुगम-परिमाणानुगम-क्षेत्रानुगम-स्पर्शनानुगम-कालानुगम-अन्तरानुगम-भावानुगम-अल्पबहुत्वानुगमाश्चेति एषु चतुर्विंशतिषु द्वादशोऽयं बंधस्वामित्वविचयोऽधिकारोऽस्ति।

अस्मिन् ग्रन्थे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि सन्ति। तत्र तावत् द्वौ अधिकारौ विभज्येते। प्रथमे महाधिकारे गुणस्थानेषु द्वितीयमहाधिकारे मार्गणासु च प्रश्नोत्तरक्रमेण प्रकृतिबंधादयः प्ररूपिताः सन्ति।

अस्मिन् ग्रंथे 'बंधः' पदेन बंधको-बंधकर्ता इति भण्यते। सूत्रे 'को बंधः को अबंधो' इति कथनेन पृच्छा वर्तते। धवलाटीकाकारैः पृच्छाः त्रयोविंशतिविधाः कथिताः। तथाहि—

१. किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

२. किमुदयः पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

३. किं द्वावपि समं व्युच्छिद्येते ?

यहाँ जो 'बंधन' अनुयोगद्वार के चार भेदों में 'बंधनीय' नाम का तीसरा भेद है। इसमें तेईस वर्गणाओं के द्वारा बंध के योग्य-अयोग्य पुद्गलद्रव्य का कथन है। ये तेईसों वर्गणाएं आगे वर्गणाखण्ड में कही जायेंगी।

बंधविधान नाम का जो चौथा भेद है उसके भी चार भेद हैं—

प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध। प्रकृतिबंध के भी दो भेद हैं—मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। उत्तरप्रकृति बंध के दो भेद हैं—एकैकोत्तर प्रकृतिबंध और अव्वोगाढ उत्तरप्रकृतिबंध।

इनमें भी एकैकोत्तरप्रकृतिबंध के चौबीस अनुयोगद्वार हैं—१. समुत्कीर्तना २. सर्वबंध ३. नोसर्वबंध ४. उत्कृष्टबंध ५. अनुत्कृष्टबंध ६. जघन्यबंध ७. अजघन्यबंध ८. सादिबंध ९. अनादिबंध १०. ध्रुवबंध ११. अध्रुवबंध १२. **बंधस्वामित्वविचय** १३. बंधकाल १४. बन्धान्तर १५. बंधसन्निकर्ष १६. नानाजीवापेक्षया बंधविचय १७. भागाभागानुगम १८. परिमाणानुगम १९. क्षेत्रानुगम २०. स्पर्शनानुगम २१. कालानुगम २२. अन्तरानुगम २३. भावानुगम और २४. अल्पबहुत्वानुगम।

इन चौबीस अधिकारों में यह बारहवाँ 'बंधस्वामित्वविचय' नाम का अधिकार है।

इस ग्रंथ में तीन सौ चौबीस सूत्र हैं। उनमें दो अधिकार विभक्त किये जा रहे हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में और द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में प्रश्नोत्तर के क्रम से प्रकृतिबंध आदि के प्ररूपण हैं।

इस ग्रंथ में 'बंध' पद से बंधक अर्थात् बंध करने वाले 'बंधकर्ता' कहे जाते हैं। सूत्र में 'को बंधः को अबंधः' इस कथन से पृच्छा—प्रश्न किया है। धवलाटीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने इस पृच्छा को तेईस प्रकार से कहा है। जैसे कि—

१. क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

२. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

३. क्या दोनों की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

इत्यादयः पृच्छाः अग्रे स्वयमेव करिष्यन्ति।

उत्तरेषु — मिथ्यादृष्टिप्रभृति दशमगुणस्थानपर्यन्ताः संयताः बंधकाः, शेषाः उपरितनगुणस्थानवर्तिनः सिद्धाश्च अबंधकाः। इत्यादिप्रकारेण अस्मिन् ग्रंथे विस्तरेण कथिताः सन्ति।

अथ भूमिका प्रारभ्यते —

अथ षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचये गुणस्थान-मार्गणाभ्यां द्वाभ्यां महाधिकाराभ्यां चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्रैः अयं ग्रन्थो व्याख्यायते। तस्मिन् प्रथमे महाधिकारे द्विचत्वारिंशत्सूत्राणि। द्वितीये महाधिकारे द्व्यशीत्यधिक-द्विशतसूत्राणि सन्ति।

तत्र तावत्प्रथमे गुणस्थानेषु बंधस्वामित्वविचयाख्ये महाधिकारे एकविंशतिस्थलानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। तेषु प्रथमस्थले बंधस्वामित्वकथनप्रतिज्ञातद्भेदनिरूपणत्वेन ''जो सो बंध-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले गुणस्थानेषु बंधस्वामित्वकथनत्वेन चतुर्दशगुणस्थानामनिरूपणत्वेन च ''ओघेण-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं तृतीयस्थले एतेषु गुणस्थानेषु बंधव्युच्छित्ति प्रतिपादनप्रतिज्ञारूपेण ''एदेसिं-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां बंधव्युच्छित्तिस्वामिकथनस्य प्रश्नोत्तररूपेण ''पंचण्हं-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनः पंचमस्थले निद्रानिद्रादिपंचविंशतिप्रकृतिबंधव्युच्छित्तिनिरूपणस्य प्रश्नोत्तररूपेण ''णिद्दा-णिद्दा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च षष्ठस्थले निद्राप्रचलाप्रकृतिबंधव्युच्छित्तिकथनप्रश्नोत्तरप्रतिपादनत्वेन ''णिद्दा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु सप्तमस्थले सातावेदनीयबंधव्युच्छित्तिकथनप्रश्नोत्तरनिरूपणत्वेन ''सादावेदणीयस्स-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं अष्टमस्थले असातावेदनीयादिषट्प्रकृतिबंधव्युच्छित्तिनिरूपणत्वेन ''असादा-''

इत्यादि पृच्छा स्वयमेव आगे करेंगे। पुनः इन पृच्छाओं के उत्तर में —

मिथ्यादृष्टि जीवों से लेकर दशवें गुणस्थान पर्यंत संयत — मुनि बंधक हैं, शेष इनसे ऊपर के गुणस्थानवर्ती — उपशांतकषाय, क्षीणकषाय महामुनि, सयोगकेवली भगवान एवं अयोगकेवली भगवान तथा सिद्ध भगवान अबंधक हैं। इत्यादि प्रकार से इस ग्रंथ में विस्तार से कथन है।

अब भूमिका प्रारंभ की जाती है —

अब षट्खण्डागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तृतीय खण्ड में गुणस्थान और मार्गणा नाम के दो महाधिकारों द्वारा तीन सौ चौबीस सूत्रों से यह ग्रंथ कहा जायेगा। उसमें प्रथम महाधिकार में ४२ सूत्र हैं। दूसरे महाधिकार में २८२ सूत्र हैं।

उसमें प्रथमतः बंधस्वामित्वविचय नाम के महाधिकार में गुणस्थानों में इक्कीस स्थल जानने योग्य हैं। उसमें भी प्रथम स्थल में बंधस्वामित्व कथन की प्रतिज्ञा और उनके भेदों के निरूपणरूप से 'जो सो बंध' इत्यादिरूप से एक सूत्र है। उसके बाद द्वितीय स्थल में गुणस्थानों में 'बंधस्वामित्व' के कथन रूप से और चौदह गुणस्थानों के नाम निरूपण रूप से 'ओघेण' इत्यादि दो सूत्र हैं। अनंतर तीसरे स्थल में इन गुणस्थानों में बंधव्युच्छित्तिप्रतिपादन की प्रतिज्ञा रूप से 'एदेसिं' इत्यादि एक सूत्र है। उसके बाद चौथे स्थल में ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी के कथन के प्रश्नोत्तर प्रकार से 'पंचण्हं' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। पुनः पाँचवें स्थल में निद्रानिद्रा आदि पच्चीस प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति निरूपण के प्रश्नोत्तररूप से ''णिद्दाणिद्दा'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनंतर छठे स्थल में निद्रा और प्रचला प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति कथन के प्रश्नोत्तर प्रतिपादनरूप से 'णिद्दा'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनंतर सातवें स्थल में साता वेदनीय की बंधव्युच्छित्ति के कथनरूप प्रश्नोत्तर निरूपणरूप से ''सादावेदणीयस्स'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इसके बाद आठवें स्थल में असाता वेदनीयादि छह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के निरूपण रूप से

इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च नवमस्थले मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतिबंधव्युच्छित्तिनिरूपणत्वेन ''मिच्छत्त-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। अनंतरं दशमस्थले अप्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतिबंधव्युच्छित्तिस्वामिकथनत्वेन ''अपच्चक्खाणा-''इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं एकादशमस्थले प्रत्याख्यानावरणादिचतुष्कप्रकृतिबंधव्युच्छित्ति-स्वामिकथनत्वेन ''पच्चक्खाणा-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च द्वादशस्थले पुरुषवेदादिद्विप्रकृतिबंध-व्युच्छित्तिकथनत्वेन ''पुरिसवेद-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु त्रयोदशस्थले मानमायाबंधव्युच्छित्तिस्वामि-निरूपणत्वेन ''माण-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् चतुर्दशस्थले लोभबंधव्युच्छित्तिकथनत्वेन ''लोभ-'' इत्यादिना द्वे सूत्रे। ततः परं पंचदशस्थले हास्यादिबंधव्युच्छित्तिस्वामिकथनत्वेन ''हस्स' इत्यादिना द्वे सूत्रे। तदनु षोडशस्थले मनुष्यायुः प्रकृतिव्युच्छित्तिप्रतिपादनत्वेन ''मणुस्सा'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततश्च सप्तदशस्थले देवायुः प्रकृतिबंधव्युच्छित्तिनिरूपणत्वेन ''देवाउ'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं अष्टादशस्थले देवगत्यादिप्रकृति-बंधव्युच्छित्तिस्वामिकथनत्वेन ''देवगइ'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु एकोनविंशतिस्थले आहारकशरीरप्रकृति-बंधव्युच्छित्तिप्रतिपादनत्वेन ''आहारसरीर'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तत्पश्चात् विंशस्थले तीर्थंकरबंधकप्रतिपादनत्वेन ''तित्थयर'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च एकविंशस्थले दर्शनविशुद्ध्यादिकारण-निरूपणत्वेन प्रश्नोत्तररूपेण ''कदिहि कारणेहि'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अथ बन्धस्वामित्वविचय-प्रतिपादनप्रतिज्ञारूपेण भेदकथनेन चापि एकं सूत्रमवतरति —

'असादा' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इसके बाद नवमें स्थल में मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के निरूपण करने वाले ''मिच्छत्त'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनंतर दशवें स्थल में अप्रत्याख्यानावरणादि प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी को बतलाते हुए ''अपच्चक्खाणा'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे।

इसके बाद ग्यारहवें स्थल में प्रत्याख्यानावरण आदि चार प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी का प्रतिपादन करने वाले ''पच्चक्खाणा'' इत्यादि दो सूत्र हैं। अनंतर बारहवें स्थल में पुरुषवेद आदि दो प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के कथनरूप से ''पुरिसवेद'' इत्यादि दो सूत्र हैं। इसके बाद तेरहवें स्थल में मान और माया की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी को निरूपित करने वाले ''माण'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। तत्पश्चात् चौदहवें स्थल में लोभ की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी के कथन की अपेक्षा ''लोभ'' इत्यादि दो सूत्र हैं। इसके अनंतर पंद्रहवें स्थल में हास्य आदि की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी का प्रतिपादन करते हुए ''हस्स'' इत्यादिरूप से दो सूत्र कहेंगे। तदनु — इसके बाद सोलहवें स्थल में मनुष्यायु की बंधव्युच्छित्ति बतलाते हुए ''मणुस्सा'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनंतर सत्रहवें स्थल में देवायु की बंधव्युच्छित्ति बतलाते हुए 'देवाउ'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। अनंतर अठारहवें स्थल में देवगति आदि प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति के स्वामी को बतलाते हुए ''देवगइ'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इसके बाद उन्नीसवें स्थल में आहारकशरीरप्रकृति की बंधव्युच्छित्ति का प्रतिपादन करते हुए 'आहारशरीर' इत्यादि दो सूत्र हैं। तत्पश्चात् बीसवें स्थल में तीर्थंकरप्रकृति के बंध करने वाले का प्रतिपादन करते हुए 'तित्थयर-' इत्यादिरूप से दो सूत्र कहेंगे। पुनः इक्कीसवें स्थल में दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं का निरूपण करते हुए प्रश्नोत्तररूप से 'कदिहि कारणेहि'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। इस प्रकार इक्कीस स्थलों द्वारा बयालिस सूत्रों में इस प्रथम महाधिकार की समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब बंधस्वामित्वविचय के प्रतिपादन की प्रतिज्ञारूप से और उनके भेदों को भी कहते हुए एक सूत्र का अवतार होता है —

जो सो बंधसामित्तविचओ णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**जीव-कर्मणोः मिथ्यात्वासंयमकषाययोगैः एकत्वपरिणामो बंधः। एतस्य बंधस्य स्वामित्वं बन्धस्वामित्वं, तस्य विचयो विचारणा मीमांसा परीक्षा इति एकार्थः। अस्य बंधस्वामित्वविचयस्यायं द्विविधो निर्देशः कृतः।**

अस्मात् सूत्रात्संबंधाभिधेयप्रयोजनान्यपि ज्ञातव्यानि भवन्ति।

'यः स बन्धस्वामित्वविचयो नामेति' एतेन सम्बन्धः कथितः। तद्यथा—कृति-वेदनानि चतुर्विंशत्य-नियोगद्वारेषु तत्र बंधनमिति षष्ठमनियोगद्वारं। तच्चतुर्विधं—बंधो बन्धको बन्धनीयं बन्धविधानं च। तेषु बन्धाधिकारो नामजीवस्य कर्मणां च संबधं नयमाश्रित्य प्ररूपयति। बन्धकोधिकारः एकादशानियोगद्वारै-र्बन्धकान् प्ररूपयति। बन्धनीयं नामाधिकारः त्रयोविंशतिवर्गणाभिर्बन्धयोग्यमयोग्यं च पुद्गलद्रव्यं कथयति। यद् बन्धविधानं तच्चतुर्विधं प्रकृति-स्थित्यनुभागप्रदेशबन्धश्चेति। तत्र प्रकृतिबंधो द्विविधः—मूलप्रकृतिबंध उत्तरप्रकृतिबंधश्च। यो मूलप्रकृतिबंधः स द्विविधः—एकैकमूलप्रकृतिबंधोऽव्वोगाढमूलप्रकृतिबंधश्च।

सूत्रार्थ—

जो यह 'बंधस्वामित्वविचय' नाम का ग्रंथ है, वह यहाँ ओघ और आदेश की अपेक्षा दो भेदरूप है।।१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के साथ एकत्वपरिणाम होना—एकमेकरूप हो जाना बंध है। इस बंध का स्वामित्व 'बंधस्वामित्व' है, उसका विचय अर्थात् विचारणा, मीमांसा, परीक्षा करना बंधस्वामित्वविचय कहलाता है। यहाँ विचय, विचारणा, मीमांसा और परीक्षा ये एकार्थवाची हैं। इस बंधस्वामित्वविचय के दो भेद हैं, यहाँ ऐसा निर्देश किया गया है।

इस सूत्र से संबंध, अभिधेय और प्रयोजन भी जानना चाहिए। "जो यह बंधस्वामित्वविचय नाम है' इस प्रकार यहाँ इस कथन से संबंध कहा गया है। उसी को स्पष्ट करते हैं—

कृति, वेदना, स्पर्शन, कर्म, प्रकृति, बंधन, निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सातासात, दीर्घह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्त, निधत्तानिधत्त, निकाचितानिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व ये महाकर्मप्रकृति प्राभृत के चौबीस अर्थाधिकार अनुयोगद्वार हैं।

इनमें से 'बंधन' यह छठा अनुयोगद्वार है। उसके चार भेद हैं—बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान। इनमें से जो प्रथम बंधाधिकार है वह नयों का आश्रय करके जीव और कर्मों के संबंध को प्ररूपित करता है।

दूसरा बंधकाधिकार ग्यारह अनियोगद्वारों से बंधकों का निरूपण करता है।

बंधनीय नाम का तीसरा अधिकार तेईस प्रकार की वर्गणाओं के द्वारा बंध के योग्य और अयोग्य पुद्गलद्रव्य का कथन करता है।

जो बंधविधान नाम का चौथा अधिकार है, उसके चार भेद हैं—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध।

उसमें प्रकृतिबंध दो प्रकार का है—मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। जो मूलप्रकृतिबंध है वह भी दो प्रकार का है—एकैकमूलप्रकृतिबंध और अव्वोगाढमूलप्रकृतिबंध। जो यह दूसरा अव्वोगाढमूलप्रकृतिबंध है

योऽव्वोगाढमूलप्रकृतिबंधः सोऽपि द्विविधः—भुजगारबंधः प्रकृतिस्थानबंधश्च।

तत्रोत्तरप्रकृतिबंधस्य समुत्कीर्तनादिचतुर्विंशत्यनियोगद्वाराणि भवन्ति।

तेषु चतुर्विंशत्यनियोगद्वारेषु बन्धस्वामित्वं नामानियोगद्वारं। तस्यैव बंधस्वामित्वविचयः संज्ञा। योऽसौ बन्धस्वामित्वविचयो बंधन-बंधविधान-प्रसिद्धः प्रवाहरूपेणानादिनिधनः।

'जो सो' सूत्रे अनेक वचनेन येन सः स्मारितस्तेनैष 'णिद्देसो' निर्देशः संबंधप्ररूपकः। एषश्चैवाभिधेय-प्ररूपकोऽपि भवति। तदेव जीवकर्मणोः मिथ्यात्वादिभिरेकत्वपरिणामो बंधः कथ्यते।

उक्तं च— बंधेण य संजोगो पोग्गलदव्वेण होइ जीवस्स।
बंधो पुण विण्णेओ बंधविओओ पमोक्खो[1] दु।।

'बंधसामित्तविचओ णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो।' अनेनेदं सूत्रं देशामर्शकं तेनात्र 'प्रयोजनमपि' प्ररूपयितव्यं।

किमर्थमत्र बंधस्यस्वामित्व कथ्यते ?

सत्त्व-द्रव्य-क्षेत्र-स्पर्शन-कालान्तर-भावाल्पबहुत्व-गत्यागति-बन्धकरूपेणावगतानां चतुर्दशगुणस्थाना-नामनवगते बंधविशेषे बंधकत्वं बंधकारणगत्यागतयश्च सम्यक् रीत्या न ज्ञायन्ते इति कृत्वा चतुर्दशगुणस्थानानि अधिकृत्य अल्पायुष्काणामनुग्रहार्थं बंधविशेष उच्यते।

तस्य निर्देशो द्विविधः ओघादेशभेदेन।

त्रिविधः किन्न भवति ?

यह भी दो प्रकार का है—भुजगारबंध और प्रकृतिस्थानबंध।

इनमें से जो प्रकृतिबंध के दो भेद किये हैं—मूलप्रकृतिबंध, उत्तरप्रकृतिबंध। सो यहाँ पर उत्तरप्रकृतिबंध के समुत्कीर्तना आदि चौबीस अनुयोगद्वार हैं।

उन चौबीस अनुयोगद्वारों में 'बंधस्वामित्व' नाम का अनियोगद्वार हैं। उसी की बंधस्वामित्वविचय संज्ञा है। जो यह बंधस्वामित्वविचय है वह बंधन-बंधविधान नाम से प्रसिद्ध है और प्रवाहरूप से अनादिनिधन है।

सूत्र में 'जो सो' कहा है इस वचन से जिससे वह स्मरण कराया गया है, उसी से यह 'णिद्देसो' निर्देश संबंधप्ररूपक है—संबंध को बतलाने वाला है और यही अभिधेय को भी कहने वाला है। वही जीव और कर्मों का मिथ्यात्व आदि के द्वारा जो एकत्व परिणाम है वही बंध कहा जाता है। कहा भी है—

जीव का पुद्गलद्रव्यरूप बंध के साथ जो संयोग होता है वह बंध है पुनः बंध का वियोग ही प्रमोक्ष—मोक्ष है ऐसा जानना चाहिए।

जो सूत्र में 'बंधसामित्तविचओ णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो'' ऐसा कहा है, इस कथन से यह सूत्र देशामर्शक है अतः इसी से यहाँ प्रयोजन भी प्ररूपित किया गया है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ किसलिए बंध का स्वामित्व कहा जाता है ? सत्त्व, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व, गति, आगति, बंधकरूप से जाने गये चौदह गुणस्थानों का और नहीं जाने गये बंध विशेष में बंधकत्व, बंधकारण और गति-आगति को सम्यक्रीति से नहीं जानते हैं इसलिए चौदह गुणस्थानों को लक्ष्य करके अल्पायुजनों पर अनुग्रह करने के लिए 'बंधविशेष' का कथन किया जा रहा है।

उसका निर्देश दो प्रकार का है—ओघ और आदेश।

तीन प्रकार क्यों नहीं होता है ?

---

१. षट्खण्डागम (धवलाटीका समन्वित) पु. ८, पृ. ३ ।

नैतद् वक्तव्यं, वचन-प्रयोगो हि नाम परार्थः। न च परोऽपि द्विनयव्यतिरिक्तोऽस्ति येन त्रिविधा एकविधा वा प्ररूपणा भवेत्। ओघनिर्देशो द्रव्यार्थिकनयानुग्रहकरः आदेशनिर्देशोऽपि पर्यायार्थिकनयस्येति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले बंधस्वामित्वकथनप्रतिज्ञातद्भेदनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना ओघेन बंधस्वामित्वेचतुर्दशगुणस्थानतन्नामप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

ओघेण बंधसामित्तविचयस्स चोद्दसजीवसमासाणि णादव्वाणि भवंति।।२।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदा-संजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा अणिय-ट्टिबादर-सांपराइयपइट्ठउवसमा खवा सुहुमसांपराइयपइट्ठवसमा खवा उवसंतकसाय-वीयरागछदुमत्था खीणकसायवीयरागछदुमत्था सजोगिकेवली अयोगिकेवली।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' इति ज्ञापनार्थं सूत्रे 'ओघेण' इत्युक्तं। बंधसामित्त-विचयस्स' अत्र संबंधे षष्ठी द्रष्टव्या। अथवा बंधस्वामित्वविचये इति विषयलक्षणसप्तम्यां षष्ठीनिर्देशः**

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वचनप्रयोग पर के लिए होता है और पर भी दो नयों से अतिरिक्त नहीं है जिससे कि तीन प्रकार की या एक प्रकार की प्ररूपणा की जा सके, अतः दो ही प्रकार से कथन किया जाता है।

ओघ निर्देश द्रव्यार्थिकनय का अनुग्रह करने वाला है और आदेशनिर्देश पर्यायार्थिकनय की अपेक्षा रखने वाला है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में बंधस्वामित्व के कथन की प्रतिज्ञा और भेद के निरूपणरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब ओघ से बंधस्वामित्व में चौदह गुणस्थान और उनके नाम को प्रतिपादित करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

ओघ से बंधस्वामित्वविचय में चौदह जीवसमास गुणस्थान जानने योग्य हैं।।२।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत, अपूर्वकरणप्रविष्टउपशामक-क्षपक, अनिवृत्तिकरणबादर-सांपरायिकउपशमक-क्षपक, सूक्ष्मसांपरायिकप्रविष्ट उपशमक-क्षपक, उपशान्तकषाय-वीतराग छद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये चौदह गुणस्थानों के नाम हैं।।३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — "यथा उद्देश्यः तथा निर्देशः" जैसा उद्देश होता है, वैसा निर्देश होता है, इस बात को बतलाने के लिए सूत्र में 'ओघेन' यह पद दिया है। सूत्र में 'बंधसामित्तविचयस्स' पद में संबंध

कृतः पूर्वं ज्ञातान्येव चतुर्दशगुणस्थानानि।

पुनस्तान्यत्र किमर्थं प्ररूप्यन्ते ?

विस्मरणशीलशिष्यानुग्रहार्थमेव पुनरप्युक्तानि, अतो नात्र दोषोऽस्ति।

मिथ्यादृष्ट्यादिगुणस्थानलक्षणं पूर्वं जीवस्थानग्रन्थे विस्तरणे प्ररूपितमस्ति अतोऽत्रन प्ररूप्यते विशेषाभावात्।

एवं द्वितीयस्थले बंधस्वामित्व चतुर्दशगुणस्थानतन्नामनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अत्र गुणस्थानेषु प्रकृतिबंधव्युच्छेदकथनाय सूत्रमवतरति —

एदेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं पयडिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यस्मिन् यस्मिन् गुणस्थाने याः याः प्रकृतयः बंधेन व्युच्छिद्यन्ते ताः ताः बंधव्युच्छित्तिप्रकृतयस्तेषां स्वामिनां च निरूपणं क्रियते।**

कश्चिदाह—सूत्रे तु कथितं, प्रकृतिबंधव्युच्छेदकथनमस्ति। यदि चतुर्दशगुणस्थानानां प्रकृतिबन्धव्युच्छेद एवोच्यते तर्हि एतस्य ग्रन्थस्य 'बंधस्वामित्वविचय' इति संज्ञा कथं घटते?

आचार्यः समाधत्ते—नैष दोषः, एतस्मिन् गुणस्थाने एतासां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदो भवति इति

अर्थ में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग है। अथवा, 'बंधस्वामित्वविचय' में ऐसा अर्थ करने पर विषयलक्षण सप्तमी में षष्ठी का निर्देश किया है।

पहले के ग्रंथों में इन चौदह गुणस्थानों के नाम बतलाये जा चुके हैं।

पुनः उनको यहाँ किसलिए कहा है ?

विस्मरणशील शिष्यों के ऊपर अनुग्रह करने के लिए ही इन्हें पुनः यहाँ कहा है। अतः यह कोई दोष नहीं है।

मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों के लक्षण पूर्व में 'जीवस्थान' नाम के प्रथम खण्ड में विस्तार से कहे गये हैं अतः यहाँ उनकी प्ररूपणा नहीं की जा रही है क्योंकि विशेषता का अभाव है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में बंधस्वामित्व के चौदह गुणस्थान और उनके नाम का निरूपण करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब गुणस्थानों में प्रकृतिबंध के व्युच्छेद का कथन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

इन चौदह जीवसमास-गुणस्थानों में प्रकृति बंध का व्युच्छेद कथन करने योग्य है।।४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस-जिस गुणस्थान में जो-जो प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं, अलग होती हैं, वे-वे बंधव्युच्छित्ति प्रकृतियाँ हैं, उनका और उनके स्वामी का यहाँ निरूपण करते हैं।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि—

सूत्र में कहा है कि यहाँ प्रकृति के बंध व्युच्छेद का कथन है। यदि चौदह गुणस्थानों में प्रकृतिबंध व्युच्छेद ही कहा जायेगा तो इस ग्रंथ की 'बंधस्वामित्वविचय' यह संज्ञा कैसे घटित होगी ?

यहाँ आचार्यदेव समाधान करते हैं—

यहाँ कोई दोष नहीं है, क्योंकि इस गुणस्थान में इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छेद होता है, इस प्रकार का

कथितेऽधस्तनगुणस्थानानि तासां प्रकृतीनां बंधस्वामिन इति सिद्धेः। किंच—व्युच्छेदो द्विविधः—उत्पादानुच्छेदोऽनुत्पादानुच्छेदश्च। उत्पादः सत्त्वं अनुच्छेदो विनाशः अभावः नीरूपता इति यावत्। उत्पाद एवानुच्छेदः उत्पादानुच्छेदः, भाव एवाभावः अस्य कथनस्याभिप्रायोऽस्ति। एष द्रव्यार्थिकनयव्यवहारः।

न चैष—एकान्तेन चपलकः-मिथ्या, उत्तरकालेऽर्पितपर्यायस्य विनाशेन विशिष्टद्रव्यस्य पूर्वस्मिन् कालेऽपि उपलंभात्।

द्रव्यार्थिकनयविवक्षायां विद्यमानपर्यायाणां कथमभावः ?

को भणति तेषां तत्राभावोऽस्ति, किन्तु ते तत्राप्रधाना अविवक्षिता अनर्पिता अतस्तेषां द्रव्यत्वमेव न तत्र पर्यायत्वं।

कश्चिदाह पुनरपि—अस्तित्ववशेन अद्रव्याणां—द्रव्याद् भिन्नानां पर्यायाणां कथं द्रव्यत्वं ?

आचार्यः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, द्रव्यात् एकान्तेन तेषां पृथग्भूतानामनुपलंभात् द्रव्यस्वभावानां चैवोपलंभात्।

पुनाशंकायां—यद्येवं तर्हि भावस्य द्विचरमादिषु समयेषु चरमसमये इव अभावव्यवहारः किन्न क्रियते ?

समाधानं क्रियते—नैष दौषः द्विचरमादीनां चरमसमयस्येवाभावेन सह प्रत्यासत्तेरभावात्।

द्रव्यार्थिकस्य कथमभावव्यवहारः ?

कथन करने पर नीचे के गुणस्थान उन प्रकृतियों के बंध के स्वामी हैं यह बात सिद्ध हो जाती है। दूसरी बात यह है कि व्युच्छेद दो प्रकार का है—उत्पादानुच्छेद और अनुत्पादानुच्छेद। उत्पाद अर्थात् सत्त्व और अनुच्छेद का अर्थ है विनाश—अभाव अथवा नीरूपता।

उत्पाद ही अनुच्छेद—उत्पादानुच्छेद, भाव ही अभाव है यहाँ इस कथन का ऐसा अभिप्राय है। यह द्रव्यार्थिकनय के आश्रित व्यवहार है और यह व्यवहारनय एकान्त से चपल अर्थात् मिथ्या नहीं है, क्योंकि उत्तरकाल में विवक्षितपर्याय के विनाश से विशिष्ट द्रव्य का पूर्वकाल में भी अस्तित्व पाया जाता है।

शंका—द्रव्यार्थिकनय की विवक्षा में विद्यमान पर्यायों का अभाव कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कौन कहता है कि उन पर्यायों का वहाँ अभाव है, किन्तु वे वहाँ अप्रधान हैं—अविवक्षित हैं—अनर्पित हैं, इसलिए उनका वहाँ द्रव्यत्व ही है, पर्यायपना वहाँ नहीं है।

पुनः कोई प्रश्न करता है—

अस्तित्व के वश से अद्रव्य के—द्रव्य से भिन्न पर्यायों के द्रव्यपना कैसे है ?

आचार्यदेव कहते हैं—

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि एकांत से सर्वथा द्रव्य से भिन्न पर्यायों की उपलब्धि नहीं होती है, किन्तु द्रव्यस्वरूप से ही उनकी उपलब्धि होती है।

पुनः आशंका होती है—

यदि ऐसी बात है तब तो भाव के—पदार्थ के अंतिम समय के समान द्विचरम आदि समयों में अभाव का व्यवहार क्यों नहीं किया जाता है ?

उसका समाधान देते हैं—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्विचरम आदि समयों में चरम समय के समान ही अभाव के साथ प्रत्यासत्ति का अभाव है।

शंका—द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा अभाव का व्यवहार कैसे होता है ?

नैष दोषः, 'यदस्ति न तद् द्वयमतिलंघ्य वर्त्तते' इति वचनेन द्वौ अपि नयाववलम्ब्य स्थितनैगमनयस्य भावाभावव्यवहारविरोधाभावात्।

अनुत्पादः असत्त्वं अनुच्छेदो—विनाशः अनुत्पाद एवानुच्छेदः अनुत्पादानुच्छेदः असतः अभाव इति यावत् सतः असत्त्वविरोधात्। एषः पर्यायार्थिकनयव्यवहारः। अत्र पुनः उत्पादानुच्छेदमाश्रित्य येन सूत्रकारेणा-भावव्यवहारः कृतस्तेन भावश्चैव प्रकृतिबंधस्य प्ररूपितस्तेनैतस्य ग्रन्थस्य 'बंधस्वामित्व-विचयसंज्ञा' घटते।

एवं तृतीयस्थले बंधव्युच्छित्तिप्रतिपादनप्रतिज्ञारूपेण सूत्रमेकं गतम्।

अधुना षोडशप्रकृतीनां बंधाबंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं जसकित्ति-उच्चागोद-पंचण्हमंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।५।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।।६।।

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि जो है वह दोनों का अतिक्रमण करके नहीं रहता है, इस नियम से दोनों भी नयों का अवलंबन लेकर स्थित नैगमनय की अपेक्षा भाव और अभाव व्यवहार के विरोध का अभाव है अर्थात् नैगमनय की अपेक्षा भाव और अभाव दोनों का व्यवहार पाया जाता है।

अब व्युच्छेद के दूसरे भेद का कथन करते हैं—

अनुत्पाद का अर्थ है असत्त्व, अनुच्छेद—विनाश। अनुत्पाद ही अनुच्छेद अनुत्पादानुच्छेद है अर्थात् असत् का अभाव कहना, यह यहाँ कथन है क्योंकि सत् का असत्त्व नहीं होता है। यह पर्यायार्थिकनय के आश्रित व्यवहार है।

यहाँ पुनः उत्पादानुच्छेद नाम का जो प्रथम भेद है, उसका आश्रय लेकर सूत्रकार ने जिस अपेक्षा से अभाव का व्यवहार किया है उस अपेक्षा से प्रकृतिबंध का भाव ही प्ररूपित किया है। इसलिए इस ग्रंथ की 'बंधस्वामित्वविचय' यह संज्ञा घटित हो जाती है।

इस प्रकार तृतीयस्थल में बंधव्युच्छित्ति के प्रतिपादन की प्रतिज्ञारूप से एक सूत्र हुआ।

अब सोलह प्रकृतियों के बंध और अबंध के स्वामी को बतलाने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।५।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत उपशामक और क्षपक पर्यंत इन सोलह प्रकृतियों के बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत मुनि के अपने गुणस्थान के अंतिम समय में जाकर इन प्रकृतियों का बंध व्युच्छिन्न हो जाता है, बंध छूट जाता है। अतः ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र 'बंधो' पदेन बंधको बंधकर्ता इति भण्यते। प्रकृतिसमुत्कीर्तनायां ज्ञानावरणादीनां स्वरूपं प्ररूपितमतोऽत्र न प्ररूप्यते, पुनरुक्तत्वात्। सूत्रे 'को बंधो को अबंधो' इति निर्देशात् एतत्पृच्छासूत्रमाशंकितसूत्रं वा। किं मिथ्यादृष्टिः बंधकः इत्यादिनायोगिपर्यंतं सिद्धो वा किं इति तेनैवं पृच्छा कर्तव्या। इदं देशामर्शकसूत्रं।**

अतोऽनेन सूत्रेण त्रयोविंशतिपृच्छाः कर्तव्याः—

१. किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ? २. किमुदयः पूर्वं व्युच्छिद्यते ? ३. किं द्वौ अपि समं व्युच्छिद्येते ? ४. किं स्वोदयेनैतासां बंधः ? ५. किं परोदयेन ? ६. किं स्वपरोदयाभ्यां ? ७. किं सान्तरो बंधः ? ८. किं निरन्तरो बंधः ? ९. किं सान्तरनिरन्तरो वा ? १०. किं सप्रत्ययो बंधः ? ११. किमप्रत्ययः ? १२. किं गतिसंयुक्तः ? १३. किमगतिसंयुक्तः ? १४. कति गतिकाः स्वामिनः ? १५. कति गतिका अस्वामिनः ? १६. किं वा बंधाध्वानं ? १७. किं चरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते ? १८. किं प्रथमसमये ? १९. किं वा

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ सूत्र में 'बंध' पद से बंधक—बंधकर्ता कहे गये हैं। 'प्रकृतिसमुत्कीर्तना' में ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों का स्वरूप कहा गया है अतः यहाँ नहीं कहा जाता है, क्योंकि पुनरुक्तदोष आयेगा।

यहाँ पाँचवें सूत्र में 'को बंधो को अबंधो' इस प्रकार का निर्देश होने से या पृच्छासूत्र—प्रश्नवाचक सूत्र है या आशंकित सूत्र है। क्या मिथ्यादृष्टि बंधक हैं ? इत्यादि प्रकार से अयोगीपर्यंत अथवा सिद्ध भगवान तक भी इसी प्रकार से प्रश्न करना चाहिए। यह देशामर्शकसूत्र है। इसलिए इस सूत्र से तेईस प्रश्न करना चाहिए। सो ही दिखाते हैं—

१. क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

२. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

३. क्या दोनों की साथ ही व्युच्छित्ति होती है ?

४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है ?

५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है ?

६. क्या अपने व पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है ?

७. क्या सान्तर बंध होता है ?

८. क्या निरंतर बंध होता है ?

९. क्या सान्तर-निरन्तर बंध होता है ?

१०. क्या सनिमित्तक बंध होता है ?

११. क्या अनिमित्तक बंध होता है ?

१२. क्या गतिसंयुक्त बंध होता है ?

१३. क्या गतिसंयोग से रहित बंध होता है ?

१४. कितनी गति वाले जीव स्वामी होते हैं ?

१५. कितनी गति वाले जीव स्वामी नहीं हैं ?

१६. बंधाध्वान कितना है—बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक है ?

१७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

अप्रथमाचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते ? २०. किं सादिको बंधः ? २१. किमनादिकः ? २२. किं ध्रुवः ? २३. किमध्रुवः ? इत्येताः पृच्छाः सन्ति।

अत्रोपयोगिन्या आर्षगाथाः ज्ञातव्या भवन्ति—

बंधो बंधविही पुण सामितद्धाण पच्चयविही य।
एदे पंचणिओगा मग्गणठाणेसु मग्गेज्जा।।१।।
बंधोदय पुव्वं वा समं व णियएण कस्स व परेण।
अण्णदरस्सुदएण व सांतरविगयंतरं का च।।२।।
पच्चयसामित्तविही संजुत्तद्धाणएण तह चेय।
सामित्तं णेयव्वं पयडीणं ठाणमासेज्ज।।३।।
बंधोदय पुव्वं वा समं व सपरोदए तदुभएण।
सांतर णिरंतरं वा चरिमेदर सादिआदीया[१]।।४।।

अत्र प्रकरणवशात् अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रकृतीनां नामानि ज्ञातव्यानि भवन्ति। यद्यपि प्रकृतिसमुत्कीर्तनासु कथितानि तथापि विस्मरणशीलशिष्यानुग्रहार्थं निगद्यन्ते—

---

१८. क्या प्रथम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

१९. क्या अप्रथम और अचरम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

२०. क्या बंध सादि है ?

२१. क्या अनादि है ?

२२. क्या बंध ध्रुव है ?

२३. क्या बंध अध्रुव है ?

इस प्रकार ये तेईस पृच्छा हैं।

यहाँ आर्षग्रंथ की उपयोगिनी गाथाएं हैं—

बंध, बंधविधि, बंधस्वामित्व, अध्वान—बंधसीमा और प्रत्ययविधि, ये पाँच नियोग—अनियोग मार्गणाओं में खोजने योग्य हैं।।१।।

बंधपूर्व में है, उदय पूर्व में है, या दोनों साथ हैं, किस कर्म का उदय निज के बंध के साथ होता है, किसका पर के उदय के साथ और किसका अन्यतर के उदय के साथ, कौन प्रकृति सान्तर बंध वाली है और कौन निरन्तर बंध वाली है, प्रत्यय विधि, स्वामित्वविधि तथा गतिसंयुक्त बंधाध्वान के साथ प्रकृतियों के स्थान का आश्रय कर स्वामित्व जानना चाहिए।।२-३।।

बंध पूर्व में होता है, उदय पूर्व में होता है, या दोनों साथ होते हैं, वह बंध स्वोदय से, परोदय से या दोनों के उदय से होता है, उक्त बंध सान्तर है या निरन्तर है, वह अन्तिम समय में होता है या इतर समय में होता है, तथा वह सादि है या अनादि है ?।।४।।

अब यहाँ प्रकरणवश एक सौ अड़तालिस प्रकृतियों के नाम जानने योग्य हैं। यद्यपि 'प्रकृतिसमुत्कीर्तना' में ये कही गई हैं फिर भी विस्मरणशील शिष्यों के अनुग्रह के लिए कहते हैं—

---

१. षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित पु. ८,पृ. ८ ।

तद्यथा— णाणस्स दंसणस्स य आवरणं वेयणीयमोहणियं।
आउगणामं गोदंतरायमिदि पढिदमिदि सिद्धं।।२०।।
पंच णव दोण्णि अट्ठावीसं चउरो कमेण तेणउदी।
तेउत्तरं सयं वा दुगपणगं उत्तरा होंति[१]।।२२।।

मोहनीयस्याष्टविंशतिभेदाः—दर्शनचारित्रमोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वः-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरति शोकभयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानु-बंध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-संज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः[२]।।९।।

ततश्च नामकर्मणां नामानि—

गति-जाति-शरीरांगोपांगनिर्माण-बंधन-संघात-संस्थान-संहनन-स्पर्श-रस-गंध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघू-परघात-परघातातपोद्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर-त्रस-सुभग-सुस्वर-शुभ-सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्तिसेतराणि तीर्थकरत्वं च[३]।।११।।

शेषकर्मणां-प्रकृतिनामानि ज्ञायन्ते।

चतुर्दशगुणस्थानेषु बंधव्युच्छिन्नप्रकृतीनां संख्याः कथ्यन्ते—

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं। इनके भेदरूप प्रकृतियाँ क्रम से ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नव, वेदनीय की दो, मोहनीय की अट्ठाईस, आयु की चार, नाम की तिरानवे अथवा एक सौ तीन, गोत्र की दो और अन्तराय की पाँच ये इन आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ हैं।

इनमें से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अन्तराय इनकी भेदरूप प्रकृतियाँ स्पष्ट—सरल है, प्रायः मालूम हैं। यहाँ मोहनीय और नामकर्म की प्रकृतियों को कहते हैं—

मोहनीय के अट्ठाईस भेद हैं—प्रथमतः दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय। दर्शनमोहनीय के तीन भेद हैं—सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व। चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं—अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय। अकषायवेदनीय के हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद। कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं—अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण के क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ और संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ। इस प्रकार ये मोहनीय कर्म के २८ भेद हैं।

अब नामकर्म के भेद कहते हैं—

गति ४, जाति ५, शरीर ५, अंगोपांग ३, निर्माण १, बंधन ५, संघात ५, संस्थान ६, संहनन ६, स्पर्श ८, रस ५, गंध २, वर्ण ५, आनुपूर्वी ४, अगुरुलघु १, उपघात १, परघात १, आतप १, उद्योत १, उच्छ्वास १, विहायोगति २, प्रत्येकशरीर १, साधारण १, त्रस १, स्थावर १, सुभग १, दुर्भग १, सुस्वर १, दुःस्वर १, शुभ १, अशुभ १, सूक्ष्म १, बादर १, पर्याप्ति १, अपर्याप्ति १, स्थिर १, अस्थिर १, आदेय १, अनादेय १, यशःकीर्ति १, अयशःकीर्ति १ और तीर्थंकर प्रकृति ये तिरानवे प्रकृतियाँ हैं।

शेष कर्मों की प्रकृतियों के नाम ज्ञात ही हैं।

अब चौदह गुणस्थानों में बंध से व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा २०-२२, पृ. ११, १३ (आ. शिवसागर ग्रंथमाला से प्रकाशित। २-३. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ८।

सोलस पणवीस णभं दस चउ छक्केक्क बंधवोछिण्णा।
दुग तीस चदुरपुव्वे पण सोलस जोगिणो एक्को[१]।।९४।।

पुनश्च पुष्पदंतभूतबली आचार्यमतानुसारेण गुणस्थानेषु उदयव्युच्छित्तिप्रकृतीनां संख्या उच्यन्ते—

दस चउरिंगि सत्तरसं, अट्ठ य तह पंच चेव चउरो य।
छच्छक्क एक्कदुगदुग, चोद्दस उगुतीस तेरसुदयविधि।।२६३।।

ततश्च यतिवृषभाचार्यकृतचूर्णिसूत्रोपदेशानुसारेण कथ्यन्ते—

पण णव इगि सत्तरसं अउ पंच च चउर छक्क छच्चेव।
इगि दुग सोलस तीसं बारस उदये अजोगंता[२]।।२६४।।

इतः पूर्वं धवलाटीकायां श्रीवीरसेनाचार्येण त्रयोविंशतिपृच्छाः कृताः। अत्र एतासु पृच्छासु विषमपृच्छाणामर्थ उच्यते। तथा च बन्धव्युच्छेदोऽत्रैव सूत्रसिद्धोऽस्ति ततस्तं मुक्त्वा प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदं तावद् वक्ष्यन्ते—

मिथ्यादृष्टिजीवस्य चरमसमये मिथ्यात्व-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणप्रकृतीनां दशानां उदयव्युच्छेदो भवति। एष 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृतोपदेशः' चूर्णिसूत्र-

---

प्रथम गुणस्थान में सोलह प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति होती है। ऐसे ही क्रम से दूसरे में २५, तीसरे में शून्य, चौथे में १०, पाँचवें में ४, छठे में ६, सातवें में एक प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति होती है। पुनः आठवें गुणस्थान में सात भागों में से पहले में २, दूसरे भाग से पाँचवें भाग तक शून्य, छठे भाग में ३०, सातवें भाग में ४ प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति है। नवमें गुणस्थान में ५, दशवें में १६, ग्यारहवें-बारहवें में शून्य एवं तेरहवें गुणस्थान में एक प्रकृति की बंधव्युच्छित्ति होती है।

पुनः श्री पुष्पदंत और भूतबली आचार्यदेव के मतानुसार गुणस्थानों में उदय से व्युच्छिन्न होने वाली प्रकृतियों की संख्या कहते हैं—

प्रथम गुणस्थान में १०, द्वितीय में ४, तृतीय में १, चतुर्थ में १७, पाँचवें में ८, छठे में ५, सातवें में ४, आठवें में ६, नवमें में ६, दशवें में १, ग्यारहवें में २, बारहवें में १४, तेरहवें में २९ और चौदहवें में १३ प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

पुनः श्री यतिवृषभाचार्य कृत चूर्णिसूत्र के उपदेश अनुसार कहते हैं—

चौदह गुणस्थानों में क्रम से ५, ९, १, १७, ८, ५, ४, ६, ६, १, २, १६, ३० और अयोगीकेवली में १२ प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

इससे पूर्व श्री वीरसेनाचार्य ने धवलाटीका में तेईस प्रश्न किये हैं। अब उन पृच्छाओं में विषम पृच्छाओं का अर्थ कहते हैं।

वह इस प्रकार है—चूँकि बंधव्युच्छेद इसी ग्रंथ में सिद्ध है, इसलिए उसको छोड़कर प्रकृतियों के उदय व्युच्छेद को कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव के चरमसमय में मिथ्यात्व, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन दश प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद हो जाता है। अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान के बाद आगे इनका उदय नहीं रहता है। यह 'महाकर्मप्रकृतिप्राभृत' ग्रंथ का उपदेश है।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ९४, पृ. ५३ (आ. शिवसागर ग्रंथमाला से प्रकाशित)। २. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा २६३-२६४।

कर्तुः श्रीयतिवृषभाचार्यस्योपदेशेन पञ्चानां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदः, चतुर्जाति-स्थावराणां सासादनसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदाभ्युपगमात्।

सासादनसम्यग्दृष्टिचरमसमये अनन्तानुबंधिक्रोध-मान-मायालोभानां उदयव्युच्छेदो भवति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने सम्यग्मिथ्यात्वस्योदयव्युच्छेदः।

असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने अप्रत्याख्यानावरणक्रोध-मान-माया-लोभ-नरकायुदेवायुर्नरकगति-देवगति-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकांगोपांग-चतुरानुपूर्वि-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां सप्तदशाना-मुदयव्युच्छेदः।

संयतासंयते प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ-तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिउद्योत-नीचगोत्राणा-मष्टानामुदयव्युच्छेदः।

प्रमत्तसंयते निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-आहारशरीरद्विकप्रकृतीनां पंचानामुदयव्युच्छेदः।

अप्रमत्तसंयते अर्द्धनाराच-कीलित-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन-वेदकसम्यक्त्वप्रकृतीनां चतसृणां उदयव्युच्छेदोऽस्ति।

अपूर्वकरणगुणस्थाने हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सानां षण्णां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदः।

अनिवृत्तिकरणे स्त्री-नपुंसक-पुरुषवेद-क्रोध-मान-मायानां षण्णां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदः।

सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये लोभसंज्वलनस्यैकस्योदयव्युच्छेदः।

उपशान्तकषाये वज्रनाराच-नाराचशरीरसंहननप्रकृती द्वे उदयेन व्युच्छिद्येते।

किन्तु चूर्णिसूत्र के कर्ता श्री यतिवृषभाचार्य के उपदेश से पाँच प्रकृतियों का ही उदय व्युच्छेद होता है। मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण ये पाँच प्रकृतियाँ हैं।

शेष पाँच—चार जाति और स्थावर इनकी उदय व्युच्छित्ति सासादनसम्यग्दृष्टि के मानी है।

यहाँ पुनः 'महाकर्मप्रकृति प्राभृत' के अनुसार सासादन गुणस्थान में सासादनसम्यग्दृष्टि के चरम समय में अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार का उदयव्युच्छेद होता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थान में सम्यग्मिथ्यात्व नाम की एक प्रकृति का उदयव्युच्छेद होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियकांगोपांग, चार आनुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और अयशकीर्ति इन १७ प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद हो जाता है।

संयतासंयत गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, उद्योत और नीचगोत्र इन आठ प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद हो जाता है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, और आहारकद्विक इन पाँच प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद है।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में अर्द्धनाराच, कीलक और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन तथा वेदक सम्यक्त्व—सम्यक्त्वप्रकृति इन चार की उदयव्युच्छित्ति होती है।

अपूर्वकरणगुणस्थान में हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा इन छह प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति है।

अनिवृत्तिकरण में स्त्री, नपुंसक, पुरुषवेद, संज्वलन क्रोध, मान और माया इन छह का उदय व्युच्छेद है।

सूक्ष्मसांपरायिकगुणस्थान के चरम समय में लोभ संज्वलन प्रकृति का उदय व्युच्छेद है।

उपशांतकषायगुणस्थान में वज्रनाराच और नाराचसंहनन ये दो प्रकृतियाँ उदय से व्युच्छिन्न होती हैं।

क्षीणकषायस्य महामुनेः द्विचरमसमये निद्राप्रचलयोरुदयव्युच्छेदः।

अस्यैव चरमसमये पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां उदयव्युच्छेदः।

सयोगिकेवलिगुणस्थाने औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रऋषभनाराचसंहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-विहायोगतिद्विक-प्रत्येकशरीरस्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुस्वर-दुःस्वर-निर्माणानां एकोनत्रिंशत्प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदो भवति।

अयोगिकेवलिगुणस्थाने द्विकवेदनीय-मनुष्यायुर्मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-तीर्थकर-उच्चगोत्राणां त्रयोदशप्रकृतीनामुदयव्युच्छेदो भवति।

एवं उदयव्युच्छेदः प्ररूपितः।

अधुना कासां प्रकृतीनां बंध उदये विच्छिन्नेऽपि भवति ?

कासां प्रकृतीनां बंधे विनष्टेऽपि उदयो भवति ?

कासां च बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते ? इति उच्यते—

देवायुर्देवगति-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आहारकद्विक-अयशःकीर्तीणां अष्टानां प्रकृतीनां प्रथममुदयो व्युच्छिद्यते पश्चाद्बंधः।

मिथ्यात्व-अनन्तानुबंधिचतुष्क-अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-प्रत्याख्यानावरणचतुष्क-त्रिसंज्वलन-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-एकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानामेकत्रिंशत्प्रकृतीनां बंधोदयाः समं व्युच्छिद्यन्ते।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-द्विवेदनीय-लोभसंज्वलन-स्त्री-नपुंसकवेद-अरति-शोक-नरकायुः-

---

क्षीणकषायवर्ती महामुनि के द्विचरमसमय में निद्रा और प्रचला का उदय व्युच्छेद एवं चरमसमय में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय का उदय व्युच्छेद होता है।

सयोगिकेवली गुणस्थान में औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रऋषभनाराचसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, विहायोगतिद्विक, प्रत्येकशरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुस्वर-दुःस्वर और निर्माण इन उनतीस प्रकृतियों की उदयव्युच्छित्ति होती है।

अयोगिकेवली गुणस्थान में दो वेदनीय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और तीर्थंकरप्रकृति, इन तेरह प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद होता है।

इस प्रकार यहाँ उदयव्युच्छेद प्ररूपित किया गया है।

अब किन प्रकृतियों का उदय विच्छिन्न होने पर भी बंध होता है ?

किन-किन प्रकृतियों का बंध व्युच्छेद हो जाने पर भी उदय होता है ?

और किन-किन प्रकृतियों का बंध और उदय एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं ?

इन तीन प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

देवगति, देवायु, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगत्यानुपूर्वी, आहारकद्विक और अयशकीर्ति इन आठ प्रकृतियों की पहले उदयव्युच्छित्ति होती है पश्चात् बंधव्युच्छित्ति।

मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधिचतुष्क, अप्रत्याख्यानावरण चार, प्रत्याख्यानावरण चार, तीन संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, एकेन्द्रिय आदि जाति चार, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन इकतीस प्रकृतियों के बंध और उदय एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं।

पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, दो वेदनीय, लोभ संज्वलन, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक,

तिर्यगायु:-मनुष्यायु:-नरकतिर्यग्मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकतैजसकार्मणशरीर-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-वर्णचतुष्क-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-चतुष्क-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दु:स्वर-आदेयानादेय-यश:कीर्ति-निर्माण-तीर्थकर-नीचोच्चगोत्र-पंचान्तरायाणा-मेकाशीतिप्रकृतीनां प्रथमं बंधो व्युच्छिद्यते, पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते।

शेषाणां यथावसरमर्थं भणिष्यन्ति।

पूर्वस्मिन् पृच्छासूत्रे पंचज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां को बंध: कोऽबंध: ?

इति प्रश्ने सति—

मिथ्यादृष्टिजीवादारभ्य यावत् सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतेषु उपशमका: क्षपकाश्च बंधका भवन्ति। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने संयतानां चरमसमयं गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। अत एते बंधका:, अवशेषा अबंधका: भवन्ति। एतेन बंधस्य स्वामित्वं ज्ञापितं भवति।

एतत्सूत्रं बंधकाबंधकानां स्वामित्वं कथयति, अत इदं देशामर्शकं वर्तते। एतस्मादत्र लीनार्थानां प्ररूपणं करिष्यति श्रीवीरसेनाचार्य:—

किं बंध: पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

किमुदय: पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

किं द्वावपि समं व्युच्छिद्येते ?

नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण चार, नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, अगुरुलघुचतुष्क, उद्योत, विहायोगतिद्विक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ-अशुभ, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दु:स्वर, आदेय-अनादेय, यशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन इक्यासी प्रकृतियों की पहले बंधव्युच्छित्ति होती है, पश्चात् उदय व्युच्छित्ति होती है।

शेष प्रश्नों का यथाअवसर अर्थ कहेंगे।

यहाँ पूर्व में पाँचवें पृच्छासूत्र में पाँच ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों का कौन बंधक है कौन अबंधक?

ऐसा प्रश्न हुआ था, उसी का उत्तर देते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव से प्रारंभ करके सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयत पर्यंत उपशामक और क्षपक महामुनि तथा बंधक—बंध करने वाले होते हैं। सूक्ष्मसांपराय नामक दशवें गुणस्थान में महामुनियों के चरम समय में इनकी बंधव्युच्छित्ति हो जाती है। अतएव ये बंधक हैं, अवशेष—आगे के महामुनिगण अबंधक होते हैं। इस कथन से बंध का स्वामित्व बताया गया है।

यह सूत्र बंधकर्ता और अबंधकों के स्वामी को कहता है, अत: यह देशामर्शक सूत्र है।

इसी सूत्र से यहाँ श्रीवीरसेनाचार्य—धवला टीकाकार इससे संबंधित अर्थों का प्ररूपण करेंगे।

क्या बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है ?

क्या उदय पूर्व में व्युच्छिन्न होता है ?

क्या दोनों भी साथ व्युच्छिन्न होते हैं ?

एतेषां त्रयाणां प्रश्नानामुत्तर उच्यते—

एतासां षोडशानां प्रकृतीनां बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये, उदयः पश्चात् व्युच्छिद्यते। पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां क्षीणकषायमहामुनिचरमसमये, यशः कीर्ति-उच्चगोत्रयोरयोगि-केवलिचरमसमये उदयव्युच्छेदस्य दर्शनात्।

किं स्वोदयेन ? किं परोदयेन ? किं स्वोदयपरोदयेन ?

एतेषां त्रयाणां प्रश्नानामागते सति उच्यते—

अत्र तावत् एतेन संबंधेन स्वोदयेन परोदयेन स्वोदयपरोदयेन बध्यमानप्रकृतिप्ररूपणं करिष्याम इति कथयन्ति श्रीधवलाटीकाकाराः। तद्यथा—

नरकायुर्देवायु-र्नरकगति-देवगति-वैक्रियिकशरीर-आहारशरीर-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-आहार-शरीरांगोपांग-नरकगत्यानुपूर्वि-देवगत्यानुपूर्वि-तीर्थंकरमिति एता एकादशप्रकृतयः परोदयेन बध्नन्ति।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचांतरायाणि एताः सप्तविंशतिप्रकृतयः स्वोदयेन बध्नन्ति।

पंचदर्शनावरणीय-द्विवेदनीय-षोडशकषाय-नवनोकषाय-तिर्यगायुः-मनुष्यायुः-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकशरीर-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आतप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेयनादेय

इन तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

इन उपर्युक्त कथित—पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और अन्तराय इन सोलह प्रकृतियों का सूक्ष्मसांपरायिक महामुनि के चरम समय में उदयव्युच्छित्ति से पहले बंधव्युच्छिन्न होता है। अनंतर पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अन्तराय इन चौदह प्रकृतियों का क्षीणकषायवर्ती—बारहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि के चरम समय में उदय व्युच्छिन्न होता है। पुनः यशकीर्ति और उच्चगोत्र का अयोगिकेवली भगवान—चौदहवें गुणस्थानवर्ती अर्हंतदेव के चरम समय में इन दोनों का उदयव्युच्छेद देखा जाता है।

प्रश्न—क्या स्वोदय से, क्या परोदय से, या क्या स्वोदय-परोदय से इनका बंध होता है ?

इन तीन प्रश्नों के होने पर उत्तर देते हैं—

अब यहाँ पहले इस संबंध से स्वोदय, परोदय और स्वोदय-परोदय से बंधने वाली प्रकृतियों का श्री-धवलाकार आचार्य निरूपण करते हैं। उसी को कहते हैं—

नरकगति, देवगति, नरकायु, देवायु, वैक्रियिकशरीर, तदंगोपांग, आहारकशरीर, तदंगोपांग, नरकगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी और तीर्थंकर प्रकृति इन ग्यारह प्रकृतियों का परोदय से—पर के उदय में बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, तैजस, कार्मण शरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, निर्माण और पाँच अंतराय इन सत्ताईस प्रकृतियों का अपने उदय में बंध होता है।

पाँच दर्शनावरण, दो वेदनीय, सोलह कषाय, नव नोकषाय, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंदिय, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तदंगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिआनुपूर्वी, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस-स्थावर, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, प्रत्येक-साधारणशरीर, सुभग-दुर्भग, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-

यशः-कीर्त्ययशःकीर्ति-नीचोच्चगोत्रमिति एता द्व्यशीतिप्रकृतयः स्वोदयपरोदयेन बध्नंति।

अत्र ज्ञानावरणान्तरायदश दर्शनावरणचतुः प्रकृतयश्च बध्यमानेषु सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयनैव, किंच— मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् क्षीणकषाया इति एतासां निरन्तरोदयात् स्वोदयेन बध्यमानप्रकृतीनामभ्यन्तरे पाताद्वा। यशःकीर्तिप्रकृतिः मिथ्यादृष्ट्यादिअसंयतगुणस्थानवर्तिभिः स्वोदयेनापि परोदयेनापि बध्यते, एतेषु द्वयोर्यशः-कीर्त्ययशः कीर्त्त्योरेकतरस्योदयत्वात्।

एभ्य उपरिमाः संयतासंयतादयः स्वोदयनैव बध्नन्ति, संयतासंयतप्रभृत्युपरिमगुणस्थानेषु अयशः-कीर्त्युदयाभावात्। मिथ्यादृष्ट्यादिसंयतासंयतपर्यन्ताः उच्चगोत्रं स्वोदयेन परोदयेनापि बध्नन्ति, अत्र द्वयो-र्गोत्रयोरुदयसंभवात्। उपरिमाः पुनः स्वोदयेनैव बध्नन्ति, तत्र नीचगोत्रस्योदयाभावात्। तस्मात् यशःकीर्ति-उच्चगोत्रप्रकृती स्वोदयपरोदयबंधे इति सिद्धं।

पूर्वोक्तसूत्रकथितषोडशप्रकृतीनां बंधः किं सान्तरः ? किं निरन्तरः ? किं सान्तरनिरन्तरः ? इति त्रिपृच्छायां प्रतिवचनमुच्यते—

अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, नीचगोत्र-उच्चगोत्र, ये बयासी प्रकृतियाँ अपने उदय में और पर के उदय में भी बंधती हैं।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण और पाँच अंतराय इन प्रकृतियों को बांधते हुए सभी गुणस्थानों में स्वोदय—अपने उदय से ही बांधते हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत इन प्रकृतियों का निरंतर उदय पाया जाता है, अथवा स्वोदय से बंधने वाली प्रकृतियों के भीतर ही इनका पतन है, ये अन्तर्गर्भित हैं।

यशकीर्ति प्रकृति मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर असंयत गुणस्थानवर्तियों के द्वारा स्वोदय से भी और परोदय से भी बांधी जाती है। इन गुणस्थानों में यशकीर्ति और अयशकीर्ति इन दोनों में से किसी एक का ही उदय पाया जाता है।

इनके ऊपर के संयतासंयत आदि स्वोदय से ही बांधते हैं, क्योंकि संयतासंयत आदि ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीवों में अयशकीर्ति के उदय का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयतपर्यंत जीव उच्चगोत्र को अपने उदय से और परोदय से भी बांधते हैं, क्योंकि यहाँ तक दोनों गोत्र का उदय संभव है। ऊपर के मुनिगण स्वोदय से ही बांधते हैं क्योंकि वहाँ नीच गोत्र के उदय का अभाव है। इसलिए यशकीर्ति और उच्चगोत्र प्रकृतियाँ स्वोदय और परोदय से बंधने वाली हैं यह बात सिद्ध हो गई।

विशेषार्थ—यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि पाँचवें गुणस्थान तक नीचगोत्र में शूद्र भी व्रत ले सकते हैं। अणुव्रती बन सकते हैं किन्तु महाव्रती मुनि बनने का अधिकार उच्चगोत्री, त्रैवर्णिक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को ही है जैसा कि पूज्यपाद स्वामी ने जैनेन्द्र व्याकरण में भी सूत्र दिया है—''वर्णेनार्हद्रूपायोग्यानाम्'' इसलिए आहारदान और भगवान की पूजन-अभिषेक-विशेष विधान, अनुष्ठान आदि का अधिकार त्रैवर्णिक सज्जाति वाले को ही है। यह बात स्पष्ट हो जाती है।

अब आगे—

प्रश्न—पूर्वोक्त सूत्रकथित सोलह प्रकृतियों का बंध क्या सान्तर है ? क्या निरन्तर है ? या क्या सान्तर-निरन्तर है ?

ऐसे तीन प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं—

अत्र एतेनार्थसंबंधेन तावत्सान्तर-निरन्तर-सान्तरनिरन्तेरण बध्यमानप्रकृतयो ज्ञातव्या भवन्ति। तद्यथा—

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-आयुश्चतुष्क-आहार-तैजस-कार्मणशरीर-आहारशरीरांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-निर्माण-तीर्थकर-पंचान्तरायाणि एता: चतु:पञ्चाशत् प्रकृतयो निरन्तरं बध्यन्ते।

तत्रोपसंहारगाथा—

सत्तेतालधुवाओ तित्थयराहार-आउचत्तारि।
चउवण्णं पयडीओ बज्झंति णिरंतरं सव्वा[1]।।१४।।

का: ध्रुवबन्धिन्य: प्रकृतय: ?

आयुश्चतुष्क तीर्थकर-आहारद्विकवर्जिता एता: सप्तवर्जिता: प्रकृतय एव ध्रुवबन्धिन्य: सन्ति।

उक्तं च— णाणंतरायदसयं दंसण णव मिच्छ सोलस कसाया।
भय कम्म दुगुंछा वि य तेजा कम्मं च वण्णचदू।।१५।।
अगुरुअलहु-उवघादं णिमिणं णामं च होंति सगदालं।
बंधो चउवियप्पो धुवबंधीणं पयडिबंधो[2]।।१६।।

निरन्तरबंधस्य ध्रुवबंधस्य च को विशेष: ?

यस्या: प्रकृते: पद:—स्थानं यत्र कुत्रापि जीवेऽनादिध्रुवभावेन लभ्यते सा ध्रुवबंधप्रकृति:। यस्या:

उत्तर—यहाँ इस अर्थ संबंध से पहले सान्तर, निरन्तर और सान्तर-निरन्तर बंधने वाली प्रकृतियों को जानना चाहिए।

पाँच ज्ञानावरण, नव दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, चार आयु, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर, आहारकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण, तीर्थंकर और पाँच अन्तराय ये चौवन प्रकृतियाँ निरन्तर बंधने वाली हैं।

उसकी उपसंहार गाथा—

सैंतालीस ध्रुव प्रकृतियाँ, तीर्थंकर, आहारकशरीर, तदंगोपांग और चार आयु ये चौवन प्रकृतियाँ निरन्तर बंध वाली हैं।

प्रश्न—ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ कौन-कौन हैं ?

उत्तर—चार आयु, तीर्थंकर और आहारकद्विक इन सात प्रकृतियों को छोड़कर शेष ४७ प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं।

कहा भी है—

ज्ञानावरण और अंतराय की दश, दर्शनावरण की ९, मिथ्यात्व, १६ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मणशरीर, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण ये ४७ ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। इनका प्रकृतिबंध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवरूप से चार प्रकार का होता है।

प्रश्न—निरन्तर बंध और ध्रुवबंध में क्या अन्तर है ?

उत्तर—जिस प्रकृति का पद—स्थान जिस किसी भी जीव में अनादि एवं ध्रुव भाव से पाया जाता है,

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित)पु. ८, पृ. १६। २. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित)पु. ८, पृ. १७।

यस्याः प्रकृतेः अद्धाक्षयेण बंधव्युच्छेदः संभवति सा सान्तरबंधप्रकृतिः।

असातावेदनीय-स्त्री-नपुंसकवेद-अरति-शोक-नरकगति-जातिचतुष्क-अधस्तनपंचसंस्थान-पंचसंहनन-नरकगत्यानुपूर्वि-आतप-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-अयशःकीर्ति-एताः चतुस्त्रिंशत्प्रकृतयः सान्तरं बध्यन्ते। अवशेषा द्वाविंशतिप्रकृतयः सान्तरनिरन्तरं बध्यन्ते। तासामपि नामनिर्देशः क्रियते—

सातावेदनीय-पुरुषवेद-हास्य-रति-तिर्यग्मनुष्यदेवगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकवैक्रियिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकवैक्रियिकशरीरांगोपांग-तिर्यग्मनुष्यदेवगत्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्त्ति-नीचोच्चगोत्राणि इति सान्तर-निरन्तरेण बध्यमानप्रकृतयः सन्ति।

अत्र पंचज्ञानावरणीय-चवतुर्दशनावरणीय-पंचान्तरायप्रकृतयो निरन्तरं बध्यन्ते, ध्रुवबंधित्वात्। यशःकीर्तिः सान्तर-निरन्तरं बध्यते, मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् प्रमत्त इति सान्तरं बध्यते, प्रतिपक्षायशःकीर्त्तेः बंधसंभवात्। उपरि निरन्तरं बध्यते यशःकीर्तिः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्। तेन यशःकीर्तिर्बंधेन सान्तरनिरन्तरास्ति। उच्चगोत्रं मिथ्यादृष्टिसासादनजीवयोः सान्तरं बध्यते, प्रतिपक्षप्रकृतेस्तत्र बंधसंभवात्। उपरिमा गुणस्थानवर्तिनः पुनः निरन्तरं बध्नन्ति, प्रतिपक्षप्रकृतेस्तत्र बंधाभावात्।

भोगभूमीषु पुनः सर्वगुणस्थानवर्तिनो जीवा उच्चगोत्रमेव निरन्तरं बध्नन्ति, तत्र पर्याप्तकाले देवगतिं

वे ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं और जिस प्रकृति का पद नियम से सादि एवं अध्रुव तथा अन्तर्मुहूर्त आदि काल तक अवस्थित रहने वाला है। वह निरन्तर बंध प्रकृति है। यही अन्तर है।

जिस-जिस प्रकृति का काल समाप्त होने पर बंधव्युच्छेद संभव है, वह सान्तरबंध प्रकृति है।

सान्तर प्रकृतियाँ—असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, तद्गत्यानुपूर्वी, ४ जाति, नीचे के ५ संस्थान, पाँच संहनन, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशकीर्ति ये चौंतीस प्रकृतियाँ सान्तर बंधने वाली हैं। अवशेष ३२ प्रकृतियाँ सान्तर-निरन्तर बंधती हैं। उनके भी नाम बतलाते हैं—

साता वेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, तीनों आनुपूर्वी (३), पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, वैक्रियिकशरीर, औदारिकांगोपांग, वैक्रियकांगोपांग, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभनाराचसंहनन, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, नीचगोत्र, उच्चगोत्र, ये सान्तर-निरन्तररूप से बंधने वाली प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ पाँच ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, ५ अन्तराय निरन्तर बंधती हैं क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं।

यशकीर्ति सान्तर-निरन्तर बंधती है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयतपर्यंत सान्तर बंधती है। चूँकि इसकी प्रतिपक्षी अयशकीर्ति का बंध संभव है।

यशकीर्ति ऊपर में निरन्तर बंधती है क्योंकि प्रतिपक्षी प्रकृति के बंध का अभाव है, इसलिए यशकीर्ति बंधरूप से सान्तर-निरन्तर है।

उच्चगोत्र मिथ्यादृष्टि और सासादन जीव में सान्तर बंधता है, वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति का बंध संभव है। ऊपर के गुणस्थानवर्तियों में निरंतर बंधती है क्योंकि आगे प्रतिपक्षप्रकृति के बंध का अभाव है।

पुनः भोगभूमियों में सभी गुणस्थानवर्ती जीव उच्चगोत्र ही बांधते हैं, क्योंकि वहाँ पर पर्याप्तकाल में

मुक्त्वान्यगतीनां बंधाभावात्। तेनोच्चगोत्रमपि बंधेन सान्तरनिरन्तरं।

एतासां प्रकृतीनां किं सप्रत्ययो बन्धः ? किमप्रत्ययः ? इति प्रश्ने सति उच्यते—प्रत्ययको बंधो न निष्कारणः अतोऽत्र प्रत्ययप्ररूपणा क्रियते—

'मिथ्यात्वासंयमकषाययोगाः[१]' इत्येते चत्वारो मूलप्रत्ययाः।

संप्रति उत्तरप्रत्ययप्ररूपणं करिष्यन्ति आचार्यदेवाः—मिथ्यादृष्ट्यादि गुणस्थानेषु आनीय। मिथ्यात्वं पंचविधं—एकान्त-अज्ञान-विपरीत-वैनयिक-सांशयिकमिथ्यात्वं।

तत्र अस्त्येव, नास्त्येव, एकमेव, अनेकमेव, सावयवमेव, निरवयवमेव, नित्यमेव, अनित्यमेव इत्यादय एकान्ताभिनिवेश एकान्तमिथ्यात्वं।

विचारयिष्यमाणे जीवाजीवादिपपदार्थाः न सन्ति नित्यानित्यविकल्पैः ततः सर्वमज्ञानमेव, ज्ञानं नास्तीति अभिनिवेशोऽज्ञानमिथ्यात्वं।

हिंसालीकवचन-चौर्य-मैथुन, परिग्रह-राग-द्वेष-मोहाज्ञानैश्चैव निवृत्तिर्भवतीत्यभिनिवेशः विपरीतमिथ्यात्वं।

ऐहिक-पारलौकिकसुखानि सर्वाण्यपि विनयाच्चैव, न ज्ञानदर्शनतप-उपवासक्लेशैरिति अभिनिवेशो वैनयिकमिथ्यात्वं।

सर्वत्र संदेह एव निश्चयो नास्तीत्यभिनिवेशः संशयमिथ्यात्वं।

एवमेते मिथ्यात्वप्रत्यया पंच (५)।

असंयमप्रत्ययो द्विविधः—इन्द्रियासंयम-प्राणासंयमभेदेन। तत्रेन्द्रियासंयमः षड्विधः—स्पर्श-रस-रूप-गंध-शब्द-नोइन्द्रियासंयमभेदेन।

देवगति को छोड़कर अन्य गतियों का बंध नहीं होता है। इसलिए उच्चगोत्र भी सान्तर-निरन्तर है।

प्रश्न—इन प्रकृतियों का क्या सकारण बंध है या क्या अकारण बंध है ?

उत्तर—सकारण बंध है न कि निष्कारण, इसलिए यहाँ प्रत्यय—कारणों की प्ररूपणा करते हैं—

मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, ये चार मूल प्रत्यय—कारण हैं।

अब आचार्यदेव उत्तर प्रत्ययों का निरूपण मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में करते हैं—

मिथ्यात्व के ५ भेद हैं—एकान्त, अज्ञान, विपरीत, वैनयिक और सांशयिक मिथ्यात्व।

इनमें अस्ति ही है, नास्ति—असत् ही है, एक ही है, अनेक ही है, सावयव ही है, निरवयव ही है, नित्य ही है, अनित्य ही है, इत्यादि रूप से एकान्त अभिप्राय एकान्तमिथ्यात्व है।

नित्य-अनित्य विकल्पों से विचार करने पर जीव-अजीव आदि पदार्थ नहीं हैं, अतएव सर्व अज्ञान ही है, ज्ञान नहीं है ऐसा अभिप्राय अज्ञानमिथ्यात्व है।

हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, राग, द्वेष, मोह और अज्ञान, इनसे ही मुक्ति होती है। इस प्रकार का दुराग्रहरूप अभिप्राय विपरीत मिथ्यात्व है।

ऐहिक और पारलौकिक सभी सुख विनय से ही प्राप्त होते हैं, ज्ञान, दर्शन, तप, उपवासजनित क्लेशों से नहीं, ऐसा जो दुरभिप्राय है वह वैनयिक मिथ्यात्व है।

सर्वत्र संदेह ही है निश्चय नहीं है, ऐसा दुरभिप्राय संशय मिथ्यात्व है।

इस प्रकार ये मिथ्यात्व प्रत्यय—कारण ५ हैं।

असंयम प्रत्यय दो प्रकार का है—इन्द्रिय असंयम और प्राणी असंयम। उनमें इन्द्रिय असंयम के ६ भेद हैं—स्पर्श, रस, रूप, गंध, शब्द और नोइंद्रिय—मन से होने वाला असंयम।

---

१. षट्खण्डागम (धवला टीका समन्वित)पु. ८, पृ. २०।

प्राणासंयमोऽपि षड्विधः—पृथिवी-जल-तेजः-वायु-वनस्पति-त्रसासंयम-भेदेन। असंयमसर्वसमासो द्वादश (१२)।

कषायप्रत्ययः पंचविंशतिविधः—षोडशकषाय-नवनोकषाय-भेदेन। कषायप्रत्ययसमास एषः पंचविंशतिः (५)।

योगप्रत्ययस्त्रिविधः—मनोवचनकायभेदेन। सत्य-मृषा-सत्यमृषा-असत्यमृषाभेदेन चतुर्विधो मनोयोगः। वचनयोगोऽपि चतुर्विधः सत्य-मृषा-सत्यमृषा-असत्यमृषाभेदेन। काययोगः सप्तविधः—औदारिक-औदारिकमिश्र-वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र-आहार-आहारमिश्र-कार्मणकाययोगभेदेन। एतेषां सर्वसमासः पंचदश (१५)।

सर्वप्रत्ययसमासाः सप्तपंचाशद् ज्ञातव्याः (५७)।

एते प्रत्ययाः गुणस्थानेषु योजयिष्यन्ते—

अत्राहारद्विकमपनीते मिथ्यादृष्टिप्रतिबद्धप्रत्ययाः पंचपंचाशद् भवन्ति (५५)। एतैः प्रत्ययैर्मिथ्यादृष्टिजीवः सूत्रोक्तषोडशप्रकृतीः बध्नन्ति।

अत्रत्यात् पंचमिथ्यात्वप्रत्ययेषु अपनीतेषु पंचाशत् प्रत्यया भवन्ति (५०)। एतैः प्रत्ययैः सासादन-सम्यग्दृष्टिः सूत्रोक्तषोडशप्रकृतीः बध्नाति।

पंचाशत्प्रत्ययेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-अनन्तानुबंधिचतुष्केषु अपनयनेषु त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः भवन्ति (४३)। एतैः प्रत्ययैः सम्यग्मिथ्यादृष्टिजीवः षोडशप्रकृतीः बध्नति।

त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययेषु प्रक्षिप्तेषु षट्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः

प्राणी असंयम भी ६ प्रकार का है—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस जीवों की विराधना से उत्पन्न होने वाला। इस प्रकार असंयम १२ भेदरूप है।

कषाय प्रत्यय २५ प्रकार का है—१६ कषाय और ९ नोकषाय के भेदरूप से, अतः कषाय प्रत्यय के २५ भेद हैं।

योगप्रत्यय तीन प्रकार का है—मन, वचन और काय के भेद से। इनमें भी मन के सत्यमनोयोग, असत्यमनोयोग, सत्यमृषामनोयोग, असत्यमृषाअनुभयमनोयोग के भेद से ४ भेदरूप है।

वचनयोग भी—सत्यवचनयोग, असत्यवचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचनयोग से ४ भेद-रूप है।

काययोग सात प्रकार का है—औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, आहारक, आहारकमिश्र और कार्मणकाययोग, इस प्रकार तीनों योग के १५ भेद हैं।

इस तरह मिथ्यात्व ५, असंयम १२, कषाय २५ और योग १५ सभी मिलाकर प्रत्यय—बंध के कारण ५७ जानना चाहिए।

अब ये प्रत्यय गुणस्थानों में घटित करेंगे—

१. इनमें से आहारकद्विक योग को घटाने पर मिथ्यादृष्टि से प्रतिबद्ध—संबंधी प्रत्यय ५५ होते हैं। इन प्रत्यय—कारणों से मिथ्यादृष्टि जीव सूत्रकथित १६ प्रकृतियों को बांधता है। ये प्रकृतियाँ ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण, १ यशकीर्ति, १ उच्चगोत्र और ५ अंतराय ये १६ हैं।

२. इनमें से ५ मिथ्यात्व कारणों को घटा देने पर ५० प्रत्यय होते हैं, इन ५० प्रत्ययों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सूत्रोक्त १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

३. इन ५० प्रत्ययों में से औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण और अनन्तानुबंधी ४, इन ७ प्रत्ययों को

(४६)। एतैः प्रत्ययैरसंयतसम्यग्दृष्टिजीवोऽर्पितषोडशप्रकृतीः बध्नाति।

एतेष्वसंयतसम्यग्दृष्टिप्रत्ययेषु अप्रत्याख्यानचतुष्क-औदारिकमिश्र-वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-त्रसासंयमेषु अपनीतेषु सप्तत्रिंशत् प्रत्यया भवन्ति (३७)। एतैः प्रत्ययैः संयतासंयतोऽर्पितषोडशप्रकृतीः बध्नाति।

एतेषु संयतासंयतस्य सप्तत्रिंशत्प्रत्ययेषु प्रत्याख्यानचतुष्क-एकादशासंयमप्रत्ययेषुअपनीतेषु अवशेषा द्वाविंशतिः, तत्राहारकद्विके प्रक्षिप्ते चतुर्विंशतिप्रत्यया भवन्ति (२४), प्रमत्तसंयतः एतैः प्रत्ययैः षोडशप्रकृतीः बध्नाति।

तत्राहारद्विके अपनीते द्वाविंशतिप्रत्यया भवन्ति (२२)।

एतैः प्रत्ययैरप्रमत्तसंयता अपूर्वकरणप्रविष्टोपशमाः क्षपकाश्चार्पितषोडशप्रकृतीः बध्नन्ति। एतेषु एव षण्णोकषायेषु अपनीतेषु षोडश भवन्ति (१६)।

एतैः प्रत्ययैः प्रथमानिवृत्तिकरणः षोडशप्रकृतीः बध्नाति। अत्र नपुंसकवेदेऽपनयने पंचदश भवन्ति (१५)।

एतैः प्रत्ययैः द्वितीयानिवृत्तिकरणः अर्पितप्रकृतीः बध्नाति। एतेषु स्त्रीवेदेऽपनीते चतुर्दश भवन्ति (१४)।

एतैः प्रत्ययैस्तृतीयानिवृत्तिकरणः अर्पितप्रकृतीः बध्नाति। अत्र पुरुषवेदेऽपनीते त्रयोदश भवन्ति (१३)।

एतैः प्रत्ययैश्चतुर्थानिवृत्तिकरणोऽर्पितप्रकृतीः बध्नाति। पुनरत्र क्रोधसंज्वलनेऽपनीते द्वादश भवन्ति (१२)।

निकाल देने से सम्यक्मिथ्यादृष्टि जीव ४३ प्रत्ययों से उपर्युक्त १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

४. इन ४३ प्रत्ययों में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण इन तीन योगों को मिला देने से ४६ प्रत्ययों द्वारा असंयत सम्यग्दृष्टि जीव सूत्रकथित १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

५. इन असंयतसम्यग्दृष्टि के प्रत्ययों में से अप्रत्याख्यान कषाय ४, औदारिकमिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग और त्रस का असंयम इन ९ प्रत्ययों को निकाल देने पर बचे ३७ प्रत्ययों द्वारा संयतासंयत जीव उपर्युक्त १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

६. इन संयतासंयत के ३७ प्रत्ययों में से प्रत्याख्यान कषाय ४ और पृथिवी असंयम आदि ११ असंयम ऐसे १५ प्रत्ययों को घटाने पर शेष २२ प्रत्यय बचे, इनमें आहारकद्विक मिला देने पर २४ प्रत्ययों द्वारा प्रमत्तसंयत मुनि १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

७-८. इन २४ प्रत्ययों में से आहारकद्विक को कम कर देने पर शेष २२ प्रत्ययों से सातवें गुणस्थानवर्ती अप्रमत्तसंयत मुनि और अपूर्वकरणप्रविष्ट — आठवें गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक महामुनि उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

९ (भाग १). इन २२ प्रत्ययों में छह नोकषायों को निकाल देने पर १६ प्रत्यय होते हैं। अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपकमुनि प्रथम भाग में १६ प्रत्ययों द्वारा उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

९ (भाग २). पुनः १६ प्रत्ययों में से नपुंसक वेद को निकाल देने पर १५ प्रत्ययों द्वारा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती द्वितीय भाग में १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

९ (भाग ३). इन १५ प्रत्ययों में स्त्रीवेद को निकाल देने पर १४ प्रत्यय हुए, अनिवृत्तिकरण महामुनि तीसरे भाग में इन १४ प्रत्ययों से, उपर्युक्त १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

९ (भाग ४). इन १४ में से पुरुषवेद निकाल देने पर १३ हुए, इन १३ प्रत्ययों से अनिवृत्तिकरण महामुनि चौथे भाग में उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधता है।

९ (भाग ५). पुनः १३ में क्रोध संज्वलन निकालने पर १२ प्रत्यय हुए, इन १२ प्रत्ययों से ये महामुनि पाँचवें भाग में १६ प्रकृति बांधते हैं।

एतैर्द्वादशप्रत्ययैः पंचमानिवृत्तिकरणः अर्पितप्रकृतीः बध्नाति। पुनः अत्र मानसंज्वलनेऽपनीते एकादश भवन्ति (११)।

एतैः प्रत्ययैः षष्ठानिवृत्तिः अर्पितप्रकृतीः बध्नाति। एतेभ्यो मायासंज्वलनेऽपनीते दश भवन्ति (१०)।

एतैः प्रत्ययैः सप्तमानिवृत्तिरर्पितप्रकृतीः बध्नाति। एतैरेव दशभिः प्रत्ययैः सूक्ष्मसांपरायिकोऽपि अर्पितषोडशप्रकृतीः बध्नाति। दशसु लोभसंज्वलनेऽपनीते नव भवन्ति (९)। एते उपशान्तकषाय-क्षीणकषायाभ्यां बध्यमानप्रकृतीनां प्रत्ययाः।

एतेभ्यो मध्यमद्विद्विमनोवचनयोगान् अपनीयौदारिकमिश्रकार्मणकाययोगेषु प्रक्षिप्तेषु सप्त भवन्ति (७)। एतैः सप्तभिः प्रत्ययैः सयोगिकेवली जिनः एकं सातावेदनीयं बध्नाति।

---

९ (भाग ६). इन १२ में से मान संज्वलनकषाय प्रत्यय निकाल देने पर ११ प्रत्ययों से अनिवृत्तिकरण महामुनि छठे भाग में स्थित होकर १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

९ (भाग ७). पुनः ११ प्रत्ययों में संज्वलन माया कषाय को घटा देने पर १० प्रत्यय हुए, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशामक और क्षपक महामुनि अपने गुणस्थान में सातवें भाग में स्थित होकर इन १० प्रत्ययों द्वारा उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

१०. सूक्ष्मसांपराय गुणस्थानवर्ती महामुनि इन्हीं १० प्रत्ययों द्वारा उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

११-१२. इन १० प्रकृतियों में से सूक्ष्म लोभ कषाय को निकाल देने पर ९ प्रत्यय होते हैं। उपशांतकषाय वाले महामुनि और क्षीणकषाय वाले महामुनि इन ९ प्रत्ययों द्वारा उपर्युक्त १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

१३. इन नव प्रत्ययों में से असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग, असत्यवचनयोग और उभयवचनयोग इन ४ को घटा देने पर ५ प्रत्यय हुए, इनमें औदारिकमिश्रयोग और कार्मणकाययोग को मिला देने पर ७ प्रत्यय हुए। तेरहवें गुणस्थानवर्ती सयोगिकेवली अर्हंत भगवान इन ७ प्रत्ययों द्वारा मात्र केवल एक सातावेदनीय का बंध करते हैं।

विशेषार्थ — प्रथम गुणस्थान में चारों प्रत्ययों से बंध होता है। इससे ऊपर-ऊपर तीन गुणस्थानों में मिथ्यात्व को छोड़कर शेष तीन प्रत्ययों से बंध होता है। संयम के एकदेशरूप देशसंयत गुणस्थान में दूसरा असंयम प्रत्यय मिश्ररूप तथा उपरितन कषाय और योग इन दोनों प्रत्ययों से बंध होता है। इसके ऊपर पाँच गुणस्थानों में कषाय और योग इन दो प्रत्ययों से बंध होता है। आगे उपशांतमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों में केवल योगनिमित्तक बंध होता है। इस प्रकार गुणस्थान क्रम से आठ कर्मों के ये सामान्य प्रत्यय हैं।

१. प्रथम गुणस्थान में ५५
२. द्वितीय गुणस्थान में ५०
३. तृतीय गुणस्थान में ४३
४. चतुर्थ गुणस्थान में ४६
५. पंचम गुणस्थान में ३७
६. छठे गुणस्थान में २४
७-८. सातवें, आठवें गुणस्थान में २२
९. नवमें के सात भाग के गुणस्थान में (१६, १५, १४, १३, १२, ११, १०)

संप्रति एकसमयिकोत्तरोत्तरप्रत्ययान् चतुर्दशजीवसमासेषु—गुणस्थानेषु भणिष्यंति। तद्यथा—तत्र तावत् मिथ्यादृष्टिषु जघन्येन दश प्रत्ययाः। पंचसु मिथ्यात्वेषु एकः एकेनेन्द्रियेण एकं कायं जघन्येन विराधयति इति द्वौ असंयमप्रत्ययौ, अनन्तानुबंधिचतुष्कं विसंयोज्य मिथ्यात्वं गतस्यावलिकामात्रकालमनन्तानुबन्धिचतुष्कस्योदयाभावात् द्वादशसु कषायेषु त्रयः कषायप्रत्ययाः, त्रिषु वेदेषु एकः हास्यरति-अरतिशोकेषु द्वयोर्युगलयोरेकतरं युगलं। दशसु योगेषु एको योगः। एवमेते सर्वेऽपि जघन्येन दशप्रत्ययाः (१०)।

पंचसु मिथ्यात्वेष्वेकः, एकेनेन्द्रियेण षट्कायान् विराधयति इति सप्तासंयमप्रत्ययाः, षोडशसु कषायेषु चत्वारः कषायप्रत्ययाः, त्रिषु वेदेष्वैकः हास्य-रत्यरति शोकद्वियुगलयोरेकं युगलं, भय-जुगुप्से द्वे, त्रयोदशसु योगप्रत्ययेषु एकः, एवमेते सर्वेऽपि अष्टादश भवन्ति (१८)।

एवमेतैः दशाष्टादशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैः मिथ्यादृष्टिः अर्पितषोडशप्रकृतीः बध्नाति।

सासादनसम्यग्दृष्टिः जघन्योत्कृष्टाभ्यां दश, सप्तदश प्रत्ययाः भवन्ति—

तद्यथा—एकेनेन्द्रियेण एकं कायं विराधयतीति द्वौ असंयमप्रत्ययौ, षोडशकषायेषु चत्वारः कषायप्रत्ययाः, त्रिषु वेदेषु एको वेदप्रत्ययः, हास्य-रत्यरतिशोकद्वियुगलेषु एकतरं युगलं, त्रयोदशसु योगेषु एकः, एवं जघन्येन सासादनस्य दश प्रत्यया भवन्ति (१०)। उत्कृष्टेण सप्तदश (१७), मिथ्यात्वस्योदयाभावात्। एवमेतैः जघन्योत्कृष्टदश-सप्तदश-प्रत्ययैः सासादनसम्यग्दृष्टिरर्पितषोडशप्रकृतीर्बध्नाति।

---

१०. दसवें गुणस्थान में १०

११-१२. ग्यारहवें एवं बारहवें गुणस्थान में ९

१३. तेरहवें गुणस्थान में ७ हैं।

इस प्रकार क्रम से मिथ्यात्व आदि अपूर्वकरण तक आठ गुणस्थानों में अनिवृत्तिकरण के सात भागों में तथा सूक्ष्मसांपरायादि सयोगकेवली तक शेष गुणस्थानों में बंध प्रत्ययों की संख्या है।

अब एक समय में होने वाले उत्तरोत्तर प्रत्ययों को चौदह गुणस्थानों में कहेंगे। वह इस प्रकार है—

उनमें से मिथ्यादृष्टियों में जघन्य से दश प्रत्यय होते हैं। पाँच मिथ्यात्वों में एक मिथ्यात्व, एक किसी भी इंद्रिय से, जघन्य से एक काय की विराधना करता है, इस प्रकार से असंयम प्रत्यय दो हुए। अनंतानुबंधी चतुष्क का विसंयोजन करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीव के आवलीमात्र काल तक अनंतानुबंधी चतुष्टय का उदय न रहने से बारह कषायों में से किसी एक-एक कषाय के होने से तीन कषाय प्रत्यय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति और अरति-शोक इन दोनों युगलों में एक कोई युगल, दश योगों में से एक योग, इस प्रकार के ये सभी जघन्य से दश प्रत्यय होते हैं (१०)।

उत्कृष्ट से अठारह प्रत्यय होते हैं। उन्हें गिनाते हैं—

पाँच मिथ्यात्वों में से एक, किसी एक इंद्रिय से छह काय जीवों की विराधना करता है तो 'सात' असंयम हुए। सोलह कषायों में से 'चार' कषाय प्रत्यय, तीन वेदों में से 'एक' वेद। हास्य, रति, अरति, शोक इन दो युगलों में से एक 'युगल'। भय और जुगुप्सा ये 'दो'। तेरह योगप्रत्ययों में से 'एक' योग। ये सभी मिलकर अठारह प्रत्यय होते हैं (१८)।

इस प्रकार जघन्य दश एवं उत्कृष्ट अठारह प्रत्ययों से मिथ्यादृष्टि जीव उपर्युक्त ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों का बंध करता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि के जघन्य से १०, उत्कृष्ट से १७ प्रत्यय होते हैं। उन्हें ही दिखाते हैं—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवयो: एकसमयिकप्रत्यया: उच्यन्ते—

एकेनेन्द्रियेण एकं कायं विराधयतीति द्वौ असंयमप्रत्ययौ, अनन्तानुबन्धिचतुष्कव्यतिरिक्तद्वादशकषायेषु त्रय: कषायप्रत्यया:, त्रिषु वेदेष्वेक: हास्यरत्यरतिशोकद्वियुगलेषु एकं युगलं, दशयोगेषु एक:, एवमेते सर्वेऽपि नव भवन्ति (९)।

एकेनेन्द्रियेण षट्कायान् विराधयतीति सप्तासंयमप्रत्यया:, अनंतानुबंधिविरहित-द्वादशकषायेषु त्रय: कषायप्रत्यया:, त्रिषु वेदेष्वेक:, हास्यरत्यरतिशोकद्वियुगलेषु एकतरं युगलं, भयजुगुप्से द्वे, दशयोगेष्वेक:। एवमेते षोडशप्रत्यया: (१६)।

एतैर्जघन्योत्कृष्टनवषोडशप्रत्ययै: सम्यग्मिथ्यादृष्टि: असंयतसम्यग्दृष्टिश्चार्पितपंचज्ञानावरणादिषोडशप्रकृती: बध्नाति।

संयतासंयतस्य कथ्यन्ते—

एकेनेन्द्रियेण एकं कायं विराधयतीति द्वावसंयमप्रत्ययौ, अनन्तानुबंधि-अप्रत्याख्यानचतुष्कविरहिताष्ट-कषायेषु द्वौ कषायप्रत्ययौ, त्रिषु वेदेष्वेक:, हास्यरत्यारतिशोकद्वियुग्मेषु एकतरं युगलं, नवयोगेष्वेक, एवमेतेऽष्टौ (८)। एकेनेन्द्रियेण पंचकायान् विराधयतीति षडसंयमप्रत्यया:, द्वौ कषायप्रत्ययौ, एको वेदप्रत्यय:,

---

एक किसी इन्द्रिय से एक काय—पृथिवीकाय आदि में एक काय की विराधना करता है, इस प्रकार असंयम प्रत्यय दो हुए। सोलह कषायों में से चार कषाय प्रत्यय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य, रति, शोक-अरति में से एक युगल, तेरह योगों में से एक योग। इस तरह जघन्य से सासादन के दश प्रत्यय हुए। उत्कृष्ट से उपर्युक्त १८ में से एक मिथ्यात्व निकाल देने से १७ प्रत्यय होते हैं, क्योंकि सासादन में मिथ्यात्व के उदय का अभाव है एवं इन जघन्य १० और उत्कृष्ट १७ प्रत्ययों से सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उपर्युक्त ५ ज्ञानावरण आदि १६ प्रकृतियों का बंध करता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव के एक समय में होने वाले जघन्य से ९ एवं उत्कृष्ट से १६ प्रत्यय होते हैं। उन्हें ही कहते हैं—

एक किसी इन्द्रिय से एक काय की विराधना करता है, इसलिए असंयम प्रत्यय दो हुए। अनंतानुबंधी चतुष्क से रहित बारह कषायों में तीन कषाय प्रत्यय हैं, तीन वेदों में से एक, हास्य-रति, अरति-शोक इन दो युगलों में से एक युगल, दश योगों में से एक योग, ये सभी मिलाकर नव प्रत्यय होते हैं (९)।

एक इंद्रिय से छह कायों की विराधना करता है अत: सात असंयम, अनंतानुबंधी रहित बारह कषायों में से तीन कषाय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति, अरति-शोक दो युगलों में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा ये दो, दश योगों में से एक योग। ये सभी १६ प्रत्यय होते हैं (१६)।

इन जघन्य नव और उत्कृष्ट १६ प्रत्ययों से तृतीय और चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव उपर्युक्त ५ ज्ञानावरण आदि १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

अब संयतासंयत में कहते हैं—

एक इन्द्रिय से एक काय की विराधना करने से असंयम प्रत्यय दो हुए। अनंतानुबंधी चतुष्क और अप्रत्याख्यान चतुष्क से रहित आठ कषायों में से दो कषाय प्रत्यय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति, अरति-शोक में से एकतर युगल, नव योगों में से एक योग, ये ८ प्रत्यय हुए हैं।

पुन: एक किसी इन्द्रिय से त्रस हिंसा से अतिरिक्त पाँच कायों की विराधना होने से छह असंयम प्रत्यय

हास्यरत्यरतिशोकद्वयोः युगलयोरेकतरं युगलं, भयजुगुप्से द्वे, नवयोगेष्वेकः, एवमेते चतुर्दश (१४)। एतैर्जघन्योत्कृष्टाष्टचतुर्दशप्रत्ययैः संयतासंयतोऽर्पितषोडशप्रकृतीः बध्नाति।

अधुना प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणानां प्रत्यया उच्यन्ते—

चतुःसंज्वलनेष्वेकः कषायप्रत्ययः, त्रिषु वेदेष्वेकः, हास्यरत्यरतिशोकद्वियुगलेषु एकतरं युगलं, नवसु योगेष्वेकः एवं जघन्येनैते पंच प्रत्ययाः (५)। एकः कषायप्रत्ययः, एको वेदः, हास्यरत्यरतिशोकद्वियुगलयोरेकतरं युगलं, भयजुगुप्से द्वे, नवयोगेष्वेकः। एवमेते सप्तोत्कृष्टप्रत्ययाः (७)। एवमेतैः जघन्योत्कृष्टपंचसप्तप्रत्ययैः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयतोऽपूर्वकरणश्चार्पितषोडशप्रकृतीर्बध्नाति।

अनिवृत्तिकरणस्य उच्यन्ते—

एकः संज्वलनकषायः, एको योगः। एवमेतौ जघन्येन द्वौ प्रत्ययौ (२)। उत्कृष्टेण एकेन वेदेन सह त्रयः प्रत्ययाः भवन्ति (३)। एतैर्जघन्योत्कृष्टाभ्यां द्वित्रिप्रत्ययैरनिवृत्तिकरणमुनिरर्पितषोडशप्रकृतीर्बध्नाति।

लोभकषाय एको, योग एकः, एवमेताभ्यां जघन्योत्कृष्टाभ्यां चापि द्वाभ्यां प्रत्ययाभ्यां सूक्ष्मसांपरायिकोऽर्पितषोडशप्रकृतीः षोडश बध्नति।

उपरि उपशान्तकषायः क्षीणकषायः सयोगकेवली चैकेनैव योगेन एकं सातावेदनीयप्रकृतिं बध्नन्ति।

हुए। दो कषाय प्रत्यय, एक वेद, हास्य-रति, अरति-शोक युगल में से एक युगल, भय और जुगुप्सा दो, नव योगों में से एक योग, ये १४ प्रत्यय होते हैं।

इन जघन्य नव और उत्कृष्ट १४ प्रत्ययों से संयतासंयत श्रावक उपर्युक्त १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

अब प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरण महामुनियों के प्रत्यय कहते हैं—चार संज्वलन कषाय में से एक कषाय प्रत्यय, तीन वेदों में से एक वेद, हास्य-रति, अरति-शोक दो युगलों में से एक युगल, नव योगों में से एक योग, ये जघन्य से ५ प्रत्यय होते हैं।

एक कषाय, १ वेद, हास्यादि में से एक युगल, भय और जुगुप्सा ये दो, नव योगों में से एक योग, ये ७ उत्कृष्ट प्रत्यय होते हैं।

इन जघन्य ५ और उत्कृष्ट ७ प्रत्ययों से ये प्रमत्त, अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती महामुनि विवक्षित १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

अब अनिवृत्तिकरण में कहते हैं—

एक संज्वलन कषाय, एक योग, ये जघन्य से दो प्रत्यय हैं (२)। उत्कृष्ट से एक वेद के साथ ३ प्रत्यय हो जाते हैं। इस जघन्य २, उत्कृष्ट ३ प्रत्ययों से अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती महामुनि विवक्षित १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

सूक्ष्मसांपरायिक महामुनि लोभकषाय १, योग १, ऐसे जघन्य और उत्कृष्ट २ प्रत्ययों द्वारा विवक्षित १६ प्रकृतियों का बंध करते हैं।

आगे के उपशान्तकषाय, क्षीणकषाय महामुनि तथा सयोगकेवली अरिहंत भगवान मात्र एक योग प्रत्यय से एक सातावेदनीय कर्म का बंध करते हैं।

भावार्थ—इस प्रकार संक्षेप में मिथ्यात्वगुणस्थान में १०, १८, सासादन में १०, १७, तीसरे-चौथे गुणस्थान में ९, १६, संयतासंयत में ८, १४, प्रमत्तादि तीन में ५, ७, अनिवृत्तिकरण में २,३, सूक्ष्मसाम्पराय में २,२ तथा उपशांतकषाय, क्षीणकषाय में व सयोगकेवली में मात्र १ प्रत्यय, इस प्रकार इनमें जघन्य और उत्कृष्ट से ये बंध प्रत्यय पाये जाते हैं।

इतो विस्तरः क्रियते—

अस्मिन् महाग्रन्थे बंधस्य प्रत्ययाः चत्वारो भणिताः सन्ति।

श्रीकुंदकुंददेवेनापि अध्यात्मग्रन्थे समयसारे प्रोक्तं—

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारा।
मिच्छत्तं अविरणं कसाय जोगा य बोधव्वा[१]।।११६।।

श्रीमदुमास्वामिनापि कथितं—

''मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः[२]।।

अतो मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने मिथ्यात्वप्रत्ययिको बन्धः सर्वस्मिन्नार्षग्रन्थे कथितः महद्भिराचार्यदेवैः—

मिथ्यात्वस्य त्रिषष्ट्यधिकत्रिशतभेदाः सन्ति।

उक्तं च— असिदिसदं किरियाणं, अक्किरियाणं च आहु चुलसीदी।
सत्तट्ठण्णाणीणं, वेणयियाणं तु बत्तीसं।।८७६।।

क्रियावादिनां मूलभंगा उच्यन्ते—

अत्थि सदो परदो वि य, णिच्चाणिच्चत्तणेण य णवत्था।
काली सरप्प-णियदिसहावेहि य ते हि भंगा हु।।८७७।।

अस्तिपदं स्व-पर-नित्यानित्यत्वैश्चतुर्भिर्गुणिते पुनः जीवादिनवपदार्थैर्गुणिते तदनंतरं कालेश्वरात्मनियति-स्वभाववैश्च पंचभिर्गुणिते—

अब यहाँ विस्तार से कहते हैं—

इस महाग्रंथ—षट्खण्डागम में बंध के ४ प्रत्यय कहे गये हैं।

श्री कुन्दकुन्ददेव ने भी अध्यात्मग्रंथ समयसार में कहा है—

बंध के करने वाले सामान्य प्रत्यय चार होते हैं। मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये जानना चाहिए।

श्री उमास्वामी आचार्यदेव कहते हैं—

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच प्रत्यय बंध के लिए माने हैं।

इसलिए मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मिथ्यात्वनिमित्तक बंध सभी आर्षग्रंथों में महान आचार्यों ने कहा ही है।

मिथ्यात्व के तीन सौ त्रेसठ (३६३) भेद हैं।

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में कहा है—

क्रियावादियों के १८०, अक्रियावादियों के ८४, अज्ञानवादियों के ६७ और वैनयिकों के ३२ भेद हैं। ऐसे १८०+८४+६७+३२=३६३ हुए। इन्हीं को गिनाते हैं—

क्रियावादियों के मूलभंग कहते हैं—

प्रथम तो 'अस्ति' लिखो। उसके ऊपर स्वतः, परतः, नित्यरूप से, अनित्यरूप से, ये चार पद लिखो। उसके ऊपर जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ये नौ पद लिखो। उनके ऊपर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति और स्वभाव ये पाँच पद लिखो अर्थात् इस प्रकार अस्तिपद को स्व, पर, नित्य और अनित्य ऐसे चार से गुणा करके जीवादि नव पदार्थों से गुणा करने पर तदनंतर काल, ईश्वर, आत्मा, नियति

---

१. समयसार। २. तत्त्वार्थसूत्र अ. ८, सूत्र १।

(१×४×९×५=१८०) अशीत्युत्तरशतभेदा भवन्ति।

अक्रियावादिनां चतुरशीतिभेदाः सन्ति। तथाहि—

नास्तिपदं स्वपराभ्यां गुणिते ततः पुण्यपापविरहितसप्तपदार्थैश्च गुणिते ततः पंचकालादिभिः गुणिते सप्ततिर्भंगा भवन्ति। पुनश्च नास्तिपदं सप्तपदार्थैः गुणयित्वा नियति-कालपदाभ्यां गुणिते चतुर्दश, सर्वमेलिते सति चतुरशीतिः भवन्ति। (१×२×७×५=७०। १×७×२=१४। ७०+१४=८४)।

अज्ञानवादिनां सप्तषष्टिभेदाः सन्ति—

जीवादिनवपदार्थान् सप्तभंगिभिर्गुणिते त्रिषष्टिः भवन्ति। पुनश्च शुद्धपदार्थं अस्तिनास्ति-उभयावक्तव्यैर्गुणिते चत्वारो भेदाः भवन्ति। इमे मिलित्वा सप्तषष्टिभेदा भवन्ति।

अस्यायमर्थः—जीवपदार्थोऽस्ति इति को जानाति? न कोऽपीत्यर्थः एवं सर्वेषु भेदेषु अज्ञानं ज्ञातव्यं।

वैनयिकानां द्वात्रिंशद्भेदाः सन्ति—

देव-भूपति-ज्ञानि-यति-वृद्ध-बाल-मातृ-पितॄणां मनोवचनकाय-दानैर्विनयः कर्तव्यः इति अष्टौ चतुर्भिर्गुणिते (८×४=३२) द्वात्रिंशद्भेदाः भवन्ति।

अत्र अस्तिनास्तिनित्यत्वादि-नवपदार्थादीनां चार्थोऽवगम्यते किन्तु कालवादादीनां न ज्ञायतेऽतस्तेषामर्थो निगद्यते—

कालवादस्यार्थः—

कालो सव्वं जणयदि, कालो सव्वं विणस्सदे भूदं।
जागत्ति हि सुत्तेसु वि ण सक्कदे वंचिदुं कालो।।८७९।।

और स्वभाव इन पाँच से गुणा करने पर (१×४×९×५=१८०) एक सौ अस्सी भंग हो जाते हैं।

अब अक्रियावादियों के ८४ भेद कहते हैं—

'नास्ति' पद को स्व और पर से गुणित करके पुण्य-पाप से रहित सात पदार्थों से गुणा करके काल, ईश्वर आदि पाँच से गुणा करने पर (१×२×७×५=७०) सत्तर भेद हुए। पुनः 'नास्ति' पद को सात पदार्थों से गुणा करके नियति और काल से गुणा करने पर १४ भेद हुए, इन (७०+१४=८४) को मिलाने पर चौरासी भेद हो जाते हैं।

अज्ञानवादियों के सड़सठ भेद गिनाते हैं—

जीवादि नव पदार्थों को सात भंगों से गुणा करने पर त्रेसठ भेद होते हैं। पुनः शुद्ध पदार्थ को अस्ति-नास्ति, उभय और अवक्तव्य से गुणा करने पर ४ भेद हुए। ये मिलकर सड़सठ भेद हो जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि—जीव पदार्थ है यह कौन जानता है ? अर्थात् कोई भी नहीं जानता है। इसी प्रकार सभी भेदों में अज्ञान को जानना चाहिए।

अब वैनयिकों के ३२ भेद कहते हैं—

देव, राजा, ज्ञानी, यति, वृद्ध, बालक, माता और पिता, इनकी मन, वचन, काय और दान से विनय करना चाहिए। इस प्रकार इन आठ को चार से गुणा करने से ८×४=३२ भेद हो जाते हैं।

अब यह अस्ति, नास्ति, नित्यत्व आदि से लेकर नव पदार्थों तक के अर्थ मालूम हैं किन्तु कालवाद आदि के अर्थ नहीं मालूम हैं, अतः उनके अर्थ बताते हैं—

कालवाद का अर्थ—काल ही सबको उत्पन्न करता है, काल ही सबको नष्ट करता है। प्राणियों के सोने पर भी काल जागता रहता है। काल को कोई नहीं ठग सकता, उसे धोखा देना संभव नहीं है। यह

कालः सर्वं जनयति कालः सर्वं विनाशयति, सुप्तेषु अपि भूतं काल एव जागरयति एतादृशं कालं वञ्चितुं न शक्यते।

ईश्वरवादः—

अण्णाणी हु अणीसो अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च।
सग्गं णिरयं गमणं, सव्वं ईसरकदं होदि।।८८०।।

आत्मवादः—

अप्पो चेव महप्पा, पुरिसो देवो य सव्ववावी य।
सव्वंगणि गूढो वि य, सचेदणो णिग्गुणो परमो।।८८१।।

नियतिवादः—

जत्तु जदा जेण जहा, जस्स य णियमेण होदि तत्तु तदा।
तेण तह तस्स हवे, इदि वादो णियदिवादो दु।।८८२।।

स्वभाववादः कथ्यते—

को करदि कंटयाणं, तिक्खत्तं मियविहंगमादीणं।
विविहत्तं तु सहाओ, इदि सव्वं पि सहाओ त्ति।।८८३।।

अनेन विधिना त्रिषष्ट्युत्तरत्रिशतभेदा मिथ्यात्वस्य कथिताः।

उक्तं च—

सच्छंददिट्ठीहिं वियप्पियाणि, तेसट्ठिजुत्ताणि सयाणि तिण्णि।
पाखंडिणं वाउलकारणाणि, अण्णाणिचित्ताणि हरंति ताणि।।८८९।।

पुनरप्यन्येषां एकान्तवादीनां कथनं क्रियते—

कालवाद है। **ईश्वरवाद**—आत्मा अज्ञानी है, असमर्थ है, कुछ करने में समर्थ नहीं है। उसका सुख-दुःख, स्वर्ग या नरक में जाना सब ईश्वर के आधीन है। ईश्वर ही सब सुख-दुःख या स्वर्ग-नरक देता है। यह मान्यता ईश्वरवाद है।

आत्मवाद—एक ही महान आत्मा है। वही पुरुष है, देव है, सर्वव्यापी है, सर्वांग से गुप्त है, चेतना सहित है, निर्गुण है, सर्वोत्कृष्ट है, ऐसा मानना आत्मवाद है।

नियतिवाद—जो, जब, जिसके द्वारा, जैसे, जिसका नियम से होने वाला है, वह उसी काल में उसी के द्वारा, उसी रूप से, नियम से, उसका होता है, ऐसा मानना नियतिवाद है।

अब **स्वभाववाद** कहा जाता है—

कांटे को तीक्ष्ण किनने बनाया ? मृग, पशु, पक्षी, नाना प्रकार के किनने बनाये ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं—स्वभाव से ही होता है। उसमें अन्य कोई कारण नहीं है, ऐसा मानना स्वभाववाद है।

इस विधि से तीन सौ तिरेसठ भेद मिथ्यात्व के कहे गये हैं। इस प्रकार स्वच्छंद दृष्टि वालों के द्वारा कल्पित तीन सौ तिरेसठ मतों के वचन जीवों में व्याकुलता पैदा करने में कारण हैं। मिथ्यात्व से ग्रस्त अज्ञानीजन उन वचनों को सुनकर मुग्ध हो जाते हैं।।८८९।।

पुनः अन्य भी एकान्तवादियों का कथन करते हैं—

आलसड्ढो णिरूच्छाहो, फलं किंचि ण भुंजदे।
थणक्खीरादिपाणं वा, पउरुसेण विणा ण हि।।८९०।।

एष पौरुषवादो भणितः।

दइवमेव परं मण्णे, धिप्पउरूसमणत्थयं।
एसो सालसमुत्तुंगो, कण्णो हण्णदि संगरे।।८९१।।

इत्थं दैववादः कथितोऽस्ति। पुनः संयोगवादिमिथ्यात्वं कथ्यते—

संजोगमेवेत्ति वदंति तण्णा, णेवेक्कचक्केण रहो पयादि।
अंधो य पंगू य वणं पविट्ठा, ते संपजुत्ता णयरं पविट्ठा।।८९२।।

लोकवादनाम मिथ्यात्वं कथ्यते—

सइउट्ठिया पसिद्धी, दुव्वारा मिलिदेहिं वि सुरेहिं।
मज्झिमपण्डव-खित्ता, माला पंचसु वि खित्तेव।।८९३।।

श्रीनेमिचन्द्राचार्येण एकान्तवादवचनानां मिथ्यात्वं कथ्यते—

परसमयाणं वयणं, मिच्छं खलु होदि सव्वहा वयणा।
जेणाणं पुण वयणं, सम्मं खु कहंचिवयणादो[1]।।८९५।।

जो आलस्य से भरपूर है, जिसे कुछ भी करने का उत्साह नहीं है, वह कुछ भी फल भोगने वाला नहीं है। बिना पौरुष के माता के स्तन से दूध भी नहीं पिया जा सकता है। अतः पौरुष से ही कार्य सिद्धि होती है, यह **पौरुषवाद** है।।८९०।।

इस तरह पौरुषवाद कहा गया है।

मैं दैव—भाग्य को सर्वोत्कृष्ट मानता हूँ। पौरुष निरर्थक है उसे धिक्कार हो। देखो, सालवृक्ष की तरह ऊँचा कर्ण महाभारत के युद्ध में मारा गया है।।८९१।।

यह **दैववाद** कहा गया है।

पुनः संयोगवादि मिथ्यात्व को कहते हैं—

दैव और पौरुष को जानने वाले उन दोनों के संयोग को मानते हैं। क्योंकि एक पहिये से रथ नहीं चलता। उदाहरण है—एक अंधा और एक लंगड़ा वन में फंस गये। अचानक दोनों का वहाँ मिलाप हुआ और अंधे के कंधे पर लंगड़ा पुरुष बैठ गया और इस तरह दोनों नगर में आ गये।।८९२।।

अब **लोकवाद** नाम के मिथ्यात्व को कहते हैं—

एक बार जो बात लोक में फैल जाती है, उसे सब देव भी मिलकर मिटा नहीं सकते। जैसे द्रौपदी ने अर्जुन के गले में वरमाला डाली थी किन्तु लोक में प्रसिद्ध हो गया कि पाँचों पाण्डवों के गले में माला डाली है अर्थात् लोकवाद भी मिथ्यावाद है।।८९३।।

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव ने एकान्तवाद वचनों को मिथ्यात्व कहा है—

परसमय—अन्य दर्शनों के वचन मिथ्या हैं, क्योंकि वे वस्तु को सर्वथा एकरूप ही मानते हैं। किन्तु जैनों के वचन सत्य हैं, क्योंकि वे वस्तु को कथंचित् रूप से कहते हैं।।८९५।।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड। २. आप्तमीमांसा, कारिका नं. १०८, दशम परिच्छेद।

परमतावलंबिनां वचनं मिथ्या खलु भवति सर्वथावचनात्। जैनधर्मावलम्बिनां पुनो वचनं सम्यक् कथ्यते खलु—निश्चयेन, कथंचिद्वचनात्। श्रीसमंतभद्रस्वामिनापि प्रोक्तं—

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेत् न मिथ्यैकान्तितास्ति नः।
निरपेक्षा नया मिथ्या, सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्[1]।।

नानाजीवानां भावापेक्षया इदं मिथ्यात्वमसंख्यातभेदयुतमपि भवति। अस्मिन्ननादिसंसारे मिथ्यादृष्टिजीवाः अनन्तानन्ताः सन्ति। तथाहि—निगोदेषु सर्वे जीवाः मिथ्यादृष्टय एव, एकेन्द्रियेषु पंचस्थावराः, विकलेन्द्रियाः असंज्ञिनस्तिर्यञ्चः नियमेन मिथ्यादृष्टयः।

देवेषु आ नवग्रैवेयकं, असंख्याताः देवा मिथ्यादृष्टयो भवन्ति।

नारकेष्वपि असंख्याता नारकाः मिथ्यादृष्टयः सन्ति।

तिर्यक्षु पंचेन्द्रियतिर्यञ्चश्च असंख्यातद्वीपपर्यन्ताः लवणसमुद्र-कालोदधि-स्वयंभूरमणसमुद्रस्थितानां जलचरजीवानां मध्ये बहवो मिथ्यादृष्टयोऽल्पाश्च सम्यग्दृष्टयो भवितुमर्हन्ति।

मनुष्येष्वपि म्लेच्छकाः भोगभूमिजाः कुभोगभूमिजाश्च कर्मभूमिजा अपि भेदयुताः सन्ति। केवलं सार्धद्वयद्वीपेषु द्वयसमुद्रेषु मनुष्याणामस्तित्वं मन्यतेऽतस्तेषामपि स्तोकाः सम्यग्दृष्टयो भवन्ति।

परमत का अवलंबन लेने वालों के वचन मिथ्या हैं, क्योंकि वे 'सर्वथा' वचन को कहने वाले हैं। पुनः जैनधर्म के मतावलम्बी के वचन खलु—निश्चय से सम्यक्—समीचीन कहलाते हैं क्योंकि 'कथंचित्' इस वचन से जाने जाते हैं।

श्री समन्तभद्रस्वामी ने भी कहा है—

मिथ्या का समूह मिथ्या है, हमारे यहाँ मिथ्या एकान्तता नहीं है। निरपेक्षनय मिथ्या हैं और सापेक्षनय वस्तुभूत—वास्तविक हैं, क्योंकि वे अर्थक्रियाकारी हैं।

नाना जीवों के भावों की अपेक्षा यह मिथ्यात्व असंख्यातभेदरूप भी है क्योंकि इस अनादिकालीन संसार में मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तानन्त हैं।

इसे ही स्पष्ट करते हैं—निगोद में सभी जीव मिथ्यादृष्टि ही हैं, एकेन्द्रिय जीवों में पाँच प्रकार के स्थावर जीव, विकलेन्द्रिय जीव—दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जीव, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच जीव, ये नियम से मिथ्यादृष्टि ही हैं।

देवों में नवग्रैवेयकपर्यंत असंख्यातों देव मिथ्यादृष्टि होते हैं।

नारकियों में भी असंख्यात नारकी मिथ्यादृष्टी हैं।

तिर्यंचों में पंचेन्द्रिय तिर्यंच और असंख्यात द्वीपपर्यंत तिर्यंच, लवणसमुद्र, कालोदधि और स्वयंभूरमण समुद्र में स्थित जलचर जीवों में बहुत से तिर्यंच मिथ्यादृष्टि हैं और अल्प—थोड़े से कुछ जीव सम्यग्दृष्टी भी हो सकते हैं।

मनुष्यों में भी म्लेच्छ खण्डों में जन्म लेने वाले—क्षेत्रज म्लेच्छ, भोगभूमियाँ, कुभोगभूमियाँ और कर्मभूमिज मनुष्य ऐसे चार भेदयुत मनुष्य होते हैं। केवल ढाईद्वीप और दो समुद्रों में ही मनुष्यों का अस्तित्व है। अतः उनमें भी अल्प ही सम्यग्दृष्टी होते हैं।

---

१. आप्तमीमांसा, कारिका नं. १०८, दशम परिच्छेदः।

एतेषु यावन्तो मिथ्यादृष्टयस्ते सर्वेऽपि मिथ्यात्वासंयमकषाययोगैः प्रत्ययैः कर्माणि बध्नन्ति।

यदि केवलं कषाययोगौ बंधहेतू स्यातां तर्हि सर्वेषु शास्त्रेषु कथिता इमे चत्वारः प्रत्ययाः न सिद्ध्यन्ति, किन्तु शास्त्रेषु सहस्राधिवाराणां प्रोक्तानामेतेषां अपलापो न कथमपि शक्यते।

अद्यत्वे केचिदाचार्याः कथ्यन्ति—

मिथ्यात्वप्रत्ययो न बंधहेतुः अकिञ्चित्करत्वात्।

ते केवलं इमां गाथां दर्शयन्ति—

पयदिट्ठिदिअणुभागपदेसभेदा दु चदुविधो बंधो।
जोगा पयडिपदेसा ट्ठिदिअणुभागा कसायदो होंति।।

एतया गाथया अनन्तानन्तेषु संसारिप्राणिषु मिथ्यात्वासंयमप्रत्ययनिमित्तेन ये कर्मबंधाः कथितास्तत्सर्वं न सिद्ध्यति अतएव पूर्वापराविरोधेनागमग्रन्थानामर्थो ज्ञातव्यः।

तत्रैव द्रव्यसंग्रहे इयमपि गाथा वर्तते—

मिच्छत्ताविरदिपमाद-जोगकोहादओ य विण्णेया।
पण पण पणदह तियचदु-कमसो भेदा दु पुव्वस्स।।३०।।

अतः पूर्वापरसंबंधो गृहीतव्य एवेति।

अधुना किंगतिसंयुक्तो बंधः ?

एतस्याः पृच्छायाश्चतुर्दशजीवसमासप्रतिबद्ध उत्तर उच्यते—

तद्यथा—मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं बध्नाति। नवरि उच्चगोत्रं नरकगतिं तिर्यग्गतिं च मुक्त्वा पंचदशप्रकृतीः

इस प्रकार इन गतियों में जितने भी मिथ्यादृष्टी जीव हैं, वे सभी मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन चार प्रत्ययों—कारणों से कर्मों का बंध करते हैं।

यदि केवल कषाय और योग ही बंध के हेतु होंगे, तब तो सभी शास्त्रों में कहे गये ये चारों प्रत्यय सिद्ध नहीं हो सकेंगे, किन्तु शास्त्रों में हजारों बार लिखित इन चार प्रत्ययों का अपलाप करना कथमपि—किसी भी प्रकार से शक्य नहीं है, ऐसा समझना।

वर्तमान में—आजकल कोई-कोई आचार्य कहते हैं—मिथ्यात्व प्रत्यय—कारण बंध का हेतु नहीं है, क्योंकि वह अकिंचित्कर है। ये आचार्य इस गाथा को दिखाते हैं—

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से बंध चार प्रकार का है। योग से प्रकृति और प्रदेश बंध होता है तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बंध होता है। यह द्रव्यसंग्रह की गाथा है। इस गाथा से अनन्तानन्त संसारी प्राणियों में जो मिथ्यात्व और असंयमरूप दो प्रत्ययों के निमित्त से बंध कहा गया है वह सभी सिद्ध नहीं होगा, इसलिए पूर्वापर अविरोधी आगम ग्रंथों का अर्थ जानना चाहिए।

उसी द्रव्यसंग्रह में यह भी गाथा है—

मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, योग और कषाय ये क्रमशः पूर्व के—भावास्रव के पाँच, पाँच, पंद्रह, तीन और चार भेद जानना चाहिए। इसलिए पूर्वापर संबंध अवश्य लगाना चाहिए।

अब किस गति से संयुक्त बंधक हैं ?

इस पृच्छा का चौदह गुणस्थानों से संबंधित उत्तर देते हैं। वह इस प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि जीव चारों गतियों से संयुक्त विवक्षित १६ प्रकृतियों को बांधता है। विशेष इतना है कि उच्चगोत्र को नरकगति, तिर्यंचगति को छोड़कर शेष दो गतियों से संयुक्त, विवक्षित सोलह में से एक कम

द्विगतिसंयुक्तं बध्नाति। यशःकीर्तिं नरकगतिं च मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति।

सासादनश्चतुर्दशप्रकृतीः नरकगतिं मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति। उच्चगोत्रं निरयगति-तिर्यग्गती मुक्त्वा द्विगतिसंयुक्तं बध्नाति। यशःकीर्तिं पुनः नरकगतिं मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिश्च षोडशप्रकृतीः नरकगतितिर्यग्गती मुक्त्वा द्विगतिसंयुक्तं बध्नाति।

संयतासंयतादारभ्य यावत् अपूर्वकरणकालस्य संख्यातबहुभागान् गत्वा स्थिता जीवाः अर्पितषोडशप्रकृतीः देवगतिसंयुक्तं बध्नाति। उपरिमाः अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

कतिगतीयाः स्वामिनो भवन्तीति चेत् ?

एतस्याः पृच्छायाः परिहार उच्यते—मिथ्यादृष्टिः चातुर्गतिकः स्वामी। सासादनः सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टयश्च चतुर्गतीनां स्वामिनः।

संयतासंयताः द्विगत्योः स्वामिनः। उपरिमगुणस्थानवर्तिनो मनुष्यगतेः स्वामिन एव।

बंधाध्वानं सूत्रसिद्धं।

अप्रथम-प्रथम-चरम-अचरमसमयबन्धव्युच्छेदपृच्छाविषयकप्ररूपणापि सूत्रसिद्धा चैव।

किं सादिकः ? किमनादिकः ? किं ध्रुवः ? किमध्रुवो बंधः ?

इति एतस्यां पृच्छायामुच्यते—

होने से १५ प्रकृतियों को बांधता है। यशकीर्ति प्रकृति और नरकगति को छोड़कर शेष तीन गति संयुक्त विवक्षित १५ प्रकृतियों को बांधता है।

सासादनगुणस्थानवर्ती जीव नरकगति को छोड़कर तीनगति से संयुक्त उच्चगोत्र और यशकीर्ति रहित, ५ ज्ञानावरण, ४ दर्शनावरण और ५ अन्तराय इन १४ प्रकृतियों को बांधता है।

नरकगति-तिर्यग्गति को छोड़कर द्विगतिसंयुक्त जीव उच्चगोत्र सहित १५ प्रकृतियों को बांधता है। यशकीर्ति को पुनः नरकगति छोड़कर तीन गति संयुक्त बांधता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव नरकगति, तिर्यंचगति को छोड़कर दो गतिसंयुक्त विवक्षित १६ प्रकृतियों को बांधते हैं।

संयतासंयत गुणस्थान से आरंभ कर अपूर्वकरण काल के संख्यातबहुभाग तक जाकर स्थित जीव विवक्षित १६ प्रकृतियों को देवगति संयुक्त बांधते हैं। इनसे ऊपर के जीव अगतिसंयुक्त इन १६ प्रकृतियों को बांधते हैं अर्थात् किसी गति से मिलकर नहीं बांधते हैं।

कितने गति वाले जीव उक्त १६ प्रकृतियों के स्वामी होते हैं ? इस पृच्छा का परिहार कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि चारों गतियों के जीव स्वामी हैं। सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि भी चारों गतियों के जीव स्वामी हैं। दो गतियों के संयतासंयत जीव स्वामी हैं। ऊपर के सभी गुणस्थानवर्ती जीव मनुष्यगति के ही स्वामी हैं।

बंधाध्वान सूत्र से सिद्ध है।

अप्रथम, प्रथम, चरम और अचरम समय में होने वाले बंधव्युच्छेद संबंधी पृच्छाविषयक प्ररूपणा भी सूत्र सिद्ध ही है।

अब क्या सादिक बंध होता है ? क्या अनादिक बंध होता है ? क्या ध्रुव बंध होता है या क्या अध्रुव बंध होता है ?

इन पृच्छाओं का उत्तर देते हैं—

पूर्वोक्तषोडशप्रकृतिभ्यः चतुर्दशप्रकृतीनां बंधो मिथ्यादृष्टेः सादिकः, उपशमश्रेण्यां बंधव्युच्छेदं कृत्वाधोऽवतीर्य बंधस्यादिं कृत्वा प्रतिपन्नमिथ्यात्वानां सादिकबंधोपलंभात्। तासां प्रकृतीनां अनादिको बंधः, उपशमश्रेणिमनारूढमिथ्यादृष्टिजीवानां बंधस्यादेरभावात्।

ध्रुवो बंधः, अभव्यमिथ्यादृष्टीनां बंधस्य व्युच्छेदाभावात्। अध्रुवः, उपशम-क्षपकश्रेण्योः चटनप्रायोग्य-मिथ्यादृष्टिबंधस्य ध्रुवत्वाभावात्।

यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोरपि एवमेव। नवरि अनयोरनादि-ध्रुव-बंधौ न स्तः, किंच — अयशःकीर्ति-नीचगोत्रयोः, प्रतिपक्षप्रकृत्योः संभवात्। शेषेषु सर्वगुणस्थानेषु चतुर्दशध्रुवप्रकृतयः सादि-अनादि-अध्रुवमिति त्रिभिर्विकल्पैर्बध्यन्ते। तेषां गुणस्थानानां मिथ्यात्वविरहितानां अनयोः द्वयोः प्रकृत्योः अयशःकीर्ति-नीचगोत्रयोः ध्रुवभंगो नास्ति, तेषां भव्यानां नियमेन बंधव्युच्छेदसंभवात्। यशःकीर्त्ति-उच्चगोत्रयोः पुनः बंधः सर्वगुणस्थानेषु सादिरध्रुवश्चैव।

इत्यमत्र त्रयोविंशतिप्रश्नानामुत्तराणि प्रायच्छत् आचार्यदेवः।

इतो विस्तरः — एतासां पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-यशःकीर्त्युच्चगोत्रपंचान्तरायाणां च बंधव्युच्छित्तिः सूक्ष्मसांपरायेऽन्तिमक्षणे भवति।

एतासां ज्ञानावरणदर्शनावरणानां अनुभागबंधकारणानि उच्यन्ते —

पूर्वोक्त सोलह प्रकृतियों में से चौदह प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि के सादिक बंध है, क्योंकि उपशमश्रेणी में बंधव्युच्छेद करके नीचे उतरकर बंध का प्रारंभ करके मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के सादिक बंध पाया जाता है।

इन प्रकृतियों का अनादिक बंध होता है, क्योंकि उपशमश्रेणी पर नहीं चढ़े हुए मिथ्यादृष्टि जीवों के बंध के आदि का अभाव है।

उन प्रकृतियों का ध्रुव बंध होता है, क्योंकि अभव्य मिथ्यादृष्टियों के इनके बंधव्युच्छेद का अभाव है।

इन प्रकृतियों का अध्रुव बंध होता है, क्योंकि उपशम और क्षपक श्रेणी पर चढ़ने योग्य मिथ्यादृष्टि जीवों का बंध ध्रुव नहीं होता।

यशकीर्ति और उच्चगोत्र प्रकृतियों का भी मिथ्यादृष्टि के इसी प्रकार ही बंध होता है, विशेष इतना है कि इन दोनों का उनके अनादि और ध्रुव बंध नहीं होता है क्योंकि इनकी प्रतिपक्षभूत अयशकीर्ति और नीचगोत्र का बंध संभव है।

शेष सर्वगुणस्थानों में चौदह ध्रुव प्रकृतियाँ, सादि, अनादि और अध्रुव इन तीन विकल्पों से बंधती हैं। वहाँ इन दो का ध्रुव बंध नहीं है, क्योंकि उन भव्य जीवों के मिथ्यात्वगुणस्थान से रहित शेष गुणस्थानों में नियम से इन दो — यशकीर्ति-उच्चगोत्र प्रकृतियों का बंधव्युच्छेद संभव है। परन्तु इन यशकीर्ति और उच्चगोत्र का बंध सर्व गुणस्थानों में सादि और अध्रुव ही है।

इस प्रकार यहाँ पर आचार्यदेव श्रीवीरसेनस्वामी ने तेईस प्रश्नों के उत्तर दिये हैं।

यहाँ विस्तार से कहते हैं —

इन पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तरायों की बन्धव्युच्छित्ति सूक्ष्मसाम्पराय के अंतिम क्षण में होती है।

अब यहाँ ज्ञानावरण और दर्शनावरण के अनुभागबंध के कारण कहते हैं —

पडिणीगमंतराए उवघादो तप्पदोसणिण्हवणे।
आवरणदुगं भूयो बंधदि अच्चासणाएवि[१]।।८००।।

अन्यत्रापि कथ्यते—

तत्प्रदोषनिन्हवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयो:[२]।।१०।।

सम्यग्ज्ञानस्य सम्यग्दर्शनस्य च सम्यग्ज्ञानदर्शनयुक्तस्य पुरुषस्य वा त्रयाणां मध्येऽन्यतमस्य केनचित् पुरुषेण प्रशंसा विहिता, तां प्रशंसामाकर्ण्य अन्य: कोऽपि पुमान् पैशुन्यदूषित: स्वयमपि ज्ञान-दर्शनयोस्तद्युक्तपुरुषस्य वा प्रशंसा न करोति तदन्तर्दुष्टत्वं प्रदोष उच्यते। यत् किमपि कारणं मनसि धृत्वा विद्यमानेऽपि ज्ञानादौ एतदहं न वेद्मि एतत्पुस्तकादिकमस्मत्पार्श्वे न विद्यते इत्यादि ज्ञानस्य यदपलपनं निह्नव उच्यते। आत्मसदभ्यस्तमपि ज्ञानं दातुं योग्यमपि दानयोग्यायापि पुंसे केनापि हेतुना यन्न दीयते तन्मात्सर्यमुच्यते। विद्यमानस्य प्रबंधेन प्रवर्तमानस्य मत्यादिज्ञानस्य विच्छेदविधानमन्तराय उच्यते। कायेन वचनेन च सतो ज्ञानस्य विनयप्रकाशनगुणकीर्तनादेरकरणमासादनमुच्यते। युक्तमपि ज्ञानं वर्तते तस्य

शास्त्र और शास्त्र के धारक आदि के विषय में अविनयरूप प्रवृत्ति करना, उनके प्रतिकूल होना। ज्ञान में विच्छेद करना अन्तराय है। मन से अथवा वचन से प्रशस्त ज्ञान में दूषण लगाना या पढ़ने वालों में छोटी-मोटी बाधा करना उपघात है। तत्त्वज्ञान के प्रति हर्ष प्रगट न करना अथवा मोक्ष के साधनभूत तत्त्वज्ञान का उपदेश होने पर किसी का मुख से कुछ न कहकर अन्तरंग में दुष्ट भाव होना प्रदोष है। किसी कारण से जानते हुए भी 'मैं नहीं जानता हूँ' ऐसा कहना, अथवा अपने अप्रसिद्ध गुरु का नाम छिपाकर प्रसिद्ध व्यक्ति को अपना गुरु बतलाना निन्हव है। काय और वचन के द्वारा सम्यग्ज्ञान की अनुमोदना न करना अथवा काय और वचन से दूसरे के द्वारा प्रकाशित ज्ञान का तिरस्कार करना आसादन है। इन छह कार्यों के करने पर जीव ज्ञानावरण और दर्शनावरण का बहुत बंध करता है—उनमें स्थिति अनुभाग अधिक बांधता है।।८००।।

अन्यत्र तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है—ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निन्हव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं।।१०।।

टीका-तत्त्वार्थवृत्ति में कहा है—सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की अथवा सम्यग्ज्ञान-दर्शन से सहित की अथवा इन तीनों के मध्य अन्य किसी की भी किसी पुरुष के द्वारा प्रशंसा की गई, उसको सुनकर अन्य कोई पुरुष जो पैशून्य परिणामों से दूषित हृदय वाला है, अथवा जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान से युक्त पुरुष की स्वयं प्रशंसा नहीं करता है, उसकी अन्तरंग दुष्टता को प्रदोष कहते हैं।

जिस किसी कारण को मन में धारण कर ज्ञानादि के होने पर भी अथवा स्वयं जानते हुए भी "मैं नहीं जानता" अपने पास ग्रंथ आदि के होने पर भी यह ग्रंथ मेरे पास नहीं है इत्यादिरूप से ज्ञान का अपलाप करना 'निन्हव' है। स्वयं ज्ञान का अभ्यास किया है, वह ज्ञान देने योग्य भी है तथापि ज्ञान दान के योग्य पात्र के होने पर भी किसी हेतु से जो नहीं दिया जाता है, वह 'मात्सर्य' है। वर्तमान में जो ज्ञान व ज्ञान के साधन विद्यमान हैं उनका तथा प्रवर्तमान मत्यादि ज्ञान के विच्छेद का विधान करना—विघ्न डालना 'अन्तराय' है। विद्यमान ज्ञान का काय और वचन से विनय न करना, उस ज्ञान का प्रकाशन, उसके गुणों का कीर्तन आदि नहीं करना 'आसादना' है। जो ज्ञान प्रशंसनीय है, उस प्रशंसनीय को भी यह अयुक्त है, अज्ञान है, ऐसा कहकर समीचीन

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड। २. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. ६, सूत्र १० टीकांशाश्च, पृ. ४६७।

युक्तस्य ज्ञानस्य अयुक्तमिदमज्ञानमिति दूषणप्रदानमुपघात उच्यते। सम्यग्ज्ञानविनाशाभिप्राय इत्यर्थः।

एते प्रदोषादयः ज्ञाने कृता अपि दर्शनावरणस्यापि हेतवो भवन्ति एकहेतु साध्यस्य कार्यस्य अनेकस्य कार्यस्य दर्शनात्। अथवा ये ज्ञानविषयाः प्रदोषादयस्ते ज्ञानावरणस्य कारणं ये तु दर्शनविषयाः प्रदोषादयस्ते तु दर्शनावरणहेतवो ज्ञातव्याः।

तथा ज्ञानावरणस्य कारणं—आचार्ये शत्रुत्वं, उपाध्याये प्रत्यनीकत्वं, अकालेऽध्ययनं, अरुचिपूर्वकं पठनं, पठतोऽप्यालस्यं, अनादरेण व्याख्यानश्रवणं, प्रथमानुयोगे वाच्यमानेऽपरानुग्योगवाचनं, तीर्थोपरोध इत्यर्थः, बहुश्रुतेषु गर्वविधानं, मिथ्योपदेशश्च, बहुश्रुतापमाननं, स्वपक्षपरिहरणं, परपक्षपरिग्रहः-एतद्द्वयं तार्किकदर्शनार्थं ख्यातिपूजालाभार्थं, असंबद्धप्रलापः उत्सूत्रवादः, कपटेन ज्ञानग्रहणं, शास्त्रविक्रयः, प्राणातिपातादयश्च ज्ञानावरणस्यास्रवाः।[१]

तथा दर्शनावरणस्यास्रवाः—देवगुर्वादिदर्शनमात्सर्यं, दर्शनान्तरायः, चक्षुरुत्पाटनं, इन्द्रियाभिमतित्वं, निजदृष्टेर्गौरवं, दीर्घनिद्रादिकं, निद्राआलस्यं, नास्तिकत्वप्रतिग्रहः, सम्यग्दृष्टेः सन्दूषणं, कुशास्त्रप्रशंसनं, यतिवर्गजुगुप्सादिकं, प्राणातिपातादयश्च दर्शनावरणस्यास्रवाः[२]।

अन्तरायस्य बंधकारणानि कथ्यन्ते—

पाणवधादीसु रदो जिणपूजामोक्खमग्गविग्घयरो।
अज्जेदि अंतरायं ण लहदि जं इच्छियं जेण[३]।।८१०।।

ज्ञान को दूषण लगाना उपघात है अर्थात् सम्यग्ज्ञान के विनाश का अभिप्राय होना उपघात है।

ये प्रदोष आदि ज्ञान में किये गये भी दर्शनावरण के भी हेतु हो जाते हैं। क्योंकि एक कारण से अनेक भी कार्य देखे जाते हैं। अथवा जो ज्ञानविषयक प्रदोष आदि हैं वे ज्ञानावरण के कारण हैं और जो दर्शनविषयक प्रदोष आदि हैं वे दर्शनावरण के हेतु हैं ऐसा जानना चाहिए।

आगे इसी टीका में ज्ञानावरण के और भी कारण दिखाते हैं—आचार्य के प्रति शत्रुभाव रखना, उपाध्याय के प्रतिकूल चलना, अकाल में अध्ययन करना, अरुचि से पढ़ना, पढ़ने में आलस करना, अनादर से व्याख्यान सुनना, जहाँ प्रथमानुयोग वाचना चाहिए वहाँ अन्य किसी अनुयोग को पढ़ना, तीर्थोपरोध—तीर्थ का विरोध करना, उसमें रुकावट डालना, बहुश्रुतों के सामने घमंड करना, मिथ्या उपदेश देना, बहुश्रुत—विशेष ज्ञानी का अपमान करना, स्वपक्ष को छोड़ देना, परपक्ष को ग्रहण करना ये दोनों तार्किक दर्शन के लिए एवं ख्याति, लाभ, पूजा आदि के लिए होते हैं। असंबद्ध प्रलाप करना, सूत्र के विरुद्ध बोलना, कपट से ज्ञान ग्रहण करना, शास्त्रों का विक्रय करना और प्राणातिपात—हिंसा, झूठ आदि ये सब ज्ञानावरण कर्म के आस्रव हैं।

अब दर्शनावरण के आस्रव कहते हैं—

देव-गुरु आदि के दर्शन में मात्सर्य करना, दर्शन में अन्तराय करना, किसी की चक्षु फोड़ देना, इंद्रियों का अभिमान करना, अपने नेत्रों का अहंकार करना, दीर्घ निद्रा आदि, अतिनिद्रा, आलस्य, नास्तिकभावना, सम्यग्दृष्टियों को दूषण लगाना, खोटे शास्त्रों की प्रशंसा करना, मुनियों के प्रति ग्लानि रखना, हिंसा, झूठ आदि क्रियाएं करना, ये सब दर्शनावरण के आस्रव हैं।

अन्तराय के बंध के कारण कहते हैं—

जो अपने द्वारा या दूसरों द्वारा किये गये हिंसादि में हर्ष मानते हैं। जिनपूजा में और मोक्षमार्ग में विघ्न

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. ६, सूत्र १० टीकांशाश्च, पृ. ४६९। २. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. ६, सूत्र १० टीकांशाश्च पृ. ४७०। ३. गोम्मटसार कर्मकांड।

अत्र जिनपूजासु विघ्नकरोऽन्तरायं बध्नाति, इति कथितमस्ति—

तज्जिनपूजायाः लक्षणं श्रावकाचारेषु विस्तरेण वर्तते। अभिषेकपुरःसरमेवजिनपूजनविधानमस्ति।

'कसायपाहुड़' महाग्रन्थराजेऽपि कथितमास्ते—

चउवीस वि तित्थयरा सावज्जा, छज्जीव विराहणहेउसावयधम्मोवएसकारित्तादो।

तं जहा—दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि चउव्विदो सावयधम्मो। एसो चउव्विहो वि छज्जीवविराहओ, पयणपायणग्गिसंधुक्खण-जालण-सूदि-सूदाणादि-वावारेहि जीवविराहणाए विणा दाणाणुववत्तीदो। तरुवर-छिंदण-छिंदावणिट्टपादण-पादावण-तद्दहण-दहावणादिवावारेण छज्जीवविराहणहेउणा विणा जिणभवण-करणकरावणण्णहाणुववत्तीदो। ण्हवणोवलेवण-संमज्जण-छुहावण-फुल्लारोहण-धूवदहणादिवावारेहि जीवबहाविणाभावीहि विणा पूजकरणाणुववत्तीदो च।

कथं सीलरक्खणं सावज्जं ? ण, सदारपीडाए विणा सीलपरिवालणाणुववत्तीदो।

कधमुववासो सावज्जो ? ण, सपोट्टत्थपाणिपीडाए विणा उववासाणुववत्तीदो। थावरजीवे मोत्तूण

डालते हैं, वे अन्तराय कर्म का बंध करते हैं पुनः इस अन्तराय के उदय से इच्छित वस्तु को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।।८१०।।

जिनपूजा में विघ्न करने वाला अन्तराय कर्म बांधता है, यहाँ ऐसा कहा है—

जिनपूजा का लक्षण श्रावकाचारों में विस्तार से कहा गया है। अभिषेकपूर्वक ही जिनपूजा का विधान है।

कषायपाहुड़ महाग्रंथराज में भी कहा है—

कोई शिष्य शंका करता है कि—

चौबीसों भी तीर्थंकर सावद्य—सदोष हैं, क्योंकि छहकाय के जीवों की विराधना के कारणभूत ऐसे श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले हैं। वह इस प्रकार है—दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावकों के धर्म हैं। ये चारों प्रकार का श्रावक धर्म छहकाय के जीवों की विराधना का कारण है। क्योंकि भोजन का पकाना, दूसरों से पकवाना, अग्नि का सुलगाना, अग्नि का जलाना, अग्नि का खूतना, अग्नि का खुतवाना आदि व्यापारों से होने वाली विराधना के बिना दान नहीं बन सकता है। उसी प्रकार वृक्ष का काटना, कटवाना, ईंट का गिराना, गिरवाना तथा उनको पकाना और पकवाना आदि छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत व्यापार के बिना जिनभवन का निर्माण करना, करवाना संभव नहीं है तथा अभिषेक करना, अवलेप करना, संमार्जन करना, चंदन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप जलाना आदि जीववध के अविनाभावी कार्यों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता है।

पुनः कोई पूछता है—

शील का रक्षण सावद्य कैसे है ?

पुनः शंकाकार ही कहता है—

ऐसा नहीं है क्योंकि अपनी स्त्री को पीड़ा दिये बिना शील का परिपालन नहीं हो सकता, इसलिए शील की रक्षा भी सावद्य—सदोष है। कोई कहता है—

उपवास सावद्य कैसे है ?

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि अपने पेट में स्थित प्राणियों को पीड़ा दिये बिना उपवास नहीं बन सकता,

तसजीवे चेव वा मारेहु त्ति सावियाणमुवदेसदाणदो वा ण जिणा णिरवज्जा।

एत्थ परिहारो उच्चदे। तं जहा—जयवि एवमुवदिसंति तित्थयरा तो वि ण तेसिं कम्मबंधो अत्थि, तत्थ मिच्छत्तासंजमकसायपच्चयाभावेण वेयणीयवज्जासेसकम्माणं बंधाभावादो[१]।

वसुनंदिश्रावकाचार-उमास्वामिश्रावकाचार-भावसंग्रहादिग्रन्थेष्वपि पंचामृताभिषेकपाठो वर्तते। श्रीमत्पूज्यपादस्वामिविरचितोऽपि पंचामृताभिषेकपाठो लभ्यते।

वर्तमानकाले ये मुनयः विद्वान्सो वा पंथव्यामोहेन एतादृशं जिनपूजाविधानं न मन्यन्ते, विरोधमपि कुर्वन्ति च। तैरपि दुराग्रहं त्यक्त्वा एतत् श्रद्धातव्यं।

अन्यत्रापि अन्तरायस्यास्रवकारणं कथितमस्ति—

विघ्नकरणमन्तरायस्य।।२७।।

दानादिविहननं विघ्नः। दानादीन्युक्तानि-दानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च। तेषां विहननं विघ्न इत्युच्यते। तद्विस्तरस्तु विव्रियते—ज्ञानप्रतिषेध-सत्कारोपघात-दानलाभ-भोगोपभोगवीर्यस्नानानुलेपनगंधमाल्याच्छादन-विभूषणशयनासनभक्ष्यभोज्यपेयलेह्यपरिभोगविघ्नकरण-विभवसमृद्धिविस्मय-द्रव्यापरित्याग-द्रव्यासंप्रयोग-

---

इसलिए उपवास भी सावद्य है।

अथवा 'स्थावर जीवों को छोड़कर केवल त्रस जीवों को मत मारो' श्रावकों को इस प्रकार का उपदेश देने से जिनेन्द्रदेव निर्दोष नहीं हो सकते हैं।

इन सब शंकाओं का समाधान आचार्यदेव देते हैं—

वह इस प्रकार है—यद्यपि तीर्थंकर भगवान पूर्वोक्त प्रकार से श्रावक धर्म का उपदेश देते हैं तो भी उनके कर्मबंध नहीं होता है, क्योंकि जिनेन्द्रदेव के तेरहवें गुणस्थान में कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष कर्मों का बंध नहीं होता है। अतः वे भगवान पूर्णतया निर्दोष ही हैं।

इसी प्रकार वसुनन्दिश्रावकाचार, उमास्वामीश्रावकाचार, भावसंग्रह आदि ग्रंथों में भी पंचामृत अभिषेक आदि के पाठ विद्यमान हैं। श्रीमान् पूज्यपाद स्वामी के द्वारा विरचित पंचामृत अभिषेक पाठ भी संस्कृत में उपलब्ध है।

वर्तमानकाल में जो मुनिगण या विद्वान पंथ के व्यामोह से इस प्रकार के जिनपूजा विधान को नहीं मानते हैं और विरोध करते हैं। उन्हें भी दुराग्रह को छोड़कर इन उपर्युक्त—कसायपाहुड़ जैसे महान ग्रंथ के प्रमाण का श्रद्धान करना चाहिए।

अन्य ग्रंथों में—तत्त्वार्थसूत्र एवं उनके टीका ग्रंथों में कहा है—दूसरों के दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य में विघ्न डालने से अन्तराय कर्म का आस्रव होता है।।२७।।

दानादि देने में रुकावट डालना विघ्न है। दानादि का लक्षण पहले कहा गया है। दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य। किसी के दान आदि में विघ्न करना—विघात करना 'विघ्न' कहलाता है। इसी का विस्तार करते हैं—

ज्ञान का प्रतिषेध, सत्कारोपघात—किसी के सत्कार में विघ्न डालना, दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, स्थान, अनुलेपन, गंध, माल्य, आच्छादन, विभूषण, शयन, आसन, भक्ष्य, भोज्य, पेय, लेह्य और परिभोग

---

१. कसायपाहुड़, पु. १, पृ. १०१।

समर्थनाप्रमादावर्ण-देवतानिवेद्यानिवेद्यग्रहण-निरवद्योपकरणपरित्याग-परवीर्यापहरण-धर्मव्यवच्छेदनकरण-कुशलाचरण-तपस्विगुरुचैत्यपूजाव्याघात-प्रव्रजितकृपणदीनानाथ-वस्त्रपात्रप्रतिश्रयप्रतिषेधक्रिया-परनिरोधबन्धन-गुह्यांगछेदन-कर्णनासिकौष्ठकर्तन-प्राणिबधादिः।

इमानि चतुर्दशकर्मणां बंधकारणानि मिथ्यादृष्ट्यादित्रिगुणस्थानान्तेषु मिथ्यात्वेन सहितानि सन्ति। अग्रेतन-गुणस्थानेषु मिथ्यात्वमन्तरेण क्रमशः हीयमानानि एतानि कारणानि भवन्ति।

सप्तमाष्टमनवमदशमगुणस्थानेषु उपर्युक्तज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायबंधकारणानि बुद्धिपूर्वकं न क्रियन्ते।

अतएव मिथ्यादृष्टय एतेषां कर्मणामुत्कृष्टस्थितिं बध्नन्ति। अग्रेतना गुणस्थानवर्तिनो मध्यमां स्थितिं बध्नन्ति। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्तिनश्च जघन्यां स्थितिं कुर्वन्ति।

उच्चगोत्रस्य भण्यते—

अरहंतादिसु भत्तो सुत्तरुइ पढणुमाणगुणपेही।
बंधदि उच्चं गोदं विवरीदो बंधदे इदरं[1]।।८०९।।

अन्यत्रापि—''तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेको चोत्तरस्य''।।२६।।

नीचगोत्रस्यास्रवस्य विपर्ययः—आत्मनिंदा परप्रशंसारूपः सद्गुणोद्भावनासद्गुणोच्छादनरूपश्च

आदि में विघ्न डालना, किसी के विभव, समृद्धि में विस्मय करना, द्रव्य का त्याग नहीं करना, द्रव्य के उपयोग के समर्थन में प्रमाद करना, देवता के लिए निवेदन किये गये संकल्पित या असंकल्पित द्रव्य को ग्रहण करना, देवता का अवर्णवाद करना, निर्दोष उपकरणों का त्याग, दूसरों की शक्ति का अपहरण, धर्म का व्यवच्छेद करना, कुशल चारित्र वाले तपस्वी, गुरु तथा चैत्य की पूजा में व्याघात करना, दीक्षित, कृपण, दीन, अनाथ आदि को दिये जाने वाले वस्त्र, पात्र, आश्रय आदि में विघ्न करना। परनिरोध, बंधन, गुह्य अंग छेदन, कान, नाक, ओंठ आदि काट देना। प्राणिवध आदि क्रियाएं अन्तराय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

ये चौदह कर्मों के बंध के कारण हैं, ये मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानपर्यंत मिथ्यात्व से सहित हैं। आगे के गुणस्थानों में मिथ्यात्व के बिना क्रम से हीन होते हुए ये बंध के कारण हैं।

सातवें, आठवें, नवमें और दशवें गुणस्थानों में उपर्युक्त ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय के बंध के कारण बुद्धिपूर्वक नहीं किये जाते हैं।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीव इन कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बांधते हैं। आगे के गुणस्थानवर्ती जीव मध्यम स्थिति को बांधते हैं। सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानवर्ती महामुनि जघन्य स्थिति को बांधते हैं।

अब उच्चगोत्र के बंध के कारण कहते हैं—

जो अरिहंत आदि में भक्ति रखता है, गणधर आदि के द्वारा कहे शास्त्रों में श्रद्धावान, उनके अध्ययन के लिए विचार विनय आदि गुणों में अनुरागी है, वह उच्चगोत्र का बंध करता है। उससे विपरीत क्रियाओं से नीच गोत्र का बंध करता है।।८०९।।

तत्त्वार्थसूत्र महाग्रंथ में इनके आस्रव कहते हैं—

नीचगोत्र के आस्रव के विपरीत क्रियाएं और नम्र वृत्ति तथा अनुत्सेक ये उच्चगोत्र के आस्रव हैं।।२६।।

उनका नीचगोत्र के आस्रव का विपर्यय—आत्मनिंदा, परप्रशंसा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्चगोत्र के आस्रव हैं।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ८०९।

तद्विपर्ययः। गुणोत्कृष्टेषु विनयेन प्रह्वीभावः नीचैर्वृत्तिरुच्यते। ज्ञानतपःप्रभृतिगुणैर्यदुत्कृष्टोऽपि सन् ज्ञानतपः-प्रभृतिभिर्मदमहंकारं यन्न करोति सोऽनुत्सेक उच्यते। एतानि षट्कार्याणि उत्तरस्य नीचैर्गोत्रादपरस्य उच्चगोत्रस्यास्रवा भवन्ति। अन्यच्च—परेषामनपमाननं, अनुत्प्रहसनं, अपरीवादनं, गुरूणामपरिभवनमनुद्धट्टनं गुणस्थापनं, अभेदविधानं, स्थानार्पणं सन्माननं मृदुभाषणं चाटुभाषणञ्चेत्यादयः उच्चैर्गोत्रस्यास्रवाः भवन्ति[१]।

उच्चैर्गोत्रस्य यशःकीर्त्तेश्च कारणानि शुभान्येव तथापि प्रथमादिगुणस्थानेषु मिथ्यात्वनिमित्तेन बंधकारणानि भवन्ति।

षट्खण्डागमस्य महाबंधनाम्नि षष्ठखण्डे प्रत्ययानां कथनं वर्तते—

''पच्चयपरूवणादाए पंचणा. छदंसणा. असादा. अट्ठक. पुरिस. हस्स-रदि-अरदि-सोग-भयदुगुं.-देवाउ.-देवगदि.-पंचिंदि.-वेउव्वि.-तेजा.-क.-समचदु.-वेउव्विय अंगो.-पसत्थापसत्थवण्ण. ४-देवाणुपुव्वि. अगु.-४ पसत्थवि. तस ४-थिराथिर-सुभासुभ-सुभग-सुस्सर-आदे.-जस.-अजस.-णिमि.-उच्चागो. पंचंत. ५ एत्तो एक्केक्कस्स पगदीओ मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं।

सादावे. मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं कसायपच्चयं जोगपच्चयं। मिच्छ. णवुस. णिरयाउग. चदुजादि-हुंड.-असंप.-णिरयाणु.-आदाव-थावरादि.-४ मिच्छत्तपच्चयं। थीणगिद्धि.३-अट्ठकसा.-इत्थि. तिरिक्खा. मणुसायु.-तिरिक्ख-मणुसग.-ओरालिय.-चदुसंठा.-ओरालि.-अंगो.-पंचसंघ.-दो आणु.-उज्जो. अप्पसत्थ.-

---

उत्कृष्टगुण वालों में विनयपूर्वक झुकना—नम्र होना 'नीचैर्वृत्ति' है। ज्ञान, तप आदि गुणों में उत्कृष्ट होकर भी ज्ञान, तप आदि का जो मद—अहंकार नहीं करता है, वह अनुत्सेक गुण सहित है। ये छह कार्य उत्तर—नीचगोत्र से भिन्न उच्चगोत्र के आस्रव के कारण हैं।

अन्य और भी कारण हैं जैसे कि दूसरों का अपमान नहीं करना, दूसरों की हंसी नहीं करना, दूसरों का अपवाद नहीं करना, गुरुओं का अपमान, भर्त्सना, उनसे असभ्य जल्पन नहीं करना, गुरुओं के गुणों का ख्यापन करना, उनमें अभेद का विधान करना, गुरुजनों को स्थान देना, उनका सम्मान करना, उनके आने पर खड़े होना, मृदु बोलना और अनुकूल तथा प्रिय बोलना आदि क्रियाओं से उच्च गोत्र के आस्रव होते हैं।

यद्यपि उच्चगोत्र और यशकीर्ति के आस्रव के कारण शुभ ही हैं, फिर भी प्रथम—मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों में मिथ्यात्व के निमित्त से बंध के कारण हैं अर्थात् यहाँ यह बात ध्यान देना है कि जो आस्रव के कारण हैं वे ही बंध के कारण हैं। क्योंकि कर्मों का आस्रव होकर ही उन्हीं कर्मों का बंध हो जाता है।

षट्खण्डागम के महाबंध नामक छठे खण्ड में प्रत्ययों का कथन आया है—

प्रत्यय प्ररूपणा की अपेक्षा पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, असातावेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियिक अंगोपांग, प्रशस्त व अप्रशस्त वर्णादि ४, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु ४, प्रशस्तविहायोगति, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, निर्माण, उच्च गोत्र और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियों में से प्रत्येक प्रकृति का बंध मिथ्यात्वनिमित्तक, असंयमनिमित्तक और कषायनिमित्तक है। पुनः सातावेदनीय का बंध मिथ्यात्वप्रत्यय, असंयम प्रत्यय, कषाय प्रत्यय और योग प्रत्यय है अर्थात् इन चारों निमित्तक है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, चार जाति, हुण्डकसंस्थान, असम्प्राप्तसृपाटिकासंहनन, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप और स्थावरादि ४ का बंध

---

१. तत्त्वार्थवृत्तिः अ. ६, सूत्र २६।

दुब्भग-दुस्सर-अणादे.-णीचा.-मिच्छत्तपच्चयं असंजमपच्चयं। आहारदुगं संजमपच्चयं। तित्थयरं सम्मत्तपच्चयं[१]।

अत्रायं विशेषः—मिथ्यात्वासंयमकषाययोगानामतिरिक्त-संयमसम्यक्त्वप्रत्ययौ अपि कथितौ स्तः। अन्यत्र ग्रन्थेऽपि भणितं—

दंसणणाणचरित्ताणि मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि।
साधुहिं इदं भणिदं तेहिं दु बंध मोक्खो वा[२]।।१६४।।

अन्यच्च— सरागसंयमश्चैव सम्यक्त्वं देशसंयमः।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्त्रवहेतवः[३]।।४३।।

तात्पर्यमेतत्—मिथ्यात्व निमित्तेन बंधकारणानि ज्ञात्वा मिथ्यात्वं विहाय सम्यक्त्वमाहात्म्येन बंधं क्रमशः तनूकुर्वाणैः क्षपकश्रेण्यामारुह्य बंधविनाशो विधातव्यः। यावन्न भवेदीदृशी स्थितिः तावद् रत्नत्रयाराधनाभिः विशेषेण च ज्ञानाराधनया कर्मबंधः कृशीकरणीयः।

मिथ्यात्वनिमित्तक होता है। स्त्यानगृद्धि आदि तीन, आठ कषाय, स्त्री वेद, तिर्यंचायु, मनुष्यायु, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, औदारिक शरीर, चार संस्थान, औदारिक अङ्गोपाङ्ग, पाँच संहनन, दो आनुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्र का बंध मिथ्यात्वनिमित्तक और असंयमनिमित्तक होता है। आहारकद्विक का बंध संयमनिमित्तिक होता है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यक्त्वनिमित्तक होता है। इतनी विशेषता है कि द्वादशांग से संबंधित इन सूत्रों में मिथ्यात्व-असंयम-कषाय और योग के अतिरिक्त संयम और सम्यक्त्व को भी बंध प्रत्ययों में सम्मिलित किया है। इसीलिए श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने पञ्चास्तिकाय ग्रंथ में कहा है—

साधु पुरुषों के द्वारा दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग सेवने योग्य हैं, किन्तु उनसे बंध भी होता है और मोक्ष भी होता है अर्थात् यद्यपि सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग हैं ऐसा सभी आचार्यों ने कहा है तथापि वे बंध के हेतु (प्रत्यय) भी हैं और मोक्ष के हेतु भी हैं।

भावार्थ— यदि कोई ऐसी आशंका करे कि एक ही कारण से दो विपरीत कार्य कैसे हो सकते हैं तो आचार्यों ने दीपक का दृष्टान्त देते हुए कहा है कि इसमें सर्वथा कोई विरोध नहीं है जैसे एक ही दीपक प्रकाश का भी कारण है और धूमरूप अंधकार का भी कारण है उसी प्रकार सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के द्वारा कर्म निर्जरा भी होती है और तीर्थंकर प्रकृति व आहारकद्विक का बंध भी होता है, किन्तु यह पुण्यबंध मोक्ष का ही कारण है न कि संसार का। जैसे व्यापारी अपने व्यापार के विज्ञापन आदि में व्यय करता है, किन्तु वह व्यय आय का ही कारण है हानि का कारण नहीं है।

समयसार के टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्य ने भी ''तत्त्वार्थसार'' ग्रंथ के चतुर्थ अधिकार में सम्यग्दर्शन को देवायु के बंध का कारण कहा है—

सरागसंयम, सम्यक्त्व और देशसंयम ये देवायु के आस्त्रव में कारण हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि मिथ्यात्व के निमित्त से बंध के कारणों को जान करके मिथ्यात्व को छोड़कर सम्यक्त्व के माहात्म्य से बंध को क्रमशः घटाते हुए क्षपकश्रेणी में आरोहण करके बंध का विनाश करना चाहिए। जब तक ऐसी अवस्था नहीं प्राप्त होती तब तक रत्नत्रय की आराधना से उसमें भी विशेष रीति से सम्यग्ज्ञान की आराधना से कर्मबंध को कृश करना चाहिए।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड, पृ. ७४६ (आचार्य शिवसागर ग्रंथमाला प्रकाशित)। २. पंचास्तिकाय पृ. ३८८। ३. तत्त्वार्थसार अ. ४।

एवं चतुर्थस्थले ज्ञानावरणपंचकादिषोडशप्रकृतीनां बंधव्युच्छित्यादि स्वामिकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना निद्रानिद्रादिपंचविंशतिप्रकृतीनां बंधकानां प्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चरसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।७।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **पूर्वं पृच्छासूत्रं देशामर्शकं च। प्रथमसूत्रेण किं मिथ्यादृष्टिर्बंधकः ? किं सासादनसम्यग्दृष्टिर्बंधकः ? किं सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्बंधकः ? इत्यादिना अयोगिजिन-सिद्धपर्यंतं च ज्ञातव्यं। पुनश्च एतासां पंचविंशतिप्रकृतीनां बंधः किं पूर्वं व्युच्छिद्यते ? किमुदयः ? किं द्वावपि समं व्युच्छिद्येते ?**

एताः प्रकृतयः किं स्वोदयेन बध्यन्ते ? किं परोदयेन बध्यन्ते ? किं स्वोदय-परोदयेण ? किं सान्तरं बध्यन्ते ? किं निरन्तरं बध्यन्ते ? किं सान्तर-निरन्तरं बध्यन्ते ? किं प्रत्ययैः बध्यन्ते ? किं प्रत्ययैर्विना बध्यन्ते ? किं गतिसंयुक्तं बध्यन्ते ? किमगतिसंयुक्तं बध्यन्ते ? कतिगतिका एतासां स्वामिनो भवन्ति ?

इस प्रकार चतुर्थस्थल में ज्ञानावरण पाँच आदि सोलह प्रकृतियों की बंधव्युच्छित्ति आदि के स्वामी के कथनरूप से दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब निद्रानिद्रादि पच्चीस प्रकृतियों के बंधकर्ताओं का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।७।।

मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये दोनों गुणस्थानवर्ती बंधक हैं, शेष गुणस्थान वाले अबंधक हैं।।८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पूर्व का — सातवाँ सूत्र पृच्छासूत्र है और यह देशामर्शक है।

यहाँ प्रथम सूत्र के कथन से क्या मिथ्यादृष्टि बंधक हैं ? क्या सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं ? क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंधक हैं ? इत्यादिरूप से अयोगिजिन और सिद्ध भगवान पर्यंत पृच्छा जाननी चाहिए।

पुनः इन पच्चीस प्रकृतियों का बंध क्या पहले व्युच्छिन्न होता है, या उदय पहले व्युच्छिन्न होता है ? क्या दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं ? ये प्रकृतियाँ अपने उदय से बंधती हैं ? क्या परोदय से बंधती हैं ? क्या स्वोदय-परोदय दोनों से बंधती हैं ? क्या सान्तर बंधती हैं ? क्या निरंतर बंधती हैं ? या क्या सान्तर-निरन्तर बंधती हैं ? क्या प्रत्यय से बंधती हैं ? क्या बिना निमित्तक बंधती हैं ? क्या गतिसंयुक्त बंधती हैं ? या क्या अगतिसंयुक्त बंधती हैं ? किन-किन गति वाले इन प्रकृतियों के स्वामी होते हैं ? किन गति वाले इनके स्वामी

कतिगतिका न भवन्ति ?

किं वा बन्धाध्वानं ? किं चरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते ? किं प्रथमसमये ? किमप्रथम-अचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते ?

किमेतासां सादिको बंधः ? किमनादिकः ? किं ध्रुवः ? किमध्रुवो बंधः ? इत्येताः पृच्छाः अत्र कर्तव्यास्त्रयोविंशतयः।

एतासां त्रयोविंशतिपृच्छाणां उत्तरप्ररूपणाः क्रियन्ते—

द्वितीयं सूत्रमपि देशामर्शकमस्ति, स्वामित्वस्याध्वानस्य च प्ररूपणद्वारेण पृच्छासूत्रोद्दिष्टसर्वार्थप्ररूपणं करोति। अतो बंधस्वामित्वं अध्वानं च सूत्रादेव ज्ञायते इति तेषां अर्थो नोच्यते।

किं एतासां बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ? किं वा उदयः पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

एतस्यार्थ उच्यते—स्त्यानगृद्धित्रिकस्य पूर्वं बन्धो व्युच्छिन्नः, पश्चादुदयस्य व्युच्छेदः, किंच—सासादनसम्यग्दृष्टेश्चरमसमये बन्धे विनष्टे सति पश्चादुपरि गत्वा प्रमत्तसंयतस्य उदयस्य व्युच्छेदोपलंभात्। अनन्तानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं नश्यतः, सासादनसम्यग्दृष्टिचरमसमये एतयोर्बन्धोदययोर्युगपत् व्युच्छेददर्शनात्। स्त्रीवेदस्य पूर्वं बन्धः, पश्चात् उदयो व्युच्छिन्नः, किंच—सासादने स्त्रीवेदस्य बंधे व्युच्छिन्ने पश्चादुपरि गत्वानिवृत्तिकरणगुणस्थाने उदयव्युच्छेदो भवति।

नहीं होते हैं ?

बंधाध्वान कितना है ? क्या चरम समय में बंधव्युच्छिन्न होता है ? क्या प्रथम समय में बंध छूटता है ? या क्या अप्रथम-अचरम समय में बंधव्युच्छिन्न होता है ? क्या इन प्रकृतियों का सादिक बंध है ? क्या अनादिक बंध है ? क्या ध्रुव बंध है ? या क्या अध्रुव बंध है ? इस प्रकार यहाँ तेईस पृच्छाएं करना चाहिए।

अब यहाँ तेईस प्रश्नों की उत्तर की प्ररूपणा करते हैं—

यहाँ प्रश्नोत्तर की अपेक्षा दूसरा सूत्र एवं नं. की अपेक्षा यह आठवाँ उत्तर देने वाला सूत्र भी देशामर्शक है क्योंकि बंध के स्वामित्व और अध्वान की प्ररूपणा द्वारा वह पृच्छासूत्र में कथित सभी अर्थों का निरूपण करता है। बंधस्वामित्व और अध्वान चूँकि सूत्र से ही जाना जाता है अतः इन दोनों का अर्थ यहाँ नहीं कहा जाता है।

क्या इन पच्चीस प्रकृतियों का बंध पहले व्युच्छिन्न होता है, या उदय पहले व्युच्छिन्न होता है ? इन दो प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि तीन प्रकृतियों का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है, तत्पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टि के चरम समय में बंध के नष्ट हो जाने पर पश्चात् ऊपर जाकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। अनंतानुबंधी चतुष्क के बंध और उदय एक साथ व्युच्छेद को प्राप्त होते हैं, क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टि के चरम समय में इन चारों प्रकृतियों की बंध और उदय की व्युच्छित्ति एक साथ देखी जाती है।

स्त्रीवेद का पहले बंध छूटता है पश्चात् उदय की व्युच्छित्ति होती है क्योंकि सासादनगुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति हो जाने पर पश्चात् ऊपर जाकर अनिवृत्तिकरण नाम के नवमें गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद होता है।

भावार्थ—यहाँ स्त्रीवेद से भावस्त्रीवेद लेना है क्योंकि द्रव्य से स्त्रीवेदी पाँचवें गुणस्थान तक आर्यिका के वेष में रहती हैं। भाव से स्त्रीवेदी और द्रव्य से पुरुषवेदी ही मुनि बनकर छठे, सातवें, आठवें, नवमें गुणस्थानों को प्राप्त करते हैं। षट्खण्डागम ग्रंथ में एवं धवलाटीका में सर्वत्र स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के कथन में भाववेद ही समझना है।

एवं तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-तिर्यगायु-रुद्योत-नीचगोत्राणां सासादने बंधव्युच्छेदे जाते पश्चादुपरि गत्वा संयतासंयतगुणस्थाने उदयव्युच्छेदात्, तथा तिर्यग्गत्यानुपूर्व्याः असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदोपलंभात्।

एवं मध्यमचतु:संस्थानानां सासादने बंधे रुद्धे सति उपरि गत्वा सयोगकेवलिनि उदयव्युच्छेदात्।

एवं मध्यमचतु:संहनननानां सासादने बंधव्युच्छिन्ने सति उपरि गत्वाप्रमत्ताद्युपशान्तकषायेषु क्रमेण द्वयोर्द्वयोरुदयक्षयदर्शनात्। अप्रशस्तविहायोगतेः सासादने बंधे व्युच्छिन्ने सति उपरि सयोगिकेवलिनि उदयव्युच्छेदात्। एवं दुर्भगानादेययोः वक्तव्यं, सासादने बंधे नष्टे उपरि असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदात्। एवं दु:स्वरस्यापि वक्तव्यं, सासादने बंधे विनष्टे सयोगिकेवलिनि उदयव्युच्छेदात्।

अधुना किं स्वोदयेन ? किं परोदयेन ? किमुभयेन बध्यन्ते ? इति पृच्छायां उत्तरः कथ्यते—

स्त्यानगृद्ध्यादिपंचविंशतिप्रकृतयो मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः स्वदयेनापि परोदयेनापि बध्यन्ते विरोधाभावात्।

किं सान्तरं ? किं निरन्तरं ? किं सान्तरनिरंतरं बध्यन्ते पूर्वोक्ताः प्रकृतयः ? इति पृच्छायामुत्तर उच्यते—

स्त्यानगृद्धित्रिकमनन्तानुबंधिचतुष्कं च निरन्तरं बध्यते, ध्रुवबन्धित्वात्। स्त्रीवेदः प्रथमद्वितीयगुणस्थान-वर्तिभ्यां सान्तरं बध्यते, बंधकाले क्षीणे नियमेन प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधसंभवात्। तिर्यगायुः आभ्यां गुणस्थानिभ्यां

तिर्यग्गति, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, तिर्यंचायु, उद्योत और नीचगोत्र इन पाँचों की सासादन में बंध व्युच्छित्ति हो जाती है पश्चात् ऊपर जाकर संयतासंयत गुणस्थान में इनका उदय व्युच्छेद होता है तथा तिर्यग्गत्यानुपूर्वी का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय व्युच्छेद हो जाता है।

इसी प्रकार मध्यम चार संस्थानों की सासादन में बंधव्युच्छित्ति हो जाने पर ऊपर जाकर सयोगकेवली अर्हंत भगवान के उदय व्युच्छेद होता है।

इसी प्रकार मध्यम चार संहननों की सासादन में बंधव्युच्छित्ति हो जाने के बाद ऊपर जाकर अप्रमत्त से लेकर उपशांतकषाय गुणस्थानों में क्रम से दो-दो संहननों का उदय-क्षय देखा जाता है। अप्रशस्तविहायोगति का भी सासादन में बंधव्युच्छिन्न हो जाने पर ऊपर जाकर सयोगकेवली गुणस्थान में उदयव्युच्छेद देखा जाता है इसी प्रकार दुर्भग और अनादेय के विषय में कहना चाहिए क्योंकि सासादन में बंध के रुक जाने पर असंयत सम्यग्दृष्टि में उदय व्युच्छेद देखा जाता है। ऐसे ही दु:स्वर का भी सासादन में बंध रुक जाने पर सयोगकेवली में उदयव्युच्छेद होता है।

अब पुनः तीन प्रश्न होते हैं—

क्या स्व—अपने उदय से क्या पर के उदय से या क्या स्व-पर के उदय से पूर्वोक्त प्रकृतियाँ बंधती हैं ?

इन तीनों पृच्छाओं का उत्तर देते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि पच्चीस प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में स्वोदय से भी और परोदय से भी बंधती हैं, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है।

पुनः तीन प्रश्न होते हैं—

क्या ये प्रकृतियाँ सान्तर बंधती हैं ? क्या निरन्तर बंधती हैं ? या क्या सान्तर-निरन्तर बंधती हैं ?

इन पृच्छाओं का उत्तर देते हैं—

स्त्यानगृद्धि आदि तीन, अनंतानुबंधीचतुष्क ये सात प्रकृतियाँ निरन्तर बंधती हैं, क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं।

स्त्रीवेद प्रकृति, प्रथम और द्वितीय गुणस्थानवर्ती जीवों के द्वारा सान्तर बंधती हैं, क्योंकि बंधकाल के क्षीण हो जाने पर नियम से प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध संभव है। तिर्यंचायु को मिथ्यादृष्टि और सासादन-

निरन्तरं बध्यते, कालक्षयेण बन्धस्य रूद्धाभावात्। तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-प्रकृती सान्तर-निरन्तरं बध्येते।

कश्चिदाह — भवतु नाम सान्तरबंधः प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधोपलंभात्, न निरन्तरबंधः, तस्य कारणानि नोपलभ्यन्ते ?

आचार्येणोच्यते — नैष दोषः, तेजस्कायिकवायुकायिकमिथ्यादृष्टीनां सप्तमपृथिवीनारकाणां मिथ्यादृष्टीनां च भवप्रतिबद्धसंक्लेशेण निरन्तरबंधोपलंभात्।

पुनः सासादनाः तिर्यग्गति-गत्यानुपूर्विप्रकृत्योः कथं निरन्तरबंधकाः सन्ति ?

नैतदाशंकनीयं, सप्तमपृथिव्यां सासादनानां तिर्यग्गतिं मुक्त्वान्यगतीनां बंधाभावात्।

चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां स्त्रीवेदवद्भंगः, सान्तरबंधित्वं प्रति भेदाभावात्। नीचगोत्रस्य तिर्यग्गतिवद्भंगः, तेजस्कायिक-वायुकायिकेषु सप्तमपृथिवी-नारकेषु च नीचगोत्रस्य निरन्तरं बंधोपलंभात्।

किं प्रत्ययैर्बध्यन्ते ? किं तैर्विना ? एतस्यार्थ उच्यते —

मिथ्यादृष्टिर्जीवो मिथ्यात्वासंयमकषाययोगसंज्ञितचतुर्भिर्मूलप्रत्ययैः पञ्चपंचाशदुत्तरप्रत्ययैश्च एकसमय-संभवि-दश-अष्टादशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्च एताः प्रकृतीः बध्नाति।

सम्यग्दृष्टि निरंतर बांधते हैं, क्योंकि काल के क्षय से बंध के रुकने का अभाव है।

तिर्यग्गति और तिर्यग्गत्यानुपूर्वी को सान्तर-निरन्तर बांधते हैं। यहाँ कोई प्रश्न करता है —

प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के बंध की उपलब्धि होने से सान्तर बंध भले ही हो, किन्तु निरन्तर बंध नहीं हो सकता है, क्योंकि उसके कारणों का अभाव है ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में तथा सप्तमपृथ्वी के मिथ्यादृष्टि नारकी जीवों के भव से संबंधित संक्लेश के कारण उक्त दोनों प्रकृतियों का बंध पाया जाता है।

पुनः प्रश्न होता है —

सासादनसम्यग्दृष्टि इन तिर्यग्गति-गत्यानुपूर्वी के निरन्तर बंधक कैसे हैं ?

आचार्य कहते हैं कि ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि सातवीं पृथ्वी में सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों के भी तिर्यग्गति को छोड़कर अन्य तीनों गतियों के बंध का ही अभाव है।

चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय इन प्रकृतियों का स्त्रीवेद के समान भंग है। क्योंकि सांतर बंधी के प्रति भेद का अभाव है।

नीचगोत्र का तिर्यंचगति के समान भंग है क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में तथा सातवें नरक के नारकी जीवों में नीचगोत्र का निरन्तर बंध पाया जाता है।

पुनः दो प्रश्न होते हैं —

क्या ये पूर्वोक्त प्रकृतियाँ प्रत्यय — निमित्त से बंधती हैं ? या बिना निमित्त से ?

आचार्यदेव इनका उत्तर देते हैं —

मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन नाम वाले चार मूल प्रत्यय — मूल कारणों से और पचपन उत्तर प्रत्ययों से एक समय में संभवी दश और अट्ठारह, जघन्य-उत्कृष्ट प्रत्ययों से इन पच्चीस प्रकृतियों को बांधते हैं अतः बंध सकारणक हैं। आगे और गुणस्थानों में भी कहते हैं —

सासादनसम्यग्दृष्टिः मिथ्यात्वं मुक्त्वा त्रिभिर्मूलप्रत्ययैः पंचाशदुत्तरप्रत्ययैः एकसमयसंभविदश-सप्तदशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्चैताः प्रकृतीः बध्नाति।

नवरि तिर्यगायुष्कस्य वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाभ्यां विना त्रिपंचाशत् मिथ्यादृष्टिजीवस्य, औदारिकमिश्रेण च विना सप्तचत्वारिंशत्प्रत्ययाः सासादनस्य भवन्ति।

गतिसंयुक्तपृच्छायामुत्तर उच्यते—

स्त्यानगृद्धित्रिकमनन्तानुबंधिचतुष्कं च मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनो निरयगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति। स्त्रीवेदं मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति। तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतान् मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नाति। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि मिथ्यादृष्टिजीवो देवगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, सासादनजीवो देव-नरकगतीभ्यां विना द्विगतिसंयुक्तं बध्नाति।

कतिगतिकाः स्वामिनः ? इति प्रश्ने सति उत्तरमुच्यते—

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनन्तानुबंधिचतुष्कादिप्रकृतीनां बंधस्य चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनो भवन्ति।

बन्धाध्वानं सासादनचरमसमये बंधव्युच्छेदश्च सूत्रनिर्दिष्टः इति न पुनः उच्यते।

किमेतासां प्रकृतीनां सादिको बंधकः ?

इति पृच्छासंबंधोऽर्थ उच्यते—

सासादनसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व को छोड़कर तीन मूल कारणों से, पचास उत्तर कारणों से और एक समय में संभवी-दश और सत्रह जघन्य और उत्कृष्ट कारणों से इन २५ प्रकृतियों को बांधते हैं। विशेष यह है कि तिर्यंचायु के वैक्रियिकमिश्र और कार्मण काययोग के बिना मिथ्यादृष्टि के त्रेपन तथा वैक्रियिकमिश्र कार्मण और औदारिकमिश्र के बिना सासादन सम्यग्दृष्टि के सैंतालिस प्रत्यय होते हैं।

अब गतिसंयुक्त प्रश्न का उत्तर देते हैं—

स्त्यानगृद्धित्रिक और अनंतानुबंधी चतुष्क को मिथ्यादृष्टि जीव चारों गतियों से संयुक्त और सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नरकगति के बिना तीन गति से संयुक्त बांधते हैं। स्त्रीवेद को मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानवर्ती नरकगति के बिना तीन गति से संयुक्त बांधते हैं। तिर्यंचायु, तिर्यग्गति, तद्गत्यानुपूर्वी और उद्योत को मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि जीव तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को मिथ्यादृष्टि देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं और सासादनसम्यग्दृष्टि देवगति-नरकगति के बिना दो गतियों से संयुक्त बांधते हैं।

कितने गति वाले जीव स्वामी होते हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—

स्त्यानगृद्धित्रिक और अनंतानुबंधी चतुष्क इन प्रकृतियों के बंध के स्वामी चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं।

बंधाध्वान और सासादन के चरम समय में होने वाला बंधव्युच्छेद सूत्र से निर्दिष्ट है अतः उसे यहाँ पुनः नहीं कहते हैं—

क्या इन प्रकृतियों का सादिक बंध है ?

इस प्रश्न से संबंधित अर्थ को कहते हैं—

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां बंधो मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने सादिकोऽनादिको ध्रुवोऽध्रुवश्च। सासादने अनादि-ध्रुवाभ्यां विना द्विविकल्पः। शेषाणां प्रकृतीनां बंधो मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सादिकोऽध्रुवश्चेति।

अत्रपर्यन्तं पंचविंशतिप्रकृतीनां बंधव्युच्छेदादिकथनं विस्तरेण प्रोक्तमिति।

इतो विशेष उच्यते —

एतासां निद्रानिद्रादीनां प्रकृतीनां सासादने व्युच्छित्तिर्भवति। अत एतासां बंधकाः। मिथ्यादृष्टयः सासादनाश्च।

अत्रानन्तानुबंधिकषायाणां बंधकारणानि —

तिव्वकसाओ बहुमोहपरिणदो रागदोससंतत्तो।
बंधदि चरित्तमोहं दुविहं पि चरित्तगुणघादी[१]।।८०३।।

तिर्यगायुषो बंधकारणं —

उम्मगदेसगो मग्गणासगो गूढहिययमादिल्लो।
सठसीलो य ससल्लो तिरियाउं बंधदे जीवो[२]।।८०५।।

अशुभनाम्नो बंधकारणं —

मणवयणकायवक्को माइल्लो गारवेहिं पडिबद्धो।
असुहं बंधदि णामं तप्पडिवक्खेहिं सुहणामं[३]।।८०८।।

स्त्यानगृद्धित्रिक और अनंतानुबंधीचतुष्क का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सादिक-अनादिक, ध्रुव और अध्रुवरूप होता है। सासादनगुणस्थान में अनादि और ध्रुव के बिना दो प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादन दोनों गुणस्थानों में सादिक और अध्रुव होता है। यहाँ तक पच्चीस प्रकृतियों का बंध व्युच्छेद आदि कथन विस्तार से कहा गया है।

अब यहाँ विशेष रीति से — इन प्रकृतियों के आस्रव-बंध के कारणों को कहते हैं —

इन निद्रानिद्रा आदि प्रकृतियों की सासादन गुणस्थान में व्युच्छित्ति हो जाती है। अतः इनके बंधकर्ता मिथ्यादृष्टि जीव और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव होते हैं।

अब यहाँ गोम्मटसारकर्मकाण्ड के अनुसार अनन्तानुबंधी कषायों के बंध के कारण दिखाते हैं — जिसके तीव्र कषाय और नोकषाय का उदय है, बहुत मोह से युक्त है, राग-द्वेष से संसक्त — घिरा हुआ है और चारित्रगुण को नष्ट करने का जिसका स्वभाव है, ऐसा जीव कषाय-नोकषाय के भेद से दो भेदरूप चारित्रमोहनीय कर्म का बंध करता है।।८०३।।

पुनः तिर्यंचायु के बंध के कारण कहते हैं —

जो विपरीत मार्ग का उपदेशक है, सन्मार्ग का विघातक है, गूढ़ हृदय वाला है, मायाचारी है, स्वभाव से दुष्ट है, मिथ्यात्व आदि शल्यों से युक्त है, वह तिर्यंचायु को बांधता है।।८०५।।

पुनः अशुभ नामकर्म के बंध के कारणों को कहते हैं —

जिसका मन, वचन, काय कुटिल है, जो मायाचारी है, तीन प्रकार के गारवों से सहित है, वह जीव नरकगति, तिर्यंचगति आदि अशुभ नाम कर्म की प्रकृतियों को बांधता है, इनसे विपरीत कारणों से शुभ नामकर्म को बांधता है।।८०८।।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड पृ. ७४० (आ. शिवसागर ग्रंथमाला से प्रकाशित)। २-३. गोम्मटसार कर्मकांड, पृ ७४२, ७४३ (आ. शिवसागर ग्रंथमाला से प्रकाशित)।

स्त्रीवेदस्यास्रवाः—

''परांगनागमनं स्वरूपधारित्वं असत्याभिधानं परवञ्चनपरत्वं परच्छिद्रप्रेक्षित्वं वृद्धरागत्वं चेत्यादयः स्त्रीवेदनीयस्यास्रवा भवन्ति[१]।

तिर्यगायुष आस्रवकारणानि—

माया तैर्यग्योनस्य[२]।।१६।।

मिनोति प्रक्षिपति चतुर्गतिगर्त्तमध्ये प्राणिनं या सा माया, चारित्रमोहोदयाविर्भूतात्मकुटिलतालक्षणा निकृतिरित्यर्थः। विस्तरेण तु मिथ्यात्वसंयुक्तधर्मोपदेशकत्वं अस्तोकारंभपरिग्रहत्वं निःशीलत्वं वञ्चनप्रियत्वं नीललेश्यत्वं कापोतलेश्यत्वं मरणकालाद्यार्त्तध्यानत्वं कूटकर्मत्वं भूभेदसमानरोषत्वं भेदकरणत्वं अनर्थोद्भावनं कनकवर्णिकान्यथाकथनं कृत्रिमचंदनादिकरणं जातिकुलशीलसन्दूषणं सद्गुणलोपनमसद्गुणोद्भावनं चेत्यादयः तिर्यगायुरास्रवाः भवन्ति[३]।

दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयादि-अशुभनामकर्मण आस्रवाः—अन्यत्रापि कथ्यन्ते—

योगवक्रता विसंवादनञ्चा-शुभस्य नाम्नः।।२२।।

विशेषेण तु—मिथ्यादर्शनं, पिशुनतायां स्थिरचित्तत्वं, कूटमानतुलाकरणं, कूटसाक्षित्वभरणं, परनिन्दनं, आत्मप्रशंसनं, परद्रव्यहरणं, असत्यभाषणं, महारंभमहापरिग्रहत्वं, सदोज्ज्वलवेषत्वं, सुरूपतामदः, परुषभाषणं,

---

अब स्त्रीवेद के आस्रव के कारण को बताते हैं—

परस्त्रीगमन, स्वरूपधारित्व—स्त्रीवेष में रुचि, असत्य बोलने की आदत, दूसरों को ठगना, दूसरों के छिद्र ढूंढना और वृद्धिंगत राग आदि परणामों से स्त्रीवेद का आस्रव होता है।

तिर्यंचायु के आस्रव के कारण—

माया से तिर्यंचायु का आस्रव होता है।।१६।।

जो प्राणियों को चार गतिरूप गड्ढे में डाल देती है—दुःख देती है उसे माया कहते हैं। चारित्रमोहनीयकर्म के उदय से उत्पन्न आत्मकुटिलता, निकृति, छलकपटरूप भाव माया है ऐसा अर्थ हुआ। यहाँ विस्तार से और भी कारण कहते हैं—

मिथ्या वालों को मिलाकर धर्मोपदेश देना, बहुत आरंभ-परिग्रह को रखना, शील रहित जीवन बिताना, ठगने में चतुरता, नील लेश्या और कापोतलेश्यारूप परिणाम, मरणकाल आदि में आर्तध्यान करना, कूट क्रियाओं को करना, भूमि रेखा के समान क्रोध का होना, किसी को परस्पर में भिड़ाकर भेद कराना, अनर्थ को प्रगट करना, सुवर्ण वर्णिका का अन्यथा कथन करना, कृत्रिम चंदनादि बनाना, जाति, कुल, शील आदि में दूषण लगाना, सद्गुणों का लोप करना और असद्गुणों का उद्भावन करना आदि कारण तिर्यंचायु के आस्रव के कारण हैं।

दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय आदि अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं।

अन्यत्र ग्रंथों में भी कहा है—

योगों की कुटिलता और विसंवाद ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं।।२२।।

विशेषतया कहते हैं—

मिथ्यादर्शन, चुगलखोरी में चित्त को स्थिर रखना—बार-बार चुगलखोरी करते रहना, मापने और तौलने के बांट घट-बढ़ रखना, झूठी गवाही देना, दूसरों की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों के धन

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४७८ (टीकांश)। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४८०। ३. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४८०, ४८६।

असदस्यप्रलपनं, आक्रोशविधानं उपयोगेन सौभाग्योत्पादनं चूर्णादिप्रयोगेन परवशीकरणं, मंत्रादिप्रयोगेण परकुतूहलोत्पादनं, देवगुर्वादिपूजामिषेण गंधधूपपुष्पाद्यानयनं, परविडम्बनं, उपहास्यकरणं, इष्टकोच्चयपाचनं, दावानलप्रदानं, प्रतिमाभञ्जनं, चैत्यायतनविध्वंसनं, आरामखण्डनादिकं, तीव्रक्रोधमानमायालोभत्वं, पापकर्मोपजीवित्वञ्चेत्यादयोऽशुभनामास्रवा भवन्ति[१]।

नीचैर्गोत्रस्यास्रवा: कथ्यन्ते—

परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।।२५।।

सूत्रे चकारात् जात्यादिअष्टमदाः, परेषामपमाननं, परोत्प्रहसनं, परप्रतिवादनं, गुरूणां विभेदकरणं, गुरूणामस्थानदानं, गुरूणामवमाननं, गुरुणां निर्भर्त्सनं, गुरूणामजल्प्ययोटनं, गुरूणां स्तुतेरकरणं गुरूणामनभ्युत्थानञ्चेत्यादीनि नीचैर्गोत्रस्यास्रवा भवन्ति[२]।

तात्पर्यमेतत्—इमाः निद्रनिद्रादिप्रकृतयः द्वितीयगुणस्थानपर्यन्तमेव बध्यन्ते अतोऽष्माकं न बध्यन्ते 'वयं तु सम्यग्दृष्टय' इति मत्वा कदाचिदपि एतादृशीनां प्रकृतीनां बंधयोग्यपरिणामो न विधेयः, पुनश्च कदा एतासां सत्त्वव्युच्छित्तिर्भवेदिति भावनया कर्मविनाशनयोग्यभावना याचनीया जिनेन्द्रपादपयोरुहेषु नित्यं।

एवं पंचमस्थले पंचविंशतिप्रकृतीनां बंधव्युच्छित्ति स्वामि-आदिप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

का हरण करना, असत्य बोलना, बहुत आरंभ और बहुत परिग्रह रखना, सदा उज्ज्वल वेष रखना, अपने रूप का मद होना, कठोर वचन बोलना, सभा के अयोग्य वचन बोलना, आक्रोश वचन बोलना, उपयोगपूर्वक सौभाग्य को बढ़ाना, चूर्णादि के प्रयोग से दूसरों को वश में करण, मंत्रादि के प्रयोग से दूसरों में कुतूहल उत्पन्न करना, देव-गुरु आदि की पूजा के बहाने गंध, पुष्प, धूप आदि को मंगाना, दूसरों की विडंबना करना, उपहास करना, ईंट पकाना, दावानल प्रज्वलित करना, प्रतिमाओं को तोड़ना, जिनालयों को ध्वंस करना, बगीचे आदि का उजाड़ना, तीव्र क्रोध, मान, माया और लोभ के परिणाम होना, पापकर्मों से आजीविका करना आदि कारणों से अशुभ नाम कर्म के आस्रव होते हैं।

अब नीच गोत्र के आस्रव कहते हैं—

परनिंदा, आत्मप्रशंसा, सत्गुणोच्छादन और असत् गुणों के उद्भावन से नीच गोत्र का आस्रव होता है।।२५।।

तत्त्वार्थसूत्र के इस सूत्र में जो 'च' शब्द है उससे टीका में कहा है—

जाति आदि आठ मदों को करना, दूसरों का अपमान करना, दूसरों की हंसी करना, दूसरों का प्रतिवादन, गुरुओं में भेद डालना, गुरुओं को स्थान नहीं देना, गुरुओं का तिरस्कार करना, गुरुओं की भर्त्सना करना, गुरुओं से टकराना—गुरुओं से असभ्य वचन बोलना, गुरुओं की स्तुति नहीं करना और गुरुओं को देखकर खड़े नहीं होना आदि क्रियाएँ नीचगोत्र के आस्रव के कारण हैं।

तात्पर्य यह है कि ये निद्रानिद्रा आदि प्रकृतियाँ द्वितीय गुणस्थान पर्यंत ही बंधती हैं, इसलिए ये हमारे नहीं बंधती हैं, क्योंकि 'हम तो सम्यग्दृष्टी हैं' ऐसा मानकर कदाचित् भी ऐसी प्रकृतियों के बंध योग्य परिणाम नहीं करना चाहिए। पुनश्च कब इन प्रकृतियों की सत्त्वव्युच्छित्ति होवेगी, इस प्रकार की भावना से जिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों में नित्य ही कर्मनष्ट करने योग्य भावना की याचना करना चाहिए।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में पच्चीस प्रकृतियों की बंध व्युच्छित्ति, स्वामी आदि के प्रतिपादनरूप से दो सूत्र हुए हैं।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४८०, ४८६। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४९२ (टीकांश)।

अधुना निद्राप्रचलाप्रकृतिबंधस्वामिनां प्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?।।९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इदं पृच्छासूत्रं देशामर्शकं, तेनात्र पूर्वकथितपृच्छाः सर्वाः अपि आनेतव्याः भवन्ति। पुनः पृच्छितशिष्यस्य संदेहविनाशनार्थमुत्तरसूत्रमपि देशामर्शकमेव, तेनात्र बंधाध्वानं बंधस्वाम्य-स्वामिनश्चापूर्वकरणकालस्य अप्रथमाचरमसमये बंधव्युच्छेदं च भणित्वा शेषार्थान् सूचयित्वावस्थानात्।**

अपूर्वकरणकालस्य प्रथमसप्तमभागे निद्राप्रचलयोर्बंधो निरुध्यते इत्यत्र वक्तव्यं।

कथमेतज्ज्ञायते ?

परमगुरुपदेशात्।

किमेतयोः कर्मणोः बंधः पूर्वं पश्चात् समं वा उदयेन व्युच्छिद्यते ? इति पृच्छायां निर्णयः क्रियते—

एतयोर्निद्राप्रचलयोः बंधः पूर्वं विनश्यति, पश्चादुदयस्य व्युच्छेदः, अपूर्वकरणकालस्य प्रथमसप्तमभागे बंधे निरुद्धे सत्युपरि गत्वा क्षीणकषायस्य द्विचरमसमये उदयो व्युच्छिद्यते।

अब निद्रा और प्रचला के बंध के स्वामी का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रा और प्रचला प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों में उपशामक और क्षपक बंधक हैं। अपूर्वकरण काल के संख्यातवें भाग जाकर बंधव्युच्छिन्न हो जाता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।१०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ जो प्रथम ९वाँ सूत्र है वह पृच्छासूत्र है वह देशामर्शक है अतः यहाँ पर पूर्वकथित तेईस पृच्छाएँ करना चाहिए। पुनः प्रश्न करने वाले शिष्य के संदेह को दूर करने के लिए अगला दशम सूत्र कहते हैं। यह सूत्र भी देशामर्शक है, अतः यहाँ बंधाध्वान, बंध के स्वामी और अस्वामी—अबंधक तथा अपूर्वकरण काल के अप्रथम अचरम समय में बंधव्युच्छेद को कहकर शेष अर्थों को सूचित कर अवस्थित है।

अपूर्वकरण काल के प्रथम सप्तम भाग में निद्रा और प्रचला का बंध व्युच्छेद हो जाा है, ऐसा यहाँ कहना चाहिए।

यह कैसे जाना जाता है ?

यह परमगुरु के उपदेश से जाना जाता है।

अब यहाँ तीन प्रश्न किये जाते हैं—

क्या इन दोनों कर्मों का बंध उदय से पूर्व, पश्चात् अथवा साथ में व्युच्छिन्न होता है ?

इन प्रश्नों का निर्णय करते हैं—

इनका बंध पूर्व में नष्ट होता है, तत्पश्चात् उदय का व्युच्छेद होता है, क्योंकि अपूर्वकरण काल के प्रथम सप्तम भाग में बंध के रुक जाने पर ऊपर जाकर क्षीणकषाय गुणस्थान के द्विचरम समय में उदय का व्युच्छेद होता है।

किं स्वोदयेन ? परोदयेन ? स्वोदय-परोदयेन बध्येते ? इति पृच्छायामुच्यते—

इमे द्वे अपि प्रकृती स्वोदय-परोदयेन बध्येते, ज्ञानावरणपंचान्तरायपंचप्रकृतीनामिव एतयोर्ध्रुवोदयत्वाभावात्।

किं सान्तरं ? निरन्तरं ? सान्तरनिरन्तरं बध्येते ? इति प्रश्ने सति—

एते निरन्तरं बध्येते, सप्तचत्त्वारिंशत्प्रकृतिष्वन्तःपातात्।

किं प्रत्ययैर्बध्येते ? इति प्रश्ने सति उच्यते—

मिथ्यादृष्टिः चतुर्भिर्मूलप्रत्ययैः पंचपंचाशन्नानासमयोत्तरप्रत्ययैः दश-अष्टादश-एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैः द्वे प्रकृती बध्येते। सासादनो मिथ्यात्वेन विना त्रिभिर्मूलप्रत्ययैः पंचाशदुत्तरप्रत्ययैः दशसप्तदशैकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैः पूर्वोक्तप्रकृती बध्येते। सम्यग्मिथ्यादृष्टिः त्रिमूलप्रत्ययैः त्रिचत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययैः एकसमयसंबंधिनव-षोडशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्च, असंयतसम्यग्दृष्टिः त्रिभिर्मूलप्रत्ययैः षट्चत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययैः, एकसमयनवषोडशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्च, संयतासंयतो मिश्रासंयमेन सहितकषाययोगद्विमूलप्रत्ययैः सप्तत्रिंशदुत्तरप्रत्ययैः एकसमयिकाष्ट-चतुर्दशजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैः, प्रमत्तसंयतः द्वाभ्यां मूलप्रत्ययाभ्यां चतुर्विंशत्युत्तरप्रत्ययैः एकसमयपंच-सप्तजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैः, अप्रमत्तसंयतोऽपूर्वकरणश्च

ये दोनों कर्म प्रकृतियाँ क्या स्वोदय से, क्या परोदय से या क्या स्वोदय-परोदय से बंधती हैं ?

इन तीनों प्रश्नों का उत्तर देते हैं—

ये दोनों ही प्रकृतियाँ स्वोदय-परोदय से बंधती हैं, क्योंकि पाँच ज्ञानावरण और पाँच अन्तराय के समान इन दोनों प्रकृतियों के ध्रुवोदयपने का अभाव है।

पुनः क्या सान्तर हैं ? क्या निरन्तर हैं या क्या ये दोनों प्रकृतियाँ सान्तर-निरन्तर बंधती हैं ?

ऐसे प्रश्न होने पर कहते हैं कि ये दोनों प्रकृतियाँ निरन्तर बंधती हैं क्योंकि ये सैंतालिस ध्रुव प्रकृतियों के अन्तर्गत हैं।

ये दोनों प्रकृतियाँ किन-किन प्रत्ययों से बंधती हैं ? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव चार मूल प्रत्ययों से और नाना समय संबंधी पचपन उत्तर प्रत्ययों से और एक समय संबंधी जघन्य दश प्रत्ययों से तथा उत्कृष्ट अठारह प्रत्ययों से निद्रा और प्रचला प्रकृतियों को बांधता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि, मिथ्यात्व के बिना तीन मूल प्रत्ययों से, पचास उत्तर प्रत्ययों से एवं एक समय संबंधी जघन्य दश व उत्कृष्ट सत्तरह प्रत्ययों से पूर्वोक्त दो प्रकृतियों को बांधता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि तीन मूल प्रत्ययों से, तेतालिस उत्तर प्रत्ययों से और एक समय संबंधी नव और सोलह, जघन्य, उत्कृष्ट प्रत्ययों से दो प्रकृतियों को बांधता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि तीन मूल प्रत्ययों से, छ्यालिस उत्तर प्रत्ययों से तथा एक समय संबंधी नव और सोलह, जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्ययों से उक्त प्रकृतियों को बांधते हैं।

संयतासंयत जीव, मिश्र असंयमरूप ग्यारह अविरति के साथ कषाय और योगरूप दो मूल प्रत्ययों से, सैंतीस उत्तर प्रत्ययों से तथा एक समय संबंधी आठ व चौदह जघन्य व उत्कृष्ट उत्तर प्रत्ययों से उक्त प्रकृतियों को बांधते हैं।

प्रमत्तसंयत मुनि, दो मूल प्रत्ययों से, चौबीस उत्तर प्रत्ययों से तथा एक समय संबंधी पाँच व सात,

द्विमूलप्रत्ययैः द्वाविंशत्युत्तरप्रत्ययैरेकसमयपंच-सप्तजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्च बध्येते।

गतिसंयुक्तबंधपृच्छायामर्थः—मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनः त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयत-सम्यग्दृष्टिश्च देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा गुणस्थानवर्तिनो देवगतिसंयुक्तमेव निद्राप्रचले द्वे प्रकृती बध्नन्ति।

कतिगतिकाः स्वामिनः ? एतस्यां पृच्छायामुच्यते—

मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टय इमे चतुर्गतिकाः, संयतासंयताः द्विगतिकाः, उपरिमा मनुष्यगतिकाः स्वामिनो भवन्ति।

बंधाध्वानं सुगमं। चरमसमयादिरूपबंधव्युच्छिन्नप्रदेशोऽपि सुगमः।

किं सादिकः ? इत्यादिपृच्छायामुच्यते—

मिथ्यादृष्टिजीवे निद्राप्रचलयोर्बंधः सादिकोऽनादिको ध्रुवोऽध्रुवोऽपि चतुर्विकल्पोऽस्ति। सासादनादि-गुणस्थानेषु त्रिविकल्पः, ध्रुवत्वाभावात्। शेषं सुगममस्ति।

एवं षष्ठस्थले निद्राप्रचलाप्रकृतिबंधव्युच्छेदादिकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना सातावेदनीयबंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।११।।

जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्ययों से बांधते हैं।

अप्रमत्तसंयत व अपूर्वकरण महामुनि दो मूल प्रत्ययों से, बाईस उत्तर प्रत्ययों से, एक समय संबंधी पाँच-सात, जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्ययों से उपर्युक्त दो प्रकृतियों को बांधते हैं।

गतिसंयुक्त बंध की पृच्छा में कहते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव चतुर्गतिसंयुक्त, सासादन जीव तीन गति संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति-मनुष्यगति संयुक्त एवं ऊपर के गुणस्थानवर्ती देवगति संयुक्त ही इन निद्रा, प्रचला ऐसी दो प्रकृतियों को बांधते हैं।

कितने गतियों वाले जीव उक्त दोनों प्रकृतियों के स्वामी हैं ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, ये चारों गतियों वाले जीव उक्त दोनों प्रकृतियों के स्वामी हैं। संयतासंयत दो गतियों वाले तथा उपरिम गुणस्थानवर्ती मुनि मनुष्यगति वाले जीव इन दो प्रकृतियों के स्वामी होते हैं।

बंधाध्वान सुगम है। चरम समयादिरूप बंधव्युच्छिन्नप्रदेश भी सुगम है।

बंध क्या सादि है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं—

मिथ्यादृष्टि जीव में निद्रा और प्रचला का बंध सादिक, अनादिक, ध्रुव और अध्रुव भी चार विकल्परूप है। सासादन आदि गुणस्थानों में तीन विकल्परूप होते हैं, क्योंकि ध्रुवत्व का अभाव है। शेष कथन सुगम है।

इस प्रकार से छठे स्थल में निद्रा-प्रचला प्रकृति के बंध व्युच्छेदादि के कथनरूप से दो सूत्र हुए हैं।

अब सातावेदनीय के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार ले रहे हैं —

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय के कौन बंधक हैं और कौन अबंधक हैं ?।।११।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए-चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र बंधपदेन 'बंधको' ज्ञातव्यः, इदं सूत्रं देशामर्शकं, स्वामिविषयकपृच्छायाः निर्देशं कृत्वा शेषपृच्छाविषयनिर्देशाकरणात् तेनात्र सर्वपृच्छाः निर्देष्टव्याः। पृच्छितशिष्यसंशयनिराकरणार्थं अग्रिमसूत्रमस्ति, एतदपि देशामर्शकं, स्वामित्वमध्वानं बंधविनाशस्थानं च कथयित्वामन्येषामर्थानामनिर्देशात्। तेनात्रेतरेषां प्ररूपणा क्रियते—**

सातावेदनीयस्य बंधः पूर्वं उदयः पश्चात् व्युच्छिद्यते, सयोगिचरमसमये बंधे व्युच्छिन्ने सति पश्चादयोगि-चरमसमये उदयव्युच्छेदात्।

सातावेदनीयं मिच्छादृष्टिप्रभृति यावत्सयोगिकेवली इति, स्वोदयेन परोदयेनापि बध्यते, सातासातोदययोः परावृत्तिदर्शनात्, स्वपरोदयाभ्यां बंधविरोधाभावाच्च।

मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्त इति सान्तरो बंधः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधसंभवात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्। यस्मिन् यस्मिन् गुणस्थाने यावन्तो यावन्तो मूलप्रत्ययाः नानासमयोत्तरप्रत्ययाः एकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाश्चोक्तास्तानि गुणस्थानानि तावद्भिः प्रत्ययैः सातावेदनीयं बध्नन्ति।

मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक सातावेदनीय के बंधक हैं। सयोगिकेवली काल के अंतिम समय को प्राप्त होकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ प्रथम सूत्र—ग्यारहवें सूत्र में जो 'बंध' पद है, उस पद से, बंधकरूप अर्थ ग्रहण करना चाहिए। यह सूत्र देशामर्शक है। इसमें स्वामीविषयक पृच्छा के निर्देश से शेष पृच्छाविषयक सभी प्रश्न निर्दिष्ट कर दिये गये हैं।

आगे ग्यारहवाँ सूत्र पूछने वाले शिष्य के संशय को दूर करने के लिए अग्रिम उत्तरविषयक सूत्र है। यह भी देशामर्शक है, क्योंकि इसमें स्वामित्व, अध्वान और बंधविनाश स्थान को कहकर अन्य सभी अर्थों का निर्देश नहीं है। इसीलिए यहाँ अन्य अर्थों की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार हैं—

सातावेदनीय का बंध पूर्व में और उदय पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि सयोगिकेवली—अर्हंत भगवान के अंतिम समय में बंध के व्युच्छिन्न होने पर पश्चात् अयोगिकेवली भगवान के अंतिम समय में उदय का व्युच्छेद होता है।

सातावेदनीय कर्म मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक स्वोदय और परोदय से भी बंधता है, क्योंकि यहाँ साता और असाता के उदय में परिवर्तन देखा जाता है तथा स्व-परोदय से बंध होने में कोई विरोध भी नहीं है।

मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्त गुणस्थान तक सातावेदनीय का बंध सान्तर है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष—असाता प्रकृति का बंध संभव है। प्रमत्तगुणस्थान से ऊपर निरंतर बंध है क्योंकि आगे प्रतिपक्ष—असाता प्रकृति के बंध का अभाव है।

जिस-जिस गुणस्थान में जितने-जितने मूल प्रत्यय, नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय और एक समय संबंधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय कहे गये हैं, वे-वे गुणस्थान उतने प्रत्ययों से साता वेदनीय का बंध करते हैं।

मिथ्यादृष्टिर्नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं।

अप्रशस्तया तिर्यग्गत्या सह कथं साताबंधो भवति ?

न, नरकगतिं इव आत्यन्तिकाप्रशस्तत्वाभावात्। एवं सासादनोऽपि त्रिगतिसंयुक्तं सातां बध्नाति। सम्यग्मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च द्विगतिसंयुक्तं बध्नीतः, नरकतिर्यग्गतिभ्यां विना उपरिमा देवगतिसंयुक्तं। अपूर्वकरणस्य चरमसप्तमभागप्रभृति उपरि अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवाः चतुर्गतिकाः स्वामिनः, संयतासंयताः द्विगतिस्वामिनः, शेषाः मनुष्यगतेरेव स्वामिनः सन्ति। बंधाध्वानं बंधव्युच्छेदस्थानं च सुगमं सूत्रोक्तत्वात्। सर्वेष गुणस्थानेषु सातावेदनीयस्य बंधः सादिः अध्रुवः, सातासातयोः परावर्तनस्वरूपेण बंधात्।

सातावेदनीयस्य बंधकारणानि उच्यन्ते—

''भूदाणुकंपवदजोग जुंजिदो खंतिदाणगुरुभत्तो।
बंधदि भूयो सादं निवरीयो बंधदे इदरं[१]।।८०१।।

एतान्येव कारणानि आस्रवेण कथ्यन्ते—

भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगक्षान्तिशौचमिति सद्वेद्यस्य।।१२।।

चतुर्गतिषु भवन्तीति भूतानि प्राणिवर्गाः। अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहदिवाभुक्तलक्षणानि व्रतानि

मिथ्यादृष्टि जीव नरकगति के बिना तीन गति संयुक्त साता वेदनीय को बांधते हैं।

अप्रशस्त तिर्यग्गति के साथ कैसे साता प्रकृति का बंध होता है ?

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि नरकगति के समान तिर्यग्गति के आत्यन्तिक अप्रशस्तपने का अभाव है।

इसी प्रकार सासादनगुणस्थान में भी त्रिगति संयुक्त साता को बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गति से संयुक्त बांधते हैं। ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव नरकगति और तिर्यग्गति के बिना देवगति संयुक्त बांधते हैं। अपूर्वकरण के चरम सप्तम भाग से लेकर ऊपर के सभी मुनि अगतिसंयुक्त बांधते हैं।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि चारों गतियों वाले जीव स्वामी हैं, दो गतियों वाले संयतासंयत जीव स्वामी हैं, शेष जीव मनुष्यगति के ही स्वामी हैं।

बंधाध्वान और बंधव्युच्छेद स्थान सूत्रोक्त होने से सुगम हैं। सब गुणस्थानों में साता और असाता का परिवर्तित बंध होने से साता वेदनीय का बंध सादि और अध्रुव है।

अन्यत्र ग्रंथों में—श्री गोम्मटसारकर्मकाण्ड में सातावेदनीय के बंध के कारणों को कहते हैं—

भूत—प्राणियों में दया, व्रतीजनों में दया से संयुक्त, क्षमा, दान और गुरुभक्ति से युक्त प्राणी सातावेदनीय को बांधते हैं, पुनः इनसे विपरीत असातावेदनीय को बांधते हैं।।८०१।।

ये ही कारण तत्त्वार्थसूत्र में आस्रवरूप से—आस्रव के कारण माने गये हैं।

सूत्रार्थ— भूतव्रत्यनुकम्पा, दान, सरागसंयमादि योग और शौच तथा अर्हद्भक्ति आदि से सातावेदनीय ये आस्रव हैं।।१२।।

तत्त्वार्थवृत्ति नाम के टीकाग्रंथ के आधार से इनका विशेष अर्थ कहते हैं—

जो चारों गतियों में होते हैं—'भवन्तीति भूताः' वे भूत कहलाते हैं—सभी प्राणी 'भूत' कहे जाते हैं।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड।

एकदेशेन सर्वथा च विद्यन्ते येषां ते व्रतिनः श्रावकाः यतयश्च। परोपकारार्द्रचित्तस्य परपीडामात्मपीडामिव मन्यमानस्य पुरुषस्य अनुकंपनं अनुकंपा भूतव्रत्यनुकंपा। परोपकारार्थं निजद्रव्यव्ययो दानं। संसारहेतुनिषेधं प्रति उद्यमपरः अक्षीणाशयश्च सरागो भण्यते। षड्जीवनिकायेषु षडिन्द्रियेषु च पापप्रवृत्तेर्निवृत्तिः संयम उच्यते। सरागस्य पुरुषस्य संयमः सरागसंयमः, सरागः संयमो वा यस्य स सरागसंयमः। भूतव्रत्यनुकंपादान-सरागसंयमादीनां योगः सम्यक् प्रणिधानं सम्यक् चिन्तनादिकं। क्रोधमानमायानां निवृत्तिः क्षान्तिः। लोभप्रकाराणां विरमणं शौचमिति।

इति एवं प्रकारः अर्हत्पूजाविधानतात्पर्यं, बालवृद्धतपस्विनां च वैयावृत्यादिकं सर्वमेतत् सद्वेद्यस्य आस्रवाः सुखरूपस्य कर्मणः कारणं भवन्ति[१]।

तात्पर्यमेतत्—एतानि सातावेदनीयास्रवकारणानि मिथ्यात्वसहचरितानि मिथ्यात्वादित्रिगुणस्थानेषु सन्ति। अग्रे सम्यक्त्वमाहात्म्येन इमानि कारणानि मोक्षकारणान्यपि भवन्ति। अतएव जीवदया-जिनपूजा-महाव्रतदीक्षादयः केवलं संसारकारणानि एव एतन्न वक्तव्यं निश्चयाभासिभिः, किंतु मोक्षमार्गेषु उपयोगीन्येव मन्तव्यं किंच—सरागसंयममन्तरेण वीतरागसंयमः कदाचिदपि भवितुं नार्हति इति मत्वा सरागसंयमिनां वर्तमानकाले विद्यमानानां मुन्यार्यिकाणामपि भक्तिर्विधातव्या अतीवानुरागेण। पुनश्च साता वेदनीयस्य

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और दिवाभुक्ति—रात्रिभोजन त्याग, ये व्रत कहलाते हैं। श्रावक इन व्रतों को एकेदशरूप से—अणुव्रतरूप से पालते हैं और यतिगण सर्वथा—पूर्णरूप से पालते हैं। ये व्रत जिनमें हैं वे व्रती कहलाते हैं।

परोपकार से आर्द्र—गीला है चित्त जिनका ऐसे पुरुष के, जो कि पर पीड़ा को अपनी पीड़ा के समान मानते हुए मनुष्य के परिणामों में अनुकंपन—आत्म प्रदेशों में अनुकंपन होता है, वही अनुकंपा है यह अनुकंपा प्राणी अनुकंपा और व्रती अनुकंपा के भेद से दो भेदरूप है।

परोपकार के लिए अपने द्रव्य का व्यय करना दान है।

संसार कारण के निषेध के प्रति उद्यमशील अक्षीण अभिप्राय सराग कहलाता है। छह काय के जीवों में और छह इंद्रियों में पापप्रवृत्ति से निवृत्त होना संयम है। सरागी मुनि का संयम है अथवा सराग—राग—प्रशस्तराग देव-गुरु के प्रति अनुराग सराग है, ऐसा सराग संयम ही है जिनका, वे सरागसंयम कहलाते हैं। इस प्रकार भूत, व्रति, अनुकंपा, दान, सराग संयम आदि का योग—सम्यक् प्रणिधान—उपयोग, समीचीन प्रकार से चिन्तन आदि होना। क्रोध, मान, माया कषाय की निवृत्ति क्षांति—क्षमा है। लोभ के सभी प्रकारों से विरक्त होना 'शौच' है।

सूत्र में जो 'इति' शब्द है उससे इन्हीं प्रकार के और भी लेना, जैसे—अर्हंत देव की पूजा का विधान, बाल, वृद्ध, तपस्वीजनों की वैयावृत्ति आदि ये सभी सातावेदनीय के आस्रव हैं—सुखरूप कर्म के कारण हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है—ये सातावेदनीय के आस्रव के कारण यदि मिथ्यात्व से सहचरित हैं तो ये मिथ्यात्व आदि तीन गुणस्थानों में होते हैं। आगे सम्यक्त्व के माहात्म्य से ये ही कारण मोक्ष के कारण भी बन जाते हैं।

इसलिए जीवदया, जिनपूजा, महाव्रत की दीक्षा आदि ये केवल संसार के ही कारण हैं ऐसा जो निश्चयाभासी—एकांतवादी कहते हैं, सो गलत है, ऐसा नहीं कहना—चूँकि ये ही कारण मोक्षमार्ग में उपयोगी हैं, ऐसा मानना चाहिए। क्योंकि सराग संयम के बिना वीतराग संयम कदाचित् भी नहीं हो सकता है ऐसा मानकर वर्तमानकाल में विद्यमान ऐसे सराग संयमी मुनि-आर्यिकाओं की भी भक्ति अतीव अनुरागपूर्वक करना चाहिए तथा सातावेदनीय का

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४७४, ४७५ (टीकांश)।

बंधः सयोगिकेवलिनामपि भवति, एतज्ज्ञात्वा साता वेदनीयस्यास्रवकारणानां पुनः पुनः चिंतनं कृत्वा तान्येव कारणानि कर्तव्यानि भवन्ति, इति चिंतनीयं निरन्तरम्।

एवं सप्तमस्थले-सातावेदनीयबंधस्वामित्वादि-कथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति असातावेदनीयादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असादावेदनीय-अरदि-सोगअथिरअसुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१३।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **द्वे अपि सूत्रे देशामर्शके स्तः। ततः प्रथमसूत्रात् त्रयोविंशतिपृच्छाः अवतारयितव्याः, द्वितीयसूत्रमपि पृच्छितार्थाणामेकदेशं स्पृष्ट्वावस्थानात्। तेनैतेन सूचितार्थाणां अर्थप्ररूपणा क्रियते। असातावेदनीयस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, प्रमत्तसंयते बंधव्युच्छेदे सति अयोगिकेवलि-चरमसमये उदयव्युच्छेदात्। एवं अरतिशोकयोः प्रमत्तसंयते बंधे नष्टे सति अपूर्वकरणचरमसमये उदयव्युच्छेदात्। अस्थिर-अशुभयोरपि एवमेव वक्तव्यं, प्रमत्ते बंधे विनष्टे सयोगिचरमसमये उदयव्युच्छेदात्। अयशःकीर्त्तेः पूर्वमुदयो व्युच्छिद्यते पश्चाद्बंधः, असंयतसम्यग्दृष्टौ उदये नष्टे पश्चात् प्रमत्तसंयते बंधव्युच्छेदात्।**

बंध सयोगकेवली भगवन्तों के भी होता है, ऐसा जानकर सातावेदनीय के आस्रव के कारणों का पुनः-पुनः चिंतन करके उन्हीं कारणों को करना योग्य है, ऐसा निरन्तर चिंतन करते रहना चाहिए।

इस प्रकार सातवें स्थल में सातावेदनीय के बंध के स्वामी आदि के कथनरूप से दो सूत्र हुए हैं।

अब असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियों के बंध के स्वामी को कहने के लिए प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति नाम का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।१३।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये दोनों भी सूत्र देशामर्शक हैं। अतः प्रथम — तेरहवें सूत्र से तेईस प्रश्न अवतरित कराना है। द्वितीय सूत्र अर्थात् इस प्रकरण में द्वितीय सूत्र है, किन्तु मूल में चौदहवाँ हैं, यह चौदहवाँ सूत्र भी प्रश्नों के एकदेश का स्पर्श कर स्थित है। इसलिए इस सूत्र के द्वारा सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं —

असातावेदनीय का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि प्रमत्तगुणस्थान में बंधव्युच्छेद हो जाने पर पश्चात् अयोगिकेवली भगवान के अंतिम समय में उदय का व्युच्छेद होता है। इसी प्रकार अरति और शोक का प्रमत्तसंयत में बंध नष्ट हो जाने पर अपूर्वकरण के चरमसमय में उदय व्युच्छिन्न होता है। तथैव, अस्थिर और अशुभ प्रकृतियों का भी बंधोदय व्युच्छेद कहना चाहिए, क्योंकि प्रमत्तसंयत में बंध नष्ट हो जाने पर सयोगिकेवली के अंतिम समय में उदय व्युच्छेद होता है। अयशकीर्ति का पूर्व में उदय व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् बंध, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय के नष्ट हो जाने पर पीछे प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंध का व्युच्छेद होता है।

असातावेदनीय-अरति-शोकाः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्यन्ते, उदयस्य ध्रुवत्वाभावात्। एवमयशः-कीर्त्तिरपि, उदयस्याध्रुवत्वेन भेदाभावात्। नवरि संयतासंयतप्रभृति उपरि परोदयेनैव बंधः, तत्र यशःकीर्तिं मुक्त्वा अयशःकीर्त्तेरुदयाभावात्। अस्थिराशुभयोः स्वोदयेनैव बंधो, ध्रुवोदयत्वात्। एतासां षण्णां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टिप्रभृति षट्स्वपि गुणस्थानेषु सान्तरो बंधः, एतासां प्रतिपक्षप्रकृतीनामत्र बंधव्युच्छेदाभावात्।

ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां ये प्रत्ययाः प्ररूपिता एतेषु षट्गुणस्थानेषु तैश्चैव प्रत्ययैः एताः षट्प्रकृतयः बध्यन्ते।

असाता-अरति-शोकान् मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनो नरकगतिं मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टिसंयतसम्यग्दृष्टिश्च देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। एवमेवास्थिर-शुभायशः-कीर्त्तीणां भेदाभावात्।

मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः चतुर्गतीनां स्वामिनः, संयतासंयताः द्विगतिस्वामिनः, प्रमत्तसंयता मनुष्यगतिस्वामिनः सन्ति।

बंधाध्वानं बंधव्युच्छेदस्थानं च सुगमं।

एताः षडपि प्रकृतयो बंधेन साद्यध्रुवाः सन्ति।

तात्पर्यमेतत्—एतासां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदार्थं एव साधूनां साध्वीनां प्रयासोऽस्ति। दीक्षां गृहीत्वा वयमपि असातादिप्रकृतीनां बंधनिरासार्थं प्रयतामहे।

असातावेदनीय, अरति और शोक ये स्वोदय और परोदय से बंधती हैं, क्योंकि उदय के ध्रुवत्व का अभाव है। इसी प्रकार अयशकीर्ति भी स्वोदय-परोदय से बंधती हैं, क्योंकि उदय की अध्रुवता की अपेक्षा इससे उक्त तीनों प्रकृतियों से कोई भेद नहीं है। विशेष इतना है कि संयतासंयत से लेकर आगे इसका बंध परोदय से ही होता है, क्योंकि वहाँ यशकीर्ति को छोड़कर अयशकीर्ति का उदय नहीं रहता है। अस्थिर और अशुभ इन दो प्रकृतियों का बंध स्वोदय से ही होता है, क्योंकि ये ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं।

इन छहों प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि आदि छहों गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है, क्योंकि यहाँ तक इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध व्युच्छेद का अभाव है।

ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों के जो प्रत्यय—कारण इन छह गुणस्थानों में कहे गये हैं उन्हीं प्रत्ययों से ही ये छह प्रकृतियाँ बंधती हैं।

असाता, अरति और शोक प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि जीव चार गति संयुक्त, सासादन जीव नरकगति को छोड़कर तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त तथा उपरिम गुणस्थानवर्ती जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। इसी प्रकार अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति प्रकृतियों का भी गति संयुक्त बंध जानना चाहिए, क्योंकि उनसे इनमें कोई भेद नहीं है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव चारों गतियों के स्वामी हैं। संयतासंयत जीव दो गति के स्वामी हैं और प्रमत्तसंयत जीव मनुष्यगति के ही स्वामी हैं।

बंधाध्वान और बंध व्युच्छेद स्थान सुगम हैं।

ये छहों प्रकृतियाँ बंध से सादि और अध्रुव हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि इन प्रकृतियों के बंध व्युच्छेद के लिए ही साधु और साध्वियों का—मुनिगण और आर्यिकाओं का प्रयास है। हम सभी भी दीक्षा को ग्रहण करके असाता आदि प्रकृतियों के बंध को दूर करने का ही प्रयत्न कर रहे हैं।

इतो विस्तरः —

असातावेदनीयस्य आस्रवकारणानि उच्यन्ते —

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यस्य[1]।।११।।

दुःखयतीति दुःखं वेदनालक्षणः परिणामः, शोचनं शोकः चेतनाचेतनोपकारकवस्तुसंबंधविनाशे वैक्लव्यं दीनत्वमित्यर्थः, तापनं तापः निन्दाकारणात् मानभंगविधानाच्च कर्कशवचनादेश्च संजातः आविलान्तःकरणस्य कलुषितचित्तस्य तीव्रानुशयोऽतिशयेन पश्चात्तापः खेद इत्यर्थः। आक्रन्द्यते आक्रन्दनं परितापसंजातवाष्पपतनबहुलविलापादिभिर्व्यक्तं प्रगटं अंगविकारादिभिर्युक्तं क्रन्दनमित्यर्थः। हननं वधः। जीवानां प्राणवियोगकरणमित्यर्थः। परिदेव्यते परिदेवनं संक्लेशपरिणामविहितावलंबनं स्वपरोपकाराकांक्षालिंगं अनुकंपाभूयिष्ठं रोदनमित्यर्थः।

एतानि षट्कर्माणि कोपाद्यावेशवशात् आत्मस्थानि परस्थानि उभयस्थानि च असद्वेद्यस्य दुःखरूपस्य कर्मणः आस्रवनिमित्तानि भवन्तीति वेदितव्यं।

अत्र किञ्चिद्विधीयते चर्चनम् —

यदि चेत् दुःखादीन्यात्मपरोभयस्थान्यसद्वेद्यास्रवकारणानि वर्तन्ते, तर्हि आर्हतैः केशोत्पाटनं उपवासादिप्रदानं आतापनयोगोपदेशनं सर्वमित्यादिकमाचरणं दुःखकारणमेवास्थीयते, प्रतिज्ञायते भवद्भिस्तर्हि आत्मपरोभयान् प्रति किमित्युपदिश्यते ?

साधूक्तं भवता, अन्तरंगक्रोधावेशपूर्वकाणि दुःखशोकादीनि असद्वेद्यास्रवकारणानि भवन्ति,

---

यहाँ विस्तार करते हैं —

अब असाता वेदनीय के आस्रव के कारणों को कहते हैं — स्व, पर तथा दोनों में किये जाने वाले दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, बध और परिदेवन ये अपने में या पर में या दोनों में किये जाने पर असातावेदनीय के आस्रव हैं।।११।।

जो दुःखी करे वह 'दुःख' है वह वेदनारूप परिणाम है। शोच करना शोक है — उपकार करने वाले चेतन या अचेतन वस्तु के नष्ट हो जाने पर जो विकलता या दीनता होती है वह शोक है। निंदा से, मान भंग से या कर्कश वचन आदि से होने वाले आकुलतारूप अन्तःकरण का होना, कलुषितचित्त का होना, तीव्र क्लेशपूर्वक — अतिशयरूप से पश्चात्ताप होना 'ताप' या खेद कहलाता है। परिताप के कारण अश्रुपातपूर्वक, बहुविलाप करना, हाथ, पैर पीट-पीटकर रोना 'आक्रन्दन' है। जीवों के प्राणों का वियोग करना 'बध' है। संक्लेश परिणामपूर्वक इस प्रकार रोना कि सुनने वालों के हृदय में दया उत्पन्न हो जावे, इस तरह स्व और परजनों के उपकार की आकांक्षा रखते हुए अतिविलाप करना 'परिदेवन' है। क्रोधादि के आवेश से ये दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन ये छहों कार्य कभी अपने में होते हैं, कभी पर में होते हैं और कभी स्व-पर दोनों में होते हैं। ये सब दुःखरूप असातावेदनीय के आस्रव के कारण हैं।

अब यहाँ कुछ विशेष चर्चा करते हैं —

शंका — यदि स्व-पर और दोनों में हुए दुःख, शोक आदि असातावेदनीय के आस्रव हैं, तो अर्हंत मतानुयायी — साधुओं द्वारा केशों का उखाड़ना, उपवास, आतापन योग आदि स्वयं करना, दूसरों को वैसा करने का उपदेश देना आदि दुःख के कारणों को क्यों उचित बतलाया है ?

समाधान — आपने ठीक कहा है, फिर भी, अन्तरंग में क्रोधादि के आवेशपूर्वक जो दुःखादि होते हैं,

---

१. तत्त्वार्थसूत्र, अ. ६, पृ. ४७० (टीकांश)।

क्रोधाद्यावेशाभावान्न भवन्ति विशेषोक्तत्वात्। यथा कश्चिद् वैद्यः परमकरुणाचित्तस्य मायामिथ्यादिनिदान-शल्यरहितस्य संयमिनो मुनेरुपरि गण्डं पिटकं विस्फोटं शस्त्रेण पाटयति तच्छस्त्रपातनं यद्यपि दुःखहेतुरपि वर्त्तते तथापि भिषग्वरस्य बाह्यनिमित्तमात्रादेव कोपाद्यावेशं विना पापबन्धो न भवति, तथा संसार-सम्बन्धिमहादुःखाद्भीतस्य मुनेः दुःखनिवृत्त्युपायं प्रति सावधानचित्तस्य शास्त्रोक्ते कर्मणि प्रवर्तमानस्य सङ्क्लेशपरिणामरहितत्वात् केशोत्पाटनोपवासादिदानदुःखकारणोपदेशेऽपि पापबन्धो न भवति। तथा चोक्तम्—

"न दुःखं न सुखं यद्वद्धेतुर्दृष्टाश्चिकित्सिते।
चिकित्सायां तु युक्तस्य स्याद् दुःखमथवा सुखम्[1]।।१।।
न दुःखं न सुखं तद्वद्धेतुर्मोक्षस्य साधने।
मोक्षोपाये तु युक्तस्य स्याद् दुःखमथवा सुखम्[2]।।२।।

एतस्य श्लोकद्वयस्य व्याख्यानम्—यथा चिकित्सिते रोगचिकित्साकरणे हेतुः शस्त्रादिकः स स्वयं दुःखं न भवति सुखं च न भवति कस्मादचेतनत्वादित्यर्थः, चिकित्सायां तु प्रतीकारे प्रवृत्तस्य वैद्यस्य दुःखम् अथवा सुखं स्यादेव। कथम् ? यदि वैद्यः क्रोधादिना शस्त्रेण विस्फोटं पाटयति तदाधर्मकर्मोपार्जनाद् भिषजो दुःखं भवति, यदा तु कारुण्यं कृत्वा तद्व्याधिविनाशार्थं मुनेः सुखजननार्थं विस्फोटं तदा क्रोधाद्यभावाद् धर्मकर्मोपार्जनाद् वैद्यस्य सुखमेव भवति। दृष्टान्तश्लोको गतः। इदानीं दार्ष्टान्तश्लोको व्याख्यायते—एवं मोहक्षयसाधनहेतुरुपवासलोचादिकः स स्वयमेव सुखदुःखरूपो न भवति किन्तु य उपवासादिकं करोति कारयति वा शिष्यं गुर्वादिकः तस्य दुःखं सुखं वा भवति, यदि गुरुः क्रोधादिना उपवासादिकं करोति

वे असातावेदनीय के कारण हैं और क्रोधादि का अभाव होने से दुःखादि असातावेदनीय के आस्रव के कारण नहीं होते हैं। जिस प्रकार कोई वैद्य, परमकारुणिक, माया-मिथ्या-निदान शल्य से रहित किन्हीं संयमी मुनि के फोड़े को शस्त्र से चीरता है—आप्रेशन करता है, उस समय शस्त्र के द्वारा चीरने से मुनि को कष्ट होता है, किन्तु क्रोधादि दुर्भाव के बिना केवल बाह्यनिमित्त मात्र से वैद्य को पाप बंध नहीं होता है। उसी प्रकार सांसारिक दुःखों से भयभीत और दुःखनिवृत्ति के लिए शास्त्रोक्त क्रियाओं में प्रवृत्ति करने वाले मुनि के केशलोंच आदि दुःख के कारणों के उपदेश देने पर भी संक्लेश परिणाम न होने से पाप का बंध नहीं होता है।

कहा भी है—

चिकित्सा के कारणों में दुःख या सुख नहीं होता है किन्तु चिकित्सा में प्रवृत्ति करने वालों को दुःख या सुख होता है। इसी प्रकार मोक्ष के साधनों में दुःख या सुख नहीं होता है, किन्तु मोक्ष के उपाय में प्रवृत्ति करने वाले को दुःख या सुख होता है। तात्पर्य यह है कि—चिकित्सा के साधन शस्त्र आदि अचेतन को दुःख या सुख न होकर चिकित्सक वैद्य—डाक्टर को सुख-दुःख होता है, कैसे ? क्योंकि यदि वैद्य क्रोध के आवेश में आकर किसी रोगी का आप्रेशन करता है तो पापोपार्जन से असाता का बंध कर लेता है और यदि मुनि के दुःख दूर करने हेतु या साधारण रोगी के प्रति दया भाव से व्याधि दूर करने हेतु आप्रेशन करता है तो क्रोधादि के अभाव से पुण्य का उपार्जन करता है। यह दृष्टान्त हुआ। अब दार्ष्टान्त कहते हैं—

जैसे वैद्य के भावों के अनुसार पुण्य एवं पापों का उपार्जन होता है, वैसे ही मोहनीय कर्म के क्षय के लिए साधनभूत केशलोंच, उपवास आदि हैं वे स्वयमेव सुख-दुःखरूप नहीं है किन्तु जो उपवास आदि करते हैं या गुरु आदि शिष्यों को कराते हैं तो वे भावानुसार सुख-दुःख के कारण बनते हैं। यदि गुरु क्रोधादि-

---

१-२. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. ६, पृ. ४७२।

कारयति वा तदाधर्मकर्मोपार्जनात् दु:खमेव प्राप्नोति, यदा तु कारुण्येन संसारदु:खविनाशार्थमुपवासादिकं कारयति करोति वा तदा धर्मकर्मोपार्जनात् सुखमेव प्राप्नोति। यथा दु:खादय: असद्वेद्यास्त्रवकारणानि षट् प्रोक्ता:, तथा अन्यान्यपि भवन्ति। तथाहि—अशुभ: प्रयोग:, परनिन्दनम्, पिशुनता, अननुकम्पनम्, अंगोपांगच्छेदनभेदनादिकम्, ताडनम्, त्रासनम्, तर्जनम्, भर्त्सनम्, अंगुल्यादिसञ्ज्ञया, भर्त्सनं वचनादिना, मारणम्, रोधनम्, बन्धनम्, मर्द्दनम्, दमनम्, परनिन्दनम्, आत्मप्रशंसनम्, संक्लेशोत्पादनम्, महारम्भ:, महापरिग्रह:, मनोवाक्कायवक्रशीलता, पापकर्मोपजीवित्वम्, अनर्थदण्ड:, विषमिश्रणम्, शरजालपाश-वागुरापञ्जरमारणयन्त्रोपायसर्जनादिकम्, एते पापमिश्रा: पदार्था: आत्मन: परस्य उभयस्य वा क्रोधादिना क्रियमाणा असद्वेद्यास्त्रवा भवन्ति[1]।

एतानेव विषयान् विस्तरेणाष्टसहस्रीग्रन्थे कथितम्। तथाहि—

पापं ध्रुवं परे दु:खात्, पुण्यं च सुखतो यदि।
अचेतनाकषायौ च बध्येयातां निमित्तत:।।९२।।

अस्या: कारिकाया: भाष्यकार: श्रीमदकलंकदेवो ब्रूते—

''परत्र सुखदु:खोत्पादनात् पुण्यपापबन्धैकान्ते कथमचेतना: क्षीरादय: कण्टकादयो वा न बध्येरन् ? तन्निमित्तत्वाद्बंधस्य।

दुरभिप्राय से उपवासादि करते या कराते हैं तब अधर्म कर्म का—पापक्रिया का उपार्जन करने से दु:ख ही प्राप्त करते हैं और जब करुणाबुद्धि से संसार दु:ख के विनाश करने हेतु उपवासादि करते या कराते हैं तब धर्म कर्म के उपार्जन से सुख ही प्राप्त करते हैं।

जैसे दु:ख आदि असातावेदनीय के आस्रव छह कहे गये हैं, वैसे ही अन्य-अन्य भी हैं।

जिसका स्पष्टीकरण—

अशुभ प्रयोग, परनिंदा—चुगली, अनुकंपा का अभाव, अंगोपांग छेदन-भेदन आदि, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सन, अंगुली आदि द्वारा तर्जित करना, वचन आदि से भर्त्सना करना, मारना, रोधन करना, रस्सी आदि से बांधना, मर्दन करना, दमन करना, दूसरे की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, स्व-पर में संक्लेश उत्पन्न करना, अति आरंभ, अति परिग्रह, मन वचन और काय की कुटिलता, पाप क्रियाओं की आजीविका, अनर्थदण्ड, विष का मिश्रण, बाण, जाल पिंजरे आदि का बनाना, मारण यंत्र आदि का निर्माण आदि पापरूप क्रियाएं स्व-पर और उभय के निमित्त क्रोधादि के वशीभूत होकर की जाती हैं तो असातावेदनीय कर्म के आस्रव की कारण होती हैं।

इसी विषय को विस्तार से अष्टसहस्री ग्रंथ में कहा है। जैसे कि—यदि दूसरे प्राणी में दु:ख उत्पन्न करने से एकान्तत: पाप का बंध तथा सुख देने से पुण्य का बंध माना जावेगा, तब तो अचेतन पदार्थ एवं वीतरागी भी निमित्त से पुण्य-पापरूप बंध को प्राप्त हो जावेंगे।।९२।।

इसी कारिका के भाष्यकार श्री अकलंकदेव कहते हैं—

''यदि पर में सुख-दु:ख को उत्पन्न करने से एकान्त से पुण्य-पाप का बंध होता है, तब तो अचेतन दूध आदि अथवा कण्टक, विष आदि पुण्य-पाप से क्यों नहीं बंध जाते हैं ? क्योंकि वे भी पर में सुख-दु:ख उत्पन्न करते हैं।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति, अ. ६, पृ. ४७३ (टीकांश)।

श्रीमदाचार्यविद्यानन्दमहोदयेन अष्टसहस्रीनाम्नः ग्रन्थे उच्यते—"तेषामभिसन्धेरभावान्न बंध इति चेत्तर्हि न परत्र सुखदुःखोत्पादनं पुण्यपापबंधहेतुरित्येकान्तः संभवति।

पुनश्च—

"पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पापं च सुखतो यदि।
वीतरागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्यां युंज्यान्निमित्ततः।।९३।।

स्वस्मिन् दुःखोत्पादनात् पुण्यं सुखोत्पादनात् पापं यदीष्यते तदा वीतरागो विद्वांश्च मुनि ताभ्यां पुण्यपापाभ्यामात्मानं युञ्ज्यान्निमित्तसद्भावात् वीतरागस्य कायक्लेशादिरूपदुःखोत्पत्तेर्विदुषस्तत्त्वज्ञान-संतोषलक्षणसुखोत्पत्तेस्तन्निमित्तत्वात्।

पुनरकषायस्यापि ध्रुवमेव बंधः स्यात्। ततो न कश्चिन्मोक्तुमर्हति तदुभयाभावासंभवात्।

कथं पुनः स्याद्वादे पुण्यपापास्रवः स्यादित्याहुः—

विशुद्धिसंक्लेशांगं चेत् स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापास्रवो युक्तो न चेद् व्यर्थस्तवार्हतः।।९५।।

कः पुनः संक्लेशः का वा विशुद्धिरिति चेदुच्यते—आर्तरौद्रध्यानपरिणामः संक्लेशः तदभावो

श्रीमान् आचार्य श्री विद्यानन्दमहोदय (हजार वर्ष पूर्व) अष्टसहस्री ग्रंथ में कहते हैं—

"उन वीतरागी पुरुषों में मनःसंकल्प का अभाव है, इसलिए बंध नहीं होता ? यदि ऐसी बात है तब तो पर में सुख-दुःख को उत्पन्न कराना ही पुण्य-पाप के बंध का हेतु एकान्त से संभव नहीं है।

पुनश्च—यदि ऐसी बात है तब तो पर में सुख-दुख को उत्पन्न कराना ही एकान्त से पुण्य-पाप के बंध का हेतु नहीं रहता है। उसी का स्पष्टीकरण करते हैं—

यदि अपने आप में दुःख को उत्पन्न करने से एकांत से पुण्यबंध एवं सुख उत्पादन करने से पापबंध माना जाये, तो वीतराग एवं विद्वान् मुनि भी निमित्त से पुण्य पाप से बंध जाने चाहिए।।९३।।

यदि अपने में दुःख के उत्पादन से पुण्य और सुख के उत्पन्न करने से पाप बंध होता है, ऐसा माना जावे तो वीतरागी मुनि और विद्वान् मुनि भी उन पुण्य-पाप के द्वारा अपने को बंध से युक्त कर लेंगे, क्योंकि निमित्त का सद्भाव पाया जाता है। वीतरागी मुनि त्रिकाल योगादि के अनुष्ठानरूप काय-क्लेशादि से अपने में दुःख को उत्पन्न करते हैं एवं विद्वान मुनि के भी तत्त्वज्ञान से संतोष लक्षण सुख की उत्पत्ति देखी जाती है। किन्तु ऐसा नहीं है।

पुनः अकषाय—कषाय से रहित वीतरागी मुनि के भी निश्चित ही बंध हो जावेगा, तब तो कोई भी मुक्त नहीं हो सकेगा, क्योंकि उन पुण्य-पापरूप उभय का अभाव ही असंभव हो जावेगा।

पुनः स्याद्वाद की मान्यता में पुण्य और पाप का आस्रव कैसे माना गया है ?

इसी का उत्तर श्री समंतभद्रस्वामी देते हैं—

यदि अपने सुख-दुःख एवं परसंबंधी सुख-दुःख विशुद्धि एवं संक्लेश के निमित्त से होते हैं तब तो उनसे ही पुण्य और पाप का आस्रव होना युक्त ही है। यदि विशुद्धि और संक्लेशरूप परिणाम नहीं हैं, तब तो वे व्यर्थ ही हैं अर्थात् पुण्य-पाप का आस्रव हो ही नहीं सकता ऐसा आप—अर्हत्प्रभु का सिद्धांत है।।९५।।

प्रश्न होता है—संक्लेश क्या है और विशुद्धि क्या है ?

श्री अकलंकदेव अष्टशती भाष्य में उत्तर देते हैं—

विशुद्धिरात्मनः स्वात्मन्यवस्थानम्।

विशुद्धिः सम्यग्दर्शनादिहेतुः धर्म्यशुक्लध्यानस्वभावा तत्कार्यविशुद्धि-परिणामात्मिका च व्याख्याता, तस्यामेवात्मन्यवस्थानसंभवात्। तदेवं विवादाध्यासिताः कायादिक्रियाः स्वपरसुखदुःखहेतवः संक्लेशकारणकार्यस्वभावाः प्राणिनामशुभफलपुद्गलसंबंधहेतवः संक्लेशांगत्वात् विषभक्षणादिकायादि-क्रियावत्। तथा विवादापन्नाः कायादिक्रियाः स्वपरसुखदुःखहेतवो विशुद्धिकारण-कार्यस्वरूपाः प्राणिनां शुभफलपुद्गलहेतवो विशुद्ध्यंगत्वात् पथ्याहारादिकायादिक्रियावत्। ततः स्यात्[१] —कथंचित् स्वपरस्थं सुखदुःखं पुण्यास्त्रवबंधहेतुर्विशुद्ध्यंगत्वात्। स्यात्पापास्त्रवहेतुः संक्लेशांगत्वात्।[२]

तात्पर्यमेतत्—दुःखशोकादयः आर्तरौद्रदुर्ध्यानरूपाः असातावेदनीयस्य आस्त्रवाः भवन्ति। न च शिष्यादीनां संरक्षणसंबोधनदण्डप्रायश्चित्तादिनिमित्तेन दुःखोत्पादनेऽपि असातावेदनीयस्यास्त्रवहेतवो भवन्ति। ततः संघव्यवस्थायां शिष्यानुग्रहानिग्रहौ कर्तव्यौ पुनश्च सर्वं त्यक्त्वा स्वात्मचिंता विधेया।

एवं अष्टमस्थलेऽसातादिषट्प्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

आर्त, रौद्रध्यानरूप परिणाम को संक्लेश कहते हैं। उन आर्त-रौद्र के अभाव से होने वाले धर्मध्यान-शुक्लध्यान को विशुद्धि कहते हैं, आत्मा का स्वात्मा में अवस्थान होना ही विशुद्धि है।

वह विशुद्धि सम्यग्दर्शन आदि के निमित्त से होती है, वह धर्मध्यान, शुक्लध्यान स्वभाव वाली है और उसके कार्यरूप विशुद्धि परिणामात्मक है ऐसा कहा गया है। क्योंकि उस विशुद्धि के होने पर ही आत्मा में अवस्थान स्थिर होना संभव है। इस प्रकार से विवादास्पद कायादि क्रियाएं स्वपर में सुख-दुःख हेतुक संक्लेश की कारण-कार्य एवं स्वभाव वाली ही प्राणियों को अशुभ फलदायी पुद्गलवर्गणाओं के संबंध में हेतु हैं, क्योंकि संक्लेश के लिए साधन हैं, जैसे कि विषभक्षण आदि काय आदि की क्रियाएं अशुभ फलदायी हैं। उसी प्रकार से विवादापन्न कायादि क्रियाएं स्व-पर सुख, दुःख हेतुक विशुद्धि के कारण, कार्य एवं स्वभाव वाली प्राणियों को शुभफलदायी पुद्गल वर्गणाओं के संबंध कराने में हेतुक हैं, क्योंकि वे विशुद्धि का अंग—साधन हैं, जैसे पथ्य आहारादि रूप कायादि क्रियाएं शुभफलदायी हैं। इसलिए—

१. स्यात्—कथंचित् स्व-पर में स्थित सुख-दुःख पुण्यास्त्रव के हेतु हैं क्योंकि वे विशुद्धि के अंगस्वरूप हैं।

२. कथंचित् वे पापास्त्रव के हेतु हैं क्योंकि वे संक्लेश के अंगस्वरूप हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि जो दुःख, शोक आदि आर्त, रौद्र दुर्ध्यानरूप परिणाम हैं वे असाता वेदनीय के आस्त्रव होते हैं। किन्तु जो गुरुजन शिष्य आदिकों में संरक्षण, संबोधन, दण्ड, प्रायश्चित्त आदि के निमित्त से दुःख का उत्पादन करते हैं फिर भी वे असातावेदनीय के आस्त्रव नहीं होते हैं, इसलिए साधुओं की संघ की व्यवस्था में शिष्यों का अनुग्रह और निग्रह करना ही चाहिए, पुनः सब कुछ छोड़कर अपनी आत्मा का चिंतन करना चाहिए।

भावार्थ—इस प्रकार यहाँ तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ, उनकी टीका तथा अष्टसहस्री ग्रंथ के आधार से असातावेदनीय के आस्त्रव व बंध के कारण बताये गये हैं। उनको छोड़कर सातावेदनीय आदि के कारणों को जुटाते हुए पुनः उनसे भी छूटकर शुद्धात्मतत्त्व का चिंतन करके मोक्ष पुरुषार्थ को सफल करना चाहिए।

इस प्रकार यहाँ आठवें स्थल में असाता आदि छह प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का कथन करने रूप से दो सूत्र हुए हैं।

---

१. स्यात्-कथंचित्। २. अष्टसहस्री अ. ९, कतिपयांशाः सन्ति।

इदानीं मिथ्यात्वादि षोडशप्रकृतिबंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय जादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्ट सरीरसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१५।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — एतयोः सूत्रयोर्देशामर्शकत्वमेव। पृच्छासूत्रेणात्रापि सर्वाः पृच्छाः कर्तव्याः। उत्तरसूत्रेण स्वामित्वं बंधाध्वानमपि प्ररूपितमेव। तेनैतेन सूचितार्थाणां प्ररूपणा क्रियते —

मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, मिथ्यादृष्टिचरमसमये बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीराणां मिथ्यात्ववद्भंगः, मिथ्यादृष्टौ बंधोदयव्युच्छेदं प्रति एतासां मिथ्यात्वेन सह भेदाभावात्।

नपुंसकवेदस्य पूर्वं बंधव्युच्छेदः पश्चादुदयस्य, मिथ्यादृष्टौ बंधे नष्टे सति पश्चात् अनिवृत्तिकरणे उदयव्युच्छेदात्।

एवं निरयायुः-नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्विनामकर्मणोः बंधोदयव्युच्छेदो भवति, मिथ्यादृष्टौ बंधे नष्टे

अब मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों के बंधकर्ता एवं बंध के अकर्ताओं का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नारकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर इनके कौन बंधक हैं और कौन अबंधक हैं ?।।१५।।

मिथ्यादृष्टि जीव बंधक हैं। ये बंधकर्ता हैं और शेष अबंधक हैं।।१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ये दोनों ही सूत्र देशामर्शक ही हैं। यहाँ पृच्छासूत्र से सभी तेईस पृच्छाएं करना चाहिए और उत्तरवाची सूत्र से स्वामित्व तथा बंधाध्वान का प्ररूपण हो ही गया है। अब इनसे सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं —

मिथ्यात्व प्रकृति का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि मिथ्यात्वगुणस्थान के अंतिम समय में इसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर प्रकृतियों का बंधोदय व्युच्छेद मिथ्यात्व के समान ही है क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होने वाले बंधोदय व्युच्छेद के प्रति इनका मिथ्यात्व के साथ कोई भेद नहीं है। नपुंसकवेद का पहले बंध व्युच्छेद पश्चात् उदय व्युच्छेद होता है, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान में बंध के नष्ट हो जाने पर अनंतर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद होता है। इसी प्रकार नरकायु और नरकगत्यानुपूर्वी का बंधोदय व्युच्छेद कहना चाहिए, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में बंध के नष्ट हो जाने पर

सति पश्चादसंयतसम्यग्दृष्टिजीवे उदयव्युच्छेदात्। एवं हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहननयोरपि वक्तव्यं, मिथ्यादृष्टौ बंधे नष्टे सति पश्चाद् यथाक्रमेण सयोगिकेवलि-अप्रमत्तसंयतयोरुदयव्युच्छेदात्।

मिथ्यात्वस्य स्वोदयेनैव बंधः, नरकायुः-नरकगति-नरकगत्यानुपूर्विप्रकृतयः परोदयेनैव बध्यन्ते, स्वोदयेन स्वकबंधस्य विरोधात्। नपुंसकवेद-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीराणि स्वोदयपरोदयाभ्यां बध्यन्ते, उभयथापि विरोधाभावात्।

मिथ्यात्वं नरकायुश्च निरन्तरबंधिनः, ध्रुवबंधित्वात् अद्धाक्षयेण बंधविनाशाभावात्। अवशेषसर्वप्रकृतयः सान्तरं बध्यन्ते, तासां प्रतिपक्षप्रकृतिबंधसंभवात्।

चतुर्भिर्मूलप्रत्ययैः पंचपंचाशन्नानासमयोत्तरप्रत्ययैः दश-अष्टादशएकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्ययैश्च मिथ्यादृष्टिरेताः प्रकृतीः बध्नाति। नवरि वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययैर्विना एकपंचाशत्-प्रत्ययैर्नरकायुः बध्नानि इति वक्तव्यं। एवं नरकगति-नरकगत्यानुपूर्व्योः अपि। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-सूक्ष्म-साधारण-अपर्याप्तानां वैक्रियिकद्विकेन विना त्रिपंचाशत्प्रत्ययाः।

मिथ्यात्वं चतुर्गतिसंयुक्तं, नपुंसकवेदं देवगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, नरकायुः-नरकगति-नरकगत्यानु-पूर्विनामकर्माणि नरकगतिसंयुक्तं, हुंडकसंस्थानं देवगतिं मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-अपर्याप्तप्रकृती तिर्यग्गतिमनुष्यगतिसंयुक्तं, शेषाः तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

पश्चात् असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनके उदय का व्युच्छेद होता है। इसी प्रकार हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिका संहनन को भी कहना चाहिए, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में इन दोनों का बंध नष्ट हो जाता है, पश्चात् क्रम से सयोगिकेवली गुणस्थान में और अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में इनका उदय व्युच्छेद होता है।

मिथ्यात्व प्रकृति का स्वोदय से ही बंध होता है, नरकायु, नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी का परोदय में ही बंध होता है, क्योंकि स्वोदय से इनके अपने बंध का विरोध है। नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर स्वोदय-परोदय से बंधते हैं, क्योंकि दोनों प्रकार से इनका बंध होने में कोई विरोध नहीं है।

मिथ्यात्व और नरकायु निरंतर बंधने वाली हैं, क्योंकि ध्रुवबंधी होने से कालक्षय से इनके बंध विनाश का अभाव है। शेष सर्वप्रकृतियाँ सान्तर बंधने वाली हैं, क्योंकि उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध की संभावना है।

चार मूल प्रत्ययों से पचपन नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्ययों से तथा दश व अठारह एक समय संबंधी जघन्य एवं उत्कृष्ट प्रत्ययों से मिथ्यादृष्टी इन सोलह प्रकृतियों को बांधता है। विशेष इतना है कि वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणयोग इन चार प्रत्ययों के बिना वह इक्यावन प्रत्ययों — कारणों से नरकायु को बांधता है, ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार नरकगति और नरकगत्यानुपूर्वी के भी इक्यावन प्रत्यय — कारण हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त प्रकृतियों के वैक्रियकद्विक के बिना त्रेपन प्रत्यय हैं।

मिथ्यात्व को चार गतियों से संयुक्त, नपुंसकवेद को देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी और नरकायु को नरकगति से संयुक्त, हुण्डकसंस्थान को देवगति बिना तीन गतियों से संयुक्त, असंप्राप्तसृपाटिका संहनन और अपर्याप्त नाम कर्मप्रकृतियों को तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों को तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिः स्वामी। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावरनामकर्मणां बंधस्य नरकगतिं मुक्त्वा त्रिगतिमिथ्यादृष्टिः स्वामी। शेषाणां प्रकृतीनां तिर्यग्मनुष्यगतिमिथ्यादृष्टिः स्वामी। बंधाध्वानं बंधव्युच्छित्तिस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य बंधः साद्यनादि-ध्रुवाध्रुवभेदेन चतुर्विधः। शेषाणां बंधः साद्यध्रुवौ स्तः।

मिथ्यात्वनपुंसकवेदनरकत्रिकादिषोडशप्रकृतयो मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बध्नन्ति अन्तिमक्षणे तासां व्युच्छित्तिर्भवति।

इतो विशेषः कथ्यते —

एतस्य मिथ्यात्वस्य दर्शनमोहनीयस्य बन्धकारणानि कथ्यन्ते —

अरहंतसिद्धचेदिय-तव सुदगुरु धम्मसंघपडिणीगो[1]।
बंधदि दंसणमोहं अणंतसंसारिओ जेण।।८०२।।

नरकायुर्बन्धकारणान्यपि उच्यन्ते —

मिच्छो हु महारंभो णीस्सीलो तिव्वलोहसंजुत्तो।
णिरयाउगं णिबंधदि णावमदी रूद्दपरिणामी[2]।।८०४।।

अन्यत्र कथ्यन्ते —

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।१३।।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन प्रकृतियों के चार गतियों के मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर नामकर्म के बंध के नरकगति को छोड़कर तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के तिर्यंचगति व मनुष्यगति के मिथ्यादृष्टि जीव स्वामी हैं।

बंधाध्वान और बंधव्युच्छित्तिस्थान सुगम हैं।

मिथ्यात्व का बंध सादिक, अनादिक, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकार का है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि और अध्रुव है।

ये मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकत्रिक आदि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में बंधती हैं, इस गुणस्थान के अंतिम क्षण में इनकी व्युच्छित्ति होती है।

यहाँ विशेष कहते हैं — इस दर्शनमोहनीय नामक मिथ्यात्व के बंध के कारण को कहते हैं —

जो जीव अरिहंत, सिद्ध, जिनप्रतिमा, तप, निर्ग्रन्थगुरु, श्रुत, धर्म और संघ के प्रतिकूल है — इन्हें झूठा दोष लगाता है वह जीव दर्शनमोहनीय का बंध करता है, जिसके उदय से अनंतसंसारी होता है।।८०२।।

इसी प्रकार श्री नेमिचन्द्राचार्यवर्य नरकायु के बंध के कारण कहते हैं —

जो जीव मिथ्यादृष्टि है, बहुत आरंभ वाला है, शीलरहित है, तीव्र लोभी है, रौद्र परिणामी है और जिसकी बुद्धि पापकार्यों में लगी रहती है वह नरकायु का बंध करता है।।८०४।।

अन्यत्र — तत्त्वार्थसूत्र की टीका — तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में भी कहा है —

केवली भगवान, श्रुत — शास्त्र, संघ, धर्म और देव का अवर्णवाद करने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है।।१३।।

१-२. गोम्मटसार कर्मकांड।

आवरणद्वयरहितं ज्ञानं येषां विद्यते ते केवलिनः। केचित् केवलिनामवर्णवादः-निन्दावचनं कथयन्ति— केवलिनः कवलाहारजीविनः, तेषां च रोगो भवति उपसर्गश्च संजायते, नग्ना भवन्त्येव परं वस्त्राभरणमंडिता दृश्यन्ते इत्यादिकं सर्वं केवलज्ञानिगुणवन्महतामसद्भूतदोषोद्भवनमवर्णवादो वेदितव्यः।

सर्वज्ञोपदिष्टं अतिशयवद्बुद्धिऋद्धिसमुपेतगणधरदेवानुस्मृतग्रन्थगुम्फितं श्रुतमित्युच्यते—मांसभक्षणं मद्यपानं मातृस्वस्रादिमैथुनं जलगालने महापापमित्यादिकमाचरणं किल शास्त्रोक्तं श्रुतस्यावर्णवादः।

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रपात्राणां श्रमणानां परमदिगंबराणां गणः समूहः संघः उच्यते। एते दिगंबराः खलु शूद्रा अशुचयः अस्नानाः त्रयीबहिर्भूताः कलिकालोत्पन्ना इत्यादि गुणवतां महतां दिगंबराणां असद्भूतदोषोद्भवनं संघस्यावर्णवादः।

अर्हदुपदिष्टो धर्मः खलु निर्गुणः तद्विधायका ये पुरुषा वर्तन्ते ते सर्वेऽपि असुरा भविष्यन्ति इत्यादिकं गुणवति महति केवलिप्रणीते धर्मेऽसद्भूतदोषोद्भवनं अविद्यमानदोषकथनं धर्मस्यावर्णवादः।

देवाः किल मांसोपसेवाप्रियाः तदर्थं तद्वचनविधातारः उर्वन्तरिक्षं लभन्ते इत्यादिको देवावर्णवादः। एतत्सर्वमदोषदोषोद्भवनं सम्यक्त्वमोहास्रवकारणं वेदितव्यं[1]।

एतादृशैर्भावैर्यदि दर्शनमोहस्योत्कृष्टस्थितिः सप्ततिकोटाकोटिसागरप्रमाणं बध्येत तर्हि जीवाः अनन्तसंसारे भ्राम्यन्ति सम्यक्त्वलाभो दुर्लभस्तेषां। नपुंसकवेदस्यास्रवाः—प्रचुरकषायत्वं गुह्येन्द्रियविनाशनं परांगनापमानावस्कंदनं स्त्रीपुरुषानंगव्यसनित्वं व्रतशीलादिधारिपुरुषप्रमथनं तीव्ररागश्चेत्यादयो नपुंसकवेदनीयस्यास्रवा भवन्ति[2]।

दोनों आवरण से रहित केवलज्ञान जिनके होता है, वे केवली हैं। कोई केवली भगवन्तों का अवर्णवाद—निन्दारूप वचन कहते हैं—केवली भगवान कवलाहार—हम जैसे ग्रास का भोजन करते हैं, उनके रोग होता है और उनको उपसर्ग होता है, वे नग्न ही रहते हैं किन्तु वस्त्राभरण से मंडित दिखते हैं, इत्यादिरूप से महान गुणी केवली भगवन्तों के असद्भूत दोष आरोपित करना 'केवली अवर्णवाद' है।

जो सर्वज्ञ देव के द्वारा उपदिष्ट, अतिशय बुद्धि के धारक, ऋद्धियों से सम्पन्न गणधर देवों के द्वारा गुम्फित 'श्रुत' कहलाता है। उसमें मांस भक्षण, मदिरापान, माता-बहन आदि के साथ मैथुन करना ठीक है तथा पानी छानना महापाप है, इत्यादि आचरण शास्त्रोक्त है ऐसा कथन करना 'श्रुतावर्णवाद' है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रधारी, परम दिगम्बर मुनियों के समूह को 'संघ' कहते हैं। ये नग्न दिगम्बर साधु शूद्र हैं, स्नान नहीं करते हैं, अतः अपवित्र हैं, ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों से बहिर्भूत हैं, इस कलिकाल में उत्पन्न हुए हैं, इत्यादिरूप से महान् गुणी दिगम्बर साधुओं के असद्भूत दोषों का उद्भावन करना ''संघअवर्णवाद'' है।

अर्हंत भगवान के द्वारा कथित धर्म, निर्गुण—निःसार है, उनके धारण करने वाले जो पुरुष हैं, वे सभी मर कर असुर होवेंगे, इत्यादिरूप से महागुणयुक्त केवली प्रणीत धर्म में असद्भूत दोषोंको लगाना धर्म का अवर्णवाद है।

देवतागण मांसभक्षण और सुरापान करते हैं अतः उनको मानने वाले लोग पाताललोक में जायेंगे, इत्यादि कहना 'देवों का अवर्णवाद है।'

इन सभी केवली आदि निर्दोष में असत्य दोषों का आरोप करना सम्यक्त्व मोहनीय—दर्शनमोहनीय के आस्रव का कारण है, ऐसा जानना।

ऐसे इन भावों से यदि दर्शनमोह की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर की बंध जाती है तब जीव अनंत संसार में भ्रमण करते हैं, उनके लिए सम्यक्त्व की प्राप्ति दुर्लभ ही है।

१-२. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४७७, ४७९, ४८०।

नरकायुषः आस्रवाः —

बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।१५।।

विस्तारेण तु — मिथ्यादर्शनं तीव्ररागः अनृतवचनं परद्रव्यहरणं निःशीलता निश्चलवैरं परोपकारमतिरहितत्वं यतिभेदः समयभेदः कृष्णलेश्यत्वं विषयातिगृद्धिः रौद्रध्यानं हिंसादिक्रूरकर्मनिरंतरप्रवर्तनं बालवृद्धस्त्रीहिंसनं चेत्यादयः अशुभतीव्रपरिणामा नारकायुरास्रवा भवन्ति[१]।

एवं नवमस्थले मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना अप्रत्याख्यानावरणादिनवप्रकृतीनां बंधकाबंधकादिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अपच्चक्खाणावरणीय-कोध-माण-माया-लोभ-मणुस्सगइ-ओरालियसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसंघडण-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्विणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१७।।

अब नपुंसकवेद के आस्रव कहते हैं —

प्रचुरमात्रा में — अति कषाय करना, गुप्त इंद्रियों का विनाश करना, परस्त्री से बलात्कार करना, स्त्री-पुरुष के साथ अनंगक्रीड़ा करना, व्रत — शीलधारी पुरुषों का तिरस्कार करना और तीव्र रागभाव रखना, इत्यादि परिणामों से नपुंसकवेद का आस्रव होता है।

अब नरकायु के आस्रव कहते हैं —

बहुत आरंभी और बहुत परिग्रही के नरकायु का आस्रव होता है।।१५।।

विस्तार से — मिथ्यादर्शन, तीव्ररागभाव, असत्य बोलना, दूसरे के धन का अपहरण, निःशीलता — शील का अभाव, निश्चल वैर-विरोध, परोपकार भाव नहीं होना, यतियों में भेद कराना, शास्त्रों में भेद कराना, कृष्णलेश्यारूप परिणाम, विषयों में अति आसक्ति, रौद्र ध्यान, हिंसादि क्रूर कार्यों में सतत प्रवृत्ति, बालक, वृद्ध, स्त्री की हिंसा करना आदि कारणों से और तीव्र अशुभ परिणामों से नरकायु का आस्रव होता है।

भावार्थ — कर्मों का आना आस्रव है और आत्मा के साथ एकमेक होकर बंध जाना बंध है अतः आस्रव के कारण ही बंध के कारण हैं तथा बंध के कारण ही आस्रव के कारण हैं। ऐसा जानकर इन आस्रव व बंध के कारणों से विरक्त होना चाहिए।

इस प्रकार नवमें स्थल में मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों के बंध के स्वामी के कथनरूप से यहाँ ये दो सूत्र हुए हैं।

अब अप्रत्याख्यानावरण आदि नव प्रकृतियों के बंधक और अबंधक आदि का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नाम कर्म का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।१७।।

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६, पृ. ४७७, ४७९, ४८०।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एते सूत्रे देशामर्शके, स्वामित्व-बंधाध्वानयोरेव प्ररूपणात्। तेनैतेन सूचितार्थस्य प्ररूपणा क्रियते—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य मनुष्यगत्यानुपूर्विनामकर्मणो बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, एकस्मिन् असंयतसम्यग्दृष्टौ द्वयोर्विनाशोपलंभात्। मनुष्यगतेः पूर्वं बंधः पश्चात् उदयो व्युच्छिन्नः, असंयत-सम्यग्दृष्टौ बंधे व्युच्छिन्ने पश्चात् अयोगिकेवलिचरमसमये उदयव्युच्छेदात्। एवमौदारिकशरीरौदारिकांगोपांग-वज्रर्षभ-वज्रनाराचसंहननानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नो भवति। नवरि सयोगिकेवलिचरमसमये उदयव्युच्छेदात्।**

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कादीनां सर्वेषां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, विरोधाभावात्। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवयोः मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननानां परोदयो बंधः।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कबंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। मनुष्यगति-गत्यानुपूर्विबंधः मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तर-निरन्तरः, आनतादिदेवेषु निरंतरबंधं लब्ध्वान्यत्र सान्तरबंधोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्य-संयतसम्यग्दृष्ट्योः निरन्तरो, देवनारकार्पितद्विगुणस्थानयोरन्यगति-गत्यानुपूर्विबंधाभावात्। एवमौदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रर्षभनाराचसंहननानां वक्तव्यं, औदारिकशरीरस्य सर्वदेवनारकेषु तेजोवायुकायिकेषु

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये दोनों सूत्र देशामर्शक हैं, इनमें से प्रश्नवाची सूत्र से तो तेईस पृच्छाएं लेना है। उत्तरवाची सूत्र केवल बंधस्वामी और बंधाध्वान को कहता है इसलिए देशामर्शक होने से इस सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और मनुष्यगत्यानुपूर्वी नामकर्म प्रकृति की एक साथ बंधव्युच्छित्ति और उदय व्युच्छित्ति होती है, क्योंकि एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनका विनाश पाया जाता है। मनुष्यगति का पूर्व में बंध पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंधव्युच्छेद हो जाने पर आगे अयोगिकेवली गुणस्थान के चरम समय में इसका उदय व्युच्छेद होता है। इसी प्रकार औदारिक शरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभनाराच संहनन का पूर्व में बंध व्युच्छेद पुनः उदय व्युच्छिन्न होता है। विशेष इतना है कि सयोगी भगवान के अंतिम समय में उदय व्युच्छेद होता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क आदि सबका स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि ऐसा होने में कोई विरोध नहीं है। विशेष इतना है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव में मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभनाराचसंहनन का परोदयबंध होता है।

अप्रत्याख्यानचतुष्क का बंध निरन्तर है क्योंकि ये ध्रुव बंधी हैं। मनुष्यगति और तदानुपूर्वी का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के सान्तर-निरन्तर है, क्योंकि आनत आदि देवों में निरन्तर बंध को प्राप्त कर अन्यत्र सान्तर बंध पाया जाता है।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि में निरन्तर है, क्योंकि देवों व नारकियों के इन विवक्षित दो गुणस्थानों में अन्य गति व आनुपूर्वी के बंध का अभाव है। इसी प्रकार औदारिकशरीर, औदारिक शरीरांगोपांग और वज्रर्षभनाराच संहनन के भी कहना चाहिए। इसका कारण यह है कि औदारिक शरीर का सर्व देव, नारकी तथा तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवों में निरन्तर बंध पाया जाता है। अन्यत्र यही बंध सान्तर देखा

च निरंतरं बंधोपलंभात्, अन्यत्र सान्तरबंधदर्शनात्, औदारिकशरीरांगोपांगस्य सर्वनारकेषु सनत्कुमारादिदेवेषु च निरन्तरं बंधं लब्ध्वा ईशानाद्यधस्तनदेवानां मिथ्यादृष्टिसासादनयोः तिर्यग्मनुष्ययोश्च सान्तरबंधोपलंभात्, वज्रर्षभसंहननस्य देवनारकसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरंतरं बंधं लब्ध्वान्यत्र सान्तरबंधोपलंभात्।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं चतुर्गुणस्थानजीवा ज्ञानावरणप्रत्ययैरेव बध्नंति। एवं मनुष्यगति-गत्यानुपूर्व्योरपि चतुःषु गुणस्थानेषु प्रत्ययाः प्ररूपयितव्याः। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टेः द्वाचत्वारिंशत्प्रत्ययाः वक्तव्याः, औदारिककाययोगप्रत्ययाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टेः चतुश्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिककाययोग-औदारिकमिश्रकाययोगप्रत्यययोरभावात्। एवमौदारिकशरीर-औदारिकांगोपांग-वज्रर्षभसंहननानां अपि प्रत्ययाः मनुष्यगतिरिव ज्ञातव्याः।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कं मिथ्यादृष्टिः चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनो नरकगतेर्विना त्रिगतिसंयुक्तं, शेषौ द्वौ अपि गुणस्थानवर्तिनौ देवमनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नंति। मनुष्यगति-तत्प्रायोग्यानुपूर्विप्रकृती सर्वगुणस्थानजीवा मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। औदारिकद्विकं मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्ट्य-संयतसम्यग्दृष्टयः मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। एवं वज्रर्षभनाराचस्यापि वक्तव्यं, भेदाभावात्।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चतुर्गतिकाः मिथ्यादृष्ट्यादि-चतुर्गुणस्थानवर्तिनः स्वामिनः। मनुष्यगति-गत्यानुपूर्वि-औदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टिसासादनाः स्वामिनः। द्विगति-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधनष्टप्रदेशोऽपि सुगमः।

जाता है। औदारिक शरीरांगोपांग का सब नारकियों में और सानत्कुमार, माहेन्द्रकल्प के देवों में भी निरंतर बंध पाकर ईशानादि अधस्तन देवों के मिथ्यादृष्टि व सासादन गुणस्थानों में तथा तिर्यंच और मनुष्यों में सान्तर बंध पाया जाता है। वज्रर्षभनाराच संहनन का देव और नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरन्तर बंध पाकर अन्यत्र सान्तर बंध पाया जाता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क को चार गुणस्थानों के जीव ज्ञानावरण प्रत्ययों से ही बांधते हैं। इसी प्रकार मनुष्यगति और तदानुपूर्वी के भी चारों गुणस्थानों में प्रत्ययों की प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि के बयालीस प्रत्यय कहना चाहिए, क्योंकि उसके औदारिक काययोग प्रत्यय का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि के चवालीस प्रत्यय कहना चाहिए, क्योंकि उसके औदारिक काययोग और औदारिक-मिश्रकाययोग प्रत्ययों का अभाव है। इसी प्रकार औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभनाराच संहनन के भी प्रत्यय मनुष्यगति के समान कहना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि जीव अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क को चार गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त, शेष दो गुणस्थानवर्ती—तृतीय, चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी को सर्वगुणस्थानवर्ती जीव मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि और सासादनगुणस्थानवर्ती जीव औदारिकद्विक को तिर्यंचगति-मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगति से संयुक्त इन औदारिकद्विक को बांधते हैं। इसी प्रकार वज्रऋषभनाराचसंहनन के भी कहना चाहिए, क्योंकि इनसे कोई भेद नहीं है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के बंध के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टिजीव, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। मनुष्यगति, तदानुपूर्वी, औदारिकद्विक और वज्रऋषभनाराचसंहनन के चारों गति के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी हैं। दो गतियों के सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं।

बंधाध्वान और बंध नष्ट प्रदेश भी सुगम है।

अप्रत्याख्यानचतुष्कबंधो मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषेषु गुणस्थानेषु त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्। मनुष्यद्विक-औदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहनननानां बंधः सर्वगुणस्थानेषु साद्यध्रुवौ, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधसंभवात्।

कश्चिदाह—औदारिकशरीरस्य नित्यनिगोदेषु सर्वकालं वैक्रियिकाहारशरीरबंधविरहितेषु- ध्रुवबंधोऽनादि-बंधश्च किन्न लभ्यते ?

आचार्यः प्राह—न लभ्यते, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधशक्तिसद्भावं प्रतीत्य अनादिध्रुवभावाप्ररूपणात्, चतुर्गतिनिगोदान् मुक्त्वा नित्यनिगोदानामत्राधिकाराभावाद्वा। बंधाभिव्यक्तिं प्रतीत्य पुनः बंधस्यानादि-ध्रुवत्वं न विरुध्यते।

अप्रत्याख्यानावरणक्रोधादयः असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तबंधकारणानि भवन्ति। एतेषां कषायाणां वासनाकालः षण्मासं वर्तते।

उक्तं च—

अंतोमुहुत्त पक्खं छम्मासं संख-ऽसंखणंतभवं।
संजलणमादियाणं वासणकालो दु णियमेण[१]।।४६।।

अत एव सम्यग्दृष्टिभिः षण्मासस्योपरि क्रोधवैरमोहादिभावा न धारणीयाः, वैरभावादिकं मुक्त्वा सम्यग्दर्शनं रक्षणीयं भवति।

प्रत्यहं च निश्चयनयेन शुद्धात्मतत्त्वभावना कर्तव्या, व्यवहारनयबलेन देवगुरुधर्मेषु भक्तिपूजादिकं

मिथ्यादृष्टि जीव में अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकार का है, क्योंकि ये चारों प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं। शेष गुणस्थानों में इनका बंध तीन प्रकार का है, क्योंकि वहाँ ध्रुवपने का अभाव है। मनुष्यगति-तदानुपूर्वी, औदारिकद्विक और वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म का बंध सभी गुणस्थानों में सादि व अध्रुव है, क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध संभव है।

यहाँ कोई आशंका करता है—

वैक्रियिक शरीर और आहारक शरीर के बंध से रहित नित्य-निगोदिया जीवों में औदारिकशरीर का ध्रुवबंध और निरंतर बंध सदा क्यों नहीं कहा ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं—

सदा नहीं होता है, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों की बंध की शक्ति के सद्भाव की अपेक्षा अनादि और ध्रुवबंध की प्ररूपणा नहीं की है अथवा चतुर्गति निगोदों को छोड़कर नित्यनिगोदिया जीवों का यहाँ अधिकार नहीं है, परन्तु बंध की अभिव्यक्ति की अपेक्षा करके इनके बंध के अनादि और ध्रुव होने में कोई विरोध नहीं है।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोधादि कषायें असंयतसम्यग्दृष्टि पर्यंत जीवों के बंध की कारण होती हैं और इन कषायों का वासनाकाल छह मास है।

कहा भी है—गोम्मटसार कर्मकाण्ड ग्रंथ में—

संज्वलन कषाय का वासनाकाल अन्तर्मुहूर्त, प्रत्याख्यानावरण का पक्ष, अप्रत्याख्यानावरण का छह मास और अनंतानुबंधी का वासनाकाल संख्यात, असंख्यात व अनंत भव प्रमाण है, ऐसा नियम है। इसलिए सम्यग्दृष्टि जीवों को छह माह के ऊपर किसी के प्रति क्रोध, वैर व मोह आदि नहीं रखना चाहिए। प्रत्युत् वैर भाव आदि को छोड़कर अपना सम्यग्दर्शन सुरक्षित रखना चाहिए और प्रतिदिन निश्चयनय से शुद्धात्मतत्त्व की

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड।

कुर्वाणैः स्वपदानुकूलमेवाचरणं विधातव्यं, किंच—सम्यग्दृष्टेः सम्यक्त्वाचरणं विद्यते।

एवं दशमस्थलेऽप्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतिबंधकाबंधकनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति प्रत्याख्यानावरणक्रोधमानमायालोभानां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?।।१९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एते सूत्रे देशामर्शके स्तः, स्वामित्व-बंधाध्वानमेव प्ररूपणात्। तेनात्रानुक्तार्थानां प्ररूपणा क्रियते—**

प्रत्याख्यानावरणीयचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, संयतासंयते बंधस्येव उदयव्युच्छेददर्शनात्। एतासां चतसृणामपि बंधः स्वोदयपरोदयाभ्यां, क्रोधादीनां बंधकाले तस्यैव उदयेनापि भवितव्यमिति नियमाभावात्।

भावना करना चाहिए तथा व्यवहारनय से देव, गुरु और धर्म में भक्ति, पूजा आदि करते हुए अपने पद के अनुकूल ही आचरण करना चाहिए, क्योंकि सम्यग्दृष्टि—असंयतसम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वाचरण चारित्र माना है।

भावार्थ—श्री कुंदकुंददेव ने चारित्रपाहुड़ ग्रंथ में असंयतसम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वाचरण चारित्र कहा है जो कि अणुव्रत, महाव्रत न होने से देशव्रत—अणुव्रत व महाव्रतरूप नहीं है फिर भी हिंसा आदि में अनर्गल प्रवृत्ति न होने से और धर्म, देव, गुरु आदि में अनुराग विशेष होने से तथा अष्टमूलगुण के होने से व दुर्व्यसनों का त्याग होने से वही सम्यक्त्वाचरण है।

इस प्रकार दशवें स्थल में अप्रत्याख्यानावरण आदि प्रकृतियों के बंधक —बंधकर्ता तथा बंध के अकर्ता का निरूपण करते हुए दो सूत्र हुए।

संप्रति प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया व लोभ प्रकृतियों के बंधक-अबंधक के निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ के कौन बंधक हैं और कौन अबंधक हैं ?।।१९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक इनके बंधक हैं। ये बंधक हैं, अवशेष अबंधक हैं।।२०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये दोनों सूत्र देशामर्शक हैं। क्योंकि ये बंधस्वामित्व और बंधाध्वान का ही निरूपण करते हैं। अब यहाँ देशामर्शक होने से अनुक्त नहीं कहे गये अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

प्रत्याख्यानावरणीयचतुष्क का बंध और उदय एक साथ व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि संयतासंयत में बंधव्युच्छित्ति के समान ही उदय व्युच्छित्ति देखी जाती है। इन चारों प्रकृतियों का बंध स्वोदय और परोदय से होता है, क्योंकि क्रोध आदि के बंधकाल में उनका उदय भी होता है। इसका कोई नियम नहीं है।

एतस्य चतुष्कस्यापि निरन्तरो बंधः, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबंधप्रकृतिषु अंतःपातात्। मिथ्यादृष्ट्यादि-पंचगुणस्थानेषु ये प्रत्ययाः प्ररूपिता मूलोत्तरभेदेन, तैः प्रत्ययैः एताः बध्नन्ति इति तेषु-तेषु गुणस्थानेषु ते ते चैव प्रत्ययाः वक्तव्याः, बंधस्य प्रत्ययसमूहकार्यत्वात्। अथवा एतासां प्रकृतीनां बंधस्य प्रत्याख्यानप्रकृतेरुदय-सामान्यं प्रत्ययः। शेषकषायाणामुदयो योगश्च प्रत्ययो न भवति, एतस्मादुपरि तेषु सत्सु अपि एतासां बंधाभावात्। न मिथ्यात्वानन्तानुबंधि-अप्रत्याख्यानावरणाणामुदयोऽपि एतासां बंधस्य प्रत्ययः , तेन विनापि बंधोपलंभात्।

यस्यान्वय-व्यतिरेकाभ्यां यस्यान्वयव्यतिरेकौ भवतः, तत्तस्य कार्यमितरच्च कारणं। न चेदं प्रत्याख्यानोदयं मुक्त्वान्यत्रार्थे, तस्मात् प्रत्याख्यानोदय एव प्रत्यय इति सिद्धं।

मिथ्यादृष्टौ नष्टबंधषोडशप्रकृतीनां बंधस्य मिथ्यात्वोदयश्चैव प्रत्ययः, तेन विना तासां बंधानुपलंभात्।

सासादने नष्टबंधपंचविंशतिप्रकृतीनां अनन्तानुबंधिनामुदयश्चैव प्रत्ययः, तेन विना तासां बंधानुपलंभात्।

असंयतसम्यग्दृष्टौ नष्टबंधनवप्रकृतीनां बंधस्याप्रत्याख्यानोदयः कारणं, तेन विना तासां बंधानुपलंभात्।

प्रमत्तसंयते नष्टबंधषट्प्रकृतीनां बंधस्य प्रमादः प्रत्ययः, तेन विना तदनुपलंभात् एवमन्यत्रापि ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

एताः प्रकृतीः मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनो नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टिर-

---

इन चारों का भी निरन्तर बंध है, क्योंकि सैंतालीस ध्रुवबंध प्रकृतियों में अन्तर्गर्भित है।

मिथ्यादृष्टि आदि पाँच गुणस्थानों में जो मूल प्रत्यय और उत्तर प्रत्यय प्ररूपित हैं, उन्हीं प्रत्ययों से ये प्रकृतियाँ बंधती हैं, इस प्रकार उन-उन गुणस्थानों में वे ही-वे ही प्रत्यय कहना चाहिए, क्योंकि बंध प्रत्यय-समूह का कार्य है। अथवा इन प्रकृतियों के बंध का प्रत्यय प्रत्याख्यान प्रकृति का उदय सामान्य है। शेष कषायों के उदय और योगप्रत्यय नहीं हैं, क्योंकि पाँचवें गुणस्थान के ऊपर उनके रहने पर भी इनका बंध नहीं होता है। मिथ्यात्व, अनंतानुबंधी और अप्रत्याख्यानावरण प्रकृतियों का उदय भी इन प्रकृतियों के बंध का प्रत्यय नहीं है, क्योंकि उनके उदय के बिना भी इनका बंध पाया जाता है।

जिसके अन्वय और व्यतिरेक के साथ जिसका अन्वय और व्यतिरेक होता है, वह उसका कार्य और दूसरा कारण होता है और यह बात प्रत्याख्यानावरण के उदय को छोड़कर अन्यत्र है नहीं, इसलिए प्रत्याख्यानावरण का उदय ही अपने बंध का प्रत्यय — कारण है, यह बात सिद्ध हुई।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई सोलह प्रकृतियों के बंध का प्रत्यय मिथ्यात्व का उदय ही है क्योंकि उसके बिना उन सोलह प्रकृतियों का बंध नहीं पाया जाता है[१]। सासादन गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई पच्चीस प्रकृतियों के बंध का अनंतानुबंधीचतुष्क का उदय ही प्रत्यय — कारण है, क्योंकि उसके बिना इन पच्चीस प्रकृतियों का बंध नहीं पाया जाता। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई नव प्रकृतियों के बंध का अप्रत्याख्यानावरण उदय कारण है, क्योंकि उसके बिना उनका बंध नही पाया जाता। प्रमत्तसंयतगुणस्थान में व्युच्छिन्न हुई छह प्रकृतियों के बंध का प्रत्यय — कारण प्रमाद[२] है, क्योंकि उसके बिना उनका बंध नहीं पाया जाता, इसी प्रकार अन्यत्र भी जानकर कहना चाहिए।

इन प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादन जीव नरकगति के बिना तीन गतियों से

---

१. जो मिथ्यात्व को अकिंचित्कर मानते हैं, उन्हें ये धवलाटीका के आधार से लिखी गई पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं।
२. यहाँ मूल में धवला टीकाकार ने प्रमाद को बंध का कारण माना है। यथा — "बंधस्स पमादो पच्चओ" षट्खण्डागम, धवला टीका, पु. ८, पृ. ५१।

संयतसम्यग्दृष्टिश्च देवगति-मनुष्यगतिसंयुक्तं, संयतासंयता देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। चतुर्गतिकाः मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्थगुणस्थानपर्यन्ताः एतासां बंधस्य स्वामिनः। संयतासंयताः द्विगतिस्वामिनः।

बंधाध्वानं, बंधव्युच्छित्तिस्थानं च सुगमं।

एतासां बंधः मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधः, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबंधप्रकृतिषु अन्तःपातात्। उपरिमेषु गुणस्थानेषु त्रिविधो बंधः, द्विविधाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—ये केचिद् वदन्ति—''न च मिथ्यात्वं बंधकारणं, अकिंचित्करत्वात्। तैरेतत्प्रकरणं सुष्ठुतयाभ्यसनीयं। पुनश्च पंचमगुणस्थानवर्तिनामपि अस्मादृशां एतच्चतुष्कस्य बंधो वर्तते कथमस्य व्युच्छित्तिर्भवेदिति प्रयतितव्यं सन्ततम्।

प्रत्याख्यानावरणक्रोधादयः संयतासंयतानां भवन्ति, तेषां वासनाकालः पञ्चदशदिवसपर्यन्तमेव। मनुष्यास्तु संयतासंयता भवन्ति, तिर्यञ्चोऽपि देशव्रतिनो भवन्ति। स्वयंभूरमणार्धद्वीप-स्वयंभूरमणसमुद्रस्थिताः असंख्याताः तिर्यञ्चः देशव्रतिनो भूत्वा षोडशस्वर्गपर्यन्तेषु गच्छन्ति, तैरेव देवानां संख्या पूर्यते। एतज्ज्ञात्वात्र कर्मभूमिजैर्मनुष्यैरपि अणुव्रतानि गृहीतव्यानि भवन्ति।

एवं एकादशमस्थले प्रत्याख्यानावरणचतुष्कबंधाबंधादिनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

अधुना पुरुषवेद-संज्वलनक्रोधबंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पुरिसवेद-क्रोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।२१।।

संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव देवगति, मनुष्यगति से संयुक्त और संयतासंयत जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि पर्यंत जीव इन प्रकृतियों के बंध के स्वामी होते हैं, संयतासंयत जीव दो गतियों के स्वामी होते हैं।

बंधाध्वान और बंधव्युच्छित्ति स्थान सुगम हैं।

इन प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि जीवों में चारों प्रकार का है क्योंकि सैंतालीस ध्रुवबंध प्रकृतियों में ये अंतर्गर्भित हैं। इनसे ऊपर के गुणस्थानों में तीनों प्रकार का बंध है क्योंकि यहाँ दो प्रकार का अभाव है।

यहाँ तात्पर्य यह समझना कि, जो कोई कहते हैं कि मिथ्यात्व बंध का कारण नहीं है, क्योंकि वह अकिंचित्कर है। उन सभी को यह प्रकरण अच्छी तरह से अभ्यास करने योग्य है। पुनः पंचमगुणस्थानवर्ती हम जैसे के भी इन प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध है। कैसे इनकी व्युच्छित्ति होवे निरन्तर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए। ये प्रत्याख्यानावरणचतुष्क — क्रोध, मान, माया, लोभ कषायें संयतासंयत देशव्रतियों के भी होती हैं। इनका वासनाकाल पंद्रह दिवस पर्यंत ही है। मनुष्य तो संयतासंयत होते हैं, तिर्यंच भी देशव्रती होते हैं। आगे का आधा स्वयंभूरमणद्वीप और अंतिम स्वयंभूरमण समुद्र इनमें स्थित — रहने वाले असंख्यातों तिर्यंच देशव्रती होकर सोलह स्वर्गपर्यंत भी जाते हैं। उन्हीं से ही देवों की संख्या पूर्ण होती है। ऐसा जानकर यहाँ के कर्मभूमिज मनुष्यों को भी अणुव्रत ग्रहण करना चाहिए।

इस प्रकार ग्यारहवें स्थल में प्रत्याख्यानावरणचतुष्क के बंधक-अबंधक आदि के निरूपणरूप से दो सूत्र हुए।

अब पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ —

पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के कौन बंधक हैं और कौन अबंधक हैं ?।।२१।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''**मिच्छाइट्ठिप्पहुडि उवसमा खवा बंधा।**'' **एतेन सूत्रावयवेन गुणस्थानगत-बंधस्वामित्वं बंधाध्वानं च प्ररूपितं।**

'अणियट्टिबादरद्धाए गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि' इत्येतेन बंधविनष्टस्थानं प्ररूपितं। तद्यथा—शेषे—अंतरकरणे कृते यो शेषोऽनिवृत्तिकरणकाल:, तस्मिन् शेषे संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखण्डानि गत्वा एकखण्डावशेषे पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनयो: बंधो व्युच्छिन्न: इत्युक्तं भवति, एते त्रयश्चैवार्था एतेन सूत्रेण प्ररूपिता इति देशामर्शकमिदं सूत्रम्। तेनास्यान्यार्थाणां प्ररूपणा क्रियते—

पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनयो: बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनयो: उदये सत्त्वक्षयेण उपशमेण वा नष्टे बंधानुपलंभात्। संसारावस्थायां स्वोदयेन विनापि बंध उपलभ्यते इति न स्वोदयाविनाभावी एतासां बंध:?

एतादृश्याशंकायामुत्तरं दीयते—भवतु तथा तत्र संसारावस्थायां, इष्यमाणत्वात्। अत्र पुन: प्रतिपक्ष-प्रकृतिबंधेन विना बंधव्युच्छेदस्थाने एव उदयविनाशात् एकस्मिन् काले द्वयोर्विनाशो न विरुध्यते।

इन दोनों प्रकृतियों के मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण बादरसांपरायिक प्रविष्ट उपशमक एवं क्षपक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरण बादरकाल के शेष रहने पर संख्यात बहुभाग जाकर इनका बंध व्युच्छेद होता है। ये जीव बंधक हैं, शेष जीव—महामुनि अबंधक हैं।।२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—''मिथ्यादृष्टि से लेकर उपशम-क्षपक तक बंधक हैं।'' इस सूत्र के अवयव से गुणस्थानगत बंधस्वामित्व और बंधाध्वान का प्ररूपण किया गया है।' ''अनिवृत्तिकरण बादरकाल के शेष रहने पर संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है।'' इस वाक्य से बंध व्युच्छेद काल का निरूपण किया गया है।

वह इस प्रकार है—शेष—अन्तरकरण करने पर जो अवशेष अनिवृत्तिकाल रहता है उस शेष काल के संख्यात खण्ड करने पर उनमें बहुत खण्ड जाकर एक खण्ड अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध का बंध व्युच्छिन्न होता है, यह उसका अभिप्राय है। ये तीन ही अर्थ इस सूत्र द्वारा कहे गये हैं अतएव यह देशामर्शक सूत्र है। इसी कारण इसके अन्य अर्थों की प्ररूपणा की जाती है—

पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध इनके बंध व उदय एक साथ व्युच्छेद को प्राप्त होते हैं, क्योंकि पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध के उदय के सत्त्वक्षय से या उपशम से नष्ट होने पर उन दोनों का बंध नहीं पाया जाता।

शंका—संसारावस्था में स्वोदय के बिना भी बंध पाया जाता है, अतएव इनका बंध स्वोदय का अविनाभावी नहीं है ?

समाधान—ऐसी आशंका का समाधान करते हैं—संसारावस्था में वैसा भले ही हो, क्योंकि वहाँ वैसा इष्ट है। परन्तु यहाँ पर प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध के बिना बंधव्युच्छेदस्थान में ही उदय का व्युच्छेद होने से एक काल में दोनों का व्युच्छेद—विनाशविरुद्ध नहीं है।

एतयोर्द्वयोः प्रकृत्योः स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, स्वोदयेन विनापि बंधोपलंभात्।

क्रोधसंज्वलनस्य बंधो निरन्तरः, सप्तचत्वारिंशद्ध्रुवबंध प्रकृतीनां मध्ये पातात्।

पुरुषवेदबंधः सान्तरः, मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधोपलंभात्। निरन्तरोऽपि, पद्म-शुक्ललेश्यासहिततिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिसासादनेषु सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादि-उपरिमगुणस्थानेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

एतयोः प्रकृत्योः प्रत्ययप्ररूपणे क्रियमाणे पृथक्-पृथग् ये प्रत्ययाः मूलोत्तरनानैकसमयभेदभिन्ना गुणस्थानानां प्ररूपितास्तानि गुणस्थानानि तैः प्रत्ययैः एताः प्रकृतीः बध्नन्ति इति पृथक् प्ररूपणा नास्ति, भेदानुपलंभात्। अथवा, पुरुषवेदो वेदोदयप्रत्ययः, अपगतवेदेषु तद्बंधानुपलंभात्। क्रोधसंज्वलनः संज्वलन-कषायस्य तीव्रानुभागोदयप्रत्ययः, उपशमश्रेण्यां क्रोधचरमानुभागोदयात् अनन्तगुणहीनेन मानानुभागोदयेन क्रोधसंज्वलनस्य बंधानुपलंभात्।

मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च नरकगत्या विना पुरुषवेदं त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति।

नरकगत्या सह पुरुषवेदः किन्न बध्यते ?

न बध्यते, अत्यन्ताभावेन प्रतिबद्धत्वात्। नरकगतौ स्त्रीपुरुषवेदौ न स्तः, ''नारकसंमूर्च्छिनो नपुंसकानि।'' इति सूत्रात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च द्विगतिसंयुक्तं, तयोर्निरय-तिर्यग्गत्योर्बंधाभावात्। संयतासंयतप्रभृति

इन दोनों प्रकृतियों का स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि स्वोदय के बिना भी उनका बंध पाया जाता है।

क्रोध संज्वलन का बंध निरन्तर है, क्योंकि सैंतालीस ध्रुवबंध प्रकृतियों के मध्य में आया है।

पुरुषवेद का बंध सान्तर है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सासादन में प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। इस का बंध निरन्तर भी है, क्योंकि पद्म और शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि उपरिम गुणस्थानों में भी निरन्तर बंध पाया जाता है।

इन दोनों प्रकृतियों के प्रत्ययों का निरूपण करने पर मूल, उत्तर तथा नाना व एक समय संबंधी प्रत्ययों के भेद से भिन्न पृथक्-पृथक् प्रत्यय जिन गुणस्थानों के कहे गये हैं, वे गुणस्थानवर्ती जीव उन प्रत्ययों से इन प्रकृतियों को बांधते हैं, अतः इनकी पृथक् प्ररूपणा नहीं है, क्योंकि उनसे यहाँ कोई भेद नहीं पाया जाता।

अथवा, पुरुषवेद का वेदोदय ही प्रत्यय है, क्योंकि अपगतवेदियों में उसका बंध नहीं पाया जाता। संज्वलन क्रोध का बंध संज्वलन कषाय के तीव्र अनुभागोदय प्रत्यय से है, क्योंकि उपशमश्रेणी में क्रोध के अंतिम अनुभागोदय की अपेक्षा अनंतगुणहीन मान के अनुभागोदय से क्रोध संज्वलन का बंध नहीं पाया जाता।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना पुरुषवेद को तीन गति से संयुक्त बांधते हैं।

शंका—नरकगति के साथ पुरुषवेद क्यों नहीं बंधता ?

समाधान—नहीं बंधता, क्योंकि नरकगति में पुरुषवेद का अत्यंताभाव होने से उस गति के साथ उसका बंध प्रतिषिद्ध है, चूँकि नरकगति में स्त्रीवेद और पुरुषवेद नहीं हैं। तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र है कि ''नारकी और सम्मूर्च्छन जीव नपुंसक ही होते हैं।''

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनके नरकगति और तिर्यंचगति के बंध का अभाव है।

संयतासंयत से लेकर ऊपर के गुणस्थान वाले देवगति से संयुक्त ही बांधते हैं, क्योंकि आगे के

उपरिमा देवगतिसंयुक्तं, शेषगतीनां तत्र बंधाभावात्। अपूर्वकरणस्य सप्तमसप्तभागप्रभृति उपरिमा अगतिसंयुक्तं पुरुषवेदं बध्नन्ति, तत्र गतिकर्मणो बंधाभावात्। एवं क्रोधसंज्वलनस्यापि वक्तव्यं। नवरि मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गति-संयुक्तं क्रोधसंज्वलनं बध्नाति, तत्र नरकगत्या सह बंधविरोधाभावात्।

चातुर्गतिका मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतपर्यन्ताः पुरुषवेदबंधस्य स्वामिनः। द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः, देवनरकगतिषु तदभावात्। उपरिमा मनुषगतेः स्वामिनः, अन्यत्र प्रमत्तादीनामभावात्।

पुरुषवेदबंधः सर्वगुणस्थानेषु सादिकोऽध्रुवः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधोपलंभात्। नियमेन सम्यग्मिथ्या-दृष्टिप्रभृति उपरिमेषु बंधविनाशदर्शनात्। क्रोधसंज्वलनस्य मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। उपरिमेषु त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्।

इतो विस्तरः—यदा कश्चिद् भव्यः सम्यक्चारित्रस्वरूपां जैनेश्वरीं दीक्षां गृण्हाति तदा प्रथमस्तु सप्तमगुणस्थानमुपसद्य सामायिकचारित्रं स्पृष्ट्वा पुनश्च षष्ठगुणस्थानेऽवतीर्य अष्टाविंशतिमूलगुणान् स्वीकरोति। स एव महामुनिः संज्वलनकषायवशंगतः यदा भेदाभ्यासमाचरति तदा शनैः-शनैः निर्विकल्पसमाधिरूपं निश्चयधर्म्यध्यानमालम्बते।

भेदाभ्यासस्य प्रकारं नियमसारप्राभृते प्रोक्तं—

णाहं णारयभावो तिरियत्थो मणुवदेवपज्जाओ।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७७।।

गुणस्थानों में शेष—तीन गतियों का बंध नहीं है। अपूर्वकरण के सातवें सप्तम भाग से लेकर उपरिम महामुनि अगतिसंयुक्त पुरुषवेद को बांधते हैं, क्योंकि वहाँ गतिकर्म के बंध का अभाव है। इसी प्रकार क्रोध संज्वलन में भी कहना चाहिए। विशेष यह है कि मिथ्यादृष्टि क्रोध संज्वलन को चारों गतियों से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि वहाँ नरकगति के साथ बंध होने में कोई विरोध नहीं है।

चारों गति वाले मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि पर्यंत जीव पुरुषवेद के स्वामी हैं। दो गति वाले संयतासंयत स्वामी हैं, क्योंकि देवगति और नरकगति में संयतासंयतों का अभाव है। ऊपर के गुणस्थानवर्ती—मुनिगण मनुष्यगति के स्वामी हैं, क्योंकि अन्य गतियों में प्रमत्तसंयत आदि संयमियों का अभाव है।

पुरुषवेद का बंध सभी गुणस्थानों में सादिक और अध्रुव है, क्योंकि सर्वत्र—आदि के दो गुणस्थानों में प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। नियम से सम्यग्मिथ्यादृष्टि से लेकर उपरिम गुणस्थानों में स्त्रीवेद व नपुंसकवेद के बंध का विनाश—व्युच्छेद देखा जाता है।

क्रोध संज्वलन का मिथ्यादृष्टि जीव में चारों प्रकार का बंध है, क्योंकि यह ध्रुवबंधी प्रकृति है। ऊपर के गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध है, क्योंकि आगे ध्रुवबंध का अभाव है।

अब आगे कुछ विशेष कहते हैं—

जब कोई भव्यजीव सम्यक्चारित्रस्वरूप जैनेश्वरी दीक्षा को ग्रहण करते हैं तब प्रथम ही वे सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करके सामायिक चारित्र का स्पर्श करके पुनः छठे गुणस्थान में उतरकर अट्ठाईस मूलगुणों को स्वीकार करते हैं। वे ही महामुनि संज्वलन कषाय के वशीभूत हुए जब भेदविज्ञान का अभ्यास करते हैं तब शनैः-शनैः निर्विकल्पसमाधिरूप निश्चय धर्मध्यान का अवलंबन लेते हैं।

भेदविज्ञान का अभ्यास नियमसारप्राभृत ग्रंथ में कहा है—

न मैं नारकी हूँ, न मैं तिर्यंच हूँ, न मैं मनुष्य व देव पर्याय वाला हूँ। न मैं इन गतियों का कर्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न अनुमति देने वाला हूँ।।७७।।

णाहं मग्गणठाणो णाहं गुणठाण जीवठाणो ण।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७८।।
णाहं बालो बुड्ढो ण चेव तरुणो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।७९।।
णाहं रागो दोसो ण चेव मोहो ण कारणं तेसिं।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं।।८०।।
णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण होमि लोहो हं।
कत्ता ण हि कारयिदा अणुमंता णेव कत्तीणं[१]।।८१।।

स्याद्वादचन्द्रिकाटीकायां विशेषेण लिखितं मया। अत्र तट्टीकांशाः केचिद् उद्ध्रियन्ते—यद्यपि सर्वेऽपि देवाः सदा तरुणा एव, सर्वेऽपि नारकाः निरंतरं जीर्णशीर्णगलितगात्रत्वात् वृद्धा एव। तिर्यञ्चस्तिसृः अवस्थाः प्राप्नुवन्ति, साधारणमनुष्याश्च तिसृभिरवस्थाभिः परिणमन्ति, मनुष्येषु च ये विशेषास्तीर्थंकर-चक्रवर्तिबलदेवनारायणप्रतिनारायणादयः शलाकापुरुषाः कामदेवादयश्च ते बालतरुणावस्थामेव लभन्ते न च वृद्धत्वं, तथापि शुद्धनिश्चयनयेन सर्वेऽपि संसारिणो जीवा आभिर्विरहिता एव, शश्वत्कर्ममलैरपृष्टत्वात्।

तर्हि दृश्यमाना अवस्थाः केषामिति चेत् ? पुद्गलानामेव।[२]

न मैं मार्गणास्थान वाला हूँ, न मैं गुणस्थान वाला हूँ और न मैं जीवसमासरूप ही हूँ। न मैं इनका कर्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न अनुमति देने वाला ही हूँ।।७८।।

न मैं बालक हूँ, न मैं वृद्ध हूँ और न मैं तरुण ही हूँ और न इनका कारण हूँ। न इनका करने वाला, न कराने वाला और न ही अनुमति देने वाला हूँ।।७९।।

न मैं रागी हूँ, न मैं द्वेषी हूँ, न मैं मोही हूँ और न मैं इनका कारण ही हूँ। न इनका करने वाला हूँ, न कराने वाला हूँ और न अनुमति देने वाला ही हूँ।।८०।।

न मैं क्रोध हूँ, न मान हूँ, न माया हूँ और न लोभरूप ही हूँ। न मैं इनका कर्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न अनुमति देने वाला ही हूँ।।८१।।

इन गाथाओं की 'स्याद्वादचन्द्रिका' नाम की टीका में मैंने विशेष रूप से जो लिया है, उस टीका के कतिपय अंशों को यहाँ उद्धृत करते हैं—

यद्यपि सभी देवगण सदा तरुण—युवा ही रहते हैं, सभी नारकी निरन्तर जीर्ण, शीर्ण, गलित शरीर वाले होने से वृद्ध ही माने जाते हैं। सभी तिर्यंच जीव तीनों अवस्थाओं को प्राप्त होते हैं और साधारण मनुष्य तीनों—बाल, वृद्ध, युवा अवस्थाओं से परिणमन करते रहते हैं तथा मनुष्यों में जो कोई विशेष—तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका पुरुष हैं और कामदेव आदि हैं, आदि से तीर्थंकर के माता-पिता आदि हैं, वे बाल और तरुण अवस्था को प्राप्त करते हैं, वृद्धावस्था को नहीं प्राप्त करते, फिर भी शुद्ध निश्चयनय से सभी संसारी जीव इन बाल, वृद्ध आदि अवस्थाओं से विरहित ही हैं, क्योंकि शुद्धनय से सभी संसारी प्राणी सदाकाल कर्ममल से अस्पर्शित ही हैं। पुनः प्रश्न होता है कि—

तब तो ये दिखने वाली अवस्थाएं किनकी हैं ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं कि—

---

१. नियमसार प्राभृतं, स्याद्वादचन्द्रिका टीकांशाश्च, पृ. १८४ से १८८। २. नियमसार प्राभृत, स्याद्वाद चंद्रिका टीकांशाश्च पृ. १८७, १८८।

उक्तं च श्रीपूज्यपादाचार्यैः—

न मे मृत्युः कुतो भीतिर्न मे व्याधिः कुतो व्यथा।
नाहं बालो न वृद्धोऽहं न युवैतानि पुद्गले[१]।।

एतदवबुध्य शरीरात् तदाश्रितबंधुवर्गाच्च शिष्यवर्गादपि ममकारस्त्यक्तव्यः।

तात्पर्यमेतत्—नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवपर्याय-चतुर्दशमार्गणागुणस्थानजीवसमासस्थानरहितः, बालतरुण-वृद्धावस्थारहितः, रागद्वेषमोहक्रोधमानमायालोभ-द्रव्यकर्म-भावकर्म-नोकर्मरहितविभावकर्तृत्वशून्यः, चिन्मयचिन्तामणिचैतन्यकल्पवृक्षस्वरूपोऽखण्डज्ञानज्योतिः स्वरूपश्चाहं इत्यादिभावनाभिः परमानन्दमालिनि निजशुद्धात्मनि स्थिरत्वं विधातव्यमस्माभिर्भव्यजनैश्चेति।

''णाहं णारयभावो'' प्रभृतय इमाः पंचगाथाः टीकाकारैः श्रीपद्मप्रभमलधारिदेवैः पञ्चरत्नमिति संज्ञया-भिहिताः। यः कश्चिद्भव्य एतद्रत्नमालां स्वकण्ठे दधाति स सत्वरमेव सिद्धिकान्तापतिर्भविष्यति।''

इत्थं भावनया महामुनिः क्रमेण अनिवृत्तिकरणगुणस्थानपर्यन्तं अपि गन्तुं सक्षमो भवति, इति ज्ञात्वा सिद्धान्तपाठकैरपि अध्यात्मभावना भावयितव्या।

ये सब पुद्गलों की ही अवस्थाएं हैं।

श्री पूज्यपाद स्वामी कहते हैं—

मुझे मृत्यु नहीं हैं तो भय किससे होगा ? मुझे व्याधि—रोग नहीं है तो पीड़ा कैसे होगी ? न मैं बालक हूँ, न मैं वृद्ध हूँ और न मैं युवा हूँ, क्योंकि ये सब पुद्गल की पर्यायें हैं।

यह सब जानकर शरीर से, शरीर के आश्रित बंधुवर्गों से और शिष्यवर्गों से भी ममकार—ममत्व परिणाम—ये मेरे हैं, ऐसे भाव छोड़ देना चाहिए।

यहाँ तात्पर्य यह है कि मैं नरक, तिर्यंच, मनुष्य पर्याय से और देवपर्याय से रहित हूँ। मैं चौदह मार्गणा, चौदह गुणस्थान और चौदह जीवसमास से रहित हूँ। मैं बाल, युवा और वृद्ध अवस्था से रहित हूँ। मैं राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ, द्रव्यकर्म, भावकर्म और नोकर्म से रहित हूँ। मैं समस्त विभाव भावों के कर्तृत्व—कर्तापने से शून्य हूँ। पुनः मैं—

चिन्मय-चिंतामणि, चैतन्य कल्पवृक्ष स्वरूप हूँ। मैं अखंड ज्योतिस्वरूप हूँ, इत्यादि इन प्रकार की भावनाओं को भाते हुए आप सभी भव्यजनों को और हम सभी को भी परमानन्दस्वरूप, निज शुद्धात्मा में स्थिरता करनी चाहिए।

यहाँ 'णाहं णारयभावो' इत्यादि रूप से जो पाँच गाथाएँ हैं जो कि श्री कुंदकुंददेव द्वारा नियमसारप्राभृत ग्रंथ में लिखी हैं। इस ग्रंथ के टीकाकार श्री पद्मप्रभमलधारी देव ने इन्हें 'पंचरत्न' नाम से कहा है। जो कोई भव्यजीव इन पांच गाथारूप रत्नमाला को अपने कण्ठ में धारण करते हैं—पहनते हैं, वे शीघ्र ही सिद्धिकांता के पति बन जायेंगे।

इस प्रकार की भावना से महामुनि क्रम से अनिवृत्तिकरण नाम के नवमें गुणस्थानपर्यंत भी गमन करने में—प्राप्त करने में समर्थ हो जाते हैं, ऐसा जानकर इन सिद्धान्त ग्रंथ के पढ़ने वालों को भी निरंतर अध्यात्म भावना भाते रहना चाहिए।

---

१. इष्टोपदेश।

एवं द्वादशस्थले पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनप्रकृतिव्युच्छित्त्यादिकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम् —

अधुना मान माया संज्वलनकषाय बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

माणमायसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।२३।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अस्य सूत्रस्यावयवेन बंधाध्वानं गतिगतबंधस्वामित्वेन विना गुणस्थानगत-स्वामित्वं चोक्तं। पुनः 'अणियट्टिबादरद्धाए' इत्याद्यवयवेन बंधविनष्टस्थानं प्ररूपितं। संज्वलनक्रोधे विनष्टे योऽवशेषोऽनिवृत्तिकरणबादरकालस्य संख्यातभागस्तिष्ठति, तस्मिन् संख्याते खण्डे कृते तत्र बहुभागान् गत्वा एक भागावशेषे मानसंज्वलनस्य बंधव्युच्छेदो भवति। पुनः तस्यैकखण्डस्य संख्यातखण्डे कृते तत्र बहुखंडान् गत्वा एकखण्डावशेषे मायासंज्वलनबंधव्युच्छेदो भवति।

कथमेतत् ज्ञायते ?

इस प्रकार बारहवें स्थल में पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध प्रकृति की व्युच्छित्ति आदि के कथनरूप से यहाँ दो सूत्र पूर्ण हुए हैं।

अब संज्वलन मान और मायाकषाय के बंधक और अबंधक के प्रतिपादन हेतु दो सूत्रों का अवतार हो रहा है —

सूत्रार्थ —

संज्वलन मान और संज्वलन माया के बंधक कौन हैं और अबंधक कौन हैं ?।।२३।।

मिथ्यादृष्टि जीव से लेकर अनिवृत्तिकरण बादरसांपरायप्रविष्ट उपशमक और क्षपकमुनि पर्यंत बंधक हैं। अनिवृत्तिकरण बादरकाल के शेष उसके भी शेष रहने पर संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — "मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिबादरसांपरायिकप्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं।" इस सूत्रावयव से बंधाध्वान और गतिगत बंधस्वामित्व के बिना गुणस्थानगत बंधस्वामित्व भी कहा गया है। "अनिवृत्तिबादरकाल के शेष और उसके शेष रहने पर संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है।" इस सूत्र अवयव से बंधविनष्टस्थान की प्ररूपणा की गई है। संज्वलन क्रोध के विनष्ट होने पर जो शेष अनिवृत्तिकरणबादरकाल का संख्यातवाँ भाग रहता है उसके संख्यात खण्ड करने पर उनमें बहुभागों को बिताकर एक भाग शेष रहने पर संज्वलन मान का बंधव्युच्छिन्न होता है। पुनः एक खण्ड के संख्यात खण्ड करने पर उनमें बहुत खण्डों को बिताकर एक खण्ड शेष रहने पर संज्वलन माया की बंध व्युच्छित्ति हो जाती है।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

''सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण'' इति वीप्सानिर्देशाद् ज्ञायते।

कषायप्राभृतसूत्रेणेदं सूत्रं विरुध्यते इति चेत् ?

एतादृश्यामाशंकायां आचार्यः कथयति—

सत्यं विरुध्यते, किन्तु एकान्तग्रहोऽत्र न कर्तव्यः।

अत्र श्रीवीरसेनाचार्यदेवस्य वाक्यानि पठितव्यानि सन्ति—

'इदमेव तं चेव सच्चमिदि सुदकेवलीहि पच्चक्खणाणीहि वा विणा अवहारिज्जमाणे मिच्छत्तप्पसंगादो।

कधं सुत्ताणं विरोहो ?

ण, सुत्तोवसंहाराणमसयलसुदधारयाइरियपरतंताणं विरोहसंभवदंसणादो।

उवसंहाराणं कधं पुण सुत्तत्तं जुज्जदे ?

ण, अमियसायरजलस्स अलिंजर-घड-घडी-सरावुदंचणगयस्सवि अमियत्तुवलंभादो[१]।''

इत्थमत्राचार्यदेवेन सिद्धंकृतं यत् परस्परविरुद्धयोरपि सूत्रयोः इदं सत्यं इदमसत्यमिति न वक्तव्यं। किं च—केवलिनः श्रुतकेवलिनो वा एव जानन्ति न वयं अल्पज्ञानिनः, अतएव द्वयोः सूत्रयोरपि श्रद्धा कर्तव्या। यथा अमृतसमुद्रस्य जलं घटे सरावे वा भृतममृतमेवेति तथैव आचार्यदेवानां वचनानि अमृततुल्यमेव।

समाधान—''शेष उसके भी शेष रहने पर संख्यात बहुभाग जाकर'' सूत्र में इस वीप्सा—दो बार का निर्देश होने से उक्त दोनों प्रकार दोनों प्रकृतियों का व्युच्छेद काल जाना जाता है।

शंका—कषायप्राभृत के सूत्र से तो यह सूत्र विरोध को प्राप्त होगा ?

समाधान—ऐसी आशंका होने पर आचार्यदेव कहते हैं कि आपका कहना सच है। कषायप्राभृत ग्रंथ से यह सूत्र विरुद्ध तो है, परन्तु यहाँ एकांत दुराग्रह नहीं करना चाहिए।

यहाँ श्री वीरसेनाचार्य देव के वाक्य पढ़ने योग्य हैं—

''यही सत्य है'' या ''वही सत्य है'' इस प्रकार का निश्चय श्रुतकेवलियों अथवा प्रत्यक्षज्ञानियों के बिना कराने पर मिथ्यात्व का प्रसंग आ जावेगा।

शंका—सूत्रों में विरोध कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह आशंका ठीक नहीं है, क्योंकि, अल्पश्रुत के धारक आचार्यों के परतंत्र सूत्र व उपसंहारों के विरोध की संभावना देखी जाती है।

शंका—उपसंहार किये गये वचनों में सूत्रपना कैसे उचित है ?

समाधान—यह आशंका ठीक नहीं है, क्योंकि अमृतसागर के जल को अलिंजर—घटविशेष, घट, घटी, शराव व उदंचन आदि में भर लेने पर भी उसमें अमृतत्व पाया जाता है अर्थात् अमृतसागर का अमृत छोटे से पात्र में भरने पर भी वह अमृत ही रहता है।''

यहाँ पर श्री वीरसेनस्वामी ने यह सिद्ध किया है कि 'परस्पर विरोधी भी दो सूत्रों के आने पर' यह सत्य है और यह असत्य है, ऐसा नहीं कहना चाहिए। क्योंकि यह सूक्ष्म विषय केवली भगवान या श्रुतकेवली महामुनिगण ही जानते हैं, हम और आप जैसे अल्पज्ञानी नहीं जान सकते हैं, इसलिए दोनों सूत्रों की भी श्रद्धा करना चाहिए। जिस प्रकार अमृत समुद्र का जल घड़े अथवा सकोरे में भर लो तो भी वह अमृत ही है ऐसा समझना उसी प्रकार आचार्यदेव श्रीवीरसेन स्वामी आदि के वचन भी अमृततुल्य ही हैं।

---

१. षट्खण्डागम पु. ८, धवला टीका समन्वित, पृ. ५६-५७।

संप्रति एतेन सूचितार्थानां प्ररूपणा क्रियते—

मानमायाप्रकृत्योः बंधोदयौ अक्रमेण व्युच्छिद्येते, उदये विनष्टे बंधानुपलंभात्। न चोदयकालक्षयेण उदयस्य विनाशोऽत्र विवक्षितः, अनयोः सत्त्वोपशमेन सत्त्वक्षयेण वा समुत्पन्नोदयाभावेनाधिकारात्। एतयोः स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, निरन्तरबंधिनां सान्तरोदयानां स्वोदयेनैव बंधविरोधात्। इमे निरन्तरबंधिप्रकृती, ध्रुवबंधिभिः सह पातात्।

मिच्छादृष्टिगुणस्थानादारभ्य ये प्रत्ययाः मूलोत्तरनानैकसमयभेदभिन्नाः पूर्वं प्ररूपिताः तद्गुणस्थान-विशिष्टजीवास्तैरेव प्रत्ययैः एते प्रकृती बध्नन्ति, प्रत्ययान्तराभावात्। अथवा एतयोः प्रकृत्योः संज्वलनोदय-विशेषश्चैव प्रत्ययः, तेन विना बंधानुपबंधात्।

मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, तस्य सर्वगतिबंधैः सह विरोधाभावात्। सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं, तस्य नरकगतिबंधेन सह विरोधात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिश्च द्विगतिसंयुक्तं बध्नाति, तयोर्नरकतिर्यग्गतिभ्यां सह विरोधात्। उपरिमाः देवगतिसंयुक्तं अगतिसंयुक्तं वा बध्नन्ति, तयोः शेष गतिभिः सह विरोधात्।

मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयश्चतुर्गतिकाः, द्विगतिकाः संयतासंयताः, शेषा मनुष्यगतिकाः स्वामिनः।

बंधाध्वानं बंधव्युच्छित्तिस्थानं च सूत्रोद्दिष्टमिति सुगमं।

मिथ्यादृष्टेश्चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां त्रिविधो, ध्रुवत्वाभावात्।

अब इस सूत्र से सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

मान और माया प्रकृतियों का बंध और उदय एक साथ अक्रम से व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि उदय के नष्ट होने पर बंध नहीं देखा जाता है और उदयकाल के क्षय से होने वाला उदय का विनाश यहाँ विवक्षित नहीं है, क्योंकि इनकी सत्ता का उपशम होने से या इनकी सत्ता का क्षय होने से उत्पन्न उदयाभाव का यहाँ अधिकार है।

इन दोनों प्रकृतियों का स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि निरन्तर बंधी और सान्तर उदय वाली प्रकृतियों के स्वोदय से ही बंध होने का विरोध है। ये निरन्तर बंधी प्रकृतियाँ हैं, क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियों के साथ आती हैं।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर जो प्रत्यय-मूल, उत्तर व नाना एवं एक समय संबंधी भेदों से भिन्न जो प्रत्यय पूर्व में कहे गये हैं, उन गुणस्थानों से विशिष्ट जीव उन्हीं प्रत्ययों से इन प्रकृतियों को बांधते हैं, क्योंकि अन्य प्रत्ययों का अभाव है। अथवा, इन प्रकृतियों का संज्वलन का उदय विशेष ही प्रत्यय—कारण है, क्योंकि उसके बिना इनका बंध नहीं पाया जाता।

मिथ्यादृष्टि इन दोनों प्रकृतियों को चारों गतियों से संयुक्त बांधता है क्योंकि उसका सर्वगति के बंध के साथ विरोध नहीं पाया जाता। इन दोनों को सासादनसम्यग्दृष्टि, तीन गतियों से संयुक्त बांधता है, क्योंकि उसका नरकगति के बंध के साथ विरोध है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनका नरकगति और तिर्यग्गति के साथ विरोध है। ऊपर के गुणस्थान वाले देवगति से संयुक्त अथवा अगतिसंयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों का आगे शेष गतियों के साथ विरोध है।

मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि ये चारों गतियों के स्वामी हैं। संयतासंयत जीव दो गतियों के स्वामी हैं और प्रमत्तविरत आदि के आगे के महामुनि केवल मनुष्यगति के ही स्वामी हैं।

बंधाध्वान और बंधव्युच्छित्तिस्थान ये सूत्र में कथित होने से सुगम ही हैं।

मिथ्यादृष्टि के चारों प्रकार का बंध होता है, क्योंकि दोनों प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं। शेष गुणस्थानवर्तियों के

तात्पर्यमेतत्—ये केचिन्मुनयः उपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां वा आरोहन्ति, तेषां निर्विकल्पध्यानावस्था भवति। ते मुनयः प्राक् षष्ठसप्तमगुणस्थानयोः निर्विकल्पध्यानसिद्ध्यर्थं भावनां कुर्वन्ति—

केवलणाणसहावो केवलदंसणसहाव सुहमइओ।
केवलसत्तिसहावो, सोहं इदि चिंतए णाणी।।९६।।

'सोहं' व्यवहारनयापेक्षयानादिकर्मसन्तत्या संतप्यमानोऽपि निश्चयनयेन यः कोऽपि अनन्तचतुष्टयमय आत्मा सा एवाहम्। इदि णाणी चिंतए इति ज्ञानी यथाजातरूपधारी मुनिः चिन्तयेत्, षष्ठगुणस्थाने भावनां कुर्यात्, सप्तमादिगुणस्थानेषु ध्यानपरिणतः एकाग्रचिन्तानिरोधलक्षणैकतानपरिणतिं च विदध्यात्। तथाहि—

केवलज्ञानस्वभावोऽहं, केवलदर्शनस्वभावोऽहं, केवलसौख्यस्वभावोऽहं, केवलवीर्यस्वभावोऽहं, अनन्तचतुष्टयमयो यः कश्चित् कार्यपरमात्मा स एवाहमिति चित्तस्वस्थकरणार्थं सम्यग्दृष्टिरपि भावयेत्। पुनः स्वस्यानन्तचतुष्टयस्वभावव्यक्त्यर्थं जिनमुद्रांकितो भूत्वा द्यात्यघातिकर्मोदयसत्त्वनिर्हरणाय द्रव्यकर्मणां प्रत्याख्यानं कुर्यादिति तात्पर्यमत्र ज्ञातव्यम्[१]।

एवं त्रयोदशमस्थले मानमायासंज्वलनबंधकाबंधकनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

संप्रति लोभ संज्वलनस्य बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।।२५।।

तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवपने का अभाव है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि जो कोई महामुनि उपशमश्रेणी में या क्षपकश्रेणी में चढ़ते हैं उनके निर्विकल्प ध्यानावस्था होती है। वे महामुनि पहले छठे-सातवें गुणस्थान में निर्विकल्पध्यान सिद्धि के लिए भावना करते हैं। नियमसारप्राभृत ग्रंथ के आधार से वर्णित—मैं केवलज्ञान स्वभावी हूँ, केवलदर्शन स्वभावी हूँ, सौख्यमयी हूँ, केवलशक्ति—वीर्य स्वभावी हूँ, इस प्रकार ज्ञानी 'सोऽहम्' ऐसा चिंतन करते हैं।

'सोऽहं' का अर्थ है—'व्यवहारनय की अपेक्षा से अनादिकाल से बंधे हुए कर्मसन्तति—परम्परा से संतप्त होता हुआ भी निश्चयनय से जो कोई भी अनन्तचतुष्टयमयी आत्मा सो ही मैं हूँ।' इस प्रकार से ज्ञानी—यथाजातरूपधारी—दिगम्बर मुनि चिंतन करें, छठे गुणस्थान में भावना करें, पुनः सप्तम आदि गुणस्थानों में ध्यान से परिणत होते हुए एकाग्रचिन्तानिरोध लक्षण एकतान परिणति को करें। उसी का स्पष्टीकरण—

'मैं केवलज्ञान स्वभावी हूँ, मैं केवलदर्शन स्वभावी हूँ, मैं केवलसौख्य स्वभावी हूँ, मैं केवलवीर्यस्वभावी हूँ। इस प्रकार मैं अनंतचतुष्टयमयी हूँ, जो कोई कार्य परमात्मा है, वही मैं हूँ। इस प्रकार मन को स्वस्थ करने के लिए सम्यग्दृष्टि भी भावना भावे। पुनः अपने अनन्तचतुष्टय को व्यक्त—प्रगट करने के लिए जिनमुद्रा को धारण करके घाति-अघाति कर्मों की सत्ता को नष्ट करने के लिए द्रव्यकर्मों का प्रत्याख्यान—त्याग करें, यहाँ ऐसा तात्पर्य निकालना चाहिए।

इस प्रकार तेरहवें स्थल में मान और माया संज्वलन कषाय के बंधक और अबंधक का निरूपण करते हुए दो सूत्र हुए हैं। अब संज्वलन लोभ के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं—

सूत्रार्थ—

संज्वलन लोभ का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।२५।।

---

१. नियमसार प्राभृत-स्याद्वादचन्द्रिका टीकांशा, पृ. २२२-२२३।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२६।।

सिद्धान्तचिन्तामणिटीका—**अस्य सूत्रस्य प्रथमावयवेन बंधाध्वानं गुणस्थानगतस्वामित्वं च प्ररूपितं। द्वितीयावयवेन बंधविनष्टस्थानप्ररूपणा कृता। एतेषां त्रयाणां चैवार्थाणां प्ररूपणा कृता इतिदेशामर्शकसूत्रमिदं। अधुना एतेन सूचितार्थाणां प्ररूपणा क्रियते—**

लोभसंज्वलनस्य बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः, अनिवृत्तिकरणचरमसमये बंधस्य व्युच्छिन्ने सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये उदयव्युच्छेदोपलंभात्। अस्य लोभसंज्वलनस्य स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, ध्रुवोदयत्वाभावात्। निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्ययप्ररूपणा मानसंज्वलनवत् भवति। गति संयुक्तस्वामित्वाध्वान-बंधव्युच्छिन्नस्थान प्ररूपणाः सुगमाः। मिथ्यादृष्टेश्चतुर्विधः बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां त्रिविधः बंधः, ध्रुवत्वाभावात्।

इतो विस्तरः—अष्टमगुणस्थानादारभ्य निर्विकल्पध्यानिनो महामुनयः स्वशुद्धात्मनि स्थित्वा निश्चयरत्नत्रयपरिणताः सन्ति। ये मुनयः षष्ठसप्तमगुणस्थानावरोहणारोहणकाले चिन्तयंति—

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिबादर सांपरायिकप्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिबादरकाल के अंतिम समय को प्राप्त होकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।२६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—प्रश्नवाचक सूत्र सरल है। उत्तरवाची सूत्र के प्रथम अवयव—वाक्य से बंधाध्वान और गुणस्थानगत स्वामित्व का प्ररूपण कर दिया है। द्वितीय अवयव—वाक्य से बंधविनष्ट स्थान की प्ररूपणा की है। इन तीनों ही अर्थों की प्ररूपणा की गई है इसीलिए यह सूत्र देशामर्शक है।

अब इससे सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

संज्वलन लोभ का बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय, क्योंकि, अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में बंध के व्युच्छिन्न हो जाने पर सूक्ष्मसांपरायिक के अंतिम समय में उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। संज्वलन लोभ का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि संज्वलन लोभ के बंध का ध्रुवोदयपने का अभाव है। बंध उसका निरन्तर है, क्योंकि वह ध्रुवबंध प्रकृति है। प्रत्ययों की प्ररूपणा संज्वलन मान के समान है। गति संयुक्तता, स्वामित्व, अध्वान और बंधव्युच्छिन्न स्थान की प्ररूपणाएं सुगम हैं। मिथ्यादृष्टि के चारों प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वह ध्रुवबंधी प्रकृति है। शेष जीवों के तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि शेष गुणस्थानों में ध्रुवबंधपने का अभाव है अतः तीन प्रकार का बंध है।

इसी में विशेष कहते हैं—

आठवें गुणस्थान से प्रारंभ करके निर्विकल्पध्यानी महामुनि अपनी शुद्धात्मा में स्थित होकर निश्चयरत्नत्रय से परिणत हो जाते हैं। पुनः जो मुनिगण छठे-सातवें गुणस्थान में उतरना चढ़ना करते रहते हैं और उस समय चिन्तन करते रहते हैं—

ममत्तिं परिवज्जामि णिममत्तिं उवट्ठिदो।
आलंबणं च मे आदा अवसेसं च वोस्सरे[१]।।९९।।

किं चायं जीवः अनादिकालात् स्वात्मनो निर्ममो भूत्वा शरीर धनकुटुम्बादिपरवस्तुनि ममत्वं करोति। एतद्विपरीताभिप्रायमेव मिथ्यात्वं यत् जन्मजरामरणरोगशोकादिदुःखकारणमेव। तर्हि किं कर्तव्यं ? मे आदा आलंबणं च-ममात्मा आलम्बनं च, न अन्यत्किमपि हस्तावलंबनं ददाति। अतएव अवसेसं च वोस्सरे-अवशेषं सर्वं चाहं व्युत्सृजामि विधिवत् अभिप्रायपूर्वकं त्यागं करोमि[२]। इत्यादिभावनया स्वविशुद्धिं वर्धयन् महासाधुः स्वशुद्धात्मानं ध्यायति। शनैः-शनैः एतादृशा एव मुनयः उपशमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां वारूह्य लोभसंज्वलनस्य बंधव्युच्छित्तिं कुर्वन्ति।

एतज्ज्ञात्वा अस्माभिरपि निरन्तरं स्वात्मतत्त्वमभ्यसनीयं।

एवं चतुर्दशस्थले लोभसंज्वलनबंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं हास्यादिचतुःप्रकृतीनां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?।।२७।।

मैं ममत्व का त्याग करता हूँ और निर्ममभाव में स्थित होता हूँ। मुझे मेरा आत्मा ही अवलंबन है, आत्मा से अतिरिक्त अन्य सब कुछ मैं छोड़ता हूँ।

श्री कुंदकुंददेव ने नियमसार में यह गाथा लिखी है, उसी की स्याद्वादचन्द्रिका टीका में मैंने लिखा है।

यह जीव अनादिकाल से अपनी आत्मा में निर्मम होकर शरीर, धन, कुटुम्ब आदि परवस्तुओं में ममत्व करता है। यह विपरीत अभिप्राय ही मिथ्यात्व है क्योंकि यह जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक आदि दुःख के कारण ही हैं।

तो पुनः क्या करना चाहिए ?

मुझे मेरी आत्मा ही आलंबन है, क्योंकि अन्य कोई भी मुझे हस्तावलंबन नहीं देता है। इसलिए अवशेष सब कुछ मैं छोड़ रहा हूँ—विधिवत् अभिप्रायपूर्वक त्याग करता हूँ। इत्यादि प्रकार से भावना करते हुए अपनी विशुद्धि को बढ़ाते हुए महासाधु अपनी शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हैं। ऐसे साधु ही शनैः-शनैः उपशमश्रेणी या क्षपकश्रेणी में आरोहण करके लोभ संज्वलन की बंधव्युच्छित्ति करते हैं।

ऐसा जानकर हम सभी को भी निरन्तर स्वात्मतत्त्व का अभ्यास करते रहना चाहिए।

इस प्रकार चौदहवें स्थल में लोभसंज्वलन के बंधस्वामित्व के कथनरूप से दो सूत्र हुए हैं।

अब हास्य आदि चार प्रकृतियों के बंधक-अबंधक के प्रतिपादन करने हेतु दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।२७।।

---

१. नियमसार प्राभृत गाथा ९९। २. नियमसार प्राभृतं स्याद्वादचन्द्रिकाटीकांशाः पृ. २२६-२२८।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इदं सूत्रं देशामर्शकं, बंधाध्वानं गुणस्थानगतबंधस्वामित्वं बंधनिनष्टस्थानं च प्ररूपितं। शेषार्था अत्र प्ररूप्यंते—**

हास्यरतिभयजुगुप्सानां प्रकृतीणां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, अपूर्वकरणगुणस्थानचरमसमये चतुर्णां व्युच्छेदोपलंभात्। स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, ध्रुवोदयत्वाभावात् परोदयेऽपि बंधविरोधाभावात्। भयजुगुप्सयोः सर्वगुणस्थानेषु निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। हास्यरत्योः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्त इति सान्तरो बंधः, अत्र प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। प्रत्ययप्ररूपणा ज्ञानावरणवत् ज्ञातव्या।

मिथ्यादृष्टिः चतुर्गतिसंयुक्तं, एतासां चतुःप्रकृतीनां चतुर्गतिबंधेन सह विरोधाभावात्। नवरि हास्यरती प्रकृती त्रिगतिसंयुक्तं बध्नाति, तद्बंधस्य नरकगतिबंधेन सह विरोधात्। सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं, तत्र नरकगत्याः बंधाभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टिः असंयतसम्यग्दृष्टिश्च द्विगतिसंयुक्तं, एतयोः गुणस्थानयोः नरकतिर्यग्गत्योर्बंधाभावात्। उपरिमा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तेषु अन्यगतीनां बंधाभावात्। नवरि

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के अंतिम समय को प्राप्त होकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।२८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये सूत्र देशामर्शक हैं। बंधाध्वान, गुणस्थानगतबंधस्वामित्व और बंधविनष्टस्थान प्ररूपित किये गये है। शेष अर्थों की यहाँ प्ररूपणा करते हैं—

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा प्रकृतियों का बंध और उदय एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि अपूर्वकरण गुणस्थान के चरम समय में इन चारों का व्युच्छेद पाया जाता है। इनका स्वोदय-परोदय से बंध है, क्योंकि ये ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं अतः इनका पर के उदय में भी बंध के विरोध का अभाव है। भय और जुगुप्सा के सभी गुणस्थानों में निरन्तर बंध है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। हास्य और रति प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि से प्रमत्तगुणस्थानपर्यंत सान्तर बंध है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर के गुणस्थानों में निरंतर बंध है, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। प्रत्ययों—कारणों की प्ररूपणा यहाँ ज्ञानावरण के समान जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि जीव चारों गतियों से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इन चारों प्रकृतियों का चारों गतियों के बंध के साथ विरोध नहीं है। विशेष यह है कि हास्य और रति प्रकृतियाँ तीन गति से संयुक्त ही बंधती हैं क्योंकि इनका बंध नरकगति के बंध के साथ निरुद्ध है। सासादन गुणस्थानवर्ती तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि वहाँ नरकगति के बंध का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इन दोनों गुणस्थानों में नरकगति-तिर्यग्गति के बंध का अभाव है। ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि वहाँ—आगे अन्य गतियों के बंध का अभाव है। विशेष यह है कि अपूर्वकरणकाल

अपूर्वकरणकालस्स चरमे सप्तमे भागे वर्तमाना अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति इति वक्तव्यं।

मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्ताः चातुर्गतिका आसां चतुःप्रकृतीनां बंधस्वामिनः। संयतासंयताः द्विगतिका आसां बंधस्य स्वामिनः, किंच—देवनारकेषु अणुव्रतिनामभावात्। उपरिमा मनुष्यगतिस्वामिनः, अन्यत्र प्रमत्तादिगुणस्थानाभावात्।

भयजुगुप्सयोः मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। उपरिमेषु त्रिविधो बंधः,ध्रुवत्वाभावात्। हास्यरत्योः बंधः सादिरध्रुवः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्।

तात्पर्यमेतत्—ये केचित् नरकगतिं बध्नन्ति तेषां हास्यरती प्रकृती न बध्येते, हास्यरत्योरुदयस्य तत्र नरकगतौ विरोधोऽस्ति तत्रारतिशोकौ एव स्तः। अत्रारतिशोकप्रकृतिबंधकारणानि दुःखशोकारत्यादिकार्याणि च त्यक्तव्यानि भव्य पुंगवैः नरकादिदुःखभीरुभिः सन्ततमिति।

एवं पञ्चदशस्थले हास्यादिबंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

मनुष्यायुबंधकाबंधकादिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।२९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३०।।

के चरम सप्तम भाग में वर्तमान महामुनि अगति से संयुक्त गतिबंध से रहित बांधते हैं ऐसा जानना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि पर्यंत जीव चारों गतियों वाले इन प्रकृतियों के बंध के स्वामी हैं। संयतासंयत जीव दो गति वाले इन प्रकृतियों के बंध के स्वामी हैं, क्योंकि देव और नारकियों में अणुव्रतियों का अभाव है। उपरिम गुणस्थान वाले एक मनुष्यगति के ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में प्रमत्त आदि गुणस्थानों का अभाव है।

भय और जुगुप्सा का मिथ्यादृष्टि में चारों प्रकार का सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बंध होता है क्योंकि ये प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं। ऊपर के गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि आगे सम्यक्त्व होने के बाद इनके ध्रुवपना नहीं रहता। हास्य और रति का बंध सादिक और अध्रुव है, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध यहाँ पाया जाता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि जो कोई नरकगति को बांधते हैं उनके हास्य और रति प्रकृतियाँ नहीं बंधती हैं, क्योंकि हास्य और रति प्रकृतियों का उदय वहाँ विरुद्ध है, वहाँ पर मात्र अरति और शोक ही हैं। यहाँ अरति और शोक प्रकृतियों का बंध कारण है तथा दुःख, शोक, अरति आदि कार्य हैं, नरकादि दुःखों से भयभीत आप सभी भव्य जीवों को निरन्तर इन कारण और कार्यों का त्याग कर देना चाहिए।

इस प्रकार पंद्रहवें स्थल में हास्यादि बंध के स्वामित्व के निरूपण रूप से दो सूत्र हुए हैं।

अब मनुष्यायु के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

मनुष्यायु के कौन बंधक हैं और कौन अबंधक हैं ?।।२९।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र बंधाध्वानं गुणस्थानान्याश्रित्य बंधस्वामित्वं चोक्तं, तेनान्यार्थानां प्ररूपणा क्रियते—मनुष्यायुषः पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः। असंयतसम्यग्दृष्टौ व्युच्छिन्नबंधस्य मनुष्यायुष्कस्य महामुनेरयोगिचरमसमये उदयव्युच्छेदो भवति। मिच्छादृष्टिसासादनौ स्वोदयेन परोदयेनापि मनुष्यायुषं बध्नीतः अविरोधात्। असंयतसम्यग्दृष्टिः परोदयेनैव, स्वोदयेन सह तत्र बंधविरोधात्। अस्यामर्थः—**

असंयतसम्यग्दृष्टिः कश्चित् नारको देवो वा स्व नरकगत्युदयेन स्वदेवगत्युदयेन एव मनुष्यायुषं बद्ध्वा मनुष्येषूत्पद्यते। कश्चित् तिर्यङ् मनुष्यो वा सम्यग्दृष्टिर्भूत्वा देवायुषमेव बध्नाति। कदाचित् तिर्यङ् मनुष्यो वा प्राग् मनुष्यायुषं बद्ध्वा पश्चाद् यदि सम्यग्दृष्टिर्भवति तदा भोगभूमौ मनुष्यो भवति। अत्र बद्धायुष्कस्य विवक्षा नास्ति। अतः सम्यग्दृष्टिर्मनुष्यः देवायुषमेव बध्नातीति ज्ञातव्यं।

अस्य मनुष्यायुषो निरन्तरो बंधः, बध्यमानभवे प्रतिपक्षप्रकृत्याः बंधेन विना बंधपरिसमाप्तिदर्शनात्।

बंधविरहोऽन्तरं किन्न गृह्यते ?

न, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधकृदन्तरेणात्र प्रयोजनात्।

मिथ्यादृष्टेः मूलोत्तरनानैकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाः ज्ञानावरणे कथिता एव भवन्ति। नवरि नाना-समयोत्कृष्टप्रत्ययाः त्रिपंचाशत् भवन्ति, वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोगयोरत्र मनुष्यायुषा सह अभावात्। सासादनस्य नानासमयोत्कृष्टप्रत्ययाः सप्तचत्वारिंशत्, अत्रापि गुणस्थाने औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ बंधाध्वान और गुणस्थानों का आश्रय लेकर बंधस्वामित्व कहा गया है। इसलिए अब अन्य अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

मनुष्यायु का पहले बंध व्युच्छिन्न होता है पश्चात् उदय, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंध व्युच्छित्ति हो जाती है। पुनः मनुष्यायु के उदय वाले महामुनि, अर्हंत भगवान के अयोगिकेवली नाम के चौदहवें गुणस्थान के अन्त समय में उदय व्युच्छेद होता है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव स्वोदय और परोदय से भी मनुष्यायु को बांधते हैं, वहाँ कोई विरोध नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव परोदय से ही बांधते हैं, क्योंकि वहाँ स्वोदय के साथ बंध नहीं होता है।

इसका यह अर्थ है—

कोई असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी अथवा देव अपनी नरकगति के उदय में अथवा अपनी देवगति के उदय में ही मनुष्यायु को बांधकर मनुष्यों में उत्पन्न होते हैं। कोई तिर्यंच अथवा मनुष्य सम्यग्दृष्टि होकर देवायु को ही बांधते हैं। कदाचित् कोई तिर्यंच या मनुष्य पहले मनुष्यायु को बांधकर पश्चात् यदि सम्यग्दृष्टि होते हैं तब वे भोगभूमि में मनुष्य होते हैं। यहाँ पर बद्धायुष्क मनुष्य की विवक्षा नहीं है इसलिए सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवायु को ही बांधते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस मनुष्यायु का निरन्तर बंध है, क्योंकि बध्यमान भव में प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध के बिना इसके बंध की समाप्ति देखी जाती है।

शंका—बंध के वियोग का नाम अन्तर है, ऐसा क्यों नहीं ग्रहण करते ?

समाधान—ऐसा ग्रहण इसलिए नहीं करते कि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध द्वारा किये गयेअन्तर से प्रयोजन है।

मिथ्यादृष्टि के मूल और उत्तर, नाना व एक समयसंबंधी जघन्य एवं उत्कृष्ट प्रत्यय ज्ञानावरण में कहे गये ही होते हैं। विशेष इतना है कि नानासमय संबंधी उत्कृष्ट प्रत्यय तिरेपन होते हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि के वैक्रियिकमिश्र और कार्मण काययोग का यहाँ मनुष्यायु के साथ अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि के नाना समय

कार्मणानामभावात्। मनुष्यायुषं बध्यमानस्यासंयतसम्यग्दृष्टेः मूलप्रत्ययास्त्रयो, मिथ्यात्वाभावात्। एकसमयिक-जघन्यप्रत्ययाः नव, उत्कृष्टाः षोडश। नानासमयोत्तरप्रत्ययाः द्वाचत्वारिंशत्, औदारिक-तन्मिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणानामभावात्। त्रीणि अपि गुणस्थानानि मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तद्बंधस्यान्यगतिभिः सह विरोधात्। चातुर्गतिकाः मिथ्यादृष्टिसासादनयोः स्वामिनः। द्विगतिकअसंयतसम्यग्दृष्ट्योः स्वामिनौ, तिर्यग्मनुष्यगतिस्थिता-संयतसम्यग्दृष्टीनां मनुष्यायुर्बंधेन विरोधात्।

बंधाध्वानं सुगमं। बन्धव्युच्छेदोऽसंयतसम्यग्दृष्टेरप्रथमाचरमसमये।

मनुष्यायुषो बंधः साद्यध्रुवौ, बंधस्य ध्रुवत्वाभावात्।

इतो विस्तरः —

मनुष्यायुषो बंधकारणानि कथ्यन्ते —

पयडीए तणुकसाओ दाणरदी सीलसंजमविहीणो।
मज्झिमगुणेहिं जुत्तो मणुवाउं बंधदे जीवो[1]।।८०६।।

आस्त्रवकारणान्यपि ज्ञातव्यानि भवन्ति —

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य।।१७।।

विस्तरेण तु विनीतप्रकृतित्वं स्वभावभद्रत्वं अकुटिलव्यवहारत्वं तनुकषायत्वं अन्तकालेऽसंक्लेशत्वं

संबंधी उत्कृष्ट प्रत्यय सैंतालीस होते हैं, क्योंकि यहाँ भी इस गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण काययोग का अभाव है। मनुष्यायु को बांधने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि के मूल प्रत्यय तीन होते हैं, क्योंकि उनके मिथ्यात्व प्रत्यय नहीं है। एक समय में होने वाले जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय नौ व सोलह होते हैं। नाना समय में होने वाले उत्तर प्रत्यय बयालीस होते हैं, क्योंकि यहाँ औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाय योगों का अभाव है।

तीनों ही गुणस्थान मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि उसके बंध का अन्य गतियों के साथ विरोध है। चारों गतियों वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंध के स्वामी हैं। दो गतियों वाले असंयतसम्यग्दृष्टि इसके बंध के स्वामी हैं, क्योंकि तिर्यग्गति और मनुष्यगति में स्थित असंयतसम्यग्दृष्टियों के मनुष्यायु का बंध के साथ विरोध है।

बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद असंयतसम्यग्दृष्टि के अप्रथम अचरम समय में होता है। मनुष्यायु का बंध सादि और अध्रुव है, क्योंकि उसके बंध के ध्रुवपने का अभाव है।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं —

मनुष्यायु के बंध के कारणों को कहते हैं —

गोम्मटसार कर्मकाण्ड में श्री नेमिचन्द्राचार्य ने कहा है —

जो जीव स्वभाव से ही मन्द कषाय वाला है, दान देने का प्रेमी है, शील और संयम से रहित होते हुए भी मध्यम गुणों से युक्त है, वह मनुष्यायु का बंध करता है।।८०६।।

तत्त्वार्थ सूत्र में श्री उमास्वामी आचार्य ने आस्त्रव के कारण कहे हैं —

अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह से मनुष्यायु का आस्त्रव होता है।।१७।।

इसी की टीका करते हुए तत्त्वार्थवृत्ति ग्रंथ में लिखते हैं कि —

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड।

मिथ्यादर्शनसहितस्य विनीत्वं सुखसंबोध्यं धूलिरेखासमानरोषत्वं जन्तूपद्यातनिवृत्तिः प्रदोषरहितत्वं विकर्मवर्जितत्वं प्रकृत्यैव सर्वेषामगतस्वागतकरणं मधुरवचनता उदासीनत्वमनसूयत्वं अल्पसंक्लेशः गुर्वादिपूजनं कापोतपीतलेश्यत्वञ्चेत्यादयो मानुषायुरास्रवा भवन्ति।

स्वभावमार्दवञ्च।।१८।।

स्वभावेन प्रकृत्या गुरुपदेशं विनापि मार्दवं। अत्र पृथक्सूत्रकरणं उत्तरायुरास्रवसंबंधार्थं। तेनायमर्थः — स्वभावमार्दवं सरागसंयमादिकञ्च देवायुरास्रवो भवतीति वेदितव्यं।

अन्यान्यपि कारणानि निगद्यन्ते —

निःशीलव्रतित्वं च सर्वेषाम्।।१९।।

शीलानि गुणव्रतत्रयं शिक्षाव्रतचतुष्टयं च। व्रतानि अहिंसादीनि पंच। एभ्यो शीलव्रतेभ्यो निष्क्रान्तः निर्गतः-निःशीलव्रतस्तस्य भावः निःशीलव्रतित्वं। चकारादल्पारंभपरिग्रहत्वं च सर्वेषां नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवायुषां आस्रवो भवति।

ननु ये शीलव्रतरहितास्तेषां देवायुरास्रवः कथं संगच्छते ?

युक्तमुक्तं भवता, भोगभूमिजाः शीलव्रतरहिता अपि ईशानस्वर्गपर्यन्तं गच्छन्ति तदपेक्षया सर्वेषामिति ग्रहणं। केचिदल्पारंभपरिग्रहा अपि अन्यदुराचारसहिता नरकादिकं प्राप्नुवन्ति तदर्थं सर्वेषामिति गृहीतम्[१]।

विस्तार से और भी कारण कहते हैं — स्वभाव से विनम्रता, स्वभाव से भद्र प्रकृति, कुटिलता रहित सरल व्यवहार रखना, कषायों की मन्दता, मरण के समय संक्लेश परिणाम नहीं होना, मिथ्यात्व से सहित होते हुए भी विनय प्रवृत्ति, सुख से संबोधने योग्य होना, धूलि रेखा के समान क्रोध, जीवों के बंध से विरति होना, प्रदोष रहित होना, विकर्म — खोटे कार्यों से बचना, स्वभाव से ही सभी आगत अतिथियों का स्वागत करना, मधुर वचन बोलना, संसार से उदासीन होना, असूया — किसी के गुणों में आरोप नहीं लगाना, अल्प संक्लेश परिणामी, गुरु, तीर्थ आदि की पूजा करना, कापोत और पीत लेश्या के परिणाम रखना, और भी ऐसे ही शुभ भाव मनुष्यायु के आस्रव के कारण होते हैं।

स्वभाव से कोमल परिणाम से भी मनुष्यायु का आस्रव होता है।।१८।।

टीका में — स्वभाव से, प्रकृति से गुरु के उपदेश के बिना भी जो मृदुता — कोमलता होती है उसे स्वभावमार्दव कहते हैं। यहाँ पृथक् सूत्र बनाने का कारण यह है कि आगे की देवायु के आस्रव में भी यह स्वाभाविक मृदुता कारण है। इसलिए यह अर्थ समझना कि स्वाभाविक मृदुता और सरागसंयमादि देवायु के आस्रव के कारण हैं।

अन्य भी कारण कहते हैं —

शील रहित और व्रत रहित होने से सर्व — चारों आयुओं का आस्रव होता है।।१९।।

तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों को शील कहते हैं। अहिंसा आदि पाँच व्रत कहलाते हैं। इन शीलव्रतों से रहित अवस्था 'निःशीलव्रतित्व' कहलाती है। सूत्र में चकार से अल्पारंभ और अल्पपरिग्रह से भी सभी — नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव की आयु का आस्रव हो सकता है।

शंका — जो शील और व्रतों से रहित हैं उनके देवायु का आस्रव कैसे घटित होगा ?

समाधान — आपका कहना ठीक है, फिर भी भोगभूमियाँ मनुष्य और तिर्यंच व्रत और शील से रहित हैं फिर भी ईशान स्वर्ग पर्यंत जाते हैं। इसी अपेक्षा से 'सर्वेषां' — सभी आयुओं का आस्रव कहा है। कोई-कोई

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति-टीकांशः, अ. ६, पृ. ४८३।

तात्पर्यमेतत्—मनुष्यायुर्बंधकारणानि ज्ञात्वा अस्मिन् मनुष्यभवे 'वयं संयमिनो देशव्रतिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयो वा' देवायुरेव संप्रति अस्माकं बध्यते नान्यानि इति सिद्धान्तानुसारं निश्चित्य व्रतानां दृढीकरणार्थमेव भावना भावयितव्या।

एवं षोडशस्थले मनुष्यायुर्बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना देवायुषो बंधकाबंधकादिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।३१।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अपमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतस्य पूर्वमुदयः व्युच्छिद्यते पश्चाद् बंधः। देवायुषः असंयतसम्यग्दृष्टिचरमसमये व्युच्छिद्यते, अप्रमत्तस्य कालस्य संख्यातभागे गते बंधो व्युच्छिद्यते। अस्य परोदयेनैव बंधः स्वोदयेन एतस्य तीर्थकरप्रकृतेरिव बंधविरोधात्। निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधकृतान्तराभावात्।**

देवायुर्बध्यमानस्य मिथ्यादृष्टेश्चत्वारो मूलप्रत्ययाः, एकसमयिकाः जघन्योत्कृष्टप्रत्यया दश अष्टादश। नानासमयोत्कृष्टप्रत्ययाः एकपंचाशत्, वैक्रियिक-तन्मिश्र-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानां तत्राभावात्।

अल्प आरंभ और अल्प परिग्रह वाले हैं फिर भी अन्य किसी दुराचार से सहित होने से नरक आदि को प्राप्त कर लेते हैं, उनके लिए 'सर्वेषां' पद आया है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—मनुष्यायु के बंध के कारणों को जानकर इस मनुष्य भव में हम संयमी हैं या देशसंयमी हैं अथवा असंयतसम्यग्दृष्टी हैं, इस भव में हमारी देवायु ही बंधेगी, अन्य तीन आयु नहीं बंधेंगी, इस प्रकार सिद्धान्त ग्रंथ के अनुसार निश्चित करके व्रतों को दृढ़ करने के लिए ही भावना भाते रहना चाहिए।

इस प्रकार सोलहवें स्थल में मनुष्यायु के बंध-अबंध का निरूपण करते हुए दो सूत्र हुए।

अब देवायु के बंधक-अबंधक आदि का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

देवायु का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।३१।।

मिथ्यादृष्टी, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टी, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। अप्रमत्तसंयत काल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस देवायु का पूर्व में उदय व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् बंध, क्योंकि देवायु का उदय असंयतसम्यग्दृष्टी के चरम समय में व्युच्छिन्न हो जाता है और अप्रमत्तसंयत के काल में संख्यात भाग बीत जाने पर बंध व्युच्छिन्न होता है। इस देवायु का परोदय से ही बंध होता है, तीर्थंकर प्रकृति के समान स्वोदय से बंध का विरोध है। इसका निरन्तर बंध है, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध से किये गये अन्तर का अभाव है।

देवायु को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि के मूल चारों प्रत्यय होते हैं। एक समय संबंधी जघन्य प्रत्यय दश और उत्कृष्ट अठारह होते हैं। नाना समय संबंधी प्रत्यय इक्यावन हैं क्योंकि वहाँ वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र,

सासादनसम्यग्दृष्टेः प्रत्ययाः देवायुर्बध्यमानस्य ज्ञानावरणबंधतुल्याः। नवरि नानासमयोत्कृष्टप्रत्ययाः षट्चत्वारिंशत्, वैक्रियिकतन्मिश्र-औदारिकमिश्रकार्मणप्रत्ययानामभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रत्ययप्ररूपणायां ज्ञानावरणभंगवत्, अत्र नानासमयोत्कृष्टप्रत्ययाः द्वाचत्वारिंशत्, वैक्रियिकतन्मिश्र-औदारिकमिश्रकार्मण-प्रत्ययानामभावात्। उपरिमेषु गुणस्थानेषु प्रत्यया देवायुषः ज्ञानावरणतुल्याः।

सर्वेऽपि जीवा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, अन्यगतिबंधेन देवायुर्बन्धस्य विरोधात्। तिर्यग्मनुष्यगत्योः मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च स्वामिनः। उपरिमा मनुष्याश्चैव, अन्यत्र महाव्रतानामनुपलंभात्। बंधाध्वानं सुगमं। अप्रमत्तकालस्य संख्यातभागे गते देवायुषः बंधव्युच्छेदो भवति।

अप्रमत्तकालस्य संख्यातबहुभागेषु गतेषु देवायुषो बंधो व्युच्छिद्यते इति केष्वपि सूत्रग्रन्थेषु उपलभ्यते। ततोऽत्र उपदेशं लब्ध्वा वक्तव्यं।

देवायुषः बंधः सादिकोऽध्रुवो, अध्रुवबंधित्वात्।

इतो विस्तरः क्रियते—देवायुषः बंधकारणान्यत्र ज्ञातव्यानि भवन्ति। तदेवोच्यते—

'सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसिदैवस्य'।।२०।।

संसारकारणानिषेधं प्रत्युद्यतः अक्षीणाशयश्च सराग इच्युच्यते, प्राणींद्रियेषु अशुभप्रवृत्तेर्विरमणं संयमः-सरागसंयमः महाव्रतमित्यर्थः। संयमासंयमः श्रावकव्रतमित्यर्थः। अकामेन निर्जरा-अकामनिर्जरा। कश्चित्

औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। देवायु को बांधने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि के प्रत्यय ज्ञानावरण के बंध के तुल्य हैं। विशेष इतना है कि नाना समय संबंधी उत्कृष्ट प्रत्यय छ्यालीस हैं। क्योंकि यहाँ वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि के प्रत्ययों की प्ररूपणा करने पर ज्ञानावरण के समान जानना। यहाँ नाना समय संबंधी उत्कृष्ट प्रत्यय बयालीस हैं, क्योंकि वैक्रियक, वैक्रियकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणकाय प्रत्ययों का अभाव है। ऊपर के गुणस्थानों में प्रत्यय देवायु के ज्ञानावरण के समान हैं।

सभी जीव देवगतिसंयुक्त देवायु को बांधते हैं क्योंकि अन्य गति के बंध के साथ देवायु के बंध का विरोध है। तिर्यंच और मनुष्यगति के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत स्वामी हैं। उपरिम जीव मनुष्य गति के ही स्वामी हैं क्योंकि अन्यत्र महाव्रतों की उपलब्धि नहीं है। बंधाध्वान सुगम है। अप्रमत्तकाल के संख्यातभाग के चले जाने पर देवायु का बंध व्युच्छिन्न हो जाता है।

"अप्रमत्तकाल के संख्यात बहुभागों के बीत जाने पर देवायु का बंधव्युच्छिन्न हो जाता है" ऐसा किन्हीं सूत्र पुस्तकों में पाया जाता है। इस कारण यहाँ उपदेश प्राप्त कर कहना चाहिए।

देवायु का बंध सादि व अध्रुव है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी हैं।

अन्य ग्रंथों के आधार से देवायु के बंध के कारणों का विस्तार करते हैं—

तत्त्वार्थसूत्र का सूत्र—

सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप ये देवायु के आस्रव के कारण हैं।।२०।।

टीकाकार श्री श्रुतसागरसूरि तत्त्वार्थवृत्ति में कहते हैं—

जो संसार के कारणों को दूर करने के प्रति उत्सुक हैं, परन्तु जिनके मन से राग के संस्कार नष्ट नहीं हुए हैं, वे 'सराग' कहलाते हैं। प्राणियों और इन्द्रियों में अशुभ प्रवृति के त्याग को 'संयम' कहते हैं, वही सराग का संयम 'सराग संयम' कहलाता है। इस सरागसंयम का अर्थ ही महाव्रत है। संयम और असंयम मिलकर 'संयमासंयम' है,

पुमान् चारकेण बन्धविशेषेण गाढबन्धनबद्धः पराधीनपराक्रमः सन् बुभुक्षानिरोधं तृष्णादुःखं ब्रह्मचर्यकृच्छ्रं भूशयनकष्टं मलधारणं परितापादिकञ्च सहमानः सहनेच्छारहितः सन् यदीषत् कर्म निर्जरयति सा अकामनिर्जरा उच्यते। बालतपः—बालानां मिथ्यादृष्टितापससान्न्यासिकपाशुपतपारिव्राजकैकदण्डत्रिदण्ड परमहंसादीनां तपःक्लेशादि लक्षणं निकृतिबहुलव्रतधारणञ्च बालतप उच्यते। देवेषु चतुर्णिकायेषु भवं यदायुस्तद्दैवं तस्य दैवस्य। एतानि चत्वारि कर्माणि दैवायुरास्त्रवकारणानि।

पुनश्च पूर्वोक्तयोर्द्वयोः सूत्रयोः 'स्वभावमार्दवञ्च' निःशीलव्रतित्वञ्च सर्वेषां।' एतयोःकथितानि कारणानि अपि देवायुषः कारणानि भवन्ति।

अग्रे च—''सम्यक्त्वं च''।।२१।। इति सूत्रमपि वर्तते[1]।

अस्यायमर्थः—पृथक्सूत्रकरणादेव ज्ञायते यत्-सम्यक्त्ववान् पुमान् सौधर्मादिविशेषस्वर्गदेवेषु उत्पद्यते न तु भावनादिषु अन्यत्र पूर्वबद्धायुष्कात्। यदा तु सम्यक्त्वहीनः पुमान् भवति तदा सरागसंयमादिमण्डितोऽपि भवनवासित्रयं सौधर्मादिकञ्च यथागमं उभयमपि प्राप्नोति[2]।

कीदृश नराः तिर्यञ्चो वा क्व क्व गच्छन्तीति चेदुच्यते—

णरतिरियदेसअयदा उक्कस्सेणच्चुदोत्ति णिग्गंथा।
ण य अयद देसमिच्छा गेवेज्जंतोत्ति गच्छंति।।५४५।।

वही श्रावकों का व्रत है। अकाम—बिना इच्छा से निर्जरा अकामनिर्जरा है। कोई पुरुष चारक—बंध विशेष से गाढ़ बंधन से बंधा हुआ है उसका पराक्रम पराधीन है, ऐसा पुरुष बिना इच्छा के भूख, प्यास के दु:खों को सहन करते हुए ब्रह्मचर्य का भी पालन करता है। भूमि पर सोना, मलिन शरीर को धारण करना, स्नानादि नहीं करना, परिताप—संताप आदि को सहन करता है। इस प्रकार बिना इच्छा के कष्ट सहते हुए जो कुछ भी कर्मों की निर्जरा होती है वह 'अकामनिर्जरा' है। बालतप—मिथ्यादृष्टि, तापसी, सन्यासी, पाशुपत, पारिव्राजक, एकदण्डी, त्रिदण्डी, परमहंसादि के तपश्चरण के क्लेश आदि को करना, माया की बहुलता से व्रतों को धारण करना, ये बालतप हैं। चार प्रकार के देवों में होने वाली आयु ''देवायु'' है, उस देवायु के ये कारण हैं। ये सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा, बालतप आदि देवायु के आस्रव के कारण है। पुन: पूर्वोक्त दो सूत्रों में, 'स्वभावमार्दवञ्च' नि:शीलव्रतित्वञ्च में कथित कारण भी देवायु के आस्रव के कारण हैं। आगे तत्त्वार्थसूत्र में सूत्र है—

'सम्यक्त्वं च।।२१।।

इससे सम्यक्त्व भी देवायु के आस्रव का कारण है ऐसा जानना। यहाँ पर २१वें सूत्र में पृथक् करने से यह समझना कि सम्यग्दृष्टी पुरुष सौधर्म, ईशान आदि विशेष स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं न कि भवनवासी आदि में, बद्धायुष्क होते हुए भी सम्यग्दृष्टी भवनत्रिक में नहीं जन्म लेते हैं वे सौधर्मादि स्वर्गों में ही जन्म लेते हैं और जब सम्यग्दर्शन से रहित पुरुष देवायु का आस्रव करते हैं तब वे सरागसंयम आदि से मण्डित होते हुए भी भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में और सौधर्म आदि स्वर्गों में भी जा सकते हैं। आगम के अनुसार कल्पोपपन्न और कल्पातीत देवों में भी उत्पन्न हो सकते हैं।

शंका—कैसे-कैसे, मनुष्य अथवा तिर्यंच कहाँ-कहाँ जाते हैं ?

समाधान—ऐसी आशंका होने से त्रिलोकसार ग्रंथ के आधार से कहते हैं—देशसंयत मनुष्य और तिर्यंच अधिक से अधिक अच्युत स्वर्ग तक, निर्ग्रन्थ मुनि आदि भाव से असंयत, देशसंयत एवं मिथ्यादृष्टी हैं

---

१. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६। २. तत्त्वार्थवृत्ति अ. ६ टीकांश, पृ. ४८५।

निर्ग्रन्था-द्रव्यनिर्ग्रन्था नरा-द्रव्यलिंगिनो मुनयः भावेनासंयता देशसंयताः मिथ्यादृष्टयो वा उपरिमग्रैवेयक-पर्यंतं गच्छन्ति।

सव्वट्ठोत्ति सुदिट्ठी महव्वई भोगभूमिजा सम्मा।
सोहम्मदुगं मिच्छा भवणतियं तावसा य वरं।।५४६।।

सर्वार्थसिद्धिपर्यंतं सद्दृष्टिर्द्रव्यभावरूपेण महाव्रती गच्छति। भोगभूमिजाः सम्यग्दृष्टयः सौधर्मद्विकं गच्छन्ति न तत उपरि। भोगभूमिजा मिथ्यादृष्टयो भवनत्रयं यान्ति न तत उपरि। पञ्चाग्न्यादिसाधकास्तापसा उत्कृष्टेन भवनत्रयं यान्ति न तत उपरि।

चरया य परिव्वाजा बह्मोत्तरपदोत्ति आजीवा।
अणुदिसअणुत्तरादो चुदा ण केसवपदं जांति।।५४७।।

नग्नांडलक्षणाश्चरका एकदण्डित्रिदण्डिलक्षणाः परिव्राजका ब्रह्मकल्पपर्यंतं यान्ति न तत उपरि। काञ्जिकादिभोजिनः आजीवा अच्युतकल्पपर्यंतं न तत उपरि।

तथा च देवगतेश्च्युताः कां कां गतिं प्राप्नुवन्ति इति चेत्—

अनुदिशानुत्तरविमानेभ्यश्च्युताः केशवपदं वासुदेव-प्रतिवासुदेवपदं न यान्ति।

सौधर्मेन्द्रस्तस्य पट्टदेवी शची तस्य सोमादिलोकपाला दक्षिणामरेन्द्राः सर्वे, लौकान्तिकाः, सर्वे

तो ही वे अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत जाते हैं।।५४५।।

टीकाकार ने खोला है कि—

निर्ग्रन्थ अर्थात् द्रव्य से निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि हैं किन्तु भावों से नहीं, वे द्रव्यलिंगी मुनि कहलाते हैं वे मुनि भावों से असंयत—चतुर्थ गुणस्थानवर्ती हैं या देशसंयमी हैं अथवा मिथ्यादृष्टी हैं वे उपरिम ग्रैवेयक तक—नवों ग्रैवेयक तक जा सकते हैं। आगे कहते हैं—

सम्यग्दृष्टी महाव्रती सर्वार्थसिद्धिपर्यंत, सम्यग्दृष्टी भोगभूमिज मनुष्य या तिर्यंच सौधर्म-ईशान पर्यंत, मिथ्यादृष्टी भोगभूमिज मनुष्य, तिर्यंच भवनत्रिकों में और तापसी साधु उत्कृष्ट से भवनत्रिक तक ही जाते हैं।।५४६।।

टीका में कहते हैं—द्रव्य और भावरूप से सम्यग्दृष्टी महाव्रती मुनि सर्वार्थसिद्धिपर्यंत जाते हैं।

भोगभूमियाँ सम्यग्दृष्टी सौधर्म-ईशान स्वर्ग पर्यंत जाते हैं, इसके ऊपर नहीं। भोगभूमियाँ मिथ्यादृष्टी भवनत्रिक पर्यंत ही जाते हैं इसके ऊपर नहीं। पंचाग्नि आदि तप को करने वाले तापसी उत्कृष्टरूप से भवनत्रिक तक जाते हैं इससे ऊपर नहीं जाते हैं।

चरक और पारिव्राजक सन्यासी ब्रह्मकल्पपर्यंत और आजीवक साधु अच्युत स्वर्गपर्यंत उत्पन्न होते हैं। अनुदिश, अनुत्तर से च्युत हुए देव नारायण और प्रतिनारायण पद को प्राप्त नहीं होते।।५४७।।

टीका में कहते हैं—नग्नाण्ड है लक्षण जिसका ऐसे चरक एवं एकदण्डी, त्रिदण्डी है लक्षण जिनका ऐसे पारिव्राजक सन्यासी ब्रह्मकल्प पर्यंत ही उत्पन्न होते हैं, इनसे ऊपर नहीं। काञ्जी आदि का भोजन करने वाले आजीवक अच्युतकल्प पर्यंत जाते हैं, इससे ऊपर नहीं।

शंका—पुनः देवगति से च्युत होकर किन-किन गतियों को प्राप्त करते हैं ?

समाधान—नव अनुदिश और पाँच अनुत्तरों से च्युत होकर अहमिन्द्र देव, केशव पद—नारायण और प्रतिनारायण पद को प्राप्त नहीं कर सकते।

सौधर्मेन्द्र, उनकी पट्टदेवी—शची इन्द्राणी, उनके सोम आदि लोकपाल, दक्षिणेन्द्र, सभी लौकान्तिक

सर्वार्थसिद्धिजाः सर्वे, ततो देवगतेश्च्युता नियमेन निर्वृतिं यान्ति[१]।

भवनत्रिकात् च्युताः कदाचित् सौधर्मद्विकादपि च्युताश्च कदाचिद् एकेन्द्रियाः पंचेन्द्रियाश्चापि तिर्यञ्चः भवितुं शक्नुवन्ति। सहस्रारस्वर्ग पर्यंतात् च्युताः कदाचिद् पंचेन्द्रियतिर्यंचः भवन्ति। ततः उपरितनात् च्युताः मनुष्या एव भवन्ति।

तात्पर्यमत्र एवमेव ज्ञातव्यं यत् देवगतिष्वपि सम्यग्दर्शनमेव श्रेयस्करं अस्ति, अन्यथा नवग्रैवेयकेभ्योऽपि च्युताः मिथ्यात्ववशंगताः पुनरपि चतुर्गतिभ्रमणं कुर्वन्ति। अतः सम्यक्त्वमुपलभ्य महत्प्रयासेन चारित्रमादाय अंतकाले समाधिमरणार्थं प्रयतितव्यं।

एवं सप्तदशस्थले देवायुर्बंधकाबंधकादिनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति देवगत्यादिप्रकृतीनां बंधकाबंधकादिनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणु-पुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।३३।।

देव और सभी सर्वार्थसिद्धि के अहमिन्द्र देव उस देवगति से च्युत होकर मनुष्य होकर नियम से मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

भवनत्रिकों में देवगति से च्युत होकर और कदाचित् सौधर्मद्विक से च्युत होकर एकेन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तिर्यंच भी हो सकते हैं। सहस्रार — बारहवें पर्यंत स्वर्ग से च्युत हुए देव कदाचित् पंचेन्द्रिय तिर्यंच भी हो सकते हैं। इनसे ऊपर से च्युत हुए देव मनुष्य ही होते हैं।

यहाँ तात्पर्य यह ग्रहण करने योग्य है कि — देवगति में भी सम्यग्दर्शन ही श्रेयस्कर है, अन्यथा नव ग्रैवेयकों से भी च्युत हुए तथा मिथ्यात्व के वश में हुए देव मनुष्य होकर पुनरपि चारों गतियों में भ्रमण करते रहते हैं। अतः सम्यक्त्व को प्राप्त कर महान प्रयास से चारित्र को ग्रहण करके अन्तकाल में समाधिमरण के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार सत्रहवें स्थल में देवायु के बंधक और अबंधक आदि के निरूपणरूप से दो सूत्र कहे गये हैं।

अब देवगति आदि प्रकृतियों के बंधक-अबंधकादि के निरूपण करने के लिएदो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियक शरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण, इन नामकर्म की प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।३३।।

---

१. त्रिलोकसार गाथा ५४५ से ५४८, पृ. ४६९-४७०।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो बोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगतिदेवगत्यानुपूर्वि-वैक्रियिकशरीरवैक्रियिकांगोपांगानम् पूर्वमुदयो व्युच्छिद्यते पश्चाद्बंधः, असंयतसम्यग्दृष्टौ नष्टोदयानामेतासां चतुःप्रकृतीनां अपूर्वकरणस्य कालस्य संख्यातेषु भागेषु गतेषु बंधव्युच्छेद उपलभ्यते। तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुस्वर-निर्माणानां पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः, अपूर्वकरणे नष्टबंधानां एतासां प्रकृतीनां सयोगिचरमसमये उदयव्युच्छेदोपलंभात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगादेयानां अपि एवमेव। नवरि एतासामयोगिचरमसमये उदयो व्युच्छिन्नः।

देवगति-देवगत्यानुपूर्वि-वैक्रियिक-तदंगोपांगानां परोदयेन सर्वगुणस्थानेषु बंधः, परोदयेन बध्यमानैकादशप्रकृतिभिः सह आगच्छन्ति। तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-स्थिर-शुभ-निर्माणप्रकृतयः स्वोदयेनैव बध्नन्ति, ध्रुवोदयत्वात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्तानां मिथ्यादृष्टौ बंधः स्वोदयपरोदयः। उपरि सोदयश्चैव, तत्र प्रतिपक्षोदयाभावात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तिविहायोगति-सुस्वराणां सर्वगुणस्थानेषु स्वोदय-परोदयः प्रतिपक्षोदयसंभवात्। सुभगादेययोः मिथ्यादृष्ट्याद्यसंयसम्यग्दृष्टिषु स्वोदय-परोदयः। उपरि

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण काल के संख्यात बहुभागों को बिताकर इनका बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव—महामुनि अबंधक हैं।।३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर और वैक्रियक शरीरांगोपांग इनका पहले उदय व्युच्छिन्न होता है पश्चात् बंध, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इन चारों प्रकृतियों के उदय के नष्ट हो जाने पर अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहुभागों को बिताकर इनका बंध व्युच्छेद पाया जाता है। तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुस्वर और निर्माण नामकर्म का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय क्योंकि अपूर्वकरण में बंध के नष्ट हो जाने पर पश्चात् सयोगिकेवली के अंतिम समय में इन प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद पाया जाता है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और आदेय इनका भी बंधोदय व्युच्छेद इसी प्रकार है। विशेषता यह है कि इनका उदय अयोगिकेवली के अंतिम समय में व्युच्छिन्न होता है।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, तदंगोपांग, इनका बंध सभी गुणस्थानों में परोदय से होता है क्योंकि ये प्रकृतियाँ परोदय से बंधने वाली ग्यारह प्रकृतियों के साथ आती हैं। तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, शुभ और निर्माण ये प्रकृतियाँ स्व उदय से ही बंधती हैं, क्योंकि ये ध्रुवोदयी हैं। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर और पर्याप्त प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय से होता है। इसके ऊपर स्वोदय से ही होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर इनका सर्व गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध है क्योंकि इनके

स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः स्वोदयपरोदयो बंधः, अपर्याप्तकाले परघातोच्छ्वासयोः उदयाभावेऽपि, विग्रहगतौ उपघातप्रत्येक-शरीरोरुदयाभावेऽपि, मिथ्यादृष्टौ प्रत्येकशरीरस्य साधारणशरीरोदये सत्यपि बंधोपलंभात्। अवशेषाणां स्वोदयश्चैव, अपर्याप्त-साधारणयो-रुदयाभावात्। नवरि परघातोच्छ्वासयोः प्रमत्ते स्वोदयपरोदयो बंधः।

तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माणानां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। देवगति-गत्यानुपूर्वि-वैक्रियिकतदंगोपांगानां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरः।

कुतः?

असंख्यातवर्षायुष्कतिर्यग्मनुष्ययोः निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरश्चैव, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयानां सान्तरनिरन्तरो मिथ्यादृष्टिसासादनयोः भोगभूमिजेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरबंधः।

कुतः?

सनत्कुमारादिदेवेषु नारकेषु भोगभूमिजेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादनादिषु निरन्तरः,

---

प्रतिपक्षी प्रकृतियों के उदय की संभावना है। सुभग और आदेय का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादन, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय से होता है। इसके ऊपर स्वोदय से ही होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर इन प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि में स्वोदय-परोदय बंध है, क्योंकि अपर्याप्त काल में परघात और उच्छ्वास के उदय का अभाव होने पर भी बंध और विग्रहगति में उपघात और प्रत्येक शरीर के उदय का अभाव होने पर भी बंध पाया जाता है तथा मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में प्रत्येक शरीर का साधारण शरीर के उदय के होने पर भी बंध पाया जाता है। शेष गुणस्थानवर्ती जीवों के उनका बंध स्वोदय ही है क्योंकि वहाँ पर अपर्याप्त और साधारण शरीर के उदय का अभाव है। विशेषता यह है कि परघात और उच्छ्वास का प्रमत्तगुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध है।

तैजस, कार्मण, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियों का निरंतर बंध है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। देवगति, तद्गत्यानुपूर्वी, वैक्रियकशरीर, तदंगोपांग इन चारों का मिथ्यादृष्टि और सासादन में सान्तर-निरन्तर बंध है।

ऐसा क्यों ?

इसका कारण यह है कि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच और मनुष्यों में निरंतर बंध पाया जाता है, इससे ऊपर निरंतर बंध है क्योंकि एक समय से बंध का नाश नहीं होता। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर है, क्योंकि भोगभूमिजों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरंतर ही बंध है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि जीवों में सान्तर-निरन्तर बंध है।

ऐसा क्यों ?

क्योंकि सानत्कुमार आदि देवों में, नारकियों में और भोगभूमिजों में निरंतर बंध पाया जाता है। सासादन

प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। परघातोच्छ्वासयोर्मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरो बंधः, देवनारकेषु भोगभूमौ च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादनादिषु निरन्तरः, अपर्याप्तबंधाभावात्। स्थिरशुभयोर्मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् प्रमत्त इति सान्तरः। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षप्रकृतिबंधात्।

देवगतिगत्यानुपूर्वि-वैक्रियिकद्विकानां प्रत्ययाः मिथ्यादृष्टौ एकपंचाशत्, सासादने षट्चत्वारिंशत्, किंचात्र — औदारिकमिश्र-कार्मण-वैक्रियिकद्विकानामभावोऽस्ति। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ द्वाचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिककाययोगाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ चतुश्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकद्विकाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां प्रत्ययाः सर्वगुणस्थानेषु ओघप्रत्ययतुल्याः, विशेषकारणाभावात्। यद्यस्ति तर्हि चिन्तयित्वा वक्तव्यः।

देवगति-गत्यानुपूर्विप्रकृतीः सर्वगुणस्थानजीवा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, अन्यगतिभिः सह विरोधात्। वैक्रियिकशरीर-तदंगोपांगौ मिथ्यादृष्टिः देवनरकगतिसंयुक्तं, उपरिमगुणस्थानेषु देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, शेषगुणस्थानानां नरकगतिबंधेन सह विरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माणप्रकृतीः मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवौ द्विगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेयप्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनौ त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगतेरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिजीवौ द्विगतिसंयुक्तं, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्।

आदि गुणस्थानवर्तियों में निरंतर बंध है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। परघात और उच्छ्वास का मिथ्यादृष्टि जीव में सान्तर-निरंतर बंध है, क्योंकि देव-नारकियों में और भोगभूमिजों में निरन्तर बंध पाया जाता है। सासादन आदि उपरिम गुणस्थानों में इनका निरंतर बंध है क्योंकि वहाँ अपर्याप्त के बंध का अभाव है। स्थिर और शुभ प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्त तक सान्तर है। ऊपर निरंतर है, क्योंकि वह प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित है।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वी और वैक्रियकद्विक के प्रत्यय मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से इक्यावन और चालीस हैं, क्योंकि यहाँ औदारिकमिश्र, कार्मण और वैक्रियकद्विक प्रत्ययों का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में बयालीस प्रत्यय हैं क्योंकि वहाँ वैक्रियक काययोग का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चवालीस प्रत्यय हैं, क्योंकि वहाँ वैक्रियकद्विक का अभाव है। शेष प्रकृतियों के प्रत्यय सर्व गुणस्थानों में ओघ से स्वीकार किये गये प्रत्ययों के समान हैं, क्योंकि विशेष कारणों का अभाव है और यदि है तो विचार कर कहना चाहिए।

देवगति और देवगत्यानुपूर्वी को सर्व गुणस्थानों के जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि अन्य गतियों के साथ उनके बंध का विरोध है। वैक्रियक शरीर और वैक्रियक अंगोपांग को मिथ्यादृष्टि जीव देव और नरकगति से संयुक्त बांधते हैं। उपरिम गुणस्थानों में देवगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि शेष गुणस्थानों का नरकगति के बंध के साथ विरोध है। पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर और निर्माण नामकर्मों को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादन सम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि दो गतियों से संयुक्त तथा उपरिम गुणस्थानवर्ती जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं।

समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय नामकर्मों को मिथ्यादृष्टि व सासादन सम्यग्दृष्टि जीव तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इनके बंध के साथ नरकगति के बंध का

उपरिमा देवगतिसंयुक्तं तत्र शेषगतीनां बंधाभावात्।

देवगति-गत्यानुपूर्वि-वैक्रियिकद्विकानां बंधस्य तिर्यञ्चो मनुष्याश्च मिथ्यादृष्टिआदिसंयतासंयतपर्यन्ताः स्वामिनः। उपरिमा मनुष्याश्चैव, अन्यत्र तेषामभावात्। पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माणप्रकृतीनां चतुर्गतिमिथ्यादृष्ट्याद्यसंयतसम्यग्दृष्टयः, द्विगतिसंयतासंयताः, मनुष्यगतिप्रमत्तादयः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अपूर्वकरणकालस्य सप्तखण्डानि कृत्वा षट्खण्डान्युवरि चटित्वा सप्तमखण्डावशेषे बंधो व्युच्छिद्यते।

सूत्राभावे सप्तैव खण्डानि क्रियन्ते इति कथं ज्ञायते ?

नैतद् वक्तव्यं, आचार्यपरंपरागतोपदेशात्।

तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माणप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। उपरिमागुणेषु त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्। अवशेषाः प्रकृतयः साद्यध्रुविकाः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंध-संभवात्, परघातोच्छ्वासयोरपर्याप्तसंयुक्तं बध्यमानकाले प्रतिपक्षबंधप्रकृतेरभावेऽपि बंधाभावोपलंभात्।

तात्पर्यमेतत्—ये केचित् महामुनयः सप्तमगुणस्थाने देवायुर्बद्ध्वा अष्टमगुणस्थानादुपशमश्रेण्यामारोहन्ति त एव कदाचिद् ततोऽवतीर्य तत्रोपश्रेण्यां मृत्वा वा देवत्वं प्राप्नुवन्ति। तेषामेव अष्टमगुणस्थाने देवगत्यादीनां

अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि जीव दो गति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनके नरकगति और तिर्यंचगति के बंध का अभाव है। ऊपर के गुणस्थानवर्ती जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि वहाँ शेष गतियों के बंध का अभाव है।

देवगति, देवगत्यानुपूर्वी और वैक्रियकद्विकों के बंध के तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत पर्यंत स्वामी हैं। ऊपर के गुणस्थानों में मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्यत्र उनका—संयत आदि का अभाव है।

पंचेन्द्रिय जाति, तैजस, कार्मण, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण प्रकृतियों के बंध के चतुर्गति के मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीव स्वामी हैं। इन प्रकृतियों के बंध के स्वामी दो गति वाले संयतासंयत हैं तथा मनुष्यगति के प्रमत्तसंयतादिक स्वामी हैं।

बंधाध्वान सुगम है। अपूर्वकरण काल के सात खण्ड करके छह खण्ड ऊपर चढ़कर सातवें खण्ड के अवशेष रहने पर बंध व्युच्छिन्न हो जाता है।

प्रश्न—सूत्र के अभाव में सात ही खण्ड किये जाते हैं यह किस प्रकार ज्ञात होता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना, यह आचार्य परम्परागत उपदेश से ज्ञात होता है।

तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि में चार प्रकार का बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। उपरिम गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध है, क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध नहीं है। अवशेष प्रकृतियाँ सादि और अध्रुव बंध से युक्त हैं क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध संभव है, परघात और उच्छ्वास को अपर्याप्त से संयुक्त बांधने के काल में प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध के अभाव में भी उनका बंध नहीं पाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि—जो कोई महामुनि सातवें गुणस्थान में देवायु को बांधकर आठवें गुणस्थान से उपशमश्रेणी में आरोहण करते हैं, वे ही कदाचित् उससे उतरकर अथवा वहाँ उपशमश्रेणी में ही मरकर देव

बंधः कार्यकारी भवति। तथा च ये केचिन्मुनयः क्षपकश्रेण्यामारोहन्ति तेषां अष्टमगुणस्थाने देवगत्यादीनां बंधो न कार्यकारी, किंच—तेषां देवायुर्बंधो न विद्यते ते नियमेन मोक्षं प्रयास्यन्ति इति ज्ञात्वा यथा भवेत् तथा कर्मक्षपणविधौ प्रयत्नः विधेयः निरन्तरं भावनापि कर्तव्या।

एवमष्टादशस्थले देवगत्यादिप्रकृतिबंधकाबंधकप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इदानीं आहारद्विकबंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।३५।।

अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इदं देशामर्शकसूत्रं, बंधाध्वान-स्वामित्व-विनष्टस्थानानामेव प्ररूपणात्। तेनैतेन सूचितार्थानां प्ररूपणा क्रियते—**

एतयोराहारकद्विकयोरुदयः पूर्वं व्युच्छिद्यते पश्चाद् बंधः, प्रमत्ते संयते महामुनौ नष्टोदययोरेतयोरपूर्वकरणे बंधव्युच्छेदोपलंभात्। परोदयेन एते प्रकृती बध्येते, आहारद्विकोदयविरहिताप्रमत्तापूर्वकरणयोश्चैव बंधोपलंभात्। निरन्तरं बध्नीतः प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधेन विना बंधभावात्।

पर्याय को प्राप्त करते हैं। उन्हीं मुनि के आठवें गुणस्थान में देवगति आदि का बंध कार्यकारी होता है और जो कोई महामुनि क्षपक श्रेणी में आरोहण करते हैं उनके आठवें गुणस्थान में देवगति आदि का बंध कार्यकारी नहीं है, क्योंकि उनके देवायु का बंध नहीं होता है वे तो नियम से मोक्ष को प्राप्त करेंगे, ऐसा समझकर जैसे बने वैसे कर्मों के क्षय की विधि में प्रयत्न करना चाहिए और निरन्तर कर्मक्षय की भावना भी करते रहना चाहिए।

इस प्रकार अठारहवें स्थल में देवगति आदि प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारकद्विक के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

आहारक शरीर और आहारक शरीरांगोपांग नामकर्मों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।३५।।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक बंधक हैं। अपूर्वकरण काल के संख्यात बहुभागों को बिताकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष—मुनिगण अबंधक हैं।।३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह सूत्र देशामर्शक है, क्योंकि यह बंधाध्वान, स्वामित्व और बंधविनष्ट स्थान का ही प्ररूपण करता है। इसलिए इस सूत्र से सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

इन आहारकद्विक प्रकृतियों का उदय पहले व्युच्छिन्न होता है पश्चात् बंध, क्योंकि प्रमत्तसंयत महामुनि में इनके उदय के नष्ट हो जाने पर अपूर्वकरण गुणस्थान में इनकी बंध व्युच्छित्ति पायी जाती है। ये दोनों प्रकृतियाँ परोदय से बंधती हैं, क्योंकि आहारकद्विक के उदय से रहित अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती संयत में ही इनका बंध पाया जाता है। ये दोनों प्रकृतियाँ निरन्तर बंधती हैं, क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध के बिना बंध का सद्भाव है।

प्रत्ययप्ररूपणायां नानैकसमयमूलोत्तरजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाः ज्ञानावरणस्येव वक्तव्याः।

कश्चिदाशंकते — चतुःसंज्वलन-नवनोकषाय-नवयोगा द्वाविंशतिप्रत्यया एव आहारद्विकस्य तर्हि सर्वेषु अप्रमत्तापूर्वकरणेषु संयतेषु आहारद्विकेन बंधेन भवितव्यम्। न चैवं, तथानुपलंभात् ततोऽन्यैरपि प्रत्ययै-र्भवितव्यम् ? आचार्यदेवः समाधत्ते — नैष दोषः, इष्यमाणत्वात्।

के ते अन्ये प्रत्यया यैराहारद्विकस्य बंधो भवति इति चेत् ?

उच्यते — तीर्थकराचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनानुरागा आहारद्विकस्य प्रत्ययाः। अप्रमादोऽपि, सप्रमादेष्वाहार-द्विकबंधस्यानुपलंभात्।

अपूर्वकरणस्योपरिमसप्तमभागे अस्य बंधः किन्न भवति ?

न भवति, तत्र तीर्थकराचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनविषयरागजनितसंस्काराभावात्। देवगतिसंयुक्त आहारद्विकबंधः, अन्यगतिभिः सह तद्बंधविरोधात्। मनुष्या एवास्य स्वामिनः, अन्यत्र तीर्थकराचार्यबहुश्रुत-रागस्य संयमसहितस्यानुपलंभात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं सुगमं, सूत्रनिर्दिष्टत्वात्। सादिकोऽध्रुवश्च बंधः, आहारद्विकस्य प्रत्ययस्य सादिसपर्यवसाणत्वदर्शनात्।

इतो विस्तरः — आहारद्विकस्य प्रकृतेर्बंधः सप्तमाष्टमगुणस्थानवर्तिनां भावलिंगिनां महामुनीनां भवति,

---

प्रत्ययप्ररूपणा में नाना समय, एक समय संबंधी मूलप्रत्यय व उत्तरप्रत्यय, जघन्य व उत्कृष्ट, इनका कथन ज्ञानावरण के समान ही करना चाहिए।

यह कोई आशंका करता है —

चार संज्वलन, नव नोकषाय और नव योग ये बाईस प्रत्यय ही आहारकद्विक के प्रत्यय — कारण हैं, तब तो सभी अप्रमत्त और अपूर्वकरणगुणस्थानवर्ती संयतों में आहारकद्विक का बंध होना चाहिए, किन्तु ऐसी बात तो है नहीं, क्योंकि वैसा पाया नहीं जाता, अतः अन्य भी प्रत्यय — कारण होने चाहिए ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं —

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि अन्य प्रत्यय भी हमें इष्ट हैं।

शंका — वे अन्य प्रत्यय कौन हैं कि जिनसे आहारकद्विक का बंध होता है ?

समाधान — तीर्थंकर देव, आचार्य, बहुश्रुत, उपाध्याय और प्रवचन, इनमें अनुराग करना आहारकद्विक का कारण है। इसके अतिरिक्त प्रमाद का अभाव भी आहारकद्विक का कारण है क्योंकि प्रमादसहित मुनियों में आहारकद्विक का बंध नहीं पाया जाता।

शंका — अपूर्वकरण के उपरिम सप्तम भाग में इनका बंध क्यों नहीं होता ?

समाधान — नहीं होता, क्योंकि वहाँ तीर्थंकर, आचार्य, बहुश्रुत और प्रवचनविषयक राग से उत्पन्न हुए संस्कारों का अभाव है।

आहारकद्विक का बंध देवगति से संयुक्त होता है क्योंकि अन्य गतियों के साथ उनके बंध का विरोध है। मनुष्य ही इनके बंध के स्वामी हैं, क्योंकि अन्यत्र तीर्थंकर, आचार्य और बहुश्रुतविषयक राग संयम सहित पाया नहीं जाता। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान तो सुगम है क्योंकि ये सूत्र में ही निर्दिष्ट हैं। इन दोनों प्रकृतियों का सादिक अध्रुव बंध होता है, क्योंकि आहारकद्विक के प्रत्यय — कारण सादि और सपर्यवसान देखे जाते हैं।

यहाँ विशेष कहते हैं — आहारकद्विक प्रकृति का बंध सातवें, आठवें गुणस्थानवर्ती भावलिंगी महामुनियों

उदयश्च षष्ठगुणस्थानवर्तिनां मुनीनां भवति। अत्र बंधस्य प्रत्ययाः कारणानि चतुःसंज्वलनकषाया नव नोकषायाः नव योगाश्च भवन्त्येव, विशेषेण तीर्थकरेषु आचार्येषु उपाध्यायेषु प्रवचनेषु — चतुर्विधसंघेषुचानुरागः विशिष्टप्रीतिः ज्ञातव्या।

अद्यत्वे ये केचिन्निश्चयाभासा वदन्ति 'रागोऽनुरागो मिथ्यात्वमेव' तैरेतत्सिद्धान्तवाक्यानि पठित्वा श्रद्धातव्यानि भवन्ति एकान्तदुराग्रहं त्यक्त्वा, तर्हि सम्यक्त्वं भवत्यन्यथा सम्यग्दर्शनं दूरमेव तिष्ठति।

महाबंधनाम्नि षष्ठखण्डेऽपि कथितं —

''आहारदुगं संजमपच्चयं।'' इति।

प्रमत्तमुनेराहारशरीरं कथं निःसरति इति चेत् ?

कथ्यते —

आहारस्सुदयेण य पमत्तविरदस्स होदि आहारो।
असंजमपरिहरणट्ठं संदेहविणासणट्ठं च[१]।।२३५।।
णियखेत्ते केवलिदुगविरहे णिक्कमणपहुडिकल्लाणे।
परखेत्ते संवित्ते जिणजिणघरवंदणट्ठं च[२]।।२३६।।

सार्धद्वयद्वीपवर्तितीर्थयात्रादिविहारे असंयमपरिहरणार्थं ऋद्धिप्राप्तस्यापि प्रमत्तसंयतस्य श्रुतज्ञानावरण-वीर्यान्तरायक्षयोपशममान्द्ये सति यदा धर्म्यध्यानविरोधी श्रुतार्थसंदेहः स्यात्तदा तत्संदेहविनाशनार्थं च आहारकशरीरमुत्तिष्ठतीत्यर्थः।

के होता है और उनका उदय छठे गुणस्थानवर्ती मुनियों के होता है। यहाँ इन दोनों प्रकृतियों के बंध के कारण चार संज्वलन कषाय, नव नोकषाय और नव योग ये बाईस प्रत्यय तो हैं ही, विशेषरूप से तीर्थंकर देवों में, आचार्यों में, उपाध्यायों में और प्रवचन में — चतुर्विध संघों में अनुराग विशिष्ट प्रीति भी कारण है, ऐसा जानना चाहिए।

आजकल कोई-कोई निश्चयाभासी कहते हैं कि — ''राग-अनुराग मिथ्यात्व ही है'' उन्हें एकान्त दुराग्रह को छोड़कर इन सिद्धान्तवाक्यों को पढ़कर इन पर श्रद्धान करना चाहिए तभी सम्यक्त्व है, अन्यथा सम्यग्दर्शन दूर ही रहता है।

'महाबंध' नाम के छठे खण्ड में भी कहा है —

''आहारकद्विक प्रकृतियाँ संयम के कारण से बंधती हैं।''

प्रमत्तसंयत मुनि के आहारक शरीर कैसे — किन कारणों से निकलता है ?

कहते हैं — आहारकशरीर के उदय से प्रमत्त मुनि के आहारकशरीर होता है। वह असंयम के परिहार के लिए और संदेह का विनाश करने के लिए निकलता है। निज क्षेत्र में केवली-श्रुतकेवली के अभाव में, परक्षेत्र में तीर्थंकरों के दीक्षा आदि कल्याणकों में और जिनगृह — कृत्रिम, अकृत्रिम जिनमंदिरों की वंदना के लिए भी आहारक शरीर निकलता है।।२३५-२३६।।

टीका में और अधिक स्पष्ट किया है —

अढ़ाईद्वीप में तीर्थों की यात्रा आदि के लिए विहार करना है, तो असंयम से बचने के लिए ऋद्धिप्राप्त भी प्रमत्तसंयत मुनि के आहारक शरीर निकलता है अथवा श्रुतज्ञानावरण और वीर्यान्तराय के क्षयोपशम की मन्दता होने पर जब धर्मध्यान के विरोधी ऐसे कोई शास्त्र के अर्थ में संदेह हो जाता है, तब उस संदेह को दूर

---

१. गोम्मटसार जीवकांड। २. गोम्मटसार जीवकांड-टीकांशा-जीवतत्त्वप्रदीपिकायाः, पृ. ३७३।

निजक्षेत्रे स्ववृत्त्याधारदेशे केवलिश्रुतकेवलिद्वयाभावे, परक्षेत्रे औदारिकशरीरगमनागोचरे दूरक्षेत्रे केवलिश्रुतकेवलिद्वये तीर्थकरपरिनिष्क्रमणादिकल्याणत्रये च संवृत्ते वर्तमाने सति असंयमपरिहरणार्थं संदेहविनाशनार्थं जिनजिनगृहवन्दनार्थं च गन्तुं समुद्युक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारशरीरं भवति[१]।

एताभ्यां गाथाभ्यां ज्ञायते यत् तीर्थकराणां दीक्षादिकल्याणकमहोत्सवदर्शनार्थं जिनेन्द्रदेववन्दनाकरणार्थं-अकृत्रिम-कृत्रिमजिनमंदिराणां तत्रस्थितानां अकृत्रिमकृत्रिमजिनप्रतिमानां च दर्शनवन्दनस्तवनकरणार्थमपि आहारशरीरमुद्भवति। अयं तत्र गत्वा आगच्छति तदानीमत्रैव मुनेर्दर्शनवन्दनादीनामानन्दो जायते।

वर्तमानकाले ये केचित्कथयन्ति—मुनीनां मनसि यदि तीर्थयात्राया भावना भवति अथवा तीर्थस्योपरि गत्वा समाधिमरणकरणाय इच्छा भवति तर्हि ते मुनय एव न सन्ति द्रव्यलिंगिनो भवन्ति। किंच—मुनयः निर्विकल्पा एव भवेयुः तेषां येऽपि भक्त्यानुरागविकल्पाः ते बंधकारणान्येवातो न ते मुमुक्षवः।

तेषां कथनं न सत्यं, अहो! इमे वर्धमानचारित्रा एव संयमिनः सप्तमाष्टमगुणस्थानयोः निर्विकल्पध्यान-कालेऽपि आहारद्विकं बध्नन्ति पुनस्तेषां प्रमत्तगुणस्थाने भावलिंगिनामेवाहारकर्द्धिर्जायते।

करने के लिए आहारकशरीर प्रगट होता है।

जहाँ मुनि रह रहे हैं उस क्षेत्र में—जैसे कि भरतक्षेत्र में या जहाँ हैं ऐसे विदेहक्षेत्र में केवली भगवान और श्रुतकेवली महामुनि दोनों का अभाव है—नहीं हैं उस समय अर्थात् परक्षेत्र में जहाँ औदारिक शरीर से जाना संभव नहीं है ऐसे दूरवर्ती क्षेत्र में केवली, श्रुतकेवली के होने पर अथवा तीर्थंकर भगवान के दीक्षाकल्याणक आदि तीन कल्याणकों के होने पर असंयम के परिहार के लिए, संदेह को दूर करने के लिए तथा जिनेन्द्रदेव और जिनालयों की वंदना के लिए जाने को उद्यत हुए प्रमत्तसंयत—छठे गुणस्थानवर्ती मुनि के आहारकशरीर उत्पन्न होता है।

इन दोनों गाथाओं से जाना जाता है कि तीर्थंकरों के दीक्षा आदि कल्याणक महोत्सवों को देखने के लिए, जिनेन्द्रदेव की वंदना के लिए, अकृत्रिम, कृत्रिम जिनमंदिरों में विराजमान अकृत्रिम या कृत्रिम जिनप्रतिमाओं के दर्शन, स्तवन, वंदन के लिए भी आहारकशरीर उत्पन्न होता है। यह आहारक पुतला वहाँ जाकर आ जाता है और तब यहाँ भी मुनि को दर्शन, वंदना आदि का आनंद प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—गोम्मटसार जीवकाण्ड की कर्नाटकवृत्ति टीका में भी कहा है—'जिनवंदना के लिए और जिनमंदिरों की वंदना के लिए' भी आहारकशरीर उत्पन्न होता है। इससे यह जाना जाता है कि तीर्थंकर भगवान की वंदना करने की भावना से भी आहारकशरीर उत्पन्न होता है।

वर्तमानकाल में जो कोई कहते हैं कि—

मुनियों के मन में यदि तीर्थयात्रा की भावना होती है अथवा तीर्थ के ऊपर समाधिमरण की इच्छा होती है तो वे मुनि ही नहीं हैं—द्रव्यलिंगी हैं, क्योंकि मुनियों को निर्विकल्प ही होना चाहिए, उनमें जो भी भक्ति, अनुराग के विकल्प हैं वे बंध के कारण ही हैं इसलिए वे 'मुमुक्षु' नहीं हैं—मोक्ष के इच्छुक नहीं हैं।

उनका कथन सत्य नहीं है ।

अहो! ये वृद्धिंगत चारित्र वाले ही संयमी—साधु सातवें आठवें गुणस्थान में निर्विकल्प ध्यान की अवस्था में भी आहारकद्विक प्रकृतियों को बांधते हैं। पुनः उन्हीं भावलिंगी मुनियों के ही प्रमत्तसंयत—छठे गुणस्थान में आहारकऋद्धि उत्पन्न होती है।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड-टीकांशा-जीवतत्त्वप्रदीपिकायाः, पृ. ३७३।

आहारशरीरमिदं कीदृशं इति चेत् ?

उच्यते—

उत्तमं अंगम्मि हवे धादुविहीणं सुहं असंघडणं।
सुहसंठाणं धवलं हत्थपमाणं पसत्थुदयं।।२३७।।
अव्वाघादी अंतोमुहुत्तकालट्ठिदी जहण्णिदरे।
पज्जत्ती संपुण्णे मरणं पि कदाचि संभवइ[१]।।२३८।।

इदमाहारशरीरं रसादिसप्तधातुरहितं, शुभं शुभनामकर्मोदयापादितप्रशस्तावयवविशिष्टं, असंहननं-अस्थिबंधनरहितं, शुभसंस्थानं-प्रशस्तसमचतुरस्र-संस्थानांगोपांगविन्यासयुतं, धवलं चन्द्रकान्तनिर्मित-मिवातिविशदं, हस्तप्रमाणंचतुर्विंशतिव्यवहारांगुलप्रमितं प्रशस्तोदयं अध्रुवोदयप्रकृतिषु आहारकशरीरतद्-बंधनसंघातांगोपांगादि प्रशस्तप्रकृत्युदययुतं, एवं विधं आहारकशरीरं उत्तमांगे भवेत्।[२]

एतत्शरीरं परेण स्वस्य स्वेन परस्य वा व्याघातरहितं बाधावर्जितं ततः कारणात् एव वैक्रियिकशरीरवत् वज्रशिलादिनिर्भेदनसमर्थं जघन्योत्कृष्टेनान्तर्मुहूर्तकालस्थितियुतं, तच्छशरीरपर्याप्तिपूर्णायां सत्यां कदाचिच्छरीर-र्द्धियुक्तस्य प्रमत्तसंयतस्य आहारककाययोगकाले स्वायुःक्षयवशेन मरणमपि संभवति।[३]

आहारककायतन्मिश्रयोः अन्वर्थं ब्रुवन्ति—

आहरदि अणेण मुणी सुहुमे अत्थे सयस्स संदेहे।
गत्ता केवलिपासं तम्हा आहारगो जोगो।।२३९।।

यह आहारकशरीर किस प्रकार का है ?

कहते हैं — यह आहारकशरीर उत्तमांग — मस्तक से निकलता है। धातु से रहित, शुभ, संहननरहित, शुभाकार वाला, धवल, एक हाथ प्रमाण और प्रशस्त उदय वाला होता है। यह अव्याघाती है, इसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अंतर्मुहूर्त है, इस शरीर की पर्याप्ति पूर्ण होने पर कदाचित् मुनि का मरण भी संभव है।

टीका में कहा है — यह आहारकशरीर रस आदि सात धातुओं से रहित है, शुभ नाम कर्म के उदय से प्राप्त प्रशस्त अवयवों से विशिष्ट होने से शुभ है। अस्थिबंधन से रहित होने से संहनन रहित है। प्रशस्त समचतुरस्रसंस्थान सहित अंगोपांग की रचना से युक्त होने से शुभ संस्थान वाला है। चंद्रकांतमणि से निर्मित होने से अति विशद — धवल है। एक हाथ प्रमाण अर्थात् चौबीस व्यवहारांगुल प्रमाण है। प्रशस्तोदय — अध्रुवोदयी प्रकृतियों में आहारकशरीर, आहारकबंधन, आहारकसंघात और आहारकांगोपांग आदि प्रशस्त प्रकृतियों के उदय से सहित है। इस प्रकार का आहारकशरीर उत्तमांग — मस्तक से निकलता है।

यह आहारकशरीर पर से अपनी और अपने से पर की बाधा से रहित होता है, इसी कारण से अव्याबाधी है। इसीलिए वैक्रियक शरीर के समान वज्रशिला आदि में से भी निकलने में समर्थ है। इसकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होती है। आहारकशरीर पर्याप्ति पूर्ण होने पर कदाचित् आहारक शरीर ऋद्धि से युक्त प्रमत्तसंयत का आहारक काययोग के काल में अपनी आयु का क्षय हो जाने से मरण भी हो जाता है।

आहारक काययोग और तन्मिश्रयोग के सार्थक अर्थ को कहते हैं —

मुनिराज स्वयं संदेह होने पर केवली के पास जाकर जिस हेतु से सूक्ष्म अर्थों को 'आहरति' — ग्रहण

१-२. गोम्मटसार जीवकांड-जीव. टीका, पृ. ३७३-३७४। ३. गोम्मटसार जीवकांड गाथा २३९-२४०, टीकांशाश्च, पृ. ३७४-३७५।

आहारय उत्तत्थं विजाण मिस्सं तु अपरिपुण्णं तं।
जो तेण संपजोगो आहारयमिस्सगो जोगो[1]।।२४०।।

यतः कारणात् आहारकर्द्धियुतः प्रमत्तमुनीश्वरः स्वस्य प्रवचनपदार्थेषुसंशये जाते तद्व्यवच्छेदार्थं अनेनाहारकशरीरेण केवलिश्रीपादपार्श्वे सूक्ष्मार्थान् आहरति गृण्हाति इत्याहारः, आहार एव आहारकं शरीरं ततः कारणात् शरीरपर्याप्तिनिष्पत्तौ सत्यां आहारकवर्गणाभिः आहारकशरीरयोग्यपुद्गलस्कंधाकर्षण-शक्तिविशिष्टात्मप्रदेशपरिस्पन्दः आहारककाययोग इति ज्ञातव्यं।

एतदाहारशरीरं यावद्पर्याप्तकालान्तर्मुहूर्तपर्यन्तमपरिपूर्णं आहारकवर्गणायातपुद्गलस्कंधान् आहारक-शरीराकारेण परिणमयितुमसमर्थं तावन्मिश्रमित्युच्यते। तत्प्राक्कालभाव्यौदारिकशरीरवर्गणाश्रितत्वेन ताभिः सह वर्तमानो यः संप्रयोगः—अपरिपूर्णशक्तियुक्तात्मप्रदेशपरिस्पंदः स आहारककायमिश्रयोग भण्यते[2]।

कस्मिंश्चित् प्रमत्तविरतमुनौ यदा आहारकयोगक्रिया भवति तदा वैक्रियिकयोगक्रिया न भवति।

उक्तं च— वेगुव्विय आहारयकिरिया ण समं पमत्तविरदम्मि।
जोगो वि एक्ककाले एक्केव य होदि णियमेण।।२४२।।

कदाचिदाहारकयोगमवलम्ब्य प्रमत्तसंयतस्य गमनादिक्रिया प्रवर्तते तदा विक्रियर्द्धिबलेन वैक्रियिक-योगमवलम्ब्य वैक्रियिकक्रिया न घटते आहारकर्धिविक्रियर्ध्योस्तस्य युगपद्वृत्तिविरोधात्। अनेन गणधरादीनां इतरर्धियुगपद्वृत्तिसंभवः सूचितः। तथा योगोऽपि एककाले स्वयोग्यान्तर्मुहूर्ते एक एव नियमेन भवति द्वौ

करता है इसलिए उसे 'आहारकयोग' कहते हैं। वही आहारकयोग जब तक अपरिपूर्ण है तब तक मिश्र है अत: उससे सहित योग आहारक मिश्रयोग कहलाता है।।२३९-२४०।।

जिस कारण से आहारक ऋद्धि से युक्त प्रमत्तसंयत मुनीश्वर आगम के पदार्थों में संशय होने पर उसको दूर करने के लिए इस आहारक शरीर के द्वारा केवली भगवान के चरणों के समीप जाकर सूक्ष्म अर्थों को ग्रहण करते हैं, इसीलिए इसे 'आहार' कहते हैं। आहार ही आहारक शरीर है। इस कारण से शरीर पर्याप्ति की पूर्णता होने पर आहार वर्गणाओं द्वारा आहारक शरीर के योग्य पुद्गल स्कंधों को ग्रहण करने की शक्ति से विशिष्ट आत्मा के प्रदेशों का चलन आहारक काययोग जानना। वह आहारकशरीर ही जब अंतर्मुहूर्तपर्यंत अपर्याप्त काल में अपरिपूर्ण होता है—आहारवर्गणा के गृहीत पुद्गलस्कंधों को आहारकशरीर के आकाररूप से परिणमाने में असमर्थ होता है, तब तक उसे आहारकमिश्र कहते हैं। उससे पहले होने वाली औदारिक शरीर वर्गणा से मिला होने से उनके साथ जो संप्रयोग अपरिपूर्ण शक्ति से युक्त आत्मा के प्रदेशों का चलन है उसे आहारक मिश्र योग कहते हैं।

किन्हीं प्रमत्तविरत मुनि में जब आहारकयोग क्रिया होती है तब वैक्रियक योगक्रिया नहीं होती है। कहा भी है—

प्रमत्तविरत मुनि में वैक्रियक और आहारकक्रिया एक साथ नहीं होती है। नियम से योग भी एक काल में एक ही होता है।।२४२।।

टीकाकार कहते हैं—कदाचित् जब कभी आहारकयोग का अवलंबन लेकर प्रमत्तसंयत के गमन आदि क्रिया होती है, तब विक्रिया ऋद्धि के बल से वैक्रियक योग का अवलंबन लेकर वैक्रियिक क्रिया नहीं होती, क्योंकि उन मुनि के आहारक ऋद्धि और विक्रिया ऋद्धि दोनों के एक साथ होने में विरोध है।

१-२. गोम्मटसार जीवकांड गाथा २३९-२४०, टीकांशाश्च, पृ. ३७४-३७५।

त्रयो वा योगा एकजीवे युगपन्न संभवन्ति। तथा सति एकयोगकाले अन्ययोगकार्यरूपगमनादिक्रियाणां संभवः नामातिक्रान्तयोगसंस्कारजनितो न विरुध्यते। कुलालदण्डप्रयोगाभावेऽपि तत्संस्कारबलेन चक्रभ्रमणवत् संस्कारक्षये वाणपतनवत्क्रियानिवृत्तिदर्शनादेव संस्कारवशेन युगपदनेकक्रियावृत्तिप्रसंगे सति प्रमत्तविरते वैक्रियिकाहारकशरीरक्रिययोः युगपत् प्रवृत्तिप्रतिषेधः आचार्येण प्ररूपितो जातः[१]।

तात्पर्यमेतत्—एतदाहारकशरीरं कदाचित् कस्यचिन्महामुनेरेव न च सर्वेषां। यस्याहारर्द्धिर्भवति तस्य मनःपर्ययज्ञानमपि न भवति। ये द्रव्येण भावेनापि पुरुषवेदिनः तेषामेवाहारर्द्धिर्जायते ये च केचित् द्रव्येण पुरुषवेदिनः किन्तु भावेन स्त्रीवेदिनो नपुंसकवेदिनो वा तेषामपि इदं शरीरं न भवितुं शक्नोति एतदार्षे कथितमास्ते। एतेभ्य आहारर्द्धियुतमहामुनिभ्योऽस्माकं नमोऽस्तु कोटिकोटिवारानिति।

एवं एकोनविंशस्थले आहारकशरीरबंधकाबंधकादिनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना तीर्थकरप्रकृतिनामकर्मणो बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ?।।३७।।

इससे गणधरदेव आदि के अन्य ऋद्धियों का एक साथ रहना सूचित किया है तथा योग भी एक काल में अर्थात् अपने योग्य अन्तर्मुहूर्त में नियम से एक ही होता है। दो या तीन योग एक जीव में एक साथ नहीं होते। ऐसा होने पर एक योग के काल में अन्य योग का कार्यरूप गमन आदि क्रिया के होने में कोई विरोध नहीं है, क्योंकि जो योग चला गया उसके संस्कार से एक योग के काल में अन्य योग की क्रिया होती है। जैसे कुम्भार दण्ड के प्रयोग से चाक को घुमाता है, पीछे दण्ड का प्रयोग नहीं करने पर भी संस्कार के बल से चाक घूमता रहता है या धनुष से छूटने पर बाण जब तक उसमें पूर्व संस्कार रहता है, तब तक जाता है, पश्चात् संस्कार के नष्ट होने पर गिर जाता है। इस प्रकार संस्कार के वश एक साथ अनेक योगों की क्रिया के होने का प्रसंग उपस्थित होने पर प्रमत्तविरत में वैक्रियक और आहारकशरीर की क्रियाओं के एक साथ होने का निषेध किया है अर्थात् ये दोनों क्रिया प्रमत्तविरत के संस्कारवश भी एक साथ नहीं होतीं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि यह आहारकशरीर कदाचित् किन्हीं महामुनि के ही होता है न कि सभी मुनियों के। जिनके आहारकऋद्धि होती है उनके मनःपर्ययज्ञान भी नहीं होता है। जो द्रव्य से और भाव से भी पुरुष-वेदी हैं उन्हीं के आहारकऋद्धि होती है और जो भी द्रव्य से तो पुरुषवेदी हैं किन्तु भाव से स्त्रीवेदी या नपुंसकवेदी हैं उनके भी यह ऋद्धि नहीं होती है ऐसा आर्ष—आगम में कहा है। इन आहारकऋद्धियुक्त महामुनियों को हमारा कोटि-कोटि बार नमोऽस्तु होवे।

इस प्रकार उन्नीसवें स्थल में आहारकशरीर के बंधक और अबंधक आदि के निरूपणरूप से दो सूत्र हुए हैं।

अब तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक है और कौन अबंधक हैं ?।।३७।।

---

१. गोम्मटसार जीवकांड गाथा २४२, टीका ३७७।

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**इदं देशामर्शकं सूत्रं, स्वामित्व-बंधाध्वान-बंधविनष्टस्थानानां एवं प्ररूपणा भवन्ति। तेनैतेन सूचितार्थवर्णनं क्रियते—**

तीर्थकरप्रकृतेः पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः, अपूर्वकरणषट्सप्तमभागचरमसमये नष्टबंधस्य तीर्थकरस्य सयोगिप्रथमसमये उदयस्यादिं कृत्वा अयोगिचरमसमये उदयव्युच्छेदोपलंभात्। परोदयेन बंधः, तीर्थकरकर्मोदयसंभवस्थानेषु सयोग्ययोगिजिनेषु तीर्थकरप्रकृतिबंधानुपलंभात्। निरन्तरो बंधः, स्वकबंधकारणे सति कालक्षयेण बंधोपरमाभावात्।

असंयतसम्यग्दृष्टिजीवा द्विगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तीर्थकरबंधस्य नरकतिर्यग्गतिभ्यां बंधाभ्यां सह विरोधात्। उपरिमा देवगतिसंयुक्तं, मनुष्यगतिस्थितजीवानां तीर्थकरस्य बंधस्य देवगतिं मुक्त्वान्यगतिभिः सह विरोधात्। त्रिगतिका असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, तिर्यग्गत्या सह तीर्थकरस्य बंधाभावात्।

कश्चिदाह—मा भवतु तत्र तिर्यग्गतौ तीर्थकरकर्मबंधस्य प्रारम्भः, जिनानामभावात्। किन्तु पूर्वं बद्धतिर्यगायुष्कानां पश्चात् प्रतिपन्नसम्यक्त्वादिगुणैस्तीर्थकरकर्म बध्यमानानां पुनः तिर्यक्षूत्पन्नानां तीर्थकरस्य

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण काल के संख्यात बहुभागों को बिताकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह देशामर्शक सूत्र है, इससे स्वामित्व, बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान की ही प्ररूपणा होती है। इसलिए इस सूत्र से सूचित अर्थों का वर्णन करते हैं—

तीर्थंकर प्रकृति का पहले बंधव्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय, क्योंकि अपूर्वकरण के छठे, सातवें भाग के अंतिम समय में बंध के नष्ट हो जाने पर तीर्थंकर नामकर्म का सयोगिकेवली भगवान के प्रथम समय में उदय को प्रारंभ करके अयोगिकेवली भगवान के अंतिम समय में उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। इसका बंध परोदय से ही होता है, क्योंकि जहाँ तीर्थंकर कर्म का उदय संभव है, उन सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिनभगवान में तीर्थंकर प्रकृति का बंध पाया नहीं जाता। इसका बंध निरन्तर है, क्योंकि अपने कारण के होने पर कालक्षय से बंध का विश्राम नहीं होता।

असंयत सम्यग्दृष्टि जीव इसे दो गतियों से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति के बंध का नरक व तिर्यंच गतियों के बंध के साथ विरोध है। उपरिम जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि मनुष्यगति में स्थित जीवों के तीर्थंकर प्रकृति के बंध का देवगति को छोड़कर अन्य गतियों के साथ विरोध है। तीन गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि जीव इसके बंध के स्वामी हैं, क्योंकि तिर्यंचगति के साथ तीर्थंकर प्रकृति के बंध का अभाव है।

कोई प्रश्न करता है—

तिर्यंचगति में तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ भले ही न हो, क्योंकि वहाँ जिन भगवन्तों का अभाव है। किन्तु जिन्होंने पूर्व में तिर्यंच आयु को बांध लिया है, उसके बाद सम्यक्त्वादि गुणों के प्राप्त हो जाने से

बंधस्य स्वामित्वं लभ्यते इति चेत् ?

आचार्यः प्राह—नैतत्संभवः, बद्धतिर्यग्मनुष्यायुष्काणां जीवानां बद्धनरकदेवायुष्काणामिव तीर्थकरकर्मणो बंधाभावात्।

तदपि कुतः?

प्रारब्धतीर्थकरबंधभवात् तृतीयभवे तीर्थकरप्रकृतिसत्त्वयुक्तजीवानां मोक्षगमननियमात्। न च तिर्यग्मनुष्येषूत्पन्नमनुष्यसम्यग्दृष्टीनां देवेषु अनुत्पद्य देवनारकेषूत्पन्नानामिव मनुष्येषूत्पत्तिरस्ति येन तिर्यग्मनुष्येषूत्पन्नमनुष्यसम्यग्दृष्टीनां तृतीयभवे निर्वृत्तिर्भवेत्। तस्मात् त्रिगतिअसंयतसम्यग्दृष्टिजीवाश्चैव स्वामिन इति सिद्धं।

सादिकोऽध्रुवश्च बंधः, बंधकारणानां सादिसान्तत्वदर्शनात्। तात्पर्यमेतत्—कर्मभूमिजा मनुष्या एव तीर्थकरप्रकृतेर्बंधं कर्तुमर्हन्ति न चान्ये।

उक्तं च—

पढमुवसमिये सम्मे सेसतिये अविरदादिचत्तारि।
तित्थयरबंधपारंभया णरा केवलिदुगंते[1]।।९३।।

तीर्थंकर प्रकृति को बांधकर पुनः तिर्यंचों में उत्पन्न होने पर तीर्थंकर के बंध का स्वामीपना पाया जाता है ?

आचार्यदेव समाधान करते हैं—

ऐसा संभव नहीं है, क्योंकि जिन्होंने पूर्व में तिर्यंचायु व मनुष्यायु का बंध कर लिया है उन जीवों के बांधी गई नरक व देव आयुओं के समान तीर्थंकर प्रकृति के बंध का अभाव है।

शंका—वह भी कैसे संभव है ?

समाधान—क्योंकि, जिस भव में तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ किया गया है, उससे तृतीय भव में तीर्थंकर प्रकृति के सत्त्वयुक्त जीवों के मोक्ष जाने का नियम है। परन्तु तिर्यंच और मनुष्यों में उत्पन्न हुए मनुष्य सम्यग्दृष्टियों की देवों में उत्पन्न न होकर देव नारकियों में उत्पन्न हुए जीवों के समान मनुष्यों में उत्पत्ति नहीं होती जिससे कि तिर्यंच व मनुष्यों में उत्पन्न हुए मनुष्य सम्यग्दृष्टियों की तृतीय भव में मुक्ति हो सके। इस कारण तीन गतियों के असंयत सम्यग्दृष्टि ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध के स्वामी हैं, यह बात सिद्ध होती है।

विशेषार्थ—शंका हुई है कि कोई जीव यदि पूर्व में तिर्यंचायु या मनुष्यायु को बांध ले पश्चात् तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ करे, अनंतर मरण को प्राप्त होकर तिर्यंचों या मनुष्यों में उत्पन्न हो तो वह तीर्थंकर प्रकृति के बंध का स्वामी क्यों नहीं हो सकता ? आचार्यदेव का समाधान यह है कि—यह संभव नहीं है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति को बांधने के भव से तृतीय भव में मोक्ष जाने का नियम है। पुनः ये तिर्यंचायु व मनुष्यायु को बांधने वाले द्वितीय भव में तिर्यंच व मनुष्य होकर सम्यग्दृष्टि होने से तृतीय भव में देव ही होंगे, मनुष्य नहीं। अतः कोई भी दूसरे भव का तिर्यंच और मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति के बंध का स्वामी नहीं हो सकता है।

सादि और अध्रुव बंध है, क्योंकि बंध के कारणों का सादि और सान्तपना देखा जाता है।

तात्पर्य यह है कि कर्मभूमिया मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति के बंध के योग्य होते हैं, अन्य मनुष्य नहीं। कहा भी है—

अविरतसम्यग्दृष्टि से लेकर चार गुणस्थान वाले मनुष्य प्रथमोपशम सम्यक्त्व में एवं तीनों सम्यक्त्व में केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ करते हैं।।९३।।

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा ९३।

प्रथमोपशमसम्यक्त्वे शेषत्रिके—द्वितीयोपशमसम्यक्त्वे क्षयोपशमसम्यक्त्वे क्षायिकसम्यक्त्वे च अविरतसम्यक्त्वाद्यप्रमत्तपर्यन्तचतुर्गुणस्थानेषु स्थिताः केषुचिदपि जीवाः श्रुतकेवलिनः केवलिनो वा पादमूले तीर्थकरप्रकृतिबंधप्रारम्भकाः भवन्ति नरा एव न च देवादय इति ज्ञातव्यं।

अत्र एव विशेषोऽपि अववोद्धव्यः—द्रव्यवेदेन पुरुषवेदा तीर्थकरप्रकृतिबंधं कुर्वन्ति भाववेदेन स्त्रीवेदिनो नपुंसकवेदिनोवापि बध्नन्ति।

उक्तं च पंचसंग्रहग्रन्थे—''स्त्रीषण्ढवेदयोरपि तीर्थाहारकबंधो न विरुध्यते, उदयस्यैव पुंवेदिषु नियमात्[१]।''

अत्र भाववेदापेक्षयैव कथनं ज्ञातव्यं भवति।

एवं विंशस्थले तीर्थकरप्रकृतिबंधकाबंधकनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

अधुना तीर्थकरनामगोत्रबंधकारणसंख्याप्रश्नरूपेण एकसूत्रमवतरति—

कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति ?।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तीर्थकरनामगोत्रं कर्म कतिभिः कारणैर्जीवा बध्नन्ति ?**

इति प्रश्नवाचकसूत्रमिदं वर्तते।

कश्चिदाशंकते पुनः—तीर्थकरस्य नामकर्मावयवस्य गोत्रसंज्ञा कथं भवति ?

टीका में लिखा है कि—प्रथमोपशम सम्यक्त्व में और शेष त्रिक में—द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में, क्षयोपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व में, अविरतसम्यग्दृष्टी से लेकर अप्रमत्तसंयत पर्यंत चारों गुणस्थानों में से किसी में भी रहने वाले मनुष्य श्रुतकेवली या केवली भगवान के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ करते हैं, ये मनुष्य ही होते हैं न कि देव आदि, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ यह और विशेष ज्ञातव्य है कि—द्रव्यवेद से पुरुषवेदी तीर्थंकर प्रकृति को बांधते हैं, भाववेद से स्त्रीवेदी अथवा भावनपुंसकवेदी भी बांधते हैं। कहा भी है पंचसंग्रह ग्रंथ में—

स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में भी तीर्थंकर और आहारक का बंध विरुद्ध नहीं है, उदय का ही पुरुषवेद में नियम है। यहाँ स्त्रीवेद और नपुंसक में भाववेद ही लेना है न कि द्रव्यवेद, क्योंकि द्रव्यवेद से पुरुषवेदी ही होना चाहिए।

इस प्रकार बीसवें स्थल में तीर्थंकर प्रकृति के बंधक और अबंधक का प्ररूपण करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब तीर्थंकरनामगोत्र के बंध के कारणों की संख्या के प्रश्नरूप से सूत्र का अवतार होता है—

सूत्रार्थ—

कितने कारणों से जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्म को बांधते हैं ?।।३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—तीर्थंकर नामगोत्र कर्म को कितने कारणों से जीव बांध लेते हैं ?

यह प्रश्नवाचक सूत्र है।

यहाँ पुनः कोई आशंका करते हैं—

तीर्थंकर नामकर्म के अवयव को गोत्र संज्ञा कैसे है ?

---

१. पंचसंग्रह पृ. २३५ (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)।

आचार्यदेवो ब्रवीति—नैतद् वक्तव्यं, उच्चैर्गोत्रबन्धाविनाभावित्वेन तीर्थकरस्यापि गोत्रत्वसिद्धेः।

पुनरप्याशंकते—अत्र शेषसर्वकर्मणां प्रत्ययान् अभणयित्वा तीर्थकरनामकर्मण एव किमिति प्रत्ययप्ररूपणा क्रियते ?

आचार्यः समाधत्ते—नैष दोषः, सर्वेषां कर्मणां बंधप्रत्ययाः कथिता एव किन्तु तीर्थकरकर्मप्रकृतेर्न ज्ञाता अतएव पृथग्निरूपिताः सन्ति। तथाहि—

मिथ्यात्वहुण्डषण्ढादीनि षोडशकर्माणि मिथ्यात्वप्रत्ययानि, मिथ्यात्वोदयेन विना एतेषां बंधाभावात्।

अनन्तानुबन्ध्यादीनि पंचविंशतिकर्माणि अनन्तानुबंधिप्रत्ययानि, तदुदयेन विना तेषां बंधानुपलंभात्।

द्वितीयकषायादिदशकर्माणि असंयमप्रत्ययानि, अप्रत्याख्यानावरणोदयेन विना तेषां बंधाभावात्।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कं स्वकसामान्योदयप्रत्ययं, तेन विना तद्बंधानुपलंभात्।

अस्थिरादीनि षट्कर्माणि प्रमादप्रत्ययानि, प्रमादेन विना तेषां बंधानुपलंभात्।

देवायुर्मध्यमविशुद्धिप्रत्ययिकं, अप्रमत्तकालस्य संख्यातभागे गतेऽतिविशुद्धिस्थानमप्राप्य मध्यम-विशुद्धिस्थाने एव देवायुषो बंधव्युच्छेददर्शनात्।

आहारद्विकं विशिष्टरागसमन्वितसंयमनिमित्तकं, तेन विना तद्बंधानुपलंभात्। परभवनिबंधसप्त-विंशतिकर्माणि हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-पुरुषवेद-चतुःसंज्वलनानि च कषायविशेषप्रत्ययिकानि, अन्यथा

आचार्यदेव उत्तर देते हैं—

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि उच्चगोत्र बंध के साथ अविनाभावी होने से तीर्थंकर नामकर्मप्रकृति को भी गोत्रपना सिद्ध है।

पुनः आशंका होती है—

यहाँ शेष कर्मों के प्रत्ययों को—कारणों को न कहकर तीर्थंकर नामकर्म के ही प्रत्ययों की प्ररूपणा क्यों की जा रही है ?

आचार्यदेव कहते हैं कि—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि सभी कर्मों के बंध के कारण कहे ही गये हैं, किन्तु तीर्थंकर प्रकृति के कारण नहीं जाने गये हैं, अतएव पृथक्रूप से इनका निरूपण किया जा रहा है। जैसे कि—

मिथ्यात्व, हुण्डकसंस्थान, नपुंसकवेद आदि सोलह प्रकृतियाँ मिथ्यात्वनिमित्तक हैं क्योंकि मिथ्यात्व के उदय के बिना इनका बंध नहीं हो सकता।

अनन्तानुबंधी आदि पच्चीस प्रकृतियाँ अनन्तानुबंधी निमित्तक हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी के उदय के बिना इनका बंध नहीं हो सकता।

अप्रत्याख्यानावरण आदि दश प्रकृतियाँ असंयम के कारण से बंधती हैं, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण के उदय के बिना उनके बंध का अभाव है। प्रत्याख्यानावरण आदि चार प्रकृतियाँ अपने सामान्य उदय के निमित्त से बंधती हैं, क्योंकि इनके बिना उनका बंध संभव नहीं है।

अस्थिर आदि छह कर्म प्रकृतियाँ प्रमादनिमित्तक हैं, क्योंकि प्रमाद के बिना उनका बंध नहीं होता।

देवायु मध्यम विशुद्धि निमित्तक है, क्योंकि अप्रमत्तकाल के संख्यातवाँ भाग बीत जाने पर अतिशय विशुद्धि के स्थान को न पाकर मध्यम विशुद्धि स्थान में ही देवायु का बंध व्युच्छेद देखा जाता है।

आहारकद्विक प्रकृतियाँ विशिष्ट राग से संयुक्त संयम के निमित्त से बंधती हैं, क्योंकि ऐसे संयम के बिना उनका बंध नहीं पाया जाता।

एतेषां कर्मणां भिन्नस्थानेषु बंधव्युच्छेदानुपपत्तेः।

कास्ताः सप्तविंशतिप्रकृतयश्चेत् उच्यते—

देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिकांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-देवगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माणनामकर्मणां प्रकृतयः।

पंचज्ञानावरणादीनि षोडशकर्माणि कषायसामान्यप्रत्ययिकानि, अणुमात्रकषायेऽपि सति तेषां बंधोपलंभात्।

सातावेदनीयं योगप्रत्ययिकं, सूक्ष्मयोगेऽपि तस्य बंधोपलंभात्। तेन सर्वकर्मणां प्रत्यया युक्तिबलेन ज्ञायन्ते इति न भणिताः।

एतस्य पुनः तीर्थंकरनामकर्मणो बंधप्रत्ययो न ज्ञायते—

नेदं मिथ्यात्वप्रत्ययिकं, तत्र बंधानुपलंभात्। नासंयमप्रत्ययिकं, संयतेष्वपि बंधदर्शनात्। न कषायसामान्यप्रत्ययिकं, कषाये सत्यपि बंधव्युच्छेददर्शनात्, कषाये सत्यपि बंधप्रारम्भानुपलंभाद् वा। न कषायमंदता कारणं, तीव्रकषायेषु नारकेष्वपि बंधदर्शनात्। न तीव्रकषायः कारणं, मंदकषायेषु सर्वार्थसिद्धिदेवेषु अपूर्वकरणगुणस्थानवर्तिमहामुनिषु च बंधदर्शनात्। न सम्यक्त्वं तद्बंधकारणं, सम्यग्दृष्टिष्वपि तीर्थंकरप्रकृतेर्बंधानुपलंभात्। न केवलं दर्शनविशुद्धता कारणं, क्षीणदर्शनमोहानामपि केषांचिद् बंधानुपलंभात्।

परभव निबंधक सत्ताईस कर्मप्रकृतियाँ एवं हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद और चार संज्वलन कषायें, ये सब प्रकृतियाँ कषायविशेष के निमित्त से बंधने वाली हैं, क्योंकि इनके बिना उनके भिन्न स्थानों में बंध व्युच्छेद की व्यवस्था नहीं बन सकती।

वे सत्ताईस प्रकृतियाँ कौन सी हैं ?

कहते हैं—देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियक, तैजस, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियक अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण ये २७ प्रकृतियाँ हैं।

पाँच ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियाँ कषाय सामान्य के निमित्त से बंधती हैं, क्योंकि अणुमात्र कषाय के रहने पर भी उनका बंध पाया जाता है।

सातावेदनीय कर्म योग के कारण से है, क्योंकि सूक्ष्म योग के होने पर भी उसका बंध पाया जाता है।

इस प्रकार से सभी कर्मों के प्रत्यय—कारण युक्तिबल से जाने जाते हैं, अतः उनका यहाँ कथन नहीं किया है। पुनः इस तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति के कारण नहीं जाने जाते हैं, क्योंकि—

मिथ्यात्व के होने पर तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता, अतः यह मिथ्यात्वनिमित्तक नहीं है। असंयम-निमित्तक भी नहीं है, क्योंकि संयतों में भी इसका बंध देखा जाता है। कषाय सामान्यनिमित्तक भी नहीं है, क्योंकि कषाय के होने पर भी उसका बंध व्युच्छेद देखा जाता है। अथवा कषाय के होने पर भी उसके बंध का प्रारंभ नहीं होता। कषायमंदता भी इसके बंध का कारण नहीं है, क्योंकि तीव्र कषाय वाले नारकियों में भी इसका बंध देखा जाता है। तीव्र कषाय भी कारण नहीं है, क्योंकि मंद कषाय वाले सर्वार्थसिद्धि के देवों में तथा अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती महामुनियों में भी बंध देखा जाता है। सम्यक्त्व भी बंध का कारण नहीं है क्योंकि सम्यग्दृष्टियों में भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं पाया जाता।

केवल दर्शन की विशुद्धता भी कारण नहीं है, क्योंकि, क्षीण दर्शनमोह वाले—दर्शनमोहनीय का क्षय

तत एतस्य बंधकारणं वक्तव्यमेव। अथवा असंयत-प्रमत्तसयोगिजिनसंज्ञा इव एतत्सूत्रमन्तदीपकं सर्वकर्मणां प्रत्ययप्ररूपणायामिति इदं सूत्रमागतम्।

'कदिहि कारणेहि' इति प्रश्ने सति—

किमेकेन? किं द्वाभ्यां? किं त्रिभि:? एवं पृच्छा कर्तव्या।

इदानीमेवंविधसंशये स्थितानां शिष्याणां निश्चयजननार्थं उत्तरसूत्रमवतार्यते —

तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**तत्थ—इति पदेन मनुष्यगतौ एव तीर्थकरकर्मणो बंधप्रारंभो भवति, नान्यत्रेति ज्ञापनार्थं तत्रेत्युक्तं।**

अन्यगतिषु किन्न प्रारंभो भवतीति चेत् ?

न भवति, केवलज्ञानोपयोगलक्षितजीवद्रव्यसहकारिकारणस्य तीर्थकरनामकर्मबंधप्रारंभस्य तेन विना समुत्पत्तिविरोधात्। अथवा, तत्र तीर्थकरनामकर्मबंधकारणानि भणामि इति भणितं भवति। 'सोलसेहि' पदेन कारणानां संख्यानिर्देश: कृत:।

पर्यायार्थिकनये अवलम्ब्यमाने तीर्थकरकर्मबंधकारणानि षोडश चैव भवन्ति।द्रव्यार्थिकनये पुन: अवलम्ब्यमाने एकमपि कारणं भवति, द्वौ अपि भवत:। ततोऽत्र षोडश एव कारणानीति नावधारणं कर्तव्यं।

अधुना षोडशकारणानां नामक्रमनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

करने वाले किन्हीं जीवों में बंध नहीं पाया जाता।

इसलिए इसके बंध का कारण कहना ही चाहिए। अथवा असंयत, प्रमत्त और सयोगीजिन की संज्ञाओं के समान यह सूत्र सभी कर्मों की प्रत्यय प्ररूपणा में अन्त्यदीपक है, इसीलिए यह सूत्र पृथक् आया है।

"कदिहिं कारणेहि" इस प्रश्न के होने पर—

क्या एक से, क्या दो से या क्या तीन कारणों से ? ऐसी पृच्छा करनी चाहिए।

इस समय ऐसे संशय में स्थित शिष्यों के निश्चय को बतलाने के लिए अगला सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

वहाँ इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्म को बांधते हैं।।४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— 'तत्थ' इस पद से मनुष्यगति में ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध प्रारंभ होता है, अन्यत्र नहीं, इस बात को बतलाने के लिए ही है।

अन्य गतियों में उसके बंध का प्रारंभ क्यों नहीं होता ?

नहीं होता है, क्योंकि तीर्थंकर नामकर्म के बंध के प्रारंभ का सहकारी कारण केवलज्ञान से उपलक्षित जीव द्रव्य है, अतएव मनुष्यगति के बिना उसके बंध के प्रारंभ की उत्पत्ति का विरोध है। अथवा 'उनमें तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति के बंध के कारणों को कहता हूँ' यहाँ ऐसा कहा गया है। 'सोलसेहिं' इस पद से कारणों की संख्या का निर्देश किया है।

पर्यायार्थिक नय के अवलम्बन लेने पर तीर्थंकर प्रकृति के बंध के कारण सोलह ही होते हैं। द्रव्यार्थिक नय का अवलंबन एक भी कारण होता है, दो भी होते हैं। इसीलिए सोलह ही कारण हैं ऐसा निश्चय नहीं करना चाहिए, इसी के निर्णय के लिए अगला सूत्र है।

अब सोलह कारणों के नाम और क्रम का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खण-लवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए जधाथामे तधा तवे, साहणं पासुअपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणदाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पभावणदाए अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इमाः षोडशकारणभावनाः कथिताः नामभिः श्रीभूतबलिसूरिवर्येण। अधुना श्रीवीरसेनाचार्यकथितमासां पृथक्-पृथक् लक्षणमुच्यते—

दंसणविसुज्झदाए—दर्शनं सम्यग्दर्शनं, तस्य विशुद्धता दर्शनविशुद्धता, तीए दंसणविसुज्झदाए—तस्या दर्शनविशुद्धतायाः जीवास्तीर्थकरनामगोत्रं कर्म बध्नन्ति। त्रिमूढापोढ-अष्टमलव्यतिरिक्तसम्यग्दर्शनभावो दर्शनविशुद्धता नाम।

अत्र कश्चिदाशंकते—

तस्या एकस्याश्चैव कथं तीर्थकरनामकर्मणो बंधः, सर्वसम्यग्दृष्टीनां तीर्थकरनामकर्मबंधप्रसंगात् इति चेत् ?

सूत्रार्थ—

दर्शनविशुद्धता, विनयसंपन्नता, शील-व्रतों में निरतिचारता, छह आवश्यकों में अपरिहीनता, क्षण-लव प्रतिबोधनता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, यथाशक्ति तप, साधुओं के लिए प्रासुकपरित्यागता, साधुओं की समाधि संधारणता, साधुओं की वैयावृत्ति योगयुक्तता, अरहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचन-प्रभावनता और अभीक्ष्ण-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम गोत्रकर्म को बांधते हैं।।४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—श्री भूतबलि आचार्यवर्य ने इन सोलह कारण भावनाओं के नाम कहे हैं। अब श्री वीरसेनाचार्य द्वारा कहे गये इनके पृथक्-पृथक् लक्षण कहेंगे—

'दंसणविसुज्झदाए'—दर्शन—सम्यग्दर्शन, उसकी विशुद्धता दर्शनविशुद्धता है, उससे—दर्शनविशुद्धता से जीव तीर्थंकर नामगोत्र कर्म को बांधते हैं। तीन मूढ़ताओं से रहित और आठ मदों से रहित सम्यग्दर्शन भाव का होना दर्शनविशुद्धता है।

यहाँ कोई शंका करता है—

शंका—उस एक से ही कैसे तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है, क्योंकि ऐसा होने से तो सभी सम्यग्दृष्टियों के तीर्थंकर प्रकृति के बंध का प्रसंग आ जायेगा ?

समाधान—आचार्यदेव समाधान करते हैं—

आचार्यः समाधत्ते—शुद्धनयाभिप्रायेण त्रिमूढरहितत्वाष्टमलविरहितैरेव दर्शनविशुद्धता न भवति, किन्तु पूर्वोक्तगुणैः स्वरूपं लब्ध्वा स्थितसम्यग्दर्शनस्य जीवस्य विशुद्धता भवति।

के ते पूर्वोक्तगुणा इति चेत् ?

उच्यंते—साधूनां प्रासुकपरित्यागता, साधूनां समाधिसंधारणं, साधूनां वैयावृत्त्ययोगः, अर्हद्भक्तिः बहुश्रुतभक्तिः प्रवचनभक्तिः, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना, अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता चासु प्रवर्तनमेव दर्शनविशुद्धता गीयते। तस्या दर्शनविशुद्धताया एकस्या अपि तीर्थकरकर्म बध्नन्ति।

अथवा, विनयसंपन्नताया एव तीर्थकरनामकर्म बध्नन्ति। तद्यथा—विनयस्त्रिविधः—ज्ञानदर्शन-चारित्रविनय इति। तत्र ज्ञानविनयो नाम अभीक्ष्णमभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगयुक्तता बहुश्रुतभक्तिः प्रवचनभक्तिश्च। दर्शनविनयो नाम प्रवचनेषूपदिष्टसर्वभावानां श्रद्धानं त्रिमूढेभ्योऽपसरणं अष्टमलच्छर्दनं अर्हद्भक्तिः सिद्धभक्तिः क्षणलवप्रतिबुद्धता लब्धिसंवेगसंपन्नता च। चारित्रविनयो नाम शीलव्रतेषु निरतिचारता आवश्यकेष्वपरिहीणता यथाशक्तितपश्च।

साधूनां प्रासुकपरित्यागस्तेषां समाधिसंधारणं तेषां वैयावृत्त्ययोगयुक्तता प्रवचनवत्सलता च ज्ञानदर्शनचारित्राणां त्रयाणामपि विनयः, किंच—त्रिरत्नसमूहस्य साधु-प्रवचनानि इति व्यपदेशात्। ततो विनयसंपन्नता एकापि भूत्वा षोडशावयवा भवति। तेनैतस्या विनयसंपन्नताया एकस्या अपि तीर्थकरनामकर्म मनुजा बध्नन्ति।

कश्चिदाह—देवनारकाणां कथमेषा भावना संभवति ?

शुद्धनय के अभिप्राय से तीन मूढ़ता से रहितपना और आठ मदों से रहितपना ही दर्शनविशुद्धता नहीं है, किन्तु पूर्वोक्त गुणों से अपने स्वरूप को प्राप्त कर स्थित सम्यग्दर्शन वाले जीव के 'दर्शनविशुद्धता' होती है।

शंका—वे पूर्वोक्त गुण कौन-कौन हैं ?

समाधान—कहते हैं—साधुओं के लिए प्रासुक परित्याग, साधुओं की समाधिसंधारणा, साधुओं की वैयावृत्ति का संयोग, अर्हंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना और अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सबमें प्रवर्तन करना ही 'दर्शनविशुद्धता' कही जाती है। अतः इस एक दर्शनविशुद्धता से भी तीर्थंकर प्रकृति को बांधते हैं।

अथवा, विनयसंपन्नता से ही तीर्थंकर नामकर्म को बांधते हैं। उसे ही कहते हैं—ज्ञान, दर्शन और चारित्र विनय से विनय तीन प्रकार का है। उसमें अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयुक्तता, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति का होना यह 'ज्ञानविनय' है। दर्शनविनय—प्रवचनों में उपदिष्ट सर्व पदार्थों का श्रद्धान, तीन मूढ़ताओं से दूर रहना, आठ मदों को छोड़ना, अरहंत भक्ति, सिद्धभक्ति, क्षण-लव प्रतिबुद्धता और लब्धिसंवेगसम्पन्नता ये सब दर्शनविनय है। चारित्रविनय—शीलव्रतों में निरतिचारता, आवश्यक क्रियाओं में अपरिहीनता और यथाशक्ति तप करना यह 'चारित्रविनय' है।

साधुओं के लिए प्रासुक परित्याग, उनका समाधि संधारण, उनकी वैयावृत्ति का करना और प्रवचनवत्सलता का होना ये दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों के भी विनय कहलाते हैं, क्योंकि रत्नत्रय समूह को ही साधु व प्रवचन संज्ञा प्राप्त है, इसलिए विनयसम्पन्नता एक भी होकर सोलह अवयवों से सहित होती है। अतः उस एक विनयसम्पन्नता से भी मनुष्य तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं।

कोई कहता है—देव, नारकियों में यह भावना कैसे संभव है ?

आचार्यः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, तत्रापि ज्ञानदर्शनविनयानां संभवदर्शनात्। पुनरप्याशंका भवति—त्रिविनयानां समूहकार्यं कथं द्वाभ्यां विनयाभ्यामेव सिद्ध्यति ?

तस्या अपि समाधानं क्रियते—नैष दोषः, मृत्तिकाजलसूरणस्कंधेभ्यः समुत्पद्यमानसूरणस्कंधांकुरस्य तत्स्कंधदुर्दिनेभ्यश्चैव समुत्पद्यमानस्योपलंभात्। द्वाभ्यां तुरंगाभ्यां बाह्यमानरथस्य बलवता एकेनैव देवेन विद्याधरेण मनुजेन वा बाह्यमानरथस्य उपलंभात् वा।

यदि द्वाभ्यामेव विनयाभ्यां तीर्थकरनामकर्म बध्यते, तर्हि चारित्रविनयः किमिति तत्कारणमित्युच्यते ?

नैष दोषः, ज्ञानदर्शनविनयकार्यविरोधिचरणविनयो न भवतीति प्रतिपादनफलत्वात्।

अस्यायमर्थः—विनयसंपन्नताभावनायां अन्याश्च भावना अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्ततादयोऽन्तर्भवन्ति। देवेषु नारकेष्वपि चारित्रसहचारिज्ञानदर्शनविनयः अंतर्भवति इति मन्तव्यं।

अथवा, शीलव्रतेषु निरतिचारताया एव तीर्थकरनामकर्म बध्यते। तद्यथा—हिंसानृतचौर्याब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं नाम। व्रतपरिरक्षणं शीलं नाम। सुरापान-मांसभक्षण-क्रोध-मान-माया-लोभ-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-स्त्री-पुरुष-नपुंसकवेदनामपरित्यागोऽतिचारः, एतेषां विनाशो निरतिचारः संपूर्णता, तस्य भावो निरतिचारता। तया शीलव्रतेषु निरतिचारतया तीर्थकरकर्मणो बंधो भवति।

कथमत्र शेषपञ्चदशानां संभवः ?

आचार्यदेव कहते हैं—

ऐसा नहीं कहना, क्योंकि वहाँ भी ज्ञान विनय और दर्शन विनय की संभावना देखी जाती है।

पुनः आशंका होती है—

तीन विनयों के समूह से सिद्ध होने वाला कार्य दो विनयों से कैसे सिद्ध हो सकता है ?

उसका समाधान करते हैं—

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि मिट्टी, जल और सूरण कंद से उत्पन्न होने वाला सूरणकंद का अंकुर उसके कंद और दुर्दिन—वर्षा से ही उत्पन्न होता हुआ पाया जाता है, अथवा दो घोड़ों से खींचा जाने वाला रथ बलवान एक ही देव या विद्याधर मनुष्य के द्वारा खींचा गया पाया जाता है।

शंका—यदि दो ही विनयों से तीर्थंकर नामकर्म बांधा जा सकता है तो पुनः चारित्रविनय को उसका कारण क्यों कहा जाता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि ज्ञानविनय, दर्शनविनय के कार्य का विरोधी चारित्रविनय नहीं होता है, इस बात को सूचित करने के लिए चारित्रविनय को भी कारण माना जाता है।

इसका अर्थ यह है कि—विनयसम्पन्नता भावना में अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता आदि अन्य और भावनाएँ अन्तर्भूत हो जाती हैं। देवों में और नारकियों में भी चारित्र सहचारी ज्ञान-दर्शन विनय अंतर्भूत होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अथवा, शीलव्रतों में निरतिचारता से ही तीर्थंकर नामकर्म बंधता है। वह इस प्रकार से है—हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह से विरत होना ही व्रत है। व्रतों की रक्षा को 'शील' कहते हैं। मदिरापान, मांसभक्षण, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसकवेद, इनका त्याग नहीं करना अतिचार है और इनका विनाश होना 'निरतिचार' है, संपूर्णता है, उसका भाव 'निरतिचारता' है। शील और व्रतों में निरतिचारता से तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

शंका—इसमें शेष पन्द्रह भावना कैसे संभव हैं ?

नैतद् वक्तव्यं, सम्यग्दर्शनेन क्षणलवप्रतिबुद्धता-लब्धिसंवेगसम्पन्नता-साधुसमाधिसंधारणता-वैयावृत्ययोगयुक्तता-प्रासुकपरित्यागता-अर्हद्बहुश्रुतप्रवचनभक्ति-प्रवचनप्रभावनालक्षणशुद्धियुक्तेन विना शीलव्रतानामनतिचारत्वस्य अनुपपत्तेः।

असंख्यातगुणायाः श्रेण्याः कर्मनिर्जरणहेतुव्रतं नाम। न च सम्यक्त्वेन विना हिंसानृतचौर्याब्रह्मपरिग्रह-विरतिमात्रेण सा गुणश्रेणिनिर्जरा भवति, द्वाभ्यां चैवोत्पद्यमानकार्यस्य तत्रैकस्मात् समुत्पत्तिविरोधात्।

कश्चिदाह — भवतु नाम एतेषामत्र संभवः, न ज्ञानविनयस्य ?

आचार्यः प्राह — नैतत्, षड्द्रव्य-नवपदार्थसमूह-त्रिभुवनविषयेण अभीक्ष्णमभीक्ष्णमुपयोगविषय-मापद्यमानेन ज्ञानविनयेन विना शीलव्रतनिबंधनसम्यक्त्वोत्पत्तेः अनुपपत्तेः। न तत्र चरणविनयाभावोऽपि, यथाशक्तितपः-आवश्यकापरिहीणत्व-प्रवचनवत्सलत्वलक्षणचरणविनयेन विना शीलव्रतनिरतिचारतानुपपत्तेः। तस्मात् तृतीयमेतत्कारणं तीर्थकरनामकर्मणो बंधस्य कारणं।

आवासएसु अपरिहीणदाए — आवश्यकेषु अपरिहीणतायाः —

समता-स्तव-वंदना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-व्युत्सर्गभेदेन षडावश्यका भवन्ति। शत्रु-मित्र-मणि-पाषाण-सुवर्ण-मृत्तिकासु रागद्वेषाभावः समता नाम। अतीतानागत-वर्तमानकालविषयपंचपरमेश्वराणां भेदमकृत्वा 'णमो अरहंताणं, णमो जिणाणं', इत्यादिनमस्कारो द्रव्यार्थिकनिबंधनः स्तवो नाम। ऋषभाजित-

---

समाधान — ऐसा नहीं कहना, क्योंकि क्षणलवप्रतिबुद्धता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, साधु समाधिसंधारण, वैयावृत्तियोगयुक्तता, प्रासुकपरित्याग, अरहंत भक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचन भक्ति और प्रवचनप्रभावना लक्षण शुद्धि से युक्त सम्यग्दर्शन के बिना शील व्रतों की निरतिचारता बन नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि —

जो असंख्यातगुणी श्रेणी से कर्मनिर्जरा का कारण है वही व्रत है और सम्यग्दर्शन के बिना हिंसा, झूठ चोरी, कुशील और परिग्रह से विरति मात्र से वह गुणश्रेणी निर्जरा नहीं होती है, क्योंकि दोनों से ही उत्पन्न होने वाले कार्य की उनमें से एक के द्वारा उत्पत्ति का विरोध है।

कोई कहता है —

शंका — इनकी संभावना भले ही यहाँ हो, पर ज्ञान विनय की संभावना नहीं हो सकती ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं —

समाधान — ऐसा नहीं है, क्योंकि छह द्रव्य, नव पदार्थों के समूह और त्रिभुवन को विषय करने वाले एवं बार-बार उपयोग विषय को प्राप्त होने वाले ऐसे ज्ञान के विनय के बिना शील-व्रतों के कारणभूत सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं बन सकती।

शील-व्रतविषयक निरतिचारता में चारित्रविनय का भी अभाव नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि यथाशक्ति तप, आवश्यक अपरिहीनता और प्रवचनवत्सलता लक्षण चारित्रविनय के बिना शील-व्रतविषयक निरतिचारता की उत्पत्ति — व्यवस्था नहीं हो सकती। इस कारण यह तीर्थंकर नामकर्म के बंध का तीसरा कारण है।

आवश्यकों में अपरिहीनता से ही तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है —

समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और व्युत्सर्ग के भेद से आवश्यक छह होते हैं। शत्रु-मित्र, मणि-पाषाण, सुवर्ण और मिट्टी में राग-द्वेष का अभाव होना 'समता' आवश्यक है।

अतीत, अनागत और वर्तमानकाल विषयक पाँच परमेष्ठी के भेदों को न करके "णमो अरिहंताणं, णमो जिणाणं" अर्हंतों को नमस्कार हो, जिनों को नमस्कार हो। इत्यादि रूप से द्रव्यार्थिकनय निबंधन नमस्कार का

संभवाभिनन्दन-सुमति-पद्मप्रभ-सुपार्श्व-चन्द्रप्रभ-पुष्पदंत-शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्य-विमलानन्त-धर्म-शांति-कुंथु-अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-वर्द्धमानादितीर्थकराणां भरतादिकेवलिनां आचार्य-चैत्यालयादीनां भेदं कृत्वा नमस्कारः गुणगणभेदेनाश्रितः शब्दकलाव्याप्तः गुणानुस्मरणस्वरूपो वा वंदना नाम। पंचमहाव्रतेषु चतुरशीतिलक्षगुणगणकलितेषु समुत्पन्नकलंकप्रक्षालनं प्रतिक्रमणं नाम।

महाव्रतानां विनाशन-मलारोहणकारणानि यथा न भविष्यन्ति तथा करोमि इति मनसा आलोच्य चतुरशीतिलक्षव्रतशुद्धिप्रतिग्रहः प्रत्याख्यानं नाम। शरीरादिषु अशुभमनोवचनप्रवृत्ती अपसार्य ध्येये एकाग्रेण चित्तनिरोधः व्युत्सर्गो नाम। एतेषां षडावश्यकानां अपरिहीणता अखण्डता आवश्यकापरिहीणता। तया आवश्यकापरिहीणतया एकयापि तीर्थकरनामकर्मणो बंधो भवति।

न चात्र शेषकारणानामभावः, न च दर्शनविशुद्धि-विनयसंपत्ति-व्रतशीलनिरतिचार-क्षणलवप्रतिबोध-लब्धिसंवेगसंपत्ति-यथाशक्तितपः-साधुसमाधिसंधारण-वैयावृत्यययोग-प्रासुकपरित्याग-अर्हद्बहुश्रुतप्रवचन-भक्ति-प्रवचनवत्सल-प्रभावन-अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तताभिः विना षडावश्यकेषु निरतिचारता नाम संभवति। तस्मादेतत् तीर्थकरनामकर्मबंधस्य चतुर्थकारणं।

क्षणलवप्रतिबुद्धतायाः—क्षण-लवा नाम कालविशेषाः। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-व्रत-शील-गुणानामुज्वालनं कलंकप्रक्षालनं संधुक्षणं वा प्रतिबोधनं नाम, तस्य भावः प्रतिबोधनता। क्षणलवं प्रतिबोधनता—क्षणलवप्रतिबोधनता। तया एकयापि तीर्थकरनामकर्मणो बंधः। अत्रापि पूर्वमिव शेषकारणानामन्तर्भावो दर्शयितव्यः। तत इदं तीर्थकरनामकर्मबंधस्य पंचमं कारणं।

नाम 'स्तव' है। ऋषभ, अजित, संभव, अभिनंदन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, पुष्पदंत, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनंत, धर्म, शांति, कुंथु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, नेमि, पार्श्व और वर्धमान आदि तीर्थंकर तथा भरत आदि केवली, आचार्य एवं चैत्यालयों आदि के भेद को करके अथवा गुणगत भेद के आश्रित, शब्दकलाप से व्याप्त, गुणानुस्मरण रूप नमस्कार करने को 'वन्दना' कहते हैं।

चौरासी लाख गुणों के समूह से संयुक्त, पाँच महाव्रतों में उत्पन्न हुए मल को धोने का नाम 'प्रतिक्रमण' है। महाव्रतों के विनाश व मलोत्पादन के कारण जिस प्रकार न होंगे वैसा करता हूँ, ऐसी मन से आलोचना करके चौरासी लाख व्रतों की शुद्धि के प्रतिग्रह का नाम 'प्रत्याख्यान' है। शरीर आदि में अशुभ मन, वचन की प्रवृत्ति को दूर कर ध्येय वस्तु में एकाग्रतापूर्वक चित्त का रोकना 'व्युत्सर्ग' है।

इन छहों आवश्यकों की अपरिहीनता—अखण्डता आवश्यक अपरिहीनता है। इस एक आवश्यक अपरिहीनता से भी तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध होता है।

इसमें शेष कारणों का अभाव नहीं है, क्योंकि दर्शनविशुद्धि, विनयसंपत्ति, व्रत-शील निरतिचारता, क्षणलव प्रतिबोध, लब्धिसंवेगसंपत्ति, यथाशक्ति तप, साधुसमाधि संधारण, वैयावृत्ययोग, प्रासुकपरित्याग, अरिहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, प्रवचनवत्सलता, प्रवचनप्रभावना और अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता इनके बिना छह आवश्यकों में निरतिचारता संभव नहीं है अतः यह तीर्थंकर नामकर्म के बंध का चतुर्थ कारण है।

क्षणलवप्रतिबुद्धता से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है—क्षण और लव ये काल विशेष के नाम हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत और शीलगुणों को उज्ज्वल करने, मल को धोने अथवा जलाने का नाम प्रतिबोधन है और इसका भाव प्रतिबोधनता है। प्रत्येक क्षण में व लव में होने वाले प्रतिबोध को 'क्षणलव प्रतिबुद्धता' कहा जाता है। उस एक ही क्षणलवप्रतिबुद्धता से तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है। इसमें भी पूर्व के समान शेष कारणों का अन्तर्भाव दिखलाना चाहिए। इसलिए यह तीर्थंकर नामकर्म के बंध का पाँचवां कारण है।

लब्धिसंवेगसंपन्नतायाः—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणेषु जीवस्य समागमो लब्धिर्नाम। हर्षः संतोषः संवेगो नाम। लब्धेः संवेगस्तस्य संपन्नता संपत्तिः। तस्याः तीर्थकरनामकर्मणः एकस्या अपि बंधः।

लब्धिसंवेगसंपत्तौ कथं शेषकारणानां संभवः ?

शेषकारणैर्विना लब्धिसंवेगस्य संपदा न युज्यते, विरोधात्। ''लब्धिसंवेगो णाम तिरयणदोहलओ— लब्धिसंवेगो नाम त्रिरत्नजनित हर्षः, न स दर्शनविशुद्धतादिभिर्विना संपूर्णो भवति, विप्रतिषेधात् हिरण्यसुवर्णादिभिः बिना आढ्य इव। तत आत्मनोऽन्तःक्षिप्तशेषकारणा लब्धिसंवेगसंपदा षष्ठं कारणम्।

जहाथामे तहा तवे—बलो वीर्यं स्थामन् इमे समानार्थकाः, तपो द्विविधः—बाह्योऽभ्यन्तरश्चेति। बाह्योऽनशनादिकः, अभ्यन्तरो विनयादिकः। एष सर्वोऽपि तपः द्वादशविधः। यथास्थामनि तथा तपसि सति तीर्थकरनामकर्म बध्यते, किंच—यथास्थामतपसि सकलशेषकारणानां संभवात्। यतो यथास्थाम नाम ओघबलस्य धीरस्य ज्ञानदर्शनबलकलितस्य भवति। न च तत्र दर्शनविशुद्धतादीनामभावः, तथा यथाशक्तितपसोऽन्यथानुपपत्तेः। तत इदं सप्तमं कारणम्।

साहूणं पासुअपरिच्चागदाए—साधूनां प्रासुकपरित्यागतायाः तीर्थकरनामकर्म बध्यते। अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्तवीर्य-विरति-क्षायिकसम्यक्त्वादीनां साधकाः साधुर्नाम। प्रगता अपसारिता आस्रवा यस्मात् तत् प्रासुकं, अथवा यन्निरवद्यं तत्प्रासुकं, ज्ञानदर्शनचारित्रादीन्येव तेषां परित्यागः विसर्जनं, तस्य भावः प्रासुकपरित्यागता।

लब्धिसंवेगसम्पन्नता—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में जो जीव का समागम होता है, वह 'लब्धि' है। हर्ष और संतोष को 'संवेग' कहते हैं। लब्धि से या लब्धि में संवेग है लब्धिसंवेग और उसकी सम्पन्नता— संप्राप्ति अथवा संपत्ति लब्धिसंवेगसम्पन्नता है। इस एक से भी तीर्थंकर नामकर्म का बंध होता है।

प्रश्न—इस लब्धिसंवेग सम्पत्ति में शेष कारणों का संभव कैसे है ?

उत्तर—शेष कारणों के बिना लब्धिसंवेग की संपदा का संयोग ही नहीं हो सकता है, क्योंकि वैसा मानने में विरोध है।

लब्धिसंवेग का अर्थ है, रत्नत्रयजनित हर्ष। वह हर्ष दर्शनविशुद्धता आदि के बिना संपूर्ण नहीं होता है क्योंकि वैसा मानने में विरोध है। जैसे—हिरण्य-सुवर्ण आदि के बिना धनाढ्य नहीं हो सकता है, वैसे ही इन दर्शनविशुद्धि आदि के बिना रत्नत्रयजनित हर्ष नहीं हो सकता है इसलिए शेष कारणों को अपने अन्तर्गत करने वाली 'लब्धिसंवेगसंपदा' तीर्थंकर प्रकृति बंध के लिए छठा कारण है।

शक्त्यनुसारतप—बल, वीर्य और स्थापन—थाम ये समानार्थक हैं। तप दो प्रकार का है—बाह्य और आभ्यन्तर। बाह्य तप अनशन आदि हैं और अभ्यन्तर विनय आदि हैं। ये सभी तप बारह प्रकार के हैं। जैसा बल हो वैसा तप करने पर तीर्थंकर नामकर्म बंधता है। यथाशक्ति तप में संपूर्ण शेष कारण संभव हैं, क्योंकि यथाथाम—यथाशक्ति तपश्चरण विशेष बलशाली, धीर और ज्ञान, दर्शन बल से सहित पुरुष के ही होता है। इसलिए उनमें दर्शनविशुद्धता आदि का अभाव भी नहीं है, क्योंकि इनका अभाव होने पर यथाशक्ति तप बन ही नहीं सकता इसलिए यह यथाथाम—यथाशक्ति तप तीर्थंकर प्रकृति बंध का सातवां कारण है।

साधुओं को प्रासुक परित्यागता—साधुओं के लिए प्रासुकपरित्यागता का होना, इससे तीर्थंकर प्रकृति बंधती है। अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतवीर्य, विरति, क्षायिकसम्यक्त्व आदि के जो साधक हैं वे साधु कहलाते हैं। प्रगत—निकल गये हैं आस्रव जिससे वह 'प्रासुक' है, अथवा जो निरवद्य—निर्दोष है वह प्रासुक है। वे ज्ञान, दर्शन और चारित्र आदि ही हैं। उनके परित्याग—विसर्जन—दान को 'प्रासुकपरित्याग' कहते हैं और इसके भाव को 'प्रासुकपरित्यागता' कहते हैं।

उक्तं च श्री वीरसेनाचार्येण—

''दयाबुद्धीए साहूणं णाणदंसणचरित्तपरिच्चागो दाणं पासुअपरिच्चागदा णाम। ण चेवं कारणं घरत्थेसु संभवदि, तत्थ चरित्ताभावादो। तिरयणोवदेसो वि ण घरत्थेसु अत्थि, तेसिं दिट्ठिवादादिउवरिम-सुदोवदेसणे अहियाराभावादो। तदो एदं कारणं महेसिणं चेव होदि[१]।''

न चात्र शेषकारणानामसंभव:, न चार्हदादिषु अभक्तिमति नवपदार्थ विषयश्रद्धानोन्मुक्ते सातिचारशीलव्रते परिहीणावश्यके निरवद्यो ज्ञानदर्शन-चारित्रपरित्याग: संभवति, विरोधात्। तत एतदष्टमं कारणम्।

अस्यायमर्थ:—अत्र दयाबुद्ध्या साधुभि: यद् रत्नत्रयं दीयते भव्यजनाय तत्प्रासुकपरित्यागभावना कथ्यते। एषा भावना गृहस्थानां उत्कृष्टश्रावकाणामपि न संभवति, किंच तेषां स्वयं चारित्रं नास्ति, अत्र कथितं वर्तते यत्तेषां दृष्टिवादांगादिश्रुतानामुपदेशकरणे अधिकारो न वर्तते। अत एषा भावना महर्षीणामेव भवति।

अन्यत्र तत्त्वार्थवार्तिके कथितं श्रीमदकलंकदेवेन—

''परप्रीतिकरणातिसर्जनं त्याग:।।६।। आहारो दत्त: पात्राय तस्मिन्नहनि तत्प्रीतिहेतु र्भवति, अभयदान-मुपपादितमेकभवव्यसननोदनकरम्, सम्यग्ज्ञानं पुन: अनेकभवशतसहस्रदु:खोत्तरणकारणम्। अतएतत्त्रिविधं यथाविधि प्रतिपद्यमानं त्यागव्यपदेशभाग्भवति[२]।''

उपासकाध्ययने श्रावकाचारे दानस्य चतुर्भेदा: सन्ति—

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—

''दयाबुद्धि से साधुओं द्वारा किये जाने वाले ज्ञान, दर्शन, चारित्र का परित्याग—दान प्रासुक परित्यागता है। यह कारण गृहस्थों में संभव नहीं है, क्योंकि उनमें चारित्र का अभाव है। तीन रत्न—रत्नत्रय का उपदेश देना भी गृहस्थों में संभव नहीं है, क्योंकि दृष्टिवाद आदि उपरिम श्रुत के उपदेश देने का उनको अधिकार नहीं है। इसलिए यह कारण महर्षियों के ही होता है। इस कारण में शेष कारणों की असंभावना भी नहीं है, क्योंकि अरिहंतादिकों में भक्ति से रहित, नवपदार्थ विषयक श्रद्धान से उन्मुक्त, सातिचार शील-व्रतों से सहित और आवश्यकों की हीनता से संयुक्त होने पर निरवद्य ज्ञान, दर्शन व चारित्र की परित्यागता—दान देने का विरोध होने से यह कारण संभव नहीं है अत: यह कारण तीर्थंकर प्रकृतिबंध का आठवां कारण है।

इसका अर्थ यह है कि—

जो साधु दयाबुद्धि से भव्य जीवों को रत्नत्रय प्रदान करते हैं—दीक्षा देते हैं वही प्रासुक परित्यागभावना कही जाती है। यह भावना गृहस्थों के और उत्कृष्ट श्रावकों के भी संभव नहीं है, क्योंकि उनके स्वयं चारित्र नहीं है—सकल चारित्र नहीं है। यहाँ कहा है कि उनको दृष्टिवाद आदि श्रुत ग्रंथों के उपदेश करने का अधिकार नहीं है। इसलिए यह प्रासुक परित्यागता कारण या भावना महान् ऋषियों के ही होती है।

अन्यत्र—तत्त्वार्थवार्तिक ग्रंथ में श्रीमान् अकलंक देव ने कहा है—पर की प्रीति के लिए अपनी वस्तु का देना त्याग है। पात्र के लिए दिया गया आहार उसी दिन उसकी प्रीति का हेतु बनता है। अभयदान उस भव के दु:खों को दूर करने वाला है और पात्र को संतोषजनक है। सम्यग्ज्ञान का दान अनेक सहस्र भवों के दु:खों से छुटकारा दिलाने वाला है अर्थात् अनेक भवों के दु:खों के नाश में कारणभूत है। अत: ये यथाविधि—विधिपूर्वक दिये गये तीनों प्रकार के दान ही त्याग कहलाते हैं। यहाँ श्री अकलंकदेव ने दान के तीन भेद कहे हैं।

उपासकाध्ययन में—श्रावकाचार में दान के चार भेद कहे हैं—

---

१. षट्खण्डागम पु. ८, पृ. ८७। २. तत्त्वार्थवार्तिक अ. ६, सूत्र २४ का अंश, पृ. ३२९।

''आहारोसह-सत्थाभयभेओ जं चउव्विहं दाणं।
तं वुच्चइ दायव्वं णिद्दिट्ठमुवासयज्झयणे।।२३३।।[१]''

अत्र तु षट्खंडागमसूत्रस्य धवलाटीकायां श्रीवीरसेनाचार्येण प्रासुकपरित्यागता कथिता अतस्तस्यां भावनायां प्रासुकशब्देन रत्नत्रयं एव विवक्षितं नाहारादयो दानानि, एष विशेषो ज्ञातव्यः।

साहूणं समाहिसंधारणाए—साधूनां समाधिसंधारताभावनायास्तीर्थकरनामकर्म बध्यते—दर्शनज्ञान-चारित्रेषु सम्यगवस्थानं समाधिर्नाम। सम्यक् साधनं संधारणं। समाधेः संधारणं समाधिसंधारणं, तस्य भावः समाधिसंधारणता। तस्याः तीर्थकरनामकर्म बध्यते इति। केनापि कारणेन पतन्तीं समाधिं दृष्ट्वा सम्यग्दृष्टिः प्रवचनवत्सलः प्रवचनप्रभावको विनयसंपन्नः शीलव्रतातिचारवर्जितः अर्हदादिषु भक्तः सन् यदि धारयति तत्समाधिसंधारणं।

कुत एवमुपलभ्यते ?

'सं' शब्दप्रयुक्तत्वात्। तेन बध्यते इति उक्तं भवति। न चात्र शेषकारणानामभावः, तदस्तित्वस्य दर्शितत्वात्। एवमेतन्नवमं कारणाम्।

साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए—व्यापृते यत्क्रियते तद्वैयावृत्यं, यैः सम्यक्त्व ज्ञान-अर्हद्भक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनवत्सलादिभिः जीवो वैयावृत्ये युज्यते स वैय्यावृत्ययोगो दर्शनविशुद्धतादिः तेन युक्तता

आहारदान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान, इन चार प्रकार के दान को देना चाहिए , ऐसा उपासकाध्ययन में कहा गया है।

यहाँ पर षट्खण्डागम सूत्र की धवला टीका में श्रीवीरसेनाचार्य ने 'प्रासुकपरित्यागता' कही है। अतएव उस भावना में 'प्रासुक' शब्द से रत्नत्रय ही विवक्षित है, आहारदान आदि विवक्षित नहीं हैं, यह विशेष जानना चाहिए।

साधुओं की समाधिसंधारणता—इस भावना से तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में सम्यक् अवस्थान का नाम समाधि है। सम्यक् प्रकार से धारण या साधन का नाम संधारण है। समाधि का संधारण समाधिसंधारण और उसके भाव को समाधिसंधारणता कहते हैं। उससे तीर्थंकर नाम कर्म बंधता है। किसी भी कारण से गिरती हुई समाधि को देखकर सम्यग्दृष्टि, प्रवचनवत्सल, प्रवचनप्रभावक, विनयसम्पन्न, शीलव्रतातिचारवर्जित और अरहंतादिकों में भक्तिमान होकर चूँकि उसे धारण करते हैं इसीलिए वह समाधिसंधारण है।

शंका—यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान—यह 'संधारण' पद में किये गये 'सं' शब्द के प्रयोग से जाना जाता है। इससे तीर्थंकर प्रकृति बंधती है ऐसा कहा गया है। इस भावना में शेष कारणों का अभाव भी नहीं है, क्योंकि उनका अस्तित्व वहाँ दिखलाया जा चुका है।

यह तीर्थंकर प्रकृति बंध का नवमाँ कारण है।

साधुओं की वैयावृत्ति योगयुक्तता—व्यापृत—रोगादि से व्याकुल साधु के विषय में जो किया जाता है उसका नाम वैयावृत्य है। जिन सम्यक्त्व, ज्ञान, अर्हंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनवत्सल आदि कारणों से जीव वैयावृत्य में लगते हैं वह वैयावृत्य योग है वही दर्शनविशुद्धता आदि है। उनसे युक्तता 'वैयावृत्ययोगयुक्तता'

---

१. वसुनंदिश्रावकाचार गाथा २३३, पृ. १०२।

वैयावृत्त्ययोगयुक्तता। तस्या एवं विधाया एकस्या अपि तीर्थकरनामकर्म बध्यते। अत्र शेषकारणानां यथासंभवेनान्तर्भावो वक्तव्यः। एवमिदं दशमं कारणम्।

अरहंतभत्तीए—क्षपितघातिकर्माणः केवलज्ञाने दृष्टसर्वार्थाः अर्हन्तो नाम। अथवा नष्टाष्टकर्मणां घातितघातिकर्मणां च 'अर्हन्त' इति संज्ञा कथ्यते। अरिहननं प्रति द्वयोर्भेदाभावात्। तयोर्भक्तिरर्हद्भक्तिः।

अस्यायमर्थः—'अरहंता' इति पदस्य कर्मशत्रूणां नाशक इति गृह्यते।

अतएव घातिकर्मणां नाशकः सयोगी जिनः अयोगी जिनश्च अर्हन् शब्देन वाच्यौ भवतः। तथैवाष्टकर्मणां नाशकः सिद्धोऽपि अत्रार्हन् पदेन वाच्यो भवितुमर्हति किं च निरुक्त्यर्थापेक्षया द्वयोर्भेदो नास्ति। तेषु सयोग्ययोगिजिनसिद्धपरमेष्ठिषु गुणानुरागरूपा भक्तिः अर्हद्भक्तिर्गीयते।

तया तीर्थकरनामकर्म बध्यते।

कथमत्र शेषकारणानां संभवः?

उच्यते—अर्हद्देवोक्तानुष्ठानानुवर्तनं तदनुष्ठानस्पर्शो वार्हद्भक्तिर्नाम। न चैषा दर्शनविशुद्धतादिभिर्विना संभवति, विरोधात्। तत एषा एकादशमं कारणम्।

बहुसुदभत्तीए—द्वादशांगपारगा बहुश्रुता नाम, तेषु भक्तिस्तैरूपदिष्टागमार्थानुवर्त्तनं तदनुष्ठानस्पर्शो वा बहुश्रुतभक्तिः। तस्या अपि तीर्थकरनामकर्म बध्यते, दर्शनविशुद्धतादिभिः बिना एतस्या असंभवात्। इदं द्वादशमं कारणम्।

है। ऐसी वैयावृत्त्ययोगयुक्तता से—एक से भी तीर्थंकर नामकर्म बंधता है। यहाँ शेष कारणों का भी यथासंभव अन्तर्भाव कहना चाहिए।

इस प्रकार यह दशवां कारण है।

अर्हन्तभक्ति—जिन्होंने घातिया कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान से संपूर्ण पदार्थों को देख लिया है वे अरिहंत भगवान हैं। अथवा आठों कर्मों को नष्ट कर देने वालों को और घातिया कर्मों को नष्ट करने वालों को 'अर्हन्त' यह संज्ञा है क्योंकि कर्मशत्रु के विनाश के प्रति दोनों में कोई भेद नहीं है। इन दोनों की भक्ति 'अर्हंतभक्ति' है। यहाँ विशेष अर्थ यह है कि 'अरहंता' इस पद का शत्रुओं का नाशक यह अर्थ ग्रहण किया जाता है। इसलिए घातिया कर्मों के नाशक सयोगीजिन और अयोगीजिन ये दोनों ही 'अर्हंत' शब्द से वाच्य होते हैं। उसी प्रकार आठों कर्मों के नाशक 'सिद्ध भगवान' भी अर्हंत पद से कहे जा सकते हैं क्योंकि निरुक्ति—व्युत्पत्ति अर्थ की अपेक्षा से दोनों में कोई भेद नहीं है। उन सयोगिकेवली, अयोगिकेवली भगवान और सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों में गुणों के अनुरागरूप भक्ति 'अर्हंतभक्ति' कहलाती है। इससे तीर्थंकर नामकर्म बंधता है।

शंका—इसमें सभी शेष कारणों का संभव कैसे है ?

समाधान—कहते हैं—अर्हंत देव के द्वारा कथित अनुष्ठान के अनुकूल प्रवृत्ति करना या उक्त अनुष्ठान के स्पर्श को 'अर्हंतभक्ति' कहते हैं। यह भक्ति दर्शनविशुद्धता आदि के बिना संभव नहीं है क्योंकि ऐसा होने में विरोध है।

इसलिए यह अर्हंतभक्ति तीर्थंकर प्रकृति बंध में ग्यारहवाँ कारण है।

बहुश्रुतभक्ति—द्वादशांग के पारगामी महामुनि 'बहुश्रुत' कहलाते हैं। उनमें भक्ति करना, उनके द्वारा उपदिष्ट आगम के अर्थ के अनुकूल प्रवृत्ति करने या उक्त अनुष्ठान के स्पर्श करने को 'बहुश्रुतभक्ति' कहते हैं। इस भक्ति से भी तीर्थंकर नामकर्म प्रकृति का बंध होता है, क्योंकि दर्शनविशुद्धता आदि कारणों के बिना यह भावना नहीं बन सकती। यह बारहवां कारण है।

पवयणभत्तीए—सिद्धान्तो द्वादशांगानि प्रवचनं, प्रकृष्टं प्रकृष्टस्य वा वचनं प्रवचनमिति व्युत्पत्तेः। तस्मिन् भक्तिस्तत्र प्रतिपादितार्थानुष्ठानं। न चान्यथा तत्र भक्तिः संभवति, असंपूर्णे संपूर्णव्यवहारविरोधात्। तस्याः तीर्थकरनामकर्म बध्यते। अत्र शेषकारणानामन्तर्भावो वक्तव्यः। एवमिदं त्रयोदशमं कारणम्।

पवयणवच्छलदाए—प्रवचनं सिद्धान्तो द्वादशांगानि तत्र भवाः देशव्रतिनो महाव्रतिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च प्रवचनाः कथ्यन्ते।

कुतोऽत्राकारस्याश्रवणं ? प्रवचने भवा इति विग्रहेण प्रावचनैः भवितव्यम् न च प्रवचनैरिति।

उच्यते—'ए ए छच्च समाणा[१]' इति सूत्रेण आदिवृद्धौ 'आ' स्थाने कृत-अकारत्वात्। अस्यायमर्थः—'अ आ इ ई उ ऊ' इमे षट्स्वराः, 'ए ओ' इमौ सन्ध्यक्षरौ, एते अष्टौ स्वराः अविरोधेन परस्परं आदेशभावं प्राप्नुवन्ति। अतोऽनेन सूत्रेण आदिवृद्धिरूपेण दीर्घाकारस्य अकारादेशोऽभवत्।

तेषु प्रवचनेषु अनुरागः आकांक्षा ममेदं भावः प्रवचनवत्सलता नाम। तस्याः तीर्थकरकर्म बध्यते।

कुतः?

पंचमहाव्रतद्यागमार्थविषयस्योत्कृष्टानुरागस्य दर्शनविशुद्धतादिभिरविनाभावात्। तेनेदं चतुर्दशमं कारणम्।

पवयणप्पहावणदाए—आगमार्थस्य प्रवचनमिति संज्ञा। तस्य प्रभावनं नाम वर्णजननं तद्वृद्धिकरणं

प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त-द्वादशांग ही प्रवचन है, प्रकृष्ट वचन या प्रकृष्ट—सर्वज्ञदेव के वचन 'प्रवचन' कहलाते हैं इस प्रकार प्रवचन शब्द की व्युत्पत्ति होती है। उसमें भक्ति, उसमें प्रतिपादित अर्थ—विषय का अनुष्ठान करना प्रवचनभक्ति है। इसके बिना अन्य प्रकार से प्रवचन में भक्ति संभव नहीं है, क्योंकि असंपूर्ण में संपूर्ण व्यवहार के विरोध का अभाव है। इस प्रवचन भक्ति से तीर्थंकर प्रकृति बंधती है। यहाँ भी शेष कारणों का अन्तर्भाव कहना चाहिए।

इस प्रकार यह तेरहवाँ कारण है।

प्रवचनवत्सलता—प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त या द्वादशांगश्रुत, उनमें होने वाले देशव्रती, महाव्रती और असंयतसम्यग्दृष्टि महापुरुष 'प्रवचन' कहलाते हैं।

शंका—यहाँ 'आकार' का श्रवण क्यों नहीं होता। क्योंकि प्रवचन में होने वाले इस विग्रह के अनुसार 'प्रावचन' होने चाहिए न कि प्रवचन ?

समाधान—कहते हैं—''ए ए छच्च समाणा'' इस सूत्र से आदि में वृद्धि होने से 'आ' स्थान में 'अकार' हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि—'अ आ इ ई उ ऊ' ये छह स्वर हैं। ए, ओ ये दो 'सन्ध्यक्षर' हैं, ये आठ स्वर हैं, ये आठों स्वर अविरोधरूप से परस्पर में आदेशभाव को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिए इस सूत्र से आदिवृद्धिरूप से दीर्घ—आकार को 'अकार' आदेश हो गया है।

इन प्रावचनों में—प्रवचनों में—देशव्रती, महाव्रती, सम्यग्दृष्टि भव्यों में जो अनुराग, आकांक्षा या ममेदं—यह मेरे हैं, ऐसा भाव होना 'प्रवचनवत्सलता' है। उससे तीर्थंकर प्रकृति कर्म बंधता है।

क्यों ?

क्योंकि, पाँच महाव्रत आदि आगम के अर्थ के विषय में जो उत्कृष्ट अनुराग है वह दर्शनविशुद्धता आदि के साथ अविनाभावी है। इसलिए यह चौदहवाँ कारण है।

प्रवचनप्रभावनता—आगम के अर्थ का नाम 'प्रवचन' है। उसके वर्णजनन अर्थात् कीर्तिविस्तार या

---

१. षट्खण्डागम पु. ८, पृ. ९०।

च, तस्य भावः प्रवचनप्रभावनता। तस्यास्तीर्थंकरकर्म बध्यते, उत्कृष्टप्रवचनप्रभावनस्य दर्शनविशुद्धतादिभिः अविनाभावस्तेनेदं पंचदशमं कारणम्।

अभिक्खणमभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए—अभीक्ष्णमभीक्ष्णं नाम बहुवारिमिति भणितं भवति। ज्ञानोपयोग इति पदेन भावश्रुतं द्रव्यश्रुतं वा अपेक्षते। तेषु मुहुर्मुहुर्युक्ततायास्तीर्थंकरनामकर्म बध्यते, दर्शनविशुद्धतादिभिर्विना एतस्या अनुपपत्तेस्तेनेदं षोडशं कारणम्।

एतैः षोडशभिः कारणैर्जीवास्तीर्थंकरनामकर्म बध्नन्ति। अथवा सम्यग्दर्शने सति शेषकारणानां मध्ये एकद्विकादिसंयोगेन बध्यते इति वक्तव्यम्।

संक्षेपेण एतेषां षोडशकारणानां नामानि लक्षणं च वक्ष्यन्ते—

१. दर्शनविशुद्धता भावना—**शंकाद्यष्टमल-त्रिमूढत्वरहितं सम्यग्दर्शनं यद् भवेत् तदेव दर्शनविशुद्धता नाम।**

२. विनयसंपन्नता—**ज्ञानदर्शनचारित्रभेदेन त्रिविधो विनयस्तेन सहिता विनयसम्पन्नता नाम भवति।**

३. शीलव्रतेषु निरतिचारता—**सम्यक्त्वसहित-पंचव्रतेषु व्रतरक्षणलक्षणशीलेषु गुणव्रतादिसप्तसु वा अतिचाररहितत्वं नामेयं तृतीया भावनास्ति।**

४. आवश्यकेष्वपरिहीणता—**समतास्तववंदना-प्रतिक्रमण-प्रत्याख्यान-व्युत्सर्गभेदेन षड्आवश्यकेष्व-परिहीणता- यथासमयं आवश्यकक्रियाकरणमित्यर्थः।**

५. क्षणलवप्रतिबुद्धता—**क्षणलवाः कालविशेषाः। सम्यग्दर्शनज्ञानव्रतशीलगुणानामुज्ज्वालनं कलंक-प्रक्षालनं संधुक्षणं वा। प्रत्येकक्षणलवेषु सम्यग्दर्शनादिगुणानामुज्ज्वलीकरणमित्यर्थः।**

वृद्धि करने को प्रवचन की प्रभावना और उसके भाव को 'प्रवचनप्रभावनता' कहते हैं। उससे तीर्थंकर कर्म बंधता है, क्योंकि उत्कृष्ट प्रवचनप्रभावना का दर्शनविशुद्धता आदिकों के साथ अविनाभाव है।

इसीलिए यह पन्द्रहवाँ कारण है।

अभीक्ष्ण—अभीक्ष्णज्ञानोपयोगयुक्तता—अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण का अर्थ 'बहुत बार' है। 'ज्ञानोपयोग' इस पद से भावश्रुत अथवा द्रव्यश्रुत अपेक्षित हैं। उनमें बार-बार उद्युक्त रहने से तीर्थंकर नामकर्म बंधता है, क्योंकि दर्शनविशुद्धता आदि के बिना यह अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता बन नहीं सकती।

इन सोलह कारणों से तीर्थंकर नामकर्म बांधते हैं। अथवा सम्यग्दर्शन के होने पर शेष कारणों के मध्य में से एक, दो, तीन आदि के संयोग से बंधती है, ऐसा कहना चाहिए।

अब यहाँ संक्षेप से इन सोलह कारणों के नाम और लक्षण कहेंगे—

१. दर्शनविशुद्धता भावना—शंका आदि आठ मलदोष और तीन मूढ़ता से रहित जो सम्यग्दर्शन होता है, वही दर्शनविशुद्धता है।

२. विनयसम्पन्नता—ज्ञान, दर्शन और चारित्र के भेद से विनय तीन प्रकार का है, उससे सहित विनयसम्पन्नता है।

३. शीलव्रतेषु निरतिचारता—सम्यक्त्वसहित पाँच व्रतों में और व्रतों के रक्षण लक्षण वाले शीलों में अथवा गुणव्रत-शिक्षाव्रत आदि सात व्रतों—शीलों में अतिचाररहितपना नाम की यह तीसरी भावना है।

४. आवश्यकों में अपरिहीनता—समता, स्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक क्रियाओं में हीनता नहीं करना अर्थात् यथासमय आवश्यक क्रियाओं को करना, यह अर्थ है।

५. क्षणलवप्रतिबुद्धता—क्षण और लव ये कालविशेष के वाची हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत, शील और गुण इनको उज्ज्वल करना, इनके कलंक—दोषों को प्रक्षालित करना अथवा दोषों का जला देना।

६. लब्धिसंवेगसम्पन्नता—**सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरणेषु जीवस्य समागमो लब्धिः, संवेगो—हर्षः। लब्धिसंवेगस्य संप्राप्तिः नामेयं भावनास्ति।**

७. यथाथाम तथातपः—**यथाशक्ति द्वादशविधतपःसु प्रवृत्तिर्विधातव्या।**

८. साधुप्रासुकपरित्यागता—**साधुभ्यः दर्शनज्ञानचारित्रादिदानं। एषा भावना साधूनामेव संभवति।**

९. साधुसमाधिसंधारणता—**साधूनां रत्नत्रये सम्यगवस्थानं कर्तव्यं।**

१०. साधुवैयावृत्त्ययोगयुक्तता—**साधूनां वैयावृत्ये-सेवायां योगयुक्ता नाम इयं भावना भवति।**

११. अर्हद्भक्तिः—**घातिकर्मविरहितार्हतां सिद्धानां च भक्तिर्नामेयं भावना गीयते।**

१२. बहुश्रुतभक्तिः—**द्वादशांगवित्सु उपाध्यायेषु भक्तिर्नाम भावना भवति।**

१३. प्रवचनभक्तिः—**सिद्धान्तः प्रवचनं, तस्य भक्तिः कर्तव्या।**

१४. प्रवचनवत्सलता—**प्रवचनं सिद्धान्तः, तत्र भवाः देश-महाव्रतिनोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च। तेषु अनुरागः ममेदं भावः प्रवचनवत्सलता भवति।**

१५. प्रवचनप्रभावनता—**आगमार्थः प्रवचनं, तस्य वृद्धिकरणं -प्रवचनप्रभावना नाम भवति।**

१६. अभीक्ष्णमभीक्ष्णं ज्ञानोपयोगयुक्तता—**नित्यं ज्ञानोपयोगे युक्तता तन्मयता नामेयं भावना वर्तते।**

इतो विस्तरः—श्रीभूतबलिसूरिवर्येण एतानि षोडशकारणानि कथितानि सन्ति। वर्तमानकाले

प्रत्येक क्षणों में—लवों में सम्यग्दर्शन आदि गुणों को उज्ज्वल करना यह अभिप्राय है।

६. लब्धिसंवेग सम्पन्नता—सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र में जीव का समागम लब्धि है और संवेग का अर्थ हर्ष है। लब्धिसंवेग की संप्राप्ति नाम की यह भावना है।

७. यथाथाम तथातप—यथाशक्ति बारह प्रकार के तपों में प्रवृत्ति करना चाहिए।

८. साधुप्रासुकपरित्यागता—साधुओं को दर्शन, ज्ञान, चारित्र का दान देना। यह भावना साधुओं में ही संभव है।

९. साधुसमाधि संधारणता—साधुओं को रत्नत्रय में सम्यक् प्रकार से अवस्थित करना चाहिए।

१०. साधु और वैयावृत्त्ययोगयुक्तता—साधुओं की वैयावृत्ति में—सेवा में योगयुक्त होना, यह भावना होती है।

११. अर्हद्भक्ति—घातिया कर्मों से रहित अर्हंतों की और सिद्धों की भक्ति, ऐसी अर्हद्भक्ति नाम की यह भावना है।

१२. बहुश्रुतभक्ति—द्वादशांग के ज्ञानी—उपाध्याय गुरुओं की भक्ति करना, ऐसी यह भावना है।

१३. प्रवचनभक्ति—सिद्धान्त को प्रवचन कहते हैं, उसकी भक्ति नाम से यह भावना है।

१४. प्रवचनवत्सलता—प्रवचन अर्थात् सिद्धान्त, उसमें होने वाले—उसमें रत हुए ऐसे देशव्रती, महाव्रती और असंयतसम्यग्दृष्टी हैं। उनमें अनुराग होना, ये मेरे हैं ऐसा भाव होना प्रवचन वत्सलता है।

१५. प्रवचनप्रभावनता—आगम का अर्थ प्रवचन है, उसकी वृद्धि करना प्रवचनप्रभावना नाम की भावना है।

१६. अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता—नित्य ही ज्ञानोपयोग में युक्तपना—तन्मयता का होना यह सोलहवीं भावना है।

यहां तक इस सूत्र द्वारा कथित सोलह कारण भावनाओं को कहा गया है। अब विस्तार से कहते हैं—

तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थे प्रोक्तानि यानि तीर्थकरास्त्रवकारणभूतानि षोडश कारणानि वर्तन्ते तेषु क्रमेषु अत्रान्तरं अस्ति। तथाहि—

''दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य।।२४।।

एतासां भावनानां संक्षिप्तलक्षणमत्रोच्यते श्रीमद्भट्टाकलंकदेवकथितमिति—

१. जिनोपदिष्टे निर्ग्रन्थे मोक्षवर्त्मनि रुचिः निःशंकितत्वाद्यष्टांगा दर्शनविशुद्धिः।।१।।

२. ज्ञानादिषु तद्वत्सु चादरः कषायनिवृत्तिर्वा विनयसम्पन्नता।।२।।

३. चारित्रविकल्पेषु शीलव्रतेषु निरवद्या वृत्तिः शीलव्रतेष्वनतिचारः।।३।।

४. ज्ञानभावनायां नित्ययुक्तता ज्ञानोपयोगः।।४।।

५. संसारदुःखान्नित्यभीरुता संवेगः।।५।।

६. परप्रीतिकरणातिसर्जनं त्यागः।।६।।

७. अनिगूहितवीर्यस्य मार्गाविरोधिकायक्लेशस्तपः।।७।।

८. मुनिगणतपःसंधारणं समाधिः भाण्डागाराग्निप्रशमनवत्।।८।।

९. गुणवद्दुःखोपनिपाते निरवद्येन विधिना तदपहरणं वैयावृत्यम्।।९।।

श्री भूतबलि आचार्यवर्य ने इन उपर्युक्त सोलह कारणों को कहा है। वर्तमानकाल में ''तत्त्वार्थसूत्र'' ग्रंथ में कथित जो तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारणभूत सोलहकारण भावनाएं हैं, उनके क्रमों में और इनके क्रमों में अन्तर है। उसे ही दिखाते हैं—

१. दर्शनविशुद्धि २. विनयसम्पन्नता ३. शील व्रतों में अनतिचार ४. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग ५. संवेग ६. शक्तितस्त्याग ७. शक्तितस्तप ८. साधुसमाधि ९. वैयावृत्यकरण १०. अर्हद्भक्ति ११. आचार्यभक्ति १२. बहुश्रुतभक्ति १३. प्रवचनभक्ति १४. आवश्यक अपरिहाणि १५. मार्गप्रभावना और १६. प्रवचनवत्सलत्व, ये तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव हैं।।२४।।

यहाँ पर श्री भट्टाकलंकदेव आचार्य के द्वारा कथित इन भावनाओं का संक्षिप्त लक्षण कहते हैं—

१. जिनेन्द्रदेव द्वारा उपदिष्ट निर्ग्रन्थ मोक्षमार्ग में रुचि और निःशंकित आदि आठ अंगों का पालन करना दर्शनविशुद्धि भावना है।

२. ज्ञानादि में और उनके धारियों में आदर करना अथवा कषायों की निवृत्ति होना विनयसम्पन्नता है।

३. चारित्र के भेदरूप शीलव्रतों में निर्दोष प्रवृत्ति, शीलव्रतों में निरतिचारता है—यह शीलव्रतेष्वनतिचार भावना है।

४. ज्ञानभावना में नित्य ही युक्त—उपयोग लगाना अभीक्ष्णज्ञानोपयोग भावना है।

५. संसार के दुःखों से नित्य ही भयभीत रहना संवेग भावना है।

६. पर की प्रीति के लिए अपने धन का त्याग करना त्याग भावना है।

७. अपनी शक्ति को नहीं छिपाकर जिनशास्त्रों से अविरोधी कायक्लेश आदि करना तप भावना है।

८. भाण्डागार की अग्नि प्रशमन के समान मुनिगणों के तप का संधारण करना समाधि भावना है।

९. गुणवानों पर दुःख के आ जाने पर निर्दोष विधि से उसको दूर करना वैयावृत्य भावना है।

१०-११-१२-१३. अर्हदाचार्येषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च भावविशुद्धियुक्तोऽनुरागो भक्तिः।।१०।।

१४. षण्णामावश्यकक्रियाणां यथाकालप्रवर्तनमावश्यकापरिहाणिः।।११।।

१५. ज्ञानतपोजिनपूजाविधिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावनम्।।१२।।

१६. वत्से धेनुवत्सधर्माणि स्नेहः प्रवचनवत्सलत्वम्।।१३।।

तानि एतानि षोडशकारणानि सम्यग्भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीर्थकरनामकर्मास्रवकारणानि प्रत्येतव्यानि[१]।

पूर्वोक्त षट्खण्डागमसूत्रकथितभावनासु तत्त्वार्थसूत्रकथितभावनासु च पंचदश भावनाः सदृशा एव, केवलं तत्र ''खण-लवपडिबुज्झणदा'' नामैका भावना तत्र तु आचार्यभक्तिर्नाम भावना। द्वयोर्लक्षणयोरपि अन्तरमस्ति।

अन्यत्र ग्रन्थेषु आभिः षोडशभावनाभिः सह अपायविचयधर्म्यध्यानमपि विशेषरूपेण लिखितमस्ति। यथा—

श्रेयोमार्गानभिज्ञानिह भवगहने जाज्वलदुःखदाव-
स्कंधे चंक्रम्यमाणानतिचकितमिमानुद्धरेयं वराकान्।
इत्यारोहत्परानुग्रहरसविलसद् - भावनोपात्तपुण्य-
प्रकान्तैरेव वाक्यैः शिवपथमुचितान् शास्ति योऽर्हन् स नोऽव्यात्।।२।।

---

१०. अर्हंतों की भक्ति करना, भावविशुद्धियुक्त अनुराग होना अर्हद्भक्ति भावना है।

११. आचार्यों की भक्ति करना आचार्यभक्ति भावना है।

१२. बहुश्रुत—उपाध्यायों की भक्ति—बहुश्रुतभक्ति भावना है।

१३. प्रवचनों की भक्ति करना—अनुराग करना प्रवचनभक्ति भावना है।

१४. छहों आवश्यक क्रियाओं को यथासमय करना आवश्यक अपरिहाणि भावना है।

१५. ज्ञान, तप, जिनपूजा विधि से धर्म को प्रकाशित करना मार्गप्रभावना भावना है।

१६. जैसे बछड़े में गाय का प्रेम होता है वैसे ही सहधर्मियों में स्नेह भाव रखना प्रवचनवत्सलत्व भावना है।

ये सोलह कारण सम्यक् प्रकार से भावित किये गये कतिपय हों या संपूर्ण हों, ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारण हैं ऐसा श्रद्धान करना चाहिए।

पूर्वोक्त षट्खण्डागम सूत्र में कथित भावनाओं में और तत्त्वार्थसूत्र में कथित भावनाओं में पंद्रह भावनाएँ तो समान ही हैं, केवल यहाँ षट्खण्डागम में ''क्षणलवप्रतिबुद्धता'' नाम की भावना है और वहाँ तत्त्वार्थसूत्र में आचार्यभक्ति नाम की भावना है। दोनों के लक्षण में भी अन्तर है।

अन्यत्र—अनगारधर्मामृत ग्रंथ में इन सोलहकारण भावनाओं के साथ अपायविचय धर्मध्यान भी विशेषरूप से लिखा गया है। जैसे कि—इस भवरूपी भीषणवनों में दुःखरूपी दावानल बड़े वेग से जल रही है और श्रेयोमार्ग से अनजान ये बेचारे प्राणी अत्यन्त भयभीत होकर इधर-उधर भटक रहे हैं। 'मैं इनका उद्धार करूँ' इस बढ़ते हुए परोपकार के भावनारूपी रस से विशेषरूप से शोभायमान भावना से संचित पुण्य से उत्पन्न हुए वचनों के द्वारा जो उसके योग्य प्राणियों को मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं वे अर्हंतदेव हमारी रक्षा करें।।२।।

---

१. तत्त्वार्थवार्तिक, अ. ६, सूत्र २४, टीकांशाश्च। २. अनगारधर्मामृत, पृ. ७।

श्रेयोमार्गः-व्यवहारेण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयं निश्चयेन च तन्मयः स्वात्मैवेति श्रेयोमार्गस्त-स्यानभिज्ञान्-सम्यग्मुक्त्युपायमुग्धानित्यर्थः। इह भवगहने संसाराटवीमध्ये, यत्र दुःख दावानलो ज्वलति अत्यर्थं, तस्मिन चंक्रम्यमाणान् अतिचकितं इमान् वराकात् प्राणिनः उद्धरेयं—तत्तादृग्भवगहननिः-सरणोपायोपदेशेनोपकुर्यामहम्। सैषा तीर्थकरत्वभावना मुख्यवृत्याऽपायविचयाख्या धर्मध्यानविशेषलक्षणा। इत्येवं युगपत्त्रिजगदनुग्रहणसमर्थो भवेयमिति परमकरुणानुरक्तान्तश्चैतन्यपरिणामलक्षणेनात्मरूपेणारोहन् क्षणे क्षणे वर्धमानः परेषामनुग्राह्यदेहिनामनुग्रहस्तस्य रसः तेन विलसन्त्यो विशेषेणानगारकेवलित्वमयोग्य-भावकानामसंभवित्वादनन्यसामान्यतया द्योतमानाः प्रतीतिविषयीभवन्त्यो भावनाः परमपुण्यतीर्थकरत्वाख्य-नामकर्मकारणभूताः षोडशदर्शनविशुद्ध्यादिनमस्कारसंस्काराः ताभिरुपात्तं तीर्थकराख्यपुण्यं तेन प्रक्रान्तैः प्रारब्धैः दिव्यध्वनिभिः शिवपथं शास्ति यः सोऽर्हन् भगवान् सः नः अस्माकं अव्यात्।

दृश्यते च लोकेऽपि, परोपकारपरः पथिकान् दुर्दैववशाद्दुस्तरघोरारण्ये ज्वलज्ज्वलनज्वालाकला-पदह्यमानवृक्षस्वापदादिसंघाते पतितान् श्रेयोमार्गाकुशलान् तन्निःसरणपथमजानतस्तन्निस्सरणबुद्ध्या दवानलाभिमुखमेव सातंकं गच्छतो दृष्ट्वा दयार्द्रहृदयतया सम्यग्निःसरणमार्गमुपदेष्टुकामो भवति[1]।

तथैवात्र ज्ञातव्यं—

स्वोपज्ञटीका में लिखा है—

श्रेयोमार्ग अर्थात् व्यवहार से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रय और निश्चय से तन्मय—रत्नत्रयमय स्वात्मा ही श्रेयोमार्ग है। उससे अनभिज्ञ—सम्यक् प्रकार से मुक्ति के उपाय में जो मूढ़ हैं। इस भव गहन में—संसाररूपी अटवी में जहाँ दुःखरूपी दावानल—अग्नि धधक रही है, उसमें झुलस रहे हैं ऐसे इन बेचारे प्राणियों को उस संसाररूपी वन से निकलने के उपाय का उपदेश देकर मैं उनका उद्धार करूँ—उपकार करूँ। ऐसी यह तीर्थंकर प्रकृति के बंध को कराने वाली भावना मुख्यरूप से 'अपायविचय' धर्मध्यानरूप है। 'इस प्रकार मैं एक साथ तीनों जगत के प्राणियों का उद्धार करने में समर्थ होऊँ' इस प्रकार परम करुणा से अनुरक्त अंतःकरणरूप चैतन्य परिणाम लक्षण आत्मस्वरूप से परिणत होते हुए क्षण-क्षण में वृद्धिंगत अनुग्रह के योग्य प्राणियों के प्रति जो अनुग्रह भाव होता है वही हुआ करुणारस, उससे शोभायमान जो भावना है, वह सामान्य केवली आदि में पूर्व में नहीं पाई जा सकती है, जो कि अन्य में नहीं हो सके ऐसी असाधारण भावना से शोभित भव्यों के हृदय की जो परम पुण्य तीर्थंकर नामकर्म के लिए कारण ऐसे पुण्यस्वरूप और दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारणस्वरूप नमस्कार के संस्काररूप है। ऐसे कारणों से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करके कालान्तर में उसके उदय के होने पर अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा जो मोक्षमार्ग का उपदेश देते हैं वे अर्हंत भगवान हमारी रक्षा करें।

लोक में भी देखा जाता है कि जो परोपकार में तत्पर हैं ऐसे महापुरुष घोर जंगल में भटके लोगों को मार्ग दिखा देते हैं। यहाँ जंगल को दिखाया है कि वह जंगल जहाँ दावानल अग्नि खूब जोरों से धधक रही है और तमाम वृक्ष, जंतु आदि को जला रही है। दुर्दैव के निमित्त से जो पथिक उस वन में भटक गये हैं और वहाँ से निकलने के मार्ग को नहीं जान रहे हैं, जो कि पुनः उसी दावानल आदि की ओर ही भाग रहे हैं ऐसे लोगों को घबराए हुए देखकर करुणा से आर्द्रचित्त होकर उनको सम्यक् प्रकार से निकलने के मार्ग का उपदेश देने की इच्छा रखते हैं।

---

१. अनगारधर्मामृत द्वितीय श्लोकस्य टीकांशाः सन्ति, पृ. ८-९।

तथैवोक्तं— दृग्विशुद्ध्याद्युत्थतीर्थ-कृत्त्वपुण्योदयात् स हि।
शास्त्यायुष्मान् सतोऽर्तिघ्नं, जिज्ञासूंस्तीर्थमिष्टदम्।।

दिव्यध्वनिलक्षणं कथ्यते—

यत्सर्वात्महितं न वर्णसहितं न स्पन्दितौष्ठद्वयं।
नो वाञ्छाकलितं न दोषमलिनं न श्वासरुद्धक्रमं।।
शान्तामर्षविषैः समं पशुगणैराकर्णितं कर्णिभिः।
तन्नः सर्वविदः प्रणष्टविपदः पायादपूर्वं वचः[१]।।

इयं दिव्या वाणी अहोरात्रं कियत्पर्यन्तं निर्गच्छति ?

तदेवोच्यते—

पुव्वण्हे मज्झण्हे अवरण्हे मज्झिमाये रत्तीये।
छच्छग्घडियाणिग्गय-दिव्वझुणी कहइ सुत्तत्थे[२]।।

एतां तीर्थकरप्रकृतिं कर्मभूमिजाः पुरुषाः एव बध्नन्ति न च स्त्रियो नपुंसका वा, किन्तु ये केचित् द्रव्यवेदेन पुरुषाः भावस्त्रीवेदिनो भावनपुंसकवेदिनो वा तेऽपि तीर्थकरप्रकृतेः बन्धं कर्तुं शक्नुवन्ति। उक्तं च पंचसंग्रहे—

स्त्री-षंढवेदयोरपि तीर्थाहारकबंधो न विरुद्ध्यते, उदयस्यैव पुंवेदिषु नियमात्[३]।

इमे भाववेदाः यावज्जीवं भवन्ति।

उसी प्रकार से यहाँ जानना चाहिए। कहा भी है—

दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं से उत्पन्न हुए तीर्थंकर प्रकृति के उदय से जो दु:खों को नष्ट करने के इच्छुक ऐसे आयुष्मान भव्यों को इष्टकारी धर्मतीर्थ का उपदेश देते हैं वे ही अर्हंतदेव हैं।

अब दिव्यध्वनि का लक्षण कहते हैं—

जो समस्त प्राणियों के लिए हितकर है, वर्णसहित नहीं है, जिसके बोलते समय दोनों ओष्ठ नहीं हिलते हैं, जो इच्छापूर्वक नहीं है, न दोषों से मलिन है, जिसका क्रम श्वास से रुद्ध नहीं होता, जिन वचनों को पारस्परिक वैर भाव त्यागकर प्रशांत पशुगणों के साथ सभी श्रोता सुनते हैं, समस्त विपत्तियों को नष्ट कर देने वाले सर्वज्ञ देव के अपूर्ववचन हमारी रक्षा करें।[४]

शंका— यह दिव्यवाणी अहोरात्र कितने काल पर्यंत खिरती है ?

समाधान— पूर्वाण्ह में, मध्यान्ह में, अपराण्ह में और मध्यम रात्रि में छह-छह घड़ी दिव्यध्वनि खिरती है, जैसा कि सूत्रों के अर्थ में कहा है—जैनागम में कहा है।

ऐसी तीर्थंकर प्रकृति को कर्मभूमिया मनुष्य ही बांधते हैं, स्त्री अथवा नपुंसक नहीं बांधते हैं। किन्तु जो कोई द्रव्यवेद से पुरुष हैं और भाव से स्त्रीवेदी हैं या भाव से नपुंसकवेदी हैं ऐसे पुरुष भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध कर सकते हैं।

पंचसंग्रह ग्रंथ में भी कहा है—

स्त्रीवेद और नपुंसकवेद में भी तीर्थंकर और आहारक का बंध विरुद्ध नहीं है, क्योंकि उदय का ही पुरुषवेद में नियम है।

ये भाववेदी जीवन भर उसी भाव से रहते हैं।

१-२. अनगारधर्मामृत द्वितीय श्लोकस्य टीकांशाः सन्ति। ३. पंचसंग्रह पृ. २३५ (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)। ४. समवसरण स्तोत्र।

उक्तं च—''कषायवन्नान्तर्मुहूर्तस्थायिनो भाववेदाः आजन्मन आमरणं तदुदयसद्भावादिति[१]।''

कथाग्रन्थे द्रव्यस्त्रीणां अपि तीर्थकरप्रकृतिबंधः श्रूयते तत्तु परंपरया पुरुषवेदे एव न च तत्स्त्रीभवात्।

तथा च षोडशकारणव्रतकथायां—

जंबूद्वीपस्य भरतक्षेत्रे मगधदेशे राजगृहीनगर्यां हेमप्रभो राजा, तस्य राज्ञी विजयावती। तत्र राजसदने महाशर्मा किंकरः तस्य भार्या प्रियंवदा। अनयोः पुत्री कालभैरवी कुरूपासीत्। एकदा अनया कन्यया मतिसागरमहामुनेर्मुखारविंदात् पूर्वभवं श्रुत्वा धर्मे रुचिं कुर्वाणा षोडशकारणव्रतमग्रहीत्। सा ब्राह्मणकन्या विधिवत् व्रतअनुष्ठायान्ते समाधिना मृत्वा स्त्रीपर्यायं छित्वाच्युतस्वर्गे देवो बभूव। पुनश्च (परंपरया) विदेहक्षेत्रे अमरावती देशस्य गंधर्वनगरे राज्ञः श्रीमन्दरस्य राज्ञ्यां महादेव्यां सीमन्धरो नाम तीर्थकरपुत्रोऽभवत्[२]।

अन्यापि श्रुतस्कंधव्रतकथा वर्तते—

जंबूद्वीपे भरतक्षेत्रे अंगदेशस्य पाटलिपुत्रे राज्ञः चन्द्ररूचिनाम्नः राज्ञी चन्द्रप्रभासीत्। तयोः श्रुतशालिनी पुत्री जाता। एकदा वर्धमानाख्यमुनेः पूर्वभवं श्रुत्वा श्रुतस्कंधव्रतमाहात्म्यं च विज्ञाय पुनरपि अनया श्रुतशालिन्या कन्यया श्रुतस्कंधव्रतमादाय विधिवत् कृत्वान्ते समाधिना स्त्रीपर्यायमपहाय इन्द्रपदमवाप्नोत्। पुनश्चापरविदेहे कुमुदवतीदेशस्याशोकपुरे पद्मनाभस्य पट्टराज्ञ्यां जितपद्मायां गर्भे आगत्य नयंधरनामा तीर्थकरो बभूव, अयं

कहा भी है—कषाय के समान भाववेद अन्तर्मुहूर्त स्थायी हों, ऐसा नहीं है, प्रत्युत् जन्म से लेकर मरणपर्यंत उसी भाववेद का उदय रहता है अर्थात् द्रव्य से कोई पुरुष है और भाव से स्त्रीवेदी, तो यह भाववेद भी उस पुरुष के जीवन भर रहता है।

कथा ग्रंथ में द्रव्यस्त्रियों के भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध सुना जाता है वह भी परम्परा से पुरुषवेद में ही है न कि स्त्रीभव से।

जैसे कि षोडशकारण व्रत की कथा में कहा है—

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में मगधदेश में राजगृही नगरी के राजा हेमप्रभ थे, उनकी रानी विजयावती थीं। उनके राजभवन में महाशर्मा नाम का एक नौकर था, उसकी पत्नी प्रियंवदा थी। इनके एक कालभैरवी नाम की कुरूपा पुत्री थी। एक बार इस कन्या ने मतिसागर नाम के महामुनि के मुखकमल से अपने पूर्वभव सुनकर धर्म में रुचि रखते हुए सोलहकारण व्रत ग्रहण किये। वह ब्राह्मण कन्या विधिवत् व्रत का अनुष्ठान करके अन्त में समाधिपूर्वक मरण करके स्त्रीपर्याय को छेदकर अच्युत स्वर्ग में देव हो गई। पुनः परम्परा से विदेहक्षेत्र में अमरावती देश के गंधर्व नगर में राजा श्रीमंदर की रानी महादेवी से 'सीमंधर' नाम के तीर्थंकर पुत्र हुए हैं। ऐसा 'जैन व्रतकथा संग्रह' में कहा है।

ऐसे ही एक श्रुतस्कंधव्रत की भी कथा है—

जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में अंगदेश के पटनानगर में राजा चन्द्ररुचि की चन्द्रप्रभा रानी थीं। उनके एक 'श्रुतशालिनी' नाम की पुत्री थी। एक समय 'वर्द्धमान' नाम के महामुनि से अपने पूर्वभव को सुनकर और श्रुतस्कंधव्रत के माहात्म्य को जानकर पुनः उस श्रुतशालिनी कन्या ने श्रुतस्कंध व्रत को ग्रहण कर विधिवत् करके अन्त समय समाधिपूर्वक मरणकर स्त्रीपर्याय से छूटकर इन्द्रपद प्राप्त किया। पुनः पश्चिम विदेहक्षेत्र में कुमुदवती देश के अशोकपुर नगर में पद्मनाभ राजा की पट्टरानी जितपद्मा के गर्भ में आकर 'नयंधर' नाम के तीर्थंकर हुए हैं, इन्होंने चक्रवर्ती और कामदेव पद भी प्राप्त किया है। यहाँ भी परम्परा से ही तीर्थंकर प्रकृति

---

१. पंचसंग्रह पृ. ६६७ (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)। २. जैनव्रत कथासंग्रह, प्रकाशक-दि. जैन पुस्तकालय, सूरत।

चक्रवर्तिपदं कामदेवपदं चापि लेभे। अत्रापि परंपरया एव तीर्थकरप्रकृतिबंधो ज्ञातव्य:[१]।

अथवा स्त्रीपर्यायं छित्त्वा देवेषु उत्पद्य ततश्च्युत्वा मनुष्येषूत्पन्नो भूत्वा कश्चित् तीर्थकरादिपादमूलमासाद्य तीर्थकरप्रकृतिं बध्नाति तस्य दीक्षाज्ञाननिर्वाणाख्यत्रिकल्याणानि भवन्ति, कस्यचिच्च दीक्षानन्तरं तीर्थकरप्रकृतिबंधे सति द्विकल्याणके भवत: इति नियमेनानयो: श्रुतशालिनी-कालभैरवीपुत्र्यो: द्वे त्रीणि वा कल्याणानि भवितुं शक्नुवन्ति स्म। किं च विदेहक्षेत्रेषु द्विकल्याणकधारिण: त्रिधारिणो वा तीर्थकरा भवन्तीति आगमे श्रूयते[२]।

कर्मभूमिजा नरा एव तीर्थकरप्रकृतिं बध्नन्ति तर्हि अस्मिन् मध्यलोके कर्मभूमय: कियन्त्य: क्व क्व च सन्ति इति चेत् ?

उच्यते—''अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमीसु[३]'' इति सामायिकदण्डकेषु पठयते।'' पंचदशकर्मभूमय: सन्ति।

इति कल्याणालोचनायां सप्तत्यधिकशतकर्मभूमय: कथ्यन्ते।

तथैव— ''सत्तस्सिउखित्तभवा-तीदाणागयसमुवट्टमाणजिणा।
जे जे विराहिया खलु, मिच्छा मे दुक्कडं हुज्ज[४]।।२३।।

प्रतिक्रमणभक्तौ कथितमस्ति—''भरहेरावएसु दससु पंचसु महाविदेहेसु।'' जे लोए संति साहवो संजदा तवसी एदे मम मंगलं पवित्तं[५]।

का बंध जानना चाहिए।

अथवा, स्त्रीपर्याय को छेदकर देवों में उत्पन्न होकर पुन: वहाँ से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होकर कोई पुरुष तीर्थंकर आदि के पादमूल में तीर्थंकर प्रकृति को बांध लेते हैं, उनके दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण ये तीन कल्याणक होते हैं। किन्हीं के दीक्षा के अनन्तर तीर्थंकर प्रकृति का बंध होने पर दो कल्याणक होते हैं। इस प्रकार के नियम से इन कालभैरवी और श्रुतशालिनी कन्याओं ने दो अथवा तीन कल्याणक के प्राप्त करने वाले तीर्थंकर पद को प्राप्त किया होगा। क्योंकि विदेहक्षेत्रों में दो कल्याणक वाले या तीन कल्याणक वाले तीर्थंकर होते हैं, ऐसा आगम में सुना जाता है।

यहाँ प्रश्न होता है कि—

यदि कर्मभूमिया मनुष्य ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं तब तो इस मध्यलोक में कितनी कर्मभूमियाँ हैं और कहाँ-कहाँ हैं ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं—

"ढाईद्वीप और दो समुद्रों में पंद्रह कर्मभूमियाँ हैं।" ऐसा सामायिक दण्डक में पढ़ा जाता है। अत: पंद्रह कर्मभूमियाँ हैं। पुनश्च विस्तार से 'कल्याणालोचना' में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ मानी हैं—

एक सौ सत्तर क्षेत्रों में होने वाले भूतकालीन, भविष्यत्कालीन और वर्तमानकालीन जो एक सौ सत्तर तीर्थंकर हुए हैं, होते हैं, होवेंगे। उन-उनकी जो विराधना की है, वह मेरा दुष्कृत मिथ्या होवे।

प्रतिक्रमण भक्ति में भी कहा है—

दश भरत-ऐरावत में और पाँच महाविदेहों में, जो लोक में साधु, संयत और तपस्वी हैं ये सब मेरे लिए मंगल करें और मुझे पवित्र करें।

१-२. जैनव्रत कथासंग्रह (संग्रहकर्ता और लेखक स्व. धर्मरत्न पं. दीपचंदवर्णी) प्रकाशक-दि. जैन पुस्तकालय सूरत। ३. 'मुनिचर्या' सामायिक दण्डक। ४. कल्याणालोचना, मुनिचर्या पृ. ५७६। ५. दैवसिक प्रतिक्रमण।

अत्र सप्तत्युत्तरशतकर्मभूमीनां स्पष्टीकरणं क्रियते—

अस्मिन्मध्यलोकेऽसंख्यातद्वीपसमुद्रेषु मध्ये जंबूद्वीपाख्यः प्रथमो द्वीपोऽस्ति अयं लक्षयोजनविस्तृतो गोलाकारः स्थालीव वर्तते। तं परिवेष्ट्य द्विलक्षयोजनव्यासो लवणसमुद्रोऽस्ति। तं वेष्टयित्वा चतुर्लक्षयोजन-व्यासो धातकीखण्डद्वीपोऽस्ति। तं परिवेष्ट्य अष्टलक्षयोजनव्यासः कालोदधिनाम्ना समुद्रोऽस्ति। तं वेष्टयित्वा षोडशलक्षयोजनव्यासः पुष्करद्वीपो वर्तते। अस्मिन् द्वीपे मध्ये वलयाकारो मानुषोत्तरपर्वतोऽस्ति अनेनाद्रिणा पुष्करद्वीपस्यान्तर्बहिर्भेदेन भेदः संजातः। अभ्यन्तरे पुष्करार्धे कर्मभूमिव्यवस्थानिमित्तेन मनुष्यास्तित्वेन च मर्त्यलोकोऽयं इयत्पर्यन्तं गीयते। अस्यमानुषोत्तराद्रिबहिर्भागे भोगभूमिव्यवस्थास्ति।

द्विगुणद्विगुणविस्तारेण मानुषोत्तरपर्वतपर्यन्तं मर्त्यलोकोऽयं पंचचत्वारिंशल्लक्षयोजनव्यासोऽस्ति। एतावत्प्रमाणमेव सिद्धलोकोऽस्ति।

अस्मिन् जंबूद्वीपे हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मिशिखरिनामानः षट्कुलाचलाः सन्ति। एभिर्विभक्तानि भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतनामानि सप्त क्षेत्राणि।

भरतैरावतयोः विजयार्धपर्वतगंगासिंधु-रक्तारक्तोदानदीनिमित्तेन षट् षट् खण्डानि जातानि। एतयोः षट्कालपरिवर्तननिमित्तेन अशाश्वतकर्मभूमयः सन्ति।

उक्तं च—''भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिणीभ्याम्''।।२७।।

यहाँ अभिप्राय यह है कि संक्षेप में ढाईद्वीप में पंद्रह कर्मभूमियाँ हैं और विस्तार से एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं।

अब यहाँ एक सौ सत्तर कर्मभूमियों का स्पष्टीकरण करते हैं—

इस मध्यलोक में असंख्यातद्वीप-समुद्रों के मध्य में ठीक बीचोंबीच में जंबूद्वीप नाम का पहला द्वीप है। यह एक लाख योजन विस्तृत गोलाकार थाली के समान है। इसे वेष्टित कर दो लाख योजन व्यास वाला लवणसमुद्र है। उसको वेष्टित कर चार लाख योजन व्यास वाला धातकीखण्ड द्वीप है। उसको वेष्टित कर आठ लाख योजन व्यास वाला कालोदधि नाम का समुद्र है। इसे वेष्टित कर सोलह लाख योजन व्यास वाला पुष्कर द्वीप है। इस पुष्करद्वीप के मध्य—ठीक बीच में वलयाकार मानुषोत्तर पर्वत है, इस पर्वत के निमित्त से आभ्यंतर पुष्करद्वीप और बाह्य पुष्करद्वीप ऐसे दो भेद हो जाते हैं। इसीलिए आधे-आधे पुष्कर होने से इसे 'पुष्करार्ध' कहते हैं। इस अभ्यंतर पुष्करार्ध द्वीप में कर्मभूमि की व्यवस्था है और मनुष्यों का अस्तित्व यहीं तक है अतः यहाँ तक यह मर्त्यलोक—मनुष्यलोक कहलाता है। पुनः इस मानुषोत्तर पर्वत से आगे के बाह्य भाग में भोगभूमि की व्यवस्था है।

दूने-दूने विस्तार से मानुषोत्तर पर्वत पर्यंत यह मनुष्यलोक पैंतालिस लाख योजन विस्तार वाला है। इतने प्रमाण मात्र का ही 'सिद्धलोक' है।

इस जंबूद्वीप में हिमवान्, महाहिमवान्, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी नाम वाले छह कुलाचल पर्वत हैं। इन पर्वतों से विभाजित हुए भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत और ऐरावत ये सात क्षेत्र हैं।

इन सातों में से भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्रों में विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिंधु तथा विजयार्ध पर्वत व रक्ता-रक्तोदा नदियों के निमित्त से छह-छह खण्ड हो जाते हैं। इन भरत और ऐरावत क्षेत्रों में छह काल परिवर्तन के निमित्त से अशाश्वत कर्मभूमियाँ हैं। श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र में कहा भी है—

भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह कालों से वृद्धि और ह्रास होते हैं।।२७।।

विदेहक्षेत्रे मध्ये सुदर्शनामा मेरुपर्वतोऽस्ति। अस्य सुमेरोर्विदिक्षु चतुर्गजदन्ताद्रयः सन्ति। दक्षिणोत्तरयोः देवकुरुत्तरकुरुनाम्नोत्तमभोगभूमी स्तः। पूर्वापरयोः सीता-सीतोदानद्यौ स्तः। अतो नद्योः दक्षिणोत्तरभेदेन विदेहस्य चतुर्भेदाः संजाताः।

सीतानद्या उत्तरभागादारभ्य दक्षिणभागपर्यंतं चित्रकूट-पद्मकूट-नलिनकूट-एकशैल-त्रिकूट-वैश्रवण-अञ्जनात्माञ्जनाख्या अष्टौ वक्षारपर्वताः, गाधवती-ह्रदवती-पंकवती-तप्तजला-मत्तजला-उन्मत्तजलाख्या षड् विभंगनद्यश्च विद्यन्ते। एषां वक्षाराणां विभंगानदीनां च निमित्तेन षोडशविदेहदेशाः पूर्वविदेहे संजाताः[१]।

तथैव अपरविदेहे सीतोदामहानद्योर्दक्षिणभागादारभ्योत्तरभागपर्यंतं क्रमशः श्रद्धावान् विजटावान् आशीविषः सुखावहः चन्द्रमालः सूर्यमालो नागमालो देवमाल इति अष्टौ वक्षाराद्रयः। क्षारोदा-सीतोदा-स्रोतोवाहिनी-गंभीरमालिनी-फेनमालिनी-ऊर्मिमालिनीति षट्विभंगनद्यश्च सन्ति। एतेषां पर्वतानां विभंगानदीनां च निमित्तेनात्रापि अपरविदेहे षोडशविदेहदेशाः संजाताः। सर्वे विदेहदेशा इमे द्वात्रिंशत्संजाताः।

एतेषां द्वात्रिंशद्विदेहदेशानां नामान्युच्यन्ते—

कच्छा-सुकच्छा-महाकच्छा-कच्छकावती-आवर्ता-लांगलावर्ता-पुष्कला-पुष्कलावतीत्येतेऽष्टौ देशाः सीतानद्या उत्तरतटे भद्रसालवेद्या अग्रात् क्रमशः सन्ति। वत्सा-सुवत्सा-महावत्सा-वत्सकावती-रम्या-सुरम्या-रमणीया-मंगलावतीत्येतेऽष्टौ देशाः सीतानद्या दक्षिणतटे देवारण्यवेदिकायाः अग्रात्सन्ति। पद्मा-सुपद्मा-महापद्मा-पद्मकावती-शंखा-नलिनी-कुमुदा-सरिदिति इमेऽष्टौ विदेहदेशाः सीतोदानद्या दक्षिणतटे

विदेहक्षेत्र के ठीक मध्य में 'सुदर्शनमेरु' नाम का सुमेरुपर्वत है। इस सुमेरु की विदिशाओं में चार गजदंत पर्वत हैं। इस मेरु के दक्षिण और उत्तर में देवकुरु और उत्तरकुरु नाम की दो उत्तम भोगभूमियाँ हैं। इस मेरु के पूर्व और पश्चिम में सीता और सीतोदा नदियाँ हैं। इसलिए इन सीता-सीतोदा नदी के निमित्त से पूर्व विदेह-पश्चिम विदेह में दक्षिण-उत्तर ऐसे भेद होकर विदेहक्षेत्र के चार भेद हो गये हैं।

पूर्व विदेह में सीतानदी के उत्तर भाग से प्रारंभ करके दक्षिण भाग पर्यंत चित्रकूट, पद्मकूट, नलिनकूट, एकशैलकूट, त्रिकूट, वैश्रवण, अंजन और आत्मांजन नाम के आठ वक्षार पर्वत हैं। इन्हीं के मध्य गाधवती, ह्रदवती, पंकवती, तप्तजला, मत्तजला, उन्मत्तजला नाम की छह विभंगा नदियाँ हैं। इन वक्षार और विभंगा नदियों के निमित्त से सोलह विदेह देश पूर्व विदेहक्षेत्र में हो गये हैं।

इसी प्रकार से पश्चिम विदेह में सीतोदा महानदी के दक्षिण भाग से प्रारंभ कर उत्तर भाग पर्यंत क्रम से श्रद्धावान, विजटावान, आशीविष, सुखावह, चंद्रमाल, सूर्यमाल, नागमाल और देवमाल ये आठ वक्षार पर्वत हैं तथा क्षारोदा, सीतोदा, स्रोतोवाहिनी, गंभीरमालिनी, फेनमालिनी और ऊर्मिमालिनी नाम से छह विभंगा नदियाँ हैं। इन सोलह वक्षार और छह विभंगा नदियों के निमित्त से यहाँ भी पश्चिमविदेह क्षेत्र में सोलह विदेह क्षेत्र हो जाते हैं। ये सभी विदेह देश — क्षेत्र मिलाकर बत्तीस हो जाते हैं।

इन बत्तीस विदेह क्षेत्रों के नाम कहते हैं —

कच्छ, सुकच्छा, महाकच्छा, कच्छकावती, आवर्ता, लांगलावर्ता, पुष्कला, पुष्कलावती ये विदेहदेश सीतानदी के उत्तर तट पर भद्रसाल वेदी के आगे से क्रम से स्थित हैं। पुनः इसी सीता नदी के दक्षिण तट पर देवारण्य वेदिका के आगे से प्रारंभ होकर वत्सा, सुवत्सा, महावत्सा, वत्सकावती, रम्या, सुरम्या, रमणीया और मंगलावती ये आठ विदेह क्षेत्र हैं। पुनः सुमेरु के पश्चिम भाग में सीतोदा नदी के दक्षिण तट पर भद्रसाल वेदी के आगे से क्रम से पद्मा, सुपद्मा, महापद्मा, पद्मकावती, शंखा, नलिनी, कुमुदा और सरित् ये आठ विदेह

---

१. त्रिलोकसार गाथा ६६६ से ६७० का सार, पृ. ५४७।

भद्रसालवेद्याः अग्रात् क्रमेण सन्ति। वप्रा-सुवप्रा-महावप्रा-वप्रकावती-गंधा-सुगंधा-गंधिला-गंधमालिनीति इमेऽष्टौ विदेहदेशाः सीतोदानद्या उत्तरतटे देवारण्यवेदिकायाः[1] अग्रात् क्रमेणावस्थिताः सन्ति।

प्रत्येकदेशेषु विजयार्धेन गंगासिंधुनदीनिमित्तेन च षट् षट् खण्डानि जायंते। सीतासीतोदादक्षिणभागे नदीनां नाम रक्तारक्तोदे वर्तन्ते। तेषु षट्खण्डेषु पंच पंच म्लेच्छखण्डानि एकैकार्यखण्डानि च सन्ति।

पूर्वोक्तकच्छादिविदेहदेशेषु आर्यखण्डमध्यस्थितराजधानीनां नामानि कथ्यन्ते—क्षेमा-क्षेमपुरी-अरिष्टा-अरिष्टपुरी-खड्गा-मंजूषा-औषधि-पुण्डरीकिणी-सुसीमा-कुण्डला-अपराजिता-प्रभंकरा-अंका-पद्मावती-शुभा-रत्नसंचया-अश्वपुरी-सिंहपुरी-महापुरी-विजयपुरी-अरजा-विरजा-अशोका-वीतशोका-विजया-वैजयंती-जयन्ता-अपराजिता-चक्रपुरी-खड्गपुरी-अयोध्या-अवध्याश्चेति[2]।

इत्थं जंबूद्वीपे भरतैरावतयोरेकैकार्यखण्डे द्वे स्तः, द्वात्रिंशद्विदेहदेशानामार्यखण्डानि द्वात्रिंशदिति चतुस्त्रिंशदार्यखण्डानि कर्मभूमयः सन्ति। धातकीखण्डद्वीपे पूर्वापरभेदेन चतुस्त्रिंशत् चतुस्त्रिंशत्कर्मभूमयो भवन्ति। एवमेव पुष्करार्धद्वीपे पूर्वापरयोः चतुस्त्रिंशत् चतुस्त्रिंशत्कर्मभूमयो वर्तन्ते।

इत्थं सार्धद्वयद्वीपेषु सप्तत्युत्तरशतकर्मभूमयो भवन्ति। आसु षष्ट्युत्तरशतकर्मभूमयः शाश्वताः सन्ति। पंचभरतपंचैरावतक्षेत्राणां दशकर्मभूमयः अशाश्वतिकाः कथ्यन्ते।

आसु कर्मभूमिषु उत्पन्ना नरा एव केवलिश्रुतकेवलिनां पादमूले षोडशकारणभावनाः भावयित्वा तद्रूपेण परिणम्य च तीर्थकरप्रकृतिबंधं कर्तुं शक्नुवन्ति नान्ये इति।

क्षेत्र हैं। आगे इसी सीतोदा नदी के उत्तर तट पर देवारण्य वेदिका से आगे से लेकर वप्रा, सुवप्रा, महावप्रा, वप्रकावती, गंधा, सुगंधा, गंधिला और गंधमालिनी ये आठ विदेह क्षेत्र हैं।

इन प्रत्येक बत्तीस विदेह क्षेत्रों में विजयार्ध पर्वत और गंगा-सिंधु नदी के निमित्त से छह-छह खण्ड हो जाते हैं। सीता-सीतोदा के दक्षिण भाग में नदियों के नाम रक्ता-रक्तोदा हैं यह विशेष जानना। इन छह खण्डों में पाँच-पाँच म्लेच्छ खण्ड हैं और एक-एक आर्यखण्ड हैं।

अब पूर्वोक्त कच्छा आदि विदेह क्षेत्रों में आर्यखण्ड के मध्य में स्थित जो राजधानी हैं, उनके नाम कहते हैं—

क्षेमा, क्षेमपुरी, अरिष्टा, अरिष्टपुरी, खड्गा, मंजूषा, औषधि, पुण्डरीकिणी। सुसीमा, कुण्डला, अपराजिता, प्रभंकरा, अंका, पद्मावती, शुभा, रत्नसंचया। अश्वपुरी, सिंहपुरी, महापुरी, विजयपुरी, अरजा, विरजा, अशोका, वीतशोका। विजया, वैजयंती, जयंता, अपराजिता, चक्रपुरी, खड्गपुरी, अयोध्या और अवध्या ये क्रमशः बत्तीस राजधानी हैं।

इस प्रकार जंबूद्वीप में भरत और ऐरावत क्षेत्र में एक-एक आर्यखण्ड ऐसे दो आर्यखण्ड हैं। ये बत्तीस देश—बत्तीस विदेह क्षेत्रों के बत्तीस आर्यखण्ड और भरत-ऐरावत के मिलकर चौंतीस आर्यखण्ड हैं। ये ही चौंतीस कर्मभूमियाँ हैं।

धातकी खण्ड में पूर्व धातकीखण्ड और पश्चिम धातकी खण्ड में चौंतीस-चौंतीस कर्मभूमियाँ हैं। इसी प्रकार पुष्करार्ध द्वीप में पूर्व पुष्करार्ध और पश्चिम पुष्करार्ध रूप से दोनों में चौंतीस-चौंतीस कर्मभूमियाँ हैं।

इस तरह ढाई द्वीपों में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं। इनमें से एक सौ साठ (१६०) कर्मभूमियाँ शाश्वत हैं। पाँच भरत और पाँच ऐरावत क्षेत्रों की दश कर्मभूमियाँ अशाश्वत हैं।

इन कर्मभूमियों में उत्पन्न हुए मनुष्य ही केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली महामुनियों के पादमूल में सोलहकारण भावनाओं को भा करके और तद्रूप से परिणत हो करके तीर्थंकर प्रकृति के बंध को करने में समर्थ हो सकते हैं, अन्य जीव नहीं, ऐसा जानना।

---

१. भूतारण्यमिति नामान्तरं। २. त्रिलोकसार नरतिर्यग्लोकअधिकार।

तात्पर्यमेतत्—एतत्सर्वं ज्ञात्वा कर्मभूमिषूत्पद्य प्रत्यहं दर्शनविशुद्ध्यादिभावनाः भावयद्भिः अस्माभिः तीर्थकरपदकारणभूताभिः भावनाभिः परिणमानैश्च तीर्थकर-केवलि-श्रुतकेवलिनां पादमूलं कथं लभ्येरन् इति चिन्तयद्भिश्च निजसम्यग्दर्शनं दृढीकर्तव्यं। ततश्च एतादृशी दृढभावनाभिः एकस्मिन् दिवसे तीर्थकरभगवतां समवसरणदर्शनस्य सौभाग्यं लप्स्यते। सम्यक्त्वस्य रत्नत्रयस्य एकदेशसंयमस्य वा माहात्म्येन नियमेन स्वर्गे गमनं भविष्यति। तत्रावधिज्ञानेन दर्शनविशुद्ध्यादिभावनासंस्कारवशेन विदेहक्षेत्रे गत्वा वयं श्रीसीमंधरभगवतः समवसरणे गत्वा साक्षात् जिनेन्द्रदेवस्य तीर्थकरभगवतो दर्शनं कारं कारं सर्वमभीप्सितं पूरयिष्यामः।

तीर्थकरप्रकृत्युदयेन त्रैलोक्यपूज्यत्वप्रतिपादनार्थं सूत्रमवतरति —

जस्स इणं तित्थयरणामगोदकम्मस्स उदएण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्जा पूजणिज्जा वंदिणिज्जा णमंसणिज्जा णेदारा धम्मतित्थयरा जिणा केवलिणो हवंति।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**'तित्थयरणामगोदकम्मस्स' इत्यत्र 'उदयस्तेन' इति द्वयोरध्याहारः कर्तव्यः, अन्यथार्थानुपलंभात्। 'जस्स'—येषां जीवानां 'इणं' एतस्य तीर्थकरनामगोत्रकर्मणः उदयस्तेनोदयेन सदेवासुरमानुषस्य लोकस्य अर्चनीया इति संबंधः कर्तव्यः।**

यहाँ तात्पर्य यह है कि—यह सब जानकर कर्मभूमियों में उत्पन्न होकर प्रतिदिन दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को भाते हुए तथा तीर्थंकर पद के लिए कारणभूत ऐसी इन भावनाओं रूप से परिणमन करते हुए चिंतन करना चाहिए कि हमें तीर्थंकर भगवान, केवली भगवान अथवा श्रुतकेवली महामुनियों का पादमूल—चरणसानिध्य कब प्राप्त होगा ? ऐसा चिंतन करते हुए हमें अपना सम्यग्दर्शन दृढ़ करना चाहिए। चूँकि ऐसी भावनाओं के करते रहने से एक न एक दिन हमें तीर्थंकर भगवन्तों के समवसरण का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होगा तथा सम्यग्दर्शन, रत्नत्रय अथवा एकदेशसंयम के माहात्म्य से नियम से स्वर्ग की प्राप्ति होगी। वहाँ पर अवधिज्ञान से एवं दर्शनविशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं की भावना के संस्कार के निमित्त से विदेहक्षेत्र में जाकर वहाँ श्री सीमंधर भगवान के समवसरण में पहुँचकर हम और आप साक्षात् जिनेन्द्रदेव, श्री तीर्थंकर भगवान का बार-बार दर्शन करके अपने सभी मनोरथों को पूर्ण करेंगे।

आगे तीर्थंकर प्रकृति के उदय से त्रैलोक्य पूज्यत्वपद प्राप्त होता है, ऐसा प्रतिपादन करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ—

जिन महापुरुषों के तीर्थंकर नाम-गोत्र का उदय होता है वे उसके उदय से देव, असुर और मनुष्य लोक से अर्चनीय, पूजनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, नेता और धर्मतीर्थ के कर्ता जिन व केवली भगवान होते हैं।।४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्र में कथित ''तीर्थंकर नाम-गोत्रकर्म का' इस वाक्य में 'उदय' और 'उससे' ऐसे इन दो पदों का अध्याहार करना चाहिए, अन्यथा अर्थ की उपलब्धि नहीं होगी। जिनके अर्थात् जिन जीवों के 'इणं'—यह अर्थात् इस तीर्थंकर नाम गोत्रकर्म का उदय होता है, वे उसके उदय से देव, असुर और मनुष्य सहित सर्व लोक के अर्चनीय होते हैं ऐसा संबंध करना चाहिए।

चरु-बलि-पुष्प-फल-गंध-धूप-दीपादिभिः स्वकभक्तिप्रकाशः अर्चना नाम। जलगंधाक्षतपुष्पचरु-दीपधूपफलैरष्टद्रव्यैर्या पूजा क्रियते अत्रार्चना शब्देन सैव कथ्यते।

आभिरर्चनाभिः सह ऐन्द्रध्वज-कल्पवृक्ष-महामह-सर्वतोभद्रादिमहिमाविधानं पूजा नाम।

उक्तं च धवलायां—चरु-बलि-पुप्फ-फल-गंध-धूव-दीवादीहि सगभत्ति पगासो अच्चणा णाम। ''एदाहि सह अइंदधय-कप्परुक्ख-महामह-सव्वदोभद्दादि-महिमाविहाणं पूजा णाम[१]।''

भवान् भगवान् नष्टाष्टकर्मा केवलज्ञानेन दृष्टसर्वार्थः धर्मोन्मुखशिष्टगोष्ठीषु पुष्टाभयदानः शिष्टपरिपालकः दुष्टनिग्रहकरो देवः इति प्रशंसा वन्दना नाम। पञ्चभिः मुष्टिभिः—पञ्चांगेन भूमिस्पर्शनात्मकं नमस्कारः, जिनेन्द्रदेवचरणेषु निपतनं णमंसणं—नमस्कारः कथ्यते। धर्मो नाम सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि, स एव तीर्थं, एतैः रत्नत्रयैः संसारसागरं तरन्तीति एतानि तीर्थं कथ्यते। एतस्य धर्मतीर्थस्य कर्तारः जिनाः केवलिनो नेतारश्च भवन्ति।

इतो विस्तरः—

अत्र श्री वीरसेनाचार्यैः अर्चनायाः पूजायाः यल्लक्षणं विहितं तत् श्रावकापेक्षयैव ज्ञातव्यम्।

श्रावकाणां चतस्रः क्रियाः—पूजा दानं शीलः उपवासश्चेति। अथवा षट्क्रिया अपि कथिता सन्ति—

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थाणां षट्कर्माणि दिनेदिने।।

चरु—नैवेद्य, बलि—पूजा, पुष्प, फल, धूप, दीप आदि से अपनी भक्ति प्रकाशित करने का नाम अर्चना है अर्थात् जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल इन आठ द्रव्यों से जो पूजा की जाती है, उसी को यहाँ 'अर्चना' शब्द से कहा है। इन अर्चनाओं के साथ जो ऐन्द्रध्वज, कल्पवृक्ष, महामह, सर्वतोभद्र आदि महिमा के विधान को 'पूजा' कहते हैं।

श्री वीरसेनाचार्य की धवला टीका की पंक्तियों में देखिए—

'चरु–बलि–पुप्फ–फल–गंध–धूव–दीवादीहि सगभत्तिपगासो अच्चणा णाम। एदाहि सह अइंदधय–कप्परुक्ख–महामह–सव्वदोभद्दादि महिमाविहाणं पूजा णाम।''

आप भगवान् अष्ट कर्मों को नष्ट करने वाले, केवलज्ञान से समस्त पदार्थों को देखने वाले, धर्म की तरफ झुके हुए ऐसे धर्मोन्मुख शिष्ट पुरुषों की गोष्ठी में अभयदान देने वाले, शिष्ट के पालक और दुष्टों का निग्रह करने वाले होने से देव हैं, ऐसी प्रशंसा करने का नाम 'वंदना' है। पंचमुष्टि—पंचांगों द्वारा भूमि को स्पर्श करते हुए नमस्कार करना, जिनेन्द्रदेव के चरणों में पड़ना 'नमस्कार' कहलाता है। 'धर्म' का अर्थ सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र है, वही तीर्थ है। इन रत्नत्रयों के द्वारा संसार सागर को तिरते हैं—पार करते हैं इसीलिए इन्हें तीर्थ कहते हैं। इस धर्मतीर्थ के कर्ता जिनभगवान और केवली—तीर्थंकर नेता कहलाते हैं।

यहाँ कुछ विस्तार किया जाता है—

यहाँ श्री वीरसेनाचार्यदेव ने अर्चना और पूजा का जो लक्षण कहा है वह श्रावकोंकी अपेक्षा से ही जानना चाहिए।

श्रावकों की चार क्रियाए हैं—पूजा, दान, शील और उपवास अथवा छह क्रियाएँ भी कही गई हैं।

देव पूजा, गुरू की उपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये छह क्रियाएँ गृहस्थों के लिए प्रतिदिन करने की हैं।

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक ८, पृ. ९२।

पूजा इज्याशब्देनापि कथ्यते।
''प्रोक्ता पूजार्हतामिज्या सा चतुर्धा सदार्चनं। चतुर्मुखमहः कल्पद्रुमश्चाष्टान्हिकोऽपि च।।२६।।
''तत्र नित्यमहो नाम शश्वत् जिनगृहं प्रति। स्वगृहान्नीयमानार्चा गंधपुष्पाक्षतादिका।।२७।।
चैत्यचैत्यालयादीनां भक्त्या निर्मापणं च यत्। शासनीकृत्य दानं च ग्रामादीनां सदार्चनम्।।२८।।
या च पूजा जिनेन्द्राणां नित्यदानानुषङ्गिणी। स च नित्यमहो ज्ञेयो यथा शक्त्युपकल्पितः।।२९।।
महामुकुटबद्धैश्च क्रियमाणो महामहः। चतुर्मुखः स विज्ञेयः सर्वतोभद्र इत्यपि।।३०।।
दत्वा किमिच्छकं दानं सम्राड्भिर्यः प्रवर्त्यते। कल्पद्रुममहः सोऽयं जगदाशाप्रपूरणः।।३१।।
आष्टान्हिको महः सार्वजनिको रूढ एव सः। महानैन्द्रध्वजोऽन्यस्तु सुरराजैः कृतो महः।।३२।।
बलिस्नपनमित्यन्यस्त्रिसंध्यासेवया समं। उक्तेष्वेव विकल्पेषु ज्ञेयमन्यच्च तादृशम्।।३३।।
एवं विधविधानेन या महेज्या जिनेशिनां। विधिज्ञास्तामुशन्तीज्यां वृत्तिं प्राथमकल्पिकीम्[1]।।३४।।
अन्यत्र इज्यायाः पञ्चभेदा अपि प्ररूपिताः—
नित्यमह-चतुर्मुख-कल्पवृक्ष-आष्टान्हिक-ऐन्द्रध्वजनामधेयाः।
शास्त्रसारसमुच्चयग्रन्थे दशविधाः प्रोक्ताः—

'पूजा' को 'इज्या' शब्द से कहा जाता है—

वे कहने लगे कि अर्हन्त भगवान की पूजा नित्य करनी चाहिए, वह पूजा चार प्रकार की है—सदार्चन, चतुर्मुख, कल्पद्रुम और आष्टान्हिक। इन चारों पूजाओं में से प्रतिदिन अपने घर से गंध, पुष्प, अक्षत इत्यादि ले जाकर जिनालय में श्रीजिनेन्द्रदेव की पूजा करना सदार्चन अर्थात् नित्यमह कहलाता है। अथवा भक्तिपूर्वक अर्हंतदेव की प्रतिमा और मंदिर का निर्माण कराना तथा दानपत्र लिखकर ग्राम, खेत आदि का दान देना भी सदार्चन (नित्यमह) कहलाता है। इसके सिवाय अपनी शक्ति के अनुसार नित्य दान देते हुए महामुनियों की जो पूजा की जाती है, उसे भी नित्यमह समझना चाहिए। महामुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा जो महायज्ञ किया जाता है, उसे चतुर्मुख यज्ञ जानना चाहिए। इसका दूसरा नाम सर्वतोभद्र भी है। जो चक्रवर्तियों के द्वारा किमिच्छक (मुँहमाँगा) दान देकर किया जाता है और जिसमें जगत् के समस्त जीवों की आशाएँ पूर्ण की जाती हैं, वह कल्पद्रुम नाम का यज्ञ कहलाता है।

भावार्थ—जिस यज्ञ में कल्पवृक्ष के समान सबकी इच्छाएँ पूर्ण की जावें, उसे कल्पद्रुम यज्ञ कहते हैं, यह यज्ञ चक्रवर्ती ही कर सकते हैं।

चौथा आष्टान्हिक यज्ञ है जिसे सब लोग करते हैं और जो जगत् में अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसके सिवाय एक ऐन्द्रध्वज महायज्ञ भी है जिसे इन्द्र किया करता है। बलि अर्थात् नैवेद्य चढ़ाना, अभिषेक करना, तीनों संध्याओं में उपासना करना तथा इनके समान और भी जो पूजा के प्रकार हैं, वे सब उन्हीं भेदों में अन्तर्भूत हैं। इस प्रकार की विधि से जो जिनेन्द्रदेव की महापूजा की जाती है, उसे विधि से जानने वाले आचार्य इज्या नाम की प्रथम वृत्ति कहते हैं।।२६-३४।।

अन्य ग्रंथों में 'इज्या' के पाँच भेद भी प्ररूपित हैं—

नित्यमह, चतुर्मुख, कल्पवृक्ष, आष्टान्हिक और ऐन्द्रध्वज ये पाँच भेद हैं।

शास्त्रसार समुच्चय नाम के ग्रंथ में दश भेद कहे गये हैं—''उसमें इज्या दश प्रकार की है।''

---

१. आदिपुराण (भाग-२) (महापुराण) पर्व ३८, पृ. २४२ (ज्ञानपीठ से प्रकाशित)।

'तत्रेज्या दशविधा:[१]।।'

महाभद्र-इन्द्रध्वज-सर्वतोभद्र-चतुर्मुख-रथावर्तन-इन्द्रकेतु-महापूजा-महामहिम-आष्टान्हिक-दैनिक-पूजाश्च।

दैवैरिंद्रैश्च कृतार्हत्पूजा महाभद्र उच्यते।

इन्द्रगणैः क्रियमाणा इन्द्रध्वजो गीयते।

चतुर्विधदेवनिकायैः रचिता पूजा सर्वतोभद्रनामास्ति।

चक्रवर्तिभिर्निमिता-विहिता चतुर्मुखपूजा कथ्यते। इयमेव कल्पद्रुमः कथ्यते।

विद्याधरैः कृता पूजा रथावर्तनं कथ्यते।

महामण्डलीकैःरचिता पूजा इन्द्रकेतुरुच्यते।

मण्डलेश्वरैः विहिता पूजा महापूजा निगद्यते।

अर्द्धमण्डलेश्वरैः कृता पूजा महामहिमनाम्ना गीयते।

नन्दीश्वरद्वीपे गत्वा आषाढ-कार्तिक-फाल्गुनमासेषु आष्टान्हिकपर्वसु या पूजा देवेन्द्रादिभिर्विधीयते साष्टान्हिकपूजा कथ्यते।

स्नानत्रयं कृत्वा शुद्धवस्त्रं परिधाय अष्टद्रव्यैः प्रतिदिनं जिनमन्दिरेषु या जिनपूजा क्रियते सा दैनिकपूजा कथ्यते।

जिनमंदिरनिर्माण-प्रतिष्ठा-जीर्णोद्धार-जिनमंदिरव्यवस्था-पूजाहेतु-भूमिधनादिदान-पूजोपकरण-दानादिसर्वाः दैनिकपूजायां सम्मिलिताः सन्तीति ज्ञातव्यम्।

महाभद्र, इन्द्रध्वज, सर्वतोभद्र, चतुर्मुख, रथावर्तन, इन्द्रकेतु, महापूजा, महामहिम, आष्टान्हिक और दैनिक पूजा।

१. देवों और इन्द्रों के द्वारा की गई अर्हंतदेव की पूजा 'महाभद्र' कहलाती है।

२. इन्द्रगणों के द्वारा की गई पूजा 'इन्द्रध्वज' कहलाती है।

३. चार प्रकार के देवों के द्वारा की गई पूजा 'सर्वतोभद्र' है।

४. चक्रवर्तियों के द्वारा की गई पूजा 'चतुर्मुख' है, इसी को 'कल्पद्रुम' भी कहते हैं।

५. विद्याधरों के द्वारा की गई पूजा 'रथावर्तन' है।

६. महामण्डलीक राजाओं द्वारा की गई पूजा 'इंद्रकेतु' कहलाती है।

७. मण्डलेश्वर राजाओं द्वारा की गई पूजा 'महापूजा' कहलाती है।

८. अर्द्धमण्डलीक राजाओं द्वारा की गई पूजा 'महामहिम' कहलाती है।

९. नंदीश्वर द्वीप में जाकर आषाढ़, कार्तिक और फाल्गुन मास में आष्टान्हिक पर्व में देवों और इन्द्रादिकों द्वारा की गई पूजा 'आष्टान्हिक' कहलाती है।

१०. तीन प्रकार के स्नान—जल स्नान, मंत्र स्नान और व्रतस्नान को करके शुद्ध वस्त्र पहनकर प्रतिदिन जिनमंदिर में जाकर जो आठ द्रव्यों से जिनेन्द्रदेव की पूजा की जाती है, वह 'दैनिक पूजा' कहलाती है।

जिनमंदिर के निर्माण, प्रतिष्ठा—पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, तीर्थों या मंदिरों के जीर्णोद्धार, जिनमंदिर की व्यवस्था और जिनपूजा आदि के लिए जो भूमि, धन आदि का दान दिया जाता है तथा जो पूजा के उपकरण आदि—छत्र, चँवर, चंदोवा मंदिरों में दिये जाते हैं। ये सभी निर्माण आदि कार्य 'दैनिक पूजा' में सम्मिलित हैं ऐसा जानना चाहिए।

---

१. शास्त्रसारसमुच्चय, पृ. २१५ (धवलाटीकासमन्वितः)।

अस्मिन् ग्रन्थे धवलाटीकायां 'चरु-बलि' आदि शब्देषु एवं महापुराणे 'बलिस्नपनं' वाक्ये बलिशब्दस्य प्रयोगो दृश्यते। एवमेव प्रतिष्ठातिलकग्रन्थेऽपि बहुषु स्थलेषु बलि शब्दो दृश्यते 'स' बलिः शब्दः पूजार्थे एवास्ति। अथवा नैवेद्यार्पणविशेषेण या पूजा सा बलिनाम्ना कथ्यते।

अत्र धवलाटीकायां 'पुष्प-धूप-दीपादिभिः' कथनं वर्तते। सर्वत्र प्रतिष्ठातिलकादिग्रन्थेषु पंचामृताभिषेक-पाठसंग्रहे अपि च अन्यत्र श्रावकाचारेषु चापि पुष्पनैवेद्यदीपधूपादिभिः सचित्तद्रव्यैः पूजाविधिः कथितास्ति।

अभिषेकपाठसंग्रहे ग्रन्थे षोडश अभिषेकपाठानां संग्रहोऽस्ति तेषु अधिकतमाः आचार्यदेवविरचिताः सन्ति। सर्वार्थसिद्ध्यादिग्रन्थानां कर्ता श्रीपूज्यपादस्वामी दिगम्बरजैनपरम्परायां महान् प्रमाणीकाचार्यः श्रूयते। पंचामृताभिषेकेषु दुग्धाभिषेकः। तथाहि—

भक्तेरस्याभिषेक्तुः सपदि परिणतैर्नूनमिष्टैरदृष्टैः।
सिद्धायाः कामधेनोः प्रथमतरमयं प्रस्नवौघप्रवृत्तः।।
इत्यालोक्यस्त्रिलोकी परमपदवृढैः स्नानदुग्धप्लवोऽयं।
पुष्यान्नः पुष्पलक्ष्मीदयितजनमनोवर्तिनीं कीर्तिहंसीम्।।१७।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सस्त्रैलोक्यस्वामिनः क्षीराभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

एवं पुष्पपूजायां—

कुन्दानां कुड्मलौघः ककुभि ककुभि जित्सौरभं भूरिमुञ्चेत्।

यहाँ षट्खण्डागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तृतीय खण्ड में और इस आठवें ग्रंथ अर्थात् आठवीं पुस्तक में धवला टीका में 'चरु-बलि' आदि शब्द आये हैं। इसी प्रकार महापुराण ग्रंथ में 'बलिस्नपन' वाक्य आया है। इनमें जो 'बलि' शब्द का प्रयोग है, इसी प्रकार 'प्रतिष्ठातिलक' नाम के ग्रंथ में बहुत स्थानों पर 'बलि' शब्द देखा जाता है। वह 'बलि' पूजा के अर्थ में ही है। अथवा नैवेद्य चढ़ाने रूप विशेष से जो पूजा की जाती है वह 'बलि' इस नाम से कही जाती है।

यहाँ धवला टीका में पुष्प, धूप, दीप आदि के द्वारा पूजा करना ऐसा कथन आया है। सो यह कथन— सभी 'प्रतिष्ठातिलक' आदि ग्रंथों में, 'पंचामृताभिषेक पाठ संग्रह' नाम के ग्रंथ में भी तथा अन्य श्रावकाचार आदि में भी पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप आदि सचित्त द्रव्यों से पूजाविधि कही गई है। 'अभिषेक पाठ संग्रह' ग्रंथ में तो सोलह अभिषेक पाठों का संग्रह है। उनमें से अधिकतम अभिषेक पाठ आचार्य देवों द्वारा विरचित हैं। 'सर्वार्थसिद्धि' आदि ग्रंथों के कर्ता श्री पूज्यपाद स्वामी दिगम्बर जैन परम्परा में एक महान् प्रमाणीक आचार्य हुए हैं। उनके द्वारा रचित 'पंचामृताभिषेक पाठ' प्रसिद्ध है। उसमें दुग्धाभिषेक का जो काव्य और मंत्र है, उसे आप देखिए—

इसी संस्कृतकाव्य का मैंने हिन्दी पद्य में भाव संजोया है—

पूर्णा शशांक किरणों सम कांति धारे। ये दूध उत्तम रसायन विश्व में है।।
हे नाथ! क्षीरघट से अभिषेक करके। मैं कामधेनु सम वांछित प्राप्त कर लूँ।।२७।।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय झं झं झ्वीं क्ष्वीं हं सः त्रैलोक्यस्वामिनो दुग्धाभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।

मंत्र में 'क्षीराभिषेकं करोमि नमोऽर्हते स्वाहा।' इसी प्रकार अष्टद्रव्यों में पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल

दध्यायामं प्रकामं भजति च कलिका जालकं मल्लिकानाम्।।
एवमेव अष्टद्रव्येषु पुष्पनैवेद्यदीपधूपफलादयः अपि समर्पिताः।
अस्मिन् एव अभिषेकपाठे क्षेत्रपाल-दिक्पाल-यक्ष-यक्षीनाम्।
तिथीश-नवग्रह-सुरपत्यादीनामपि मंत्रतो आहूय अर्घ्यसमर्पणविधयो वर्णिताः सन्ति।
सचित्तद्रव्यैः पूजा विधानं तस्य समाधानमपि क्रियते श्रीमद्उमास्वामिभिः—

माल्यगंधप्रधूपाद्यैः सचित्तैः कोऽर्चयेज्जिनम्।
सावद्यसंभवं वक्ति यः स एव प्रबोध्यते।।१४०।।
जिनार्चानेकजन्मोत्थं किल्विषं हन्ति यत्कृतम्।
सा किंचित् यजनाचारभवं सावद्यमंगिनाम्।।१४१।।
प्रेर्यन्ते यत्र वातेन, दन्तिनः पर्वतोपमाः।
तत्राल्पशक्तितेजस्सु, का कथा मशकादिषु।।१४२।।

आदि भी चढ़ाये गये हैं अर्थात् उन अष्टद्रव्यों के श्लोक व मंत्र उन श्री पूज्यपाद स्वामी के अभिषेक पाठ में आये हैं।

इसी अभिषेक पाठ में क्षेत्रपाल, दिक्पाल, यक्ष, यक्षी, तिथिदेवता, नवग्रह सुरपति—इन्द्रादिकों को भी मंत्रों से आह्वान करके अर्घ समर्पण की विधि वर्णित है।

सचित्त द्रव्यों से पूजा का विधान और उसका समाधान भी श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने श्रावकाचार में किया है—

कोई-कोई लोग यह कहते हैं कि पुष्पमाला, धूप, दीप, जल, फल आदि सचित्त पदार्थों से भगवान की पूजा नहीं करनी चाहिए क्योंकि सचित्त पदार्थों से पूजा करने में सावद्यजन्य पाप (सचित्त के आरंभ से उत्पन्न हुआ पाप) उत्पन्न होता है। उनके लिए आचार्य समझते हैं कि भगवान की पूजा करने से उनके जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं फिर क्या उसी पूजा से उसी पूजा में होने वाला आरंभजनित व सचित्तजन्य थोड़ा सा पाप नष्ट नहीं होगा ? अवश्य होगा।।१४०।। इसका भी कारण यह है कि—

जिस वायु से पर्वत के समान बड़े-बड़े हाथी उड़ जाते हैं, उस वायु के सामने अत्यन्त अल्प शक्ति को धारण करने वाले डांस मच्छर क्या टिक सकते हैं ? कभी नहीं। उसी प्रकार जिस पूजा से जन्म-जन्मान्तर के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं उसी पूजा से क्या उसी पूजा के विधि-विधान में होने वाली बहुत ही थोड़ी हिंसा नष्ट नहीं हो सकती ? अवश्य होती है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है। विष भक्षण करने से प्राणियों के प्राण नष्ट हो जाते हैं परन्तु वही विष यदि सोंठ, मिरच, पीपल आदि औषधियों के साथ मिलाकर दिया जाय तो उसी से अनेक रोग नष्ट होकर जीवन अवस्था प्राप्त होती है। इसी प्रकार सावद्य कर्म यदि विषय सेवन के लिए किये जाएं तो वे पाप के कारण हैं ही परन्तु भगवान की पूजा के लिए बहुत ही थोड़े सावद्य कर्म पाप के कारण नहीं होते, पुण्य के ही कारण होते हैं। मंदिर बनवाना, पूजा करना, पंचकल्याणक प्रतिष्ठा करना, रथोत्सव करना आदि जितने पुण्य के कारण हैं उन सबमें थोड़ा बहुत सावद्य अवश्य होता है। परन्तु वह सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। इसी प्रकार सचित्त द्रव्य से होने वाली पूजा में होने वाला सावद्य दोष पुण्य का ही कारण होता है। भगवान की पूजा केवल पुण्य उपार्जन करने के लिए, आत्मा का कल्याण करने

भक्तं स्यात्प्राणनाशाय, विषं केवलमंगिनाम्।
जीवनाय मरीचादिसदौषाधिविमिश्रतम्।।१४३।।
तथा कुटुंबभोगार्थ मारम्भः पापकृद्भवेत्।
धर्मकृद्दानपूजादौ हिंसालेशो मतः सदा।।१४४।।

(उमास्वामी श्रावकाचार, पृष्ठ ५५, ५६, ५७)

अस्याधिकरूपेण विशदीक्रियते स्वयमेव श्रीवीरसेनाचार्यैः जयधवला टीकायां।

''चउवीस वि तित्थयरा सावज्जा; छज्जीवविराहणहेउसावयधम्मोवएसकारित्तादो। तं जहा, दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावयधम्मो। एसो चउव्विहो वि छज्जीवविराहओ; पयण-पायणग्गिसंधुक्कण-जालण-सूदि-सूदाणादिवावारेहि जीव विराहणाए विणा दाणाणुववत्तीदो। तरुवरछिंदण-छिंदावणिट्टपादण-पादावण-तद्दहण-दहावणादिवावारेण छज्जीवविराहणहेउणा विणा जिणभवणकरणकरा-वणण्णहाणुववत्तीदो। ण्हवणोवलेवण-संमज्जण छुहावण-पु (फु) ल्लारोवण-धूवदहणादिवावारेहि जीवबहाविणाभावीहि विणा पूजकरणाणुववेत्तीदो च। कथं सीलरक्खणं सावज्जं ? ण; सदारपीडाए विणा सीलपरिवालणाणुववत्तीदो। कधमुववासो सावज्जो ? ण; सपोट्टत्थपाणिपीडाए विणा उववासाण-

---

के लिए और परम्परा से मोक्ष प्राप्त करने के लिए की जाती है, विषयों के सेवन करने के लिए नहीं की जाती इसलिए उससे होने वाला सावद्य कर्म पाप का कारण कभी नहीं हो सकता, पुण्य का ही कारण होता है।।१४१, १४२, १४३।।

कुटुम्ब पोषण और भोगोपभोग के लिए किया गया आरंभ पाप उत्पन्न करने वाला होता है। परन्तु दान-पूजा आदि धर्मकार्यों में किया गया आरंभ या की गई लेशमात्र हिंसा सदा पुण्य को बढ़ाने वाली ही मानी गई है।।१४४।।

इसी को विस्तार से श्री वीरसेनाचार्य कषायपाहुड़ की जयधवला टीका में स्वयं ही स्पष्ट कर रहे हैं—''छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत श्रावक धर्म का उपदेश करने वाले होने से चौबीसों ही तीर्थंकर सावद्य अर्थात् सदोष हैं। आगे इसी विषय का स्पष्टीकरण करते हैं—दान, पूजा, शील और उपवास ये चार श्रावकों के धर्म हैं। यह चारों ही प्रकार का श्रावकधर्म छह काय के जीवों की विराधना का कारण है क्योंकि भोजन का पकाना, दूसरे से पकवाना, अग्नि का सुलगाना, अग्नि का जलाना, अग्नि का खूतना और खुतवाना आदि व्यापारों से होने वाली जीव विराधना के बिना दान नहीं बन सकता है। उसी प्रकार वृक्ष का काटना और कटवाना, ईंट का गिराना और गिरवाना तथा उनको पकाना और पकवाना आदि छह काय के जीवों की विराधना के कारणभूत व्यापार के बिना जिनभवन का निर्माण करना अथवा करवाना नहीं बन सकता है तथा अभिषेक करना, अवलेप करना, संमार्जन करना, चंदन लगाना, फूल चढ़ाना और धूप का जलाना आदि जीववध के अविनाभावी व्यापारों के बिना पूजा करना नहीं बन सकता है।

प्रतिशंका—शील का रक्षण करना सावद्य कैसे है ?

शंकाकार—नहीं, क्योंकि अपनी स्त्री को पीड़ा दिए बिना शील का परिपालन नहीं हो सकता है, इसलिए शील की रक्षा भी सावद्य है।

प्रतिशंका—उपवास सावद्य कैसे है ?

शंकाकार—नहीं, क्योंकि अपने पेट में स्थित प्राणियों को पीड़ा दिए बिना उपवास बन नहीं सकता

ववत्तीदो। थावरजीवे मोत्तूण तसजीवे चेव मा मारेहु त्ति सावियाणमुवदेसदाणदो वा ण जिणा णिरवज्जा। अणसणोमोदरियउत्तिपरि-संखाण-रसपरिच्चाय[१]-विवित्तसयणासण-रूक्ख-मूलादावणब्भावासुक्कुदासण-पलियंकद्धपलियंक-ठाण[३]-गोण-वीरासण-विणय-वेज्जावच्च-सज्झायझाणादिकिलेसेसु जीवे पयिसारिय खलियारणादो वा ण जिणा णिरवज्जा तम्हा ते ण वंदणिज्जा त्ति ?

एत्थ परिहारो उच्चदे। तं जहा, जयति एवमुवदिसंति तित्थयरा तो वि ण तेसिं कम्मबंधो अत्थि, तत्थ मिच्छत्तासंजमकसायपच्चयाभावेण वेयणीयवज्जासेस कम्माणं बंधाभावादो। वेयणीयस्स वि ण ट्ठिदिअणुभागबंधा अत्थि, तत्थ कसायपच्चयाभावादो। जोगो अत्थि त्ति ण तत्थ पयडिपदेसबंधाणमत्थित्तं वोत्तुं सक्किजदे ? ट्ठिदिबंधेण विणा उदयसरूवेण आगच्छमाणाणं पदेसाणमुवयारेण बंधववएसुवदेसादो। ण च जिणेसु देस-सयलधम्मोवदेसेण अज्जियकम्मसंचओ वि अत्थि; उदयसरूवकम्मागमादो असंखेज्जगुणाए सेढीए, पुव्वसंचित-कम्मणिज्जरं[४] पडिसमयं करेंतेसु कम्मसंचया णुववत्तीदो। ण च तित्थयरमण-वयण-कायवुत्तीओ इच्छापुव्वियायो जेण तेसिं बंधो होज्ज, किंतु दिणयर-कप्परुक्खाणं पउत्तिओ व्व वयिससियाओ। उत्तं च —

है, इसलिए उपवास भी सावद्य है।

अथवा 'स्थावर जीवों को छोड़कर केवल त्रस जीवों को ही मारो' श्रावकों को इस प्रकार का उपदेश देने से जिनदेव निरवद्य नहीं हो सकते हैं।

अथवा अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, वृक्ष के मूल में, सूर्य के आताप में और खुले हुए स्थान में निवास करना, उत्कुटासन, पल्यंकासन, अर्धपल्यंकासन, खड्गासन, गवासन, वीरासन, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय और ध्यानादि क्लेशों में जीवों को डालकर उन्हें ठगने के कारण भी जिन निरवद्य नहीं हैं और इसलिए वे वंदनीय नहीं हैं।

समाधान — यहाँ पर उपर्युक्त शंका का परिहार करते हैं। वह इस प्रकार है — यद्यपि तीर्थंकर पूर्वोक्त प्रकार का उपदेश देते हैं तो भी उनके कर्मबंध नहीं होता है, क्योंकि जिनदेव के तेरहवें गुणस्थान में कर्मबंध के कारणभूत मिथ्यात्व, असंयम और कषाय का अभाव हो जाने से वेदनीय कर्म को छोड़कर शेष समस्त कर्मों का बंध नहीं होता है। वेदनीय कर्म का बंध होता हुआ भी उसमें स्थितिबंध और अनुभागबंध नहीं होता है, क्योंकि वहाँ पर स्थितिबंध और अनुभागबंध के कारणभूत कषाय का अभाव है। तेरहवें गुणस्थान में योग है, इसलिए वहाँ पर प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध के अस्तित्त्व का भी कथन किया जा सकता है, क्योंकि स्थितिबंध के बिना उदयरूप से आने वाले निषेकों में उपचार से बंध के व्यवहार का कथन किया गया है। जिनदेव देशव्रती श्रावकों के और सकलव्रती मुनियों के लिए धर्म का उपदेश करते हैं, इसलिए उनके अर्जित कर्मों का संचय बना रहता है, सो भी बात नहीं है, क्योंकि उनके जिन नवीन कर्मों का बंध होता है जो कि उदयरूप ही हैं उनसे भी असंख्यातगुण श्रेणीरूप से वे प्रतिसमय पूर्व संचित कर्मों की निर्जरा करते हैं, इसलिए उनके कर्मों का संचय नहीं बन सकता है और तीर्थंकर के मन, वचन तथा काय की प्रवृत्तियाँ इच्छापूर्वक नहीं होती हैं जिससे उनके नवीन कर्मों का बंध होवे। जिस प्रकार सूर्य और कल्पवृक्षों की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक होती हैं उसी प्रकार उनके भी मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ स्वाभाविक अर्थात् बिना इच्छा के समझना चाहिए। कहा भी है —

''[५] कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो नाभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया।
नासमीक्ष्य भवत: प्रवृत्तयो धीर तावकमचिन्त्यमीहितम्।।[१]''

एतेषा मैन्द्रध्वजकल्पद्रुमसर्वतोभद्रादिविधानानां रचना अस्मिन् शताब्दौ मया कृता अल्पबुद्ध्यापि आगमालोकेनेति।

मया वीराब्दे द्व्यधिकपंचविंशतिशततमे[२] खतौलीनामग्रामे वर्षायोगे 'इन्द्रध्वजविधानं' लिखितं मातृभाषायां—हिंदीभाषायां। संस्कृतभाषायां रचितं 'श्रीसकलभूषणविरचित-इन्द्रध्वजविधानं अवलोक्य तदाधारेण देवागमविधि-मध्यलोकसंबंधिचतु:शताष्टपंचाशत् अकृत्रिमजिनालयानां पूजा-दशविधचिन्ह-समन्वितध्वजानां प्रतिमंदिरमारोहणादिविधिं चावबुध्य एतद् विधानं तिलोयपण्णत्ति-त्रिलोकसारादिग्रन्थाधारेण सुमेरु-कुलाचलादीनां वर्णादिकूटह्रदादीनां व्यवस्थाप्रतिपादनादिभि: रचितं इन्द्रध्वजविधानं। अतएव एतन्मम इन्द्रध्वजविधानं स्वतंत्ररचनास्ति।

एवमेव मया अस्मिन् शताब्दौ प्रथमबारमेव कल्पद्रुमविधानं लिखितं। वीराब्दे द्वादशाधिकपंचविंशतिशततमे[३] शरत्पूर्णिमायां पूर्णीकृतं। पुनश्च तदानीमेवारभ्य 'सर्वतोभद्रविधानं' वीराब्दे त्रयोदशाधिकपंचविंशतिशततमे[४] माघशुक्लादशम्यां तिथौ पूर्णं कृतं। इत्थमेव जंबूद्वीपविधानं विश्वशांतिमहावीरविधानमित्यादिपूजा-

---

''हे मुने! मैं कुछ करूँ इस इच्छा से आपके, मन, वचन और काय की प्रवृत्तियाँ हुईं सो भी बात नहीं है और वे प्रवृत्तियाँ आपके बिना विचारे हुई हैं सो भी नहीं है। पर होती अवश्य हैं, इसलिए हे धीर, आपकी चेष्टाएँ अचिन्त्य हैं अर्थात् संसार में जितनी भी प्रवृत्तियाँ होती हैं वे इच्छापूर्वक होती हैं और जो प्रवृत्तियाँ बिना विचारे होती हैं वे ग्राह्य नहीं मानी जातीं। पर यही आश्चर्य है कि आपकी प्रवृत्तियाँ इच्छापूर्वक न होकर भी भव्य जीवों के लिए उपादेय हैं।।४०।।''

इस बीसवीं एवं इक्कीसवीं शताब्दी में मैंने अल्पबुद्धि होकर भी आगम के आलोक से इन ऐन्द्रध्वज, कल्पद्रुम, सर्वतोभद्र आदि विधानों की रचना की है।

मैंने वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ दो में (ईसवी सन् १९७६ में) खतौली नाम के ग्राम में मातृभाषा अर्थात् हिन्दी भाषा में महाकाव्यरूप 'इन्द्रध्वज' विधान लिखा है। श्री सकलभूषणविरचित इन्द्रध्वज विधान संस्कृत भाषा में है उस ग्रंथ को देखकर उसके आधार से 'देवागमविधि' और मध्यलोक संबंधी चार सौ अट्ठावन अकृत्रिम जिनालयों की पूजा, दश प्रकार के चिन्ह से समन्वित ध्वजाओं को प्रत्येक मंदिर पर आरोहण की विधि को समझकर यह विधान बनाया है। मैंने इस विधान की रचना में 'तिलोयपण्णत्ति', 'त्रिलोकसार' आदि ग्रंथों के आधार से सुमेरुपर्वत, कुलाचल आदि के वर्ण आदि तथा उनके कूट, सरोवर आदि की व्यवस्था को प्रतिपादित करते हुए यह इन्द्रध्वज विधान महाकाव्य रचा है। अतएव यह इन्द्रध्वज विधान मेरी स्वतंत्र रचनारूप है।

इसी प्रकार मैंने इस शताब्दी में प्रथम बार ही 'कल्पद्रुम विधान' की रचना की है। वीर नि. सं. २५१२ (ईसवी सन् १९८६) में शरदपूर्णिमा के दिन मैंने इस विधान महाकाव्य को पूर्ण किया है। पुन: उसी दिन 'सर्वतोभद्र' विधान लिखना प्रारंभ कर वीर नि. सं. २५१३ (ईसवी सन् १९८७) में माघ शुक्ला दशमी के दिन मैंने यह विधान पूर्ण किया है।

इसी प्रकार 'जंबूद्वीप विधान' 'विश्वशांति महावीर विधान' आदि अनेक पूजा विधान ग्रंथों को मैंने

---

१. कषायपाहुड़ पु. १, पृ. १०२। २. सन् १९७६। ३. सन् १९८६। ४. सन् १९८७।

विधानग्रन्था मयाल्पबुद्ध्यापि जिनेन्द्रदेवभक्तिप्रभावेण आगमाधारेण रचयित्वा स्वात्मविशुद्ध्ये एव विरचिताः। तथापि वर्तमानकाले लक्षाधिका अपि श्रावकाः श्राविकाश्च एताः विधानपूजाः महत्या धर्मप्रभावनया कुर्वन्ति कारयन्ति च। बहवोऽपि आचार्याः मुनयः आर्यिकाश्च इमानि पूजानुष्ठानादीनि कारयन्ति—अनुष्ठापयन्ति महतादरेण।

संप्रति केचिद् विद्वान्सः मया रचितविधानानां मंत्राणि गृहीत्वा कानिचित् मंत्राणि विहाय च यथा स्यात्तथा मया रचितपंक्तीनां काव्यानां एव भावं गृहीत्वा किमपि किमपि परिवर्त्य विधानानि व्यरचयन् तत्केवलं स्वपंथाग्रहेणैव।

आर्षग्रन्थे सर्वत्र सचित्तपूजाविधानं पठितमेव भवद्भिः। तथापि अनुमानतः चतुःशतवर्षपूर्वं 'तेरहपंथनाम्ना पंथाम्नायो जातः। अस्मिन् आम्नाये अचित्तद्रव्यैः पूजा क्रियते, शासनदेवदेवीनां दिक्पालादीनां प्रतिमाः पूजाश्च न मन्यन्ते। कुलांगनाभिः जिनाभिषेकं अपि न कारयन्ति। ततः प्रभृति सचित्तद्रव्यैः पूजाकर्तॄणां बीसपंथाम्नायोऽभवत्। इमौ द्वौ आम्नायौ यद्यपि प्राचीनग्रन्थेषु न दृश्येते। तथापि वर्तमानकाले बीसपंथ तेरहपंथ-नामभ्यां द्वौ आम्नायौ दिगम्बरजैनपरम्परायां प्रसिद्धौ स्तः।

अतएव मया अत्र जंबूद्वीपस्थले हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रे नियमो निर्धारितः। अत्र सर्वेषु मन्दिरेषु जंबूद्वीपरचनायामपि द्वावपि आम्नायानुयायिनौ स्व-स्वविधिना स्व-स्वरुच्यानुसारेण अभिषेकविधिं पूजाविधिं च कुरुताम्। न केचिदपि कांश्चिदपि वारयन्तु-निषेधयन्तु।''

ततश्च सर्वे दिगम्बरजैना भाक्तिकाः स्व-स्वाम्नायानुसारेण प्रमोदेन पूजाविधिं कुर्वन्त्विति।

अल्पबुद्धि होते हुए भी जिनेन्द्रदेव की भक्ति के प्रभाव से, आगम के आधार से मात्र स्वात्मा की विशुद्धि के लिए ही रचे हैं—लिखे हैं।

फिर भी वर्तमानकाल में लाखों-लाख भी श्रावक और श्राविकाएं इन विधान पूजाओं को विशाल धर्मप्रभावनापूर्वक करते हैं और कराते हैं। बहुत से आचार्यगण, मुनिगण और आर्यिकाएं भी बहुत ही आदर से इन विधान अनुष्ठानों को करा रहे हैं।

वर्तमान में कुछ विद्वान् मेरे द्वारा रचित विधानों को और मंत्रों को लेकर कतिपय मंत्रों को छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे सो छोड़कर व जो चाहे सो लेकर, मेरे द्वारा रचित काव्य पंक्तियों के ही भाव को लेकर कुछ-कुछ भी परिवर्तन कर विधानों की रचना कर रहे हैं वह केवल उनके अपने पंथ के दुराग्रह से ही ऐसा किया जा रहा है।

दूसरी बात यह है कि—आर्ष ग्रंथों में सर्वत्र सचित्तपूजा का विधान ही आप लोग पढ़ रहे हैं। फिर भी अनुमानतः चार सौ वर्ष पूर्व 'तेरहपंथ' नाम से एक पंथ—आम्नाय उत्पन्न हुआ है। इस आम्नाय में अचित्त द्रव्यों से पूजा की जाती है, शासनदेव-देवी और दिक्पाल आदि की प्रतिमाओं को और उनकी पूजा को नहीं मानते हैं। कुलांगना—सती महिलाओं के द्वारा जिनप्रतिमाओं का अभिषेक भी नहीं कराते हैं। तभी से सचित्त द्रव्यों से पूजा करने वालों का बीसपंथ आम्नाय हो गया है। ये दोनों आम्नाय यद्यपि प्राचीन ग्रंथों में नहीं देखे जाते हैं फिर भी वर्तमान काल में दिगम्बर जैन परम्परा में ये बीसपंथ और तेरहपंथ नाम के दो आम्नाय प्रसिद्ध हैं।

इसीलिए मैंने इस जंबूद्वीप स्थल पर हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र पर नियम निर्धारित कर दिया है। ''यहाँ जंबूद्वीप स्थल पर सभी मंदिरों में और जंबूद्वीप रचना में भी दोनों आम्नायों के अनुयायी अपनी-अपनी रुचि के अनुसार अभिषेक विधि और पूजाविधि करें। कोई भी किसी को न रोकें और न निषेध करें।''

इसलिए सभी दिगम्बर जैन भक्तगण अपनी-अपनी आम्नाय के अनुसार हर्षपूर्वक पूजाविधि करें।

यदा श्रीरामचन्द्रो वने जगाम्। तदा भरतस्तान् निवर्तयितुं असमर्थः सन् जिनमंदिरं गत्वा श्रीद्युतिभट्टारक-महामुनिसमीपे प्रतिज्ञामकरोत्—

'पद्मदर्शनमात्रेण करिष्ये मुनितामिति[१]।' अनंतरं महाचार्यपरमेष्ठी समबोधयत्। भोः भरत! तावत्त्वं गृहस्थधर्मे मतिं कुरु। तथाहि—

कनीयांस्तस्य धर्मोऽयमुक्तोऽयं गृहिणां जिनैः।
अप्रमादी भवेत्तस्मिन्निरतो बोधदायिनि[२]।।१४६।।

पुनः जिनमंदिरजिनप्रतिमानिर्माणफलंजिनबिंबदर्शनफलमपि दर्शयन्ति—

''भवनं यस्तु जैनेन्द्रं, निर्मापयति मानवः। तस्य भोगोत्सवः शक्यः, केन वक्तुं सुचेतसः।।१७२।।
प्रतिमां यो जिनेन्द्राणां, कारयत्यचिरादसौ। सुरासुरोत्तमसुखं प्राप्य याति परं पदम्।।१७३।।
व्रतज्ञानतपोदानैर्यान्युपात्तानि देहिनः। सर्वैस्त्रिष्वपि कालेषु पुण्यानि भुवनत्रये।।१७४।।
एकस्मादपि जैनेन्द्रबिम्बाद् भावेन कारिताद्। यत्पुण्यं जायते तस्य न संमान्त्यतिमात्रतः।।१७५।।
फलं यदेतदुद्दिष्टं स्वर्गे संप्राप्य जन्तवः। चक्रवर्त्यादितां लब्ध्वा यन्मर्त्यत्वेऽपि भुञ्जते।।१७६।।
धर्ममेव विधानेन यः कश्चित् प्राप्य मानवः। संसारार्णवमुत्तीर्य त्रिलोकाग्रेऽवतिष्ठते।।१७७।।

जब श्रीरामचन्द्र वन में चले गये, तब राजा भरत उनको वापस लाने में असमर्थ होते हुए जिनमंदिर जाकर वहाँ विराजमान श्री द्युतिभट्टारक — द्युति नाम के महान आचार्य के समीप बैठकर प्रतिज्ञा करते हुए बोले —

हे गुरुदेव ! मैं राजापद्म — श्रीरामचंद्र के वापस आते ही उनके दर्शनमात्र से मुनिपद को धारण कर लूँगा।

तब महान् आचार्यदेव ने कहा —

"हे भरत ! जब तक तुम मुनि बनोगे, बनोगे, उसके पहले तुम गृहस्थ धर्म में बुद्धि लगावो। उसे ही कहते हैं —

गृहस्थों के धर्म को जिनेन्द्र भगवान ने मुनिधर्म का छोटा भाई कहा है सो बोधि को प्रदान करने वाले इस धर्म में भी प्रमादरहित होकर लीन रहना चाहिए।।१४६।।

पुनः जिनमंदिर, जिनप्रतिमा निर्माण का फल और जिनबिंब दर्शन का फल भी दर्शाते हैं —

जो मनुष्य जिनमंदिर बनवाता है उस सुचेता के भोगोत्सव का वर्णन कौन कर सकता है।।१७२।।

जो मनुष्य जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा बनवाता है वह शीघ्र ही सुर तथा असुरों के उत्तम सुख प्राप्त कर परमपद को प्राप्त होता है।।१७३।।

तीनों कालों और तीनों लोकों में व्रत, ज्ञान, तप और दान के द्वारा मनुष्य के जो पुण्य कर्म संचित होते हैं वे भावपूर्वक एक प्रतिमा के बनवाने से उत्पन्न हुए पुण्य की बराबरी नहीं कर सकते हैं।।१७४-१७५।।

इस कहे हुए फल को जीव स्वर्ग में प्राप्त कर जब मनुष्य पर्याय में उत्पन्न होते हैं तब चक्रवर्ती आदि का पद पाकर वहाँ भी उसका उपभोग करते हैं।।१७६।।

जो कोई मनुष्य इस विधि से धर्म का सेवन करता है वह संसार-सागर से पार होकर तीन लोक के शिखर पर विराजमान होता है।।१७७।।

१-२. पद्मपुराण भाग २, पृ. ९६-९८।

फलं ध्यानाच्चतुर्थस्य षष्ठस्योद्यानमात्रतः। अष्टमस्य तदारम्भे गमने दशमस्य तु।।१७८।।
द्वादशस्य ततः किंचिन्मध्ये पक्षोपवासजम्। फलं मासोपवासस्य लभते चैत्यदर्शनात्।।१७९।।
चैत्याङ्गणं समासाद्य याति षाण्मासिकं फलम्। फलं वर्षोपवासस्य प्रविश्य द्वारमश्नुते।।१८०।।
फलं प्रदक्षिणीकृत्य भुङ्क्ते वर्षशतस्य तु। दृष्ट्वा जिनास्यमाप्नोति फलं वर्षसहस्रजम्।।१८१।।
अनन्तफलमाप्नोति स्तुतिं कुर्वन् स्वभावतः। नहि भक्तेर्जिनेन्द्राणां विद्यते परमुत्तमम्।।१८२।।
कर्म भक्त्या जिनेन्द्राणां क्षयं भरत गच्छति। क्षीणकर्मा पदं याति यस्मिन्ननुपमं सुखम्[१]।।१८३।।
अस्मिन्नेव ग्रन्थे पंचामृताभिषेकादिकस्यापि प्रमाणं दृश्यते।
श्री कुंदकुंददेवैरपि कथितं अध्यात्मग्रन्थे प्रवचनसारे—

दंसणणाणुवएसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणां जिणिंदपूजोवदेसो य[२]।।

ततश्च जयधवलाटीकायाः प्रमाणं अतीव महत्त्वपूर्णं ज्ञातव्यं। श्रद्धाय च स्वपंथाम्नायदुराग्रहस्त्यक्तव्यः।
प्रभावनांगकथने श्री अमृतचन्द्रसूरिणापि कथितं—

''आत्मा प्रभावनीयो रत्नत्रयतेजसा सततमेव।
दानतपोजिनपूजा-विद्यातिशयैश्च जिनधर्मः[३]।।३०।।''

जो मनुष्य जिनप्रतिमा के दर्शन का चिन्तवन करता है वह बेला का, जो उद्यम का अभिलाषी होता है वह तेला का, जो जाने का आरंभ करता है वह चौला का, जो जाने लगता है वह पाँच उपवास का, जो कुछ दूर पहुँच जाता है वह बारह उपवास का, जो बीच में पहुँच जाता है वह पन्द्रह उपवास का, जो मंदिर के दर्शन करता है, वह मासोपवास का, जो मंदिर के आँगन में प्रवेश करता है वह छह मास के उपवास का, जो द्वार में प्रवेश करता है वह वर्षोपवास का, जो प्रदक्षिणा देता है वह सौ वर्ष के उपवास का, जो जिनेन्द्रदेव के मुख का दर्शन करता है वह हजार वर्ष के उपवास का और जो स्वभाव से स्तुति करता है वह अनन्त उपवास के फल को प्राप्त करता है। यथार्थ में जिनभक्ति से बढ़कर उत्तम पुण्य नहीं है।।१७८-१८२।। आचार्य द्युति कहते हैं कि हे भरत! जिनेन्द्रदेव की भक्ति से कर्मक्षय को प्राप्त हो जाते हैं और जिसके कर्मक्षीण हो जाते हैं वह अनुपम सुख से सम्पन्न परम पद को प्राप्त होता है।।१८३।।

इस ग्रंथ में इसी प्रकरण में पंचामृत अभिषेक आदि के भी प्रमाण देखे जाते हैं।

श्री कुंदकुंददेव ने भी अध्यात्मग्रंथ प्रवचनसार में कहा है—

सरागी मुनियों की—छठे गुणस्थानवर्ती साधुओं की यही चर्या है कि दर्शन और ज्ञान का उपदेश देना, शिष्यों का संग्रह करना और उनका पोषण—संरक्षण करना तथा जिनेन्द्र भगवान की पूजा का उपदेश देना आदि।

इसी प्रकार जयधवला टीका के प्रमाण अतीव महत्त्वपूर्ण जानना चाहिए और उन पर श्रद्धान करके अपने पंथाम्नाय का दुराग्रह छोड़ देना चाहिए।

प्रभावना अंग के कथन में श्री अमृतचंद्रसूरि ने भी कहा है—

''रत्नत्रय तेज के द्वारा हमेशा ही आत्मा की प्रभावना करना चाहिए एवं दान, तपश्चरण, जिनपूजा, विद्या और अतिशयों के द्वारा जैनधर्म की प्रभावना करना चाहिए।।''

---

१. पद्मपुराण भाग २, पृ. ९६-९८। २. प्रवचनसार, गाथा २४८। ३. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय पृ. १८।

एतादृशीभावनया तथा च जैनधर्मः शाश्वतः अनाद्यनिधनः। अस्य संस्थापको न श्रीमहावीरस्वामी न च ऋषभदेवोऽपि। इति प्रसिद्ध्यर्थं वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे आश्विनमासे शुक्लातृतीयायाः[1] प्रारभ्य एकादशीपर्यंतं राजधानी दिल्लीमहानगरे, चतुर्विंशतितीर्थंकरकल्पद्रुममहामण्डलविधानानां अनुष्ठानं कारितं।

अस्मिन् पूजाविधानानुष्ठाने बृहन्मण्डपे चतुर्विंशतितीर्थंकराणां चतुर्विंशतयः समवसरणरचनासहितानि मण्डलानि रचितानि। प्रत्येकमण्डलस्योपरि गंधकुट्यां श्रीऋषभाजितसंभवाभिनंदन सुमति-पद्मप्रभु-सुपार्श्व-चंद्रप्रभ-पुष्पदंत-शीतल-श्रेयांस-वासुपूज्य-विमलानन्त-धर्म-शांति-कुंथु-अर-मल्लि-मुनिसुव्रत-नमि-नेमि-पार्श्व-महावीरतीर्थंकराणां चतस्त्रः चतस्त्रः प्रतिमाः स्थापिताः। किंच—समवसरणे चतुर्मुखतीर्थंकरस्य चतुःप्रतिमाः स्थाप्यन्ते। प्रत्येकमण्डलस्य समक्षे पूजाकरणार्थं चतुर्विंशतयः चक्रवर्तिनः स्थापनानिक्षेपेण कल्पिताः।

कल्पद्रुमविधाने चक्रवर्तिनः किमिच्छकदानं वितरन्ति, इति आर्षे श्रूयते। तदानीं आहारौषधज्ञानाभयरूपेण चतुर्विधदानानि विशेषेण दत्तानि। दुःखिजनेभ्यः करुणादानं, रूग्णेभ्यः औषधिदानं, आबालगोपालजनेभ्यो धार्मिकपुस्तकानि आदि वितरन्तो भाक्तिका महदानन्दमनुभवन्ति स्म।

सार्धद्वयसहस्त्राधिक श्रावकाःश्राविकाश्च पूजां कर्तुं समागच्छन्। लक्षाधिकाः जनाः भक्तिहर्षातिरेकेण दर्शनं कारं कारं अत्यर्थं प्रशंसां चक्रिरे। एतदनुष्ठानं अभूतपूर्वं जातं। 'न भूतो न भविष्यतीति' समाजनेतॄणां

इन भावनाओं से तथा "जैनधर्म शाश्वत है, अनादिनिधन है। इस के संस्थापक न तो भगवान महावीर स्वामी हैं और न ऋषभदेव भी हैं।" इस बात की प्रसिद्धि के लिए वीर नि. सं. २५२३, आश्विन मास की शुक्ला तृतीया से प्रारंभ करके एकादशी पर्यंत भारत की राजधानी दिल्ली महानगर—शहर में मैंने "चौबीस तीर्थंकर कल्पद्रुम-महामण्डल विधानों का" अनुष्ठान कराया था।

इस पूजा विधान के अनुष्ठान में विशाल पांडाल में चौबीस तीर्थंकरों के चौबीस समवसरण रचना वाले मण्डल बनाये गये थे। प्रत्येक मण्डल के ऊपर गंधकुटी में श्री ऋषभदेव, अजितनाथ, संभवनाथ, अभिनंदननाथ, सुमतिनाथ, पद्मप्रभदेव, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभदेव, पुष्पदंतनाथ, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, विमलनाथ, अनंतनाथ, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एवं महावीर स्वामी, ऐसे चौबीसों तीर्थंकरों की चार-चार प्रतिमाएँ विराजमान की गई थीं, क्योंकि समवसरण में चतुर्मुखरूप से तीर्थंकर भगवन्तों की चार प्रतिमाएँ स्थापित की जाती हैं। प्रत्येक मण्डल के समक्ष पूजा करने के लिए चौबीस चक्रवर्ती स्थापना निक्षेप से बनाये गये थे।

इस कल्पद्रुम विधान में चक्रवर्ती "किमिच्छक दान—तुम्हारी क्या इच्छा है ऐसा पूछकर जो मांगे सो दान देते रहते हैं," ऐसा आर्ष ग्रंथ में सुना जाता है। उस समय आहार, औषधि, ज्ञान और अभयदान ऐसे चारों दान विशेष रूप से दिये जाते हैं। दुःखी जनों को करुणादान, रोगियों को औषधिदान और आबाल-गोपालजनों को धार्मिक पुस्तकों को वितरित करते हुए भक्तगण महान आनंद का अनुभव करते हैं।

इस विधान में उस समय ढाई हजार से भी अधिक श्रावक-श्राविकाओं ने पूजा करने में भाग लिया था। लाखों से अधिक भक्त भक्ति और हर्षपूर्वक दर्शन कर-करके अतिशय प्रशंसा कर रहे थे। उस समय यह अनुष्ठान 'अभूतपूर्व' हुआ था। 'न ऐसा विशाल—महान् अनुष्ठान हुआ है और न होगा ही' समाज के नेताओं

---

१. ईसवी सन् १९९७।

वाणी निःसृतासीत्।

मया रचितानि एतानि इन्द्रध्वजकल्पद्रुमसर्वतोभद्रनामानि पूजाविधानानि सांगलीनगरमहाराष्ट्रे जयपुरे राजस्थानप्रदेशे इत्यादिबहुषु स्थानेषु महतीप्रभावनया भवन्ति बभूवुश्च भाक्तिकजनैः।

कल्पद्रुमपूजाविधानं रचयितुं षण्मासपर्यंतं चिंतनं कृतं। तत्फलस्वरूपा सहसा आषाढ़शुक्लाद्वितीयायां[१] मनसि भावनोद्भूता। ''तीर्थंकरसदृशं अस्मिन् संसारे कस्यचिदपि पुण्यं नास्ति, चक्रवर्तिसदृशं अस्मिन् लोके कस्यचिदपि वैभवं नास्ति'' अतएव तीर्थंकराणां अन्तर्लक्ष्मीं अनंतचतुष्टयादिस्वरूपां पुनश्च बहिरंगलक्ष्मीं समवसरणविभवस्वरूपां अधिकृत्य कल्पद्रुममहापूजा रचयितव्या। तदानीमेव तिलोयपण्णत्ति ग्रन्थाधारेण काव्यानि लिखितुं प्रारभे। काव्यरचनाकाले एकाग्रयमनसा मया एवमवभास्यते यदहं समवसरणं उपविश्य एव लिखामि। मनसि महानानन्दोऽभवत्।

वीराब्दे द्वादशाधिकपंचविंशतिशततमे शरत्पूर्णिमायां एतन्महाविधानं पूर्णमभवत्।

एतानि महदनुष्ठानानि मंत्रशुद्धिपूर्वकमेव कर्तव्यानि सन्ति। अन्यथा लाभापेक्षया कदाचित् हानिरपि श्रूयते। अतः प्रतिष्ठाचार्याः विधानाचार्या वा मंत्रा न परिवर्तनीया न च हीनाक्षराणि अधिकाक्षराणि वा कर्तव्या। ग्रंथाधारेण विधिवत् विधानानि कर्तव्यानि कारयितव्यानि च स्वपरसुखशान्ति हेतवे इति।

एवमेव धवलाटीकायां कथित-ऐन्द्रध्वज-कल्पद्रुमादिपूजाः सन्ततं लोके शांतिं क्षेमं सुभिक्षं कुर्वन्तु

के मुख से ऐसे वचन निकलते थे।

मेरे द्वारा रचित ये इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम और सर्वतोभद्र आदि विधान सांगली नगर महाराष्ट्र में जयपुर राजस्थान इत्यादि अनेक स्थानों पर बहुत बड़ी प्रभावनापूर्वक भक्तों ने किये हैं और आज भी कर रहे हैं।

कल्पद्रुम पूजा विधान की रचना करने के लिए मैंने लगभग छह मास तक चिंतन किया। उसके फलस्वरूप एक दिन—आषाढ़ शुक्ला द्वितीया को मेरे मन में अकस्मात् भावना उत्पन्न हुई कि—''तीर्थंकर भगवान के समान इस संसार में किसी का भी पुण्य नहीं है एवं चक्रवर्ती सदृश इस संसार में किसी का वैभव नहीं है'' इसलिए तीर्थंकर भगवन्तों की अनंत चतुष्टय आदि स्वरूप अंतरंग लक्ष्मी को तथा समवसरण के वैभव स्वरूप बहिरंगलक्ष्मी को आधार बनाकर 'कल्पद्रुम महापूजा' नाम से विधान रचना करनी चाहिए।

उसी समय मैंने 'तिलोयपण्णत्ति' ग्रंथ के आधार से काव्य लिखना प्रारंभ किया। काव्य रचना के समय एकाग्र मन से लिखते हुए मुझे ऐसा अवभास होता था—भावना होती थी कि मानों मैं समवसरण में ही बैठकर लिख रही हूँ। मुझे मन में महान आनंद का अनुभव होता था।

वीर नि. सं. २५१२, शरदपूर्णिमा के दिन मैंने इस कल्पद्रुम महाविधान को पूर्ण किया था।

इन महान् अनुष्ठानों को मंत्रों की शुद्धिपूर्वक ही करना चाहिए अन्यथा लाभ की अपेक्षा कभी-कभी हानि भी सुनने में आ जाती है अतः प्रतिष्ठाचार्यों को अथवा विधानाचार्यों को मंत्रों को बदलना नहीं चाहिए, न उन्हें हीनाक्षर या अधिकाक्षर अर्थात् न तो मंत्रों में से कोई अक्षर घटाना चाहिए और न मंत्रों में कोई अक्षर मिलना ही चाहिए। विधान ग्रंथ के आधार से उसमें लिखित विधि के अनुसार ही विधानों को करना और कराना चाहिए, इसी से ये विधान अपनी और पर की शांति के लिए होंगे, ऐसा समझना।

इस प्रकार 'धवलाटीका' में कथित 'ऐन्द्रध्वज कल्पद्रुम आदि' ये सभी पूजा-विधान हमेशा ही विश्व में

---

१. सन् १९८६, वी. सं. २५१२।

इति भावयामहे। एवमेकविंशतितमेस्थले दर्शनविशुद्ध्यादिभावनानिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदन्त भूतबलिप्रणीतषट्खण्डागमस्य अष्टमे ग्रंथे तृतीयखण्डे श्रीभूतबलि-सूरिविरचितं 'बंधस्वामित्वविचय' नाम ग्रंथस्य श्रीवीरसेनाचार्यरचितधवलाटीकाप्रमुख-नानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धांतचिन्तामणि-टीकायां गुणस्थानेषु बंधस्वामित्वप्ररूपकोऽयं प्रथमो महाधिकारः समाप्तः।

शांति, क्षेम और सुभिक्ष को करते रहें' हम यही भावना करते हैं।

इस प्रकार इक्कीसवें स्थल में दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं के निरूपणरूप से चार सूत्र हुए हैं।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदन्ताचार्य और भूतबलि आचार्य द्वारा प्रणीत इस आठवें ग्रंथ में और तृतीय खण्ड में श्री भूतबलिसूरि विरचित इस 'बंधस्वामित्व विचय' नाम के ग्रंथ में श्री वीरसेनाचार्य कृत धवलाटीका प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित इस टीका में बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज के प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज, उनकी शिष्या जंबूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में गुणस्थानों में बंध के स्वामित्व को प्ररूपित करने वाला यह प्रथम महाधिकार पूर्ण हुआ।

बंधस्वामित्वविचय

(अथ द्वितीयो महाधिकारः)

मंगलाचरणं

सिद्धो बुद्धः शिवो ब्रह्मा, विष्णुर्यश्चाप्यनञ्जनः।
वन्दे तमञ्जलिं कृत्वा, कर्माञ्जनप्रहाणये।।१।।
सर्वप्रत्ययनिर्मूलं, कृत्वार्हन्तो जिनेश्वराः।
त्रैकालिकाश्च सिद्धास्तां-स्तान् सर्वान्नौम्यनन्तशः।।२।।
चतुर्गतिच्युताः बंध-प्रत्ययैर्निर्गता नराः।
प्राप्ताः सिद्धिगतिं ये च, तान् नमामः त्रिशुद्धितः।।३।।

अथ षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे 'बंधस्वामित्वविचये' मार्गणानाम-द्वितीयो महाधिकारः द्व्यशीत्यधिक-द्विशतसूत्रैर्विद्यते। अस्मिन् चतुर्दशाधिकाराः सन्ति।

तत्र प्रथमायां गतिमार्गणायां चतुर्गतिषु बंधस्वामित्वकथनत्वेन एकोनषष्टिः सूत्राणि सन्ति। द्वितीयस्यां इन्द्रियमार्गणायां पंचत्रिंशत्सूत्राणि। कायमार्गणाधिकारे तृतीये त्रीणि सूत्राणि। चतुर्थे योगमार्गणाधिकारे एकोनत्रिंशत्सूत्राणि। पंचमे वेदमार्गणाधिकारे एकोनविंशतिसूत्राणि। षष्ठे कषायमार्गणाप्रकरणे ऊनविंशतिसूत्राणि। सप्तमे ज्ञानमार्गणाधिकारेऽष्टादशसूत्राणि। अष्टमे संयममार्गणाधिकारे अष्टाविंशतिसूत्राणि। नवमे दर्शनमार्गणाधिकारे पंचसूत्राणि। दशमे लेश्यामार्गणाधिकारे सप्तदशसूत्राणि। एकादशाधिकारे भव्यत्वप्रकरणे त्रीणि सूत्राणि। द्वादशमे सम्यक्त्वमार्गणाधिकारे द्विचत्वारिंशत्सूत्राणि। त्रयोदशे संज्ञित्वमार्गणाधिकारे

मंगलाचरण

जो सिद्ध, बुद्ध, शिव, ब्रह्मा, विष्णु और अनञ्जन—निरञ्जन हैं। हम उन्हें हाथ जोड़कर कर्मरूपी अञ्जन को नष्ट करने के लिए वंदन करते हैं।।१।।

जो मनुष्य चारों गतियों से छूट चुके हैं एवं बंध के कारणों से रहित होकर सिद्धगति को प्राप्त कर लिया है। उन सिद्धों को हम त्रिशुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।२।।

जो संपूर्ण प्रत्ययों को जड़ मूल से नष्ट करके अर्हंत जिनेश्वर हो चुके हैं, ऐसे त्रयकालिक अर्हंत और सिद्ध परमेष्ठी हैं, उन-उन सभी अर्हंतों और सिद्धों को हम अनंत-अनंत बार नमस्कार करते हैं।।३।।

अब षट्खण्डागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड में दो सौ बयासी सूत्रों से यह दूसरा महाधिकार कहा जा रहा है। इसमें चौदह अधिकार हैं।

उसमें प्रथम गतिमार्गणा में चारों गतियों में बंधस्वामित्व का कथन करते हुए उनसठ सूत्र हैं। दूसरी इन्द्रियमार्गणा में पैंतीस सूत्र हैं। तीसरी कायमार्गणा में तीन सूत्र हैं। चौथे योगमार्गणा अधिकार में उनतीस सूत्र हैं। पाँचवें वेदमार्गणा अधिकार में उन्नीस सूत्र हैं। छठी कषायमार्गणा के प्रकरण में उन्नीस सूत्र हैं। सातवें ज्ञानमार्गणा अधिकार में अठारह सूत्र हैं। आठवें संयममार्गणा अधिकार में अट्ठाईस सूत्र हैं। नवमें दर्शनमार्गणा अधिकार में पाँच सूत्र हैं। दशवें लेश्यामार्गणा अधिकार में सत्रह सूत्र हैं। ग्यारहवें भव्यत्वमार्गणा प्रकरण में तीन सूत्र हैं। बारहवें सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार में बयालीस सूत्र हैं। तेरहवें संज्ञिमार्गणा अधिकार में तीन सूत्र

त्रीणि सूत्राणि। चतुर्दशे आहारमार्गणाधिकारे द्वे सूत्रे इति मार्गणामहाधिकारे समुदायपातनिका सूचिता भवति।

तत्र तावत् गतिमार्गणायां चतुर्भिरन्तराधिकारैः एकोनषष्टिसूत्राणि भवन्ति। तस्यामपि नरकगत्यां त्रिभिरन्तरस्थलैः विंशतिसूत्राणि सन्ति। तत्र प्रथमस्थले नरकगतौ बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादिदशसूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले प्रथमनरकादारभ्य षष्ठनरकपर्यन्तं बंधाबंधकथनमुख्यत्वेन ''एवं तिसु'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं तृतीयस्थले सप्तम्यां पृथिव्यां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन ''सत्तमाए पुढवीए णेरइया'' इत्यादिनाष्टौ सूत्राणि इति समुदायपातनिका भवति।

नरकगतौ नारकेषु पंचज्ञानावरणादिसप्ततिप्रकृतीनां को बंधकः कोऽबंधक ?

इति प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु पंचणाणावरण-छदंसणावरण-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-

---

हैं। चौदहवें आहारमार्गणा अधिकार में दो सूत्र हैं, इस प्रकार मार्गणा अधिकार में यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

इसमें अब गतिमार्गणा में चार अन्तराधिकारों से उनसठ सूत्र हैं। उसमें भी नरकगति में तीन अन्तरस्थलों से बीस सूत्र हैं। उसमें प्रथम स्थल में नरकगति में बंधस्वामित्व के कथनरूप से ''आदेसेण गदियाणुवादेण'' इत्यादि दश सूत्र हैं। इसके बाद दूसरे स्थल में प्रथम नरक से प्रारंभ करके छठे नरक पर्यंत बंधक और अबंधक के कथन की मुख्यता से 'एवं तिसु' इत्यादि दो सूत्र हैं। इसके अनंतर तीसरे स्थल में सातवीं पृथ्वी में बंधस्वामित्व के निरूपणरूप से ''सत्तमाए पुढवीए णेरइया'' इत्यादि आठ सूत्र हैं, इस प्रकार यह समुदायपातनिका होती है।

नरकगति में नारकियों में पाँच ज्ञानावरण आदि सत्तर प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ? इस प्रश्नोत्तर रूप से दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

आदेश की अपेक्षा गतिमार्गणानुसार नरकगति में नारकियों में पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, साता वेदनीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, वर्ज्रषभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय,

सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।४३।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमो वर्तते। द्वे अपि सूत्रे देशामर्शके स्तः, उत्तरसूत्रं बन्धस्वामित्व-बंधाध्वानयोः निरूपणं करोति। तस्मादेतेन सूचितार्थानां प्ररूपणं क्रियते—अस्यां नरकगतौ नारकाणां पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातासात-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां एतेषां कर्मणां अत्र बंधोदयव्युच्छेदो नास्ति, विरोधाभावात्। एतेषां बंधोदयव्युच्छेदो यथासंभवं उपरिमगुणस्थानेषु भवति यश्च नरकगतावसंभव एव।**

पुरुषवेद-मनुष्यगति-औदारिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रर्षभसंहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति-उच्चगोत्राणामुदयोऽत्र नास्ति चैव, विरोधात्। तस्मादत्र एतासु प्रकृतिषु बंधोदयव्युच्छेदयोः पूर्वापरविचारो नास्ति।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-स्पर्श-अगुरुकलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः। निद्रा-प्रचला-

---

यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय इन कर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।४३।।

मिथ्यादृष्टि को आदि लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। ये दोनों सूत्र देशामर्शक हैं। उत्तरसूत्र बंधस्वामित्व और बंधाध्वान दोनों का निरूपण करता है। अतः इस सूत्र से सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—

इस नरकगति में नारकियों के पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता, असाता, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय, इन कर्मों का यहाँ बंधोदय व्युच्छेद नहीं है, क्योंकि विरोध का अभाव है। इनका बंधोदय व्युच्छेद यथासंभव ऊपर के गुणस्थानों में होता है जो कि नरकगति में असंभव ही है।

पुरुषवेद, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशस्कीर्ति और उच्चगोत्र, इनका उदय नहीं है क्योंकि इनका विरोध है। अतः इन नरकों में इन प्रकृतियों के बंध, उदय के व्युच्छेद का पूर्वापर विचार ही नहीं है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस, कार्मण, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका अपने उदय

सातासात-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्साः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्यन्ते, एतासां सर्वगुणस्थानेषु परावर्तनोदयात्। उपघातं मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्यते, विग्रहगतावुदयाभावात्। सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योः स्वोदयेन बध्यते, एतयोः गुणस्थानवर्तिनोस्तत्र नरकेषु उत्पत्तेरभावात्। परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणि मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिजीवयोः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्यन्ते, अपर्याप्तकाले एतेषामुदयाभावात्। नवरि प्रत्येकशरीरस्य उपघातवद्भंगः, विग्रहगतावेवोदयाभावात्। शेषयोर्द्वयोः गुणस्थानयोः स्वोदयेनैव एतासां बंधः, द्वयोर्गुणस्थानयोस्तत्रापर्याप्तकालेऽभावात्। पुरुषवेद मनुष्यगति-औदारिकशरीर-समुचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रर्षभसंहनन-मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वि-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशस्कीर्ति-उच्चगोत्राणां चतुःषु गुणस्थानेषु परोदयेनैव बंधो, नारकेषु एतासामुदयविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-औदारिकांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, नरकगतौ निरन्तरबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशः-कीर्त्ययशःकीर्तिप्रकृतीनां सान्तरो बंधः, सर्वगुणस्थानेषु प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधोपलंभात्। पुरुषवेद-मनुष्यगति-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रऋषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-मनुष्यगत्यानुपूर्वि उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृति

से बंध है। निद्रा, प्रचला, साता-असाता, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा इनका सबके उदय से और पर के उदय से बंध होता है क्योंकि इन प्रकृतियों का सभी गुणस्थानों में परिवर्तन से उदय होता है। उपघात प्रकृति मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि में अपने उदय और पर के उदय से बंधती है क्योंकि इसका विग्रहगति में उदय का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि में अपने उदय से बंधती है क्योंकि इन दोनों गुणस्थानों की वहाँ नरक में उत्पत्ति ही नहीं होती। परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर ये मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि में अपने उदय और परोदय से बंधते हैं क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनके उदय का अभाव है। विशेष इतना है कि प्रत्येक शरीर का बंध उपघात के समान है क्योंकि केवल विग्रहगति में ही इसका उदय नहीं रहता। शेष दोनों गुणस्थानों में स्वोदय से ही इनका बंध होता है क्योंकि शेष दोनों गुणस्थान नारकियों में अपर्याप्तकाल में नहीं होते हैं। पुरुषवेद, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र इन प्रकृतियों का चारों गुणस्थानों में परोदय से ही बंध होता है क्योंकि नारकियों में इनके उदय का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, औदारिक अंगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय इन प्रकृतियों का निरंतर बंध होता है क्योंकि नरकगति में ये निरंतर बंधती हैं। साता-असाता, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति प्रकृतियों का सान्तर बंध है क्योंकि सर्व गुणस्थानों में प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है।

पुरुषवेद, मनुष्यगति, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रऋषभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र इनका मिथ्यादृष्टि और सासादन में सान्तर बंध है क्योंकि प्रतिपक्ष

बंधोपलंभात्। विशेषेण—मनुष्यगतिगत्यानुपूर्विप्रकृत्योः मिथ्यादृष्टौ तीर्थकर प्रकृतिसत्वकर्मिजीवे निरन्तरोऽपि बंधो लभ्यते। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्य-संयतसम्यग्दृष्ट्योः निरन्तरो बंधः, एतयोः प्रतिपक्षप्रकृत्योर्बंधाभावात्।

एतत्प्रकृतिबध्यमानमिथ्यादृष्टेः चत्वारो मूलप्रत्ययाः। नानासमयोत्तरप्रत्यया एकपंचाशत्, औदारिकतन्मिश्र-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्। एकसमय-जघन्योत्कृष्टप्रत्यया यथाक्रमेण दशाष्टादश। सासादनस्य मूलप्रत्ययास्त्रयः, मिथ्यात्वाभावात्। नानासमयोत्तरप्रत्ययाः चतुश्चत्वारिंशत्, औदारिक-औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्। एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्यया यथाक्रमेण दश सप्तदश। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः मूलप्रत्ययास्त्रयः, मिथ्यात्वाभावात्। नानासमयोत्तरप्रत्ययाश्चत्वारिंशत्, ओघेषु प्रत्ययेषु औदारिक-स्त्री-पुरुषप्रत्ययानामभावात्। एकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्यया यथाक्रमेण नव षोडश। असंयतसम्यग्दृष्टेः मूलप्रत्ययास्त्रयः, मिथ्यात्वाभावात्। नानासमयोत्तरप्रत्यया द्विचत्वारिंशत्। ओघप्रत्ययेषु औदारिक-औदारिकमिश्र-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्। एकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्यया यथाक्रमेण नव षोडश भवन्ति।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-

---

प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। विशेषता इतनी है कि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रखने वाले मिथ्यादृष्टि जीव में मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी प्रकृतियों का निरन्तर भी बंध पाया जाता है। सम्यक् मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उक्त प्रकृतियों का निरन्तर बंध है क्योंकि यहाँ दोनों गुणस्थानों में इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

इन प्रकृतियों को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि नारकी जीव के मूल प्रत्यय चारों होते हैं। नानासमय संबंधी उत्तर प्रत्यय इक्यावन होते हैं क्योंकि उनके औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन चार प्रत्ययों का अभाव है। एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से दश और अठारह होते हैं। सासादन गुणस्थानवर्ती के मूल प्रत्यय तीन हैं क्योंकि वहाँ मिथ्यात्व का अभाव है। नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय चवालीस होते हैं क्योंकि उसके औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियकमिश्र, कार्मण, स्त्रीवेद और पुरुषवेद इन छह प्रत्ययों का अभाव है। इनके एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से दश और सत्रह होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के मूल प्रत्यय तीन होते हैं क्योंकि उनके मिथ्यात्व का अभाव है। नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय चालीस होते हैं क्योंकि ओघ प्रत्ययों में से औदारिक स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्यय नहीं होते हैं। इनके एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से नौ और सोलह होते हैं। असंयत सम्यग्दृष्टि के मूल प्रत्यय तीन हैं, क्योंकि यहाँ मिथ्यात्व का अभाव है। नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय बयालीस हैं क्योंकि ओघ प्रत्ययों में से औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन प्रत्ययों का अभाव है। एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से नव और सोलह होते हैं।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता, असाता, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकांगोपांग, वज्रवृषभनाराचसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर–अस्थिर, शुभ–अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति–अयशकीर्ति,

प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणि मिथ्यादृष्टि-सासादनाः स्वामिनः द्विगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयश्च मनुष्यगति-संयुक्तं बध्नन्ति तत्र शेषगतीनां बंधाभावात्। मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-उच्चगोत्राणि सर्वे मनुष्यगतिसंयुक्तं एव बध्नन्ति, शेषगतिभिः सह विरोधात्।

एतासां सर्वासामपि प्रकृतीनां बंधस्य नारकाश्चैव स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगममस्ति। एतासां प्रकृतीनां नारकाणां गुणस्थानानां चरमाचरमस्थानेषु बंधव्युच्छेदो नास्ति।

सर्वप्रकृतीनां बंधः साद्यध्रुवः, अनादिध्रुवनारकाणामभावात्।

अथवा, पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-तैजस-कार्मण-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, उपशमश्रेण्या अवतीर्य नरकं प्रविष्टे जीवे साद्यध्रुवबंधदर्शनात्। शेषगुणस्थानेषु ध्रुवं नास्ति, बंधव्युच्छेदमकुर्वतां सासादनादीनामभावात्। शेषप्रकृतीनां बंधः सादिअध्रुवश्चैव, अध्रुवबंधित्वात्।

तात्पर्यमेतत्—मूलप्रत्ययाश्चत्वारः बंधहेतवः सन्ति। तत्र मिथ्यात्वं तु बंधप्रत्ययं मिथ्यादृष्टीनां असंख्यातनारकाणां अस्त्येव। अपरं च केचिदपि भावलिंगिनो महासाधवः उपशमश्रेणिमारुह्य एकादशगुणस्थानं उपशांतकषायाख्यमपि प्राप्नुवन्ति तथापि नियमेन ततः श्रेणीतोऽवतीर्य अधःस्थाने कदाचित् मिथ्यात्वमपि लब्धुं शक्नुवन्ति। कदाचित् नरकायुर्बद्ध्वा कश्चिन्नरकं गच्छेत्तर्हि तस्य सादि-अध्रुवबंधौ दृश्येते। अतः सदैव इत्थं भावना भावयितव्या यत् मिथ्यात्वं कदाचिदपि मयि न भूयात्

निर्माण और पाँच अन्तराय, इन प्रकृतियों के स्वामी मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव दो गति से संयुक्त बांधते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगति से संयुक्त इन प्रकृतियों को बांधते हैं, क्योंकि उनके शेष गतियों का बंध नहीं होता है। मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को सभी नारकी मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि वहाँ शेष गतियों के साथ इन तीन प्रकृतियों के बंध का विरोध है।

इन सभी प्रकृतियों के बंध के नारकी जीव ही स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। इन प्रकृतियों के नारकियों के चरम व अचरम स्थानों में बंधव्युच्छेद नहीं है।

इन सभी प्रकृतियों का बंध सादि और अध्रुव है, क्योंकि अनादि और ध्रुव नारकियों का अभाव है।

अथवा पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, तैजस, कार्मण, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चार प्रकार का बंध है क्योंकि उपशमश्रेणी से उतरकर नरक में प्रविष्ट हुए जीवों में सादि और अध्रुव बंध देखा जाता है। शेष गुणस्थानों में ध्रुव बंध नहीं है क्योंकि बंध व्युच्छेद को न करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि आदि का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि-अध्रुव ही है क्योंकि वे प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—मूल प्रत्यय अर्थात् बंध के हेतु चार हैं। उनमें से मिथ्यात्व प्रत्यय तो, जो कि बंध का प्रत्यय है, वह असंख्यात मिथ्यादृष्टी नारकियों में है ही है। दूसरी बात यह है कि—कोई-कोई भावलिंगी महासाधु भी उपशमश्रेणी में चढ़कर उपशान्तकषाय नाम के ग्यारहवें गुणस्थान को भी प्राप्त कर लेते हैं फिर भी नियम से वहाँ से—श्रेणी से उतरकर नीचे के गुणस्थानों में कदाचित् मिथ्यात्व को भी प्राप्त कर सकते हैं। कदाचित् नरक आयु को बांधकर यदि कोई नरक भी जावें तो उनके सादि और अध्रुव बंध देखा जाता है। इसलिए सदैव ऐसी भावना भाते रहना चाहिए कि मिथ्यात्व मुझमें कदाचित् भी न होवे, सम्यग्दर्शन

सम्यग्दर्शनं स्थिरीभूयादिति।

अधुना निद्रानिद्रादिपंचविंशतिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनार्थं प्रश्नोत्तररूपेण सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।४५।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सर्वाणि बंधस्वामित्वसूत्राणि देशामर्शकानि इति द्रष्टव्याणि। तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणं क्रियते। तथाहि —**

अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, सासादनचरमसमये एतस्य समं बंधोदय-व्युच्छेदोपलंभात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्रीवेद-तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योतानां नरकगतावुदयो नास्ति, विरोधात्। ततः एतासां पूर्वं पश्चाद् वा बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, सदसद्वस्तुनां सन्निकर्षविरोधात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः, सासादने नष्टबंधानां असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदोपलंभात्।

स्थिर होवे, चूँकि यही भावना श्रेयस्कर है।

अब निद्रानिद्रा आदि पच्चीस प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए प्रश्नोत्तररूप से दो सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।४५।।

मिथ्यादृष्टी और सासादनसम्यग्दृष्टी बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष नारकी अबंधक हैं।।४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बंधस्वामित्व को कहने वाले सभी सूत्र देशामर्शक हैं, ऐसा जानना चाहिए। इसलिए इस सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं। उसी का विस्तार करते हैं —

अनंतानुबंधीचतुष्क का बंध और उदय, ये दोनों साथ ही व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि सासादनगुणस्थान के चरम समय में इनका एक साथ ही बंध व उदय का व्युच्छेद होता है। स्त्यानगृद्धित्रिक, स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी और उद्योत इनका नरकगति में उदय नहीं है, क्योंकि विरोध है। इसलिए इन प्रकृतियों का पहले या पश्चात् बंध उदय का विचार ही नहीं है क्योंकि सत् और असत् वस्तु के सन्निकर्ष का विरोध है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है और पश्चात् उदय का व्युच्छेद, क्योंकि सासादन के बंध के नष्ट हो जाने पर असंयतसम्यग्दृष्टि

अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वर-अनंतानुबन्धिचतुष्काणां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः अध्रुवत्वात्। विशेषण तु अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वरयोः सासादनसम्यग्दृष्टौ स्वोदयश्चैव। स्त्रीवेद-तिर्यगायुः तिर्यग्गति-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योत-स्त्यानगृद्धि-त्रिकाणां परोदयेनैव बंधः, अत्रैतेषां उदयाभावात्-दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां स्वोदयेनैव बंधो, नारकेषु एतेषां प्रतिपक्षाणामुदयाभावात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंधोऽस्ति। स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां सांतरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधसंभवात्। तिर्यगायुषो निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबन्धेन विना बंधविरामोपलंभात्। तिर्यग्गति-गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां सान्तर-निरन्तरो बंधः, षट्सु पृथिवीषु सान्तरो भूत्वा सप्तमपृथिव्यां निरन्तरेणैव बंधदर्शनात्।

यदि प्रतिपक्षप्रकृतिबंधमाश्रित्य बंधविश्रान्तिप्राप्ता सान्तरबंधप्रकृतिरुच्यते तर्हि उद्योतस्य प्रतिपक्षबंधप्रकृत्याः अनुद्योतस्वरूपायाः अभावादुद्योतेन निरन्तरबन्धिना भवितव्यं, अथवा बंधविनाशोऽस्तीति यदि सान्तरत्वमुच्यते तर्हि तीर्थकर-आहारद्विक-आयुषामपि प्रसज्यते इति ?

अत्र परिहार उच्यते—यदुक्तं, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधमाश्रित्य बंधविश्रान्तिप्राप्ता सान्तरबन्धिनी इति तत्सान्तरबंधिषु प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाविनाभावं दृष्ट्वा उक्तं। परमर्थतः पुनः एकसमयं बद्ध्वा द्वितीयसमये यस्या बन्धविरामो दृश्यते सा सान्तरबंधप्रकृतिः। यस्या बन्धकालो जघन्योऽपि अन्तर्मुहूर्तमात्रः सा निरंतरबंधप्रकृतिरिति गृहीतव्यं।

में इनका उदय व्युच्छेद पाया जाता है।

अप्रशस्तविहायोगति, दुःस्वर और अनंतानुबंधीचतुष्क का स्वोदय और परोदय से बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। विशेष इतना है कि अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय ही बंध होता है। स्त्रीवेद, तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गत्यानुपूर्वी, उद्योत और स्त्यानगृद्धित्रिक, इनका परोदय से ही बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनके उदय का अभाव है। दुर्भग, अनादेय और उच्चगोत्र का स्वोदय से ही बंध होता है, क्योंकि नारकियों में इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है।

स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबंधी चतुष्क का निरन्तर बंध होता है। स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर और अनादेय, इनका सान्तर बंध होता है, क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध संभव है। तिर्यंचायु का निरंतर बंध होता है क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध के बिना इसके बंध की विश्रांति पायी जाती है। तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीच गोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है, क्योंकि छह पृथिवियों में इनका सान्तर बंध होकर सातवीं पृथ्वी में निरन्तर रूप से ही बंध पाया जाता है।

शंका—यदि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का आश्रय करके बंध विश्रांति को प्राप्त होने वाली प्रकृति सान्तरबंध प्रकृति कही जाती है तो उद्योत की प्रतिपक्षभूत अनुद्योतरूप प्रकृति का अभाव होने से उद्योत को निरंतरबंधी प्रकृति होनी चाहिए। अथवा बंध का विनाश है, इस कारण से यदि सान्तरता कही जाती है तो पुनः तीर्थंकर, आहारकद्विक और आयुकर्मों के भी सान्तरता का प्रसंग प्राप्त होगा ?

समाधान—यहाँ परिहार करते हुए कहते हैं—जो आपने कहा है कि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का आश्रय करके बंध विश्रांति को प्राप्त होने वाली प्रकृति सान्तर बंधी है, वह आपने सान्तर बंधी प्रकृतियों में प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध के अविनाभाव को देखकर कहा है। वास्तव में एक समय बंधकर द्वितीय समय में जिस प्रकृति का बंध विराम देखा जाता है वह सान्तर बंध प्रकृति है। जिसका बंधकाल जघन्य भी अन्तर्मुहूर्त मात्र है वह निरन्तर बंध प्रकृति है, ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

प्रत्ययप्ररूपणे क्रियमाणे चतु:स्थानिकप्रकृतिभंगन् वत् ज्ञातव्यं।

विशेषेण — तिर्यगायुषः मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने ऊनपञ्चाशत् प्रत्ययाः, वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्यययोरभावात्।

तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतप्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनौ तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नीतः। शेषाः द्विस्थानप्रकृतीः द्विगतिसंयुक्तं बध्नीतः।सर्वासां प्रकृतीनां नारकाः स्वामिनः। बन्धाध्वानं बन्धविनष्टस्थानं च सुगमं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबन्धिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। सासादने साद्यध्रुवौ। शेषाणां प्रकृतीनां बंधः साद्यध्रुवौ चैव ज्ञातव्यं।

इत्थं निद्रानिद्रादिपंचविंशतिप्रकृतीनां बंधोदयादिकथनं संजातं।

अधुना मिथ्यात्वादिचतुःप्रकृतीनां बन्धाबंधकजीवानां स्वामित्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।४७।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।४८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **एतेन सूचितार्थानां प्ररूपणा क्रियते — मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते मिथ्यादृष्टिचरमसमये बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्।**

प्रत्ययप्ररूपणा करते समय चार गुणस्थानों में बंधने वाली प्रकृतियों के समान ही प्रत्यय प्ररूपण करना चाहिए। विशेष इतना है कि तिर्यंचायु के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में यहाँ उनंचास प्रत्यय हैं, क्योंकि इसके वैक्रियक मिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है।

तिर्यंचायु, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और उद्योत प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष द्विस्थान प्रकृतियों को दो गतियों से संयुक्त बांधते हैं। सब प्रकृतियों के नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक और अनंतानुबंधी चतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। इनका सासादन में सादि और अध्रुव बंध होता है। शेष सूत्रोक्त प्रकृतियों का बंध सादि और अध्रुव ही होता है।

इस प्रकार यहाँ निद्रानिद्रा आदि पच्चीस प्रकृतियों के बंध उदय आदि का कथन पूर्ण हुआ है।

अब मिथ्यात्व आदि चार प्रकृतियों के बंधक-अबंधक जीवों के स्वामित्व को प्रतिपादित करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।४७।।

मिथ्यादृष्टी नारकी जीव बंधक हैं। ये बंधक हैं शेष नारकी जीव अबंधक हैं।।४८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र से सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं — मिथ्यात्वप्रकृति का बंध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान के चरम समय में इसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनननामप्रकृतीनां पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदयो, मिथ्यादृष्टिचरमसमये एतासां बंधे विनष्टे सति असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेददर्शनात्। विशेषेण— असंप्राप्तसृपाटिकासंहननस्य पूर्वापरबंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, बंधं मुक्त्वा उदयाभावात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थानानां स्वोदयो बंधः, विशेषेण हुंडसंस्थानस्य परोदयोऽपि, विग्रहगतौ तस्योदयाभावात्। असंप्राप्तसृपाटिकासंहननस्य परोदयो बंधस्तत्र संहननस्योदयाभावात्। मिथ्यात्वस्य निरन्तरो बंध, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां त्रयाणां सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

प्रत्ययाः चतुःस्थानिकप्रकृतिप्रत्ययैः समाः। एताश्चतस्रोऽपि प्रकृतयः द्विगतिसंयुक्तं बध्यन्ते। नारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य चतुर्विधो बंधो, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, ध्रुवबंधित्वाभावात्।

इदानीं मनुष्यायुषो बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।४९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।५०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अथ बंधोदययोः पूर्वापर व्युच्छेदविचारो नास्ति बंधं मुक्त्वा उदयाभावात्।**

नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन नामकर्मों का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के चरम समय में बंध के नष्ट हो जाने पर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में नारकियों में इनका उदय व्युच्छेद पाया जाता है। विशेष इतना है कि असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन के पूर्व या पश्चात् बंधोदय व्युच्छेद के होने का विचार नहीं है क्योंकि बंध को छोड़कर नारिकयों के वहाँ उसके उदय का अभाव है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद और हुंडकसंस्थान इनका स्वोदय बंध होता है, विशेषता यह है कि हुंडकसंस्थान का बंध परोदय से भी होता है, क्योंकि विग्रहगति में उसका उदय नहीं रहता। असंप्राप्तसृपाटिकाशरीर संहनन का बंध परोदय से होता है, क्योंकि नारकियों में संहनन का उदय नहीं रहता।

मिथ्यात्व का बंध निरन्तर होता है, क्योंकि यह ध्रुवबंधी प्रकृति है। सूत्रोक्त तीन प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है, क्योंकि एक समय में उनके बंध का विश्राम देखा जाता है।

प्रत्ययों का वर्णन चतुःस्थानिक प्रकृतियों के प्रत्ययों के समान है। ये चारों ही प्रकृतियाँ दो गतियों से संयुक्त बंधती हैं। इनके स्वामी नारकी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व प्रकृति का बंध चारों प्रकार का होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी प्रकृति है। शेष प्रकृतियों का सादि व ध्रुव बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी नहीं हैं।

अब मनुष्यायु के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतरित होते हैं —

सूत्रार्थ—

मनुष्यायु का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।४९।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष नारकी जीव अबंधक हैं।।५०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पर बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद का विचार ही नहीं

नारका एतदायु: परोदयेन बध्नन्ति, नरकगतौ मनुष्यायुष: उदयविरोधात्। निरन्तरं बध्नन्ति एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। मिथ्यादृष्टे: ऊनपञ्चाशत्प्रत्यया:, वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययोरभावात्। सासादनस्य चतुश्चत्वारिंशत् असंयतसम्यग्दृष्टेश्चत्वारिंशत्प्रत्यया:। शेषं सुगमं। नारका: मनुष्यायु: मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। नारका: स्वामिन:। बन्धाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। अस्यायुष: साद्यध्रुवौ बंध: अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना तीर्थकर प्रकृतेर्नरकगतौ स्वामिप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।।५१।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।५२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **तीर्थकरप्रकृतिबंधस्योदयात् पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छेदो भवतीति सन्निकास:-तुलना नास्ति, अत्र नरकगतौ तीर्थकरस्योदयाभावात्। तेनैव परोदयो बंध:। निरन्तरो बंध:, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।**

प्रत्यया: दर्शनविशुद्धिता लब्धिसंवेगसंपन्नता अर्हद्बहुश्रुतप्रवचनभक्त्यादय:। मनुष्यगतिसंयुक्तेयं प्रकृतिर्बध्यते। नारका: स्वामिन:। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। बंध: साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

एवं प्रथमस्थले सामान्येन नारकाणां बंधकाबंधकनिरूपणत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

है, क्योंकि बंध को छोड़कर नारकियों में इसके उदय का अभाव है। नारकी जीव इसे परोदय से बांधते हैं, क्योंकि नरकगति में मनुष्यायु के उदय का विरोध है। इसे निरन्तर बांधते हैं, क्योंकि एक समय में इसके बंध का विश्राम नहीं होता। मिथ्यादृष्टि के इसके उनञ्चास प्रत्यय हैं क्योंकि इसका बंध वैक्रियक मिश्र और कार्मण प्रत्ययों से नहीं होता। सासादन के चवालीस और असंयतसम्यग्दृष्टि के चालीस प्रत्यय होते हैं। शेष कथन सुगम है। नारकी जीव मनुष्यायु को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। नारकी जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। इसका बंध सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि यह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

अब नरकगति में तीर्थंकर प्रकृति के स्वामी का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।५१।।

असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष नारकी अबंधक हैं।।५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — तीर्थंकर प्रकृति के बंध का उदय से पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होता है, इस प्रकार यहाँ तुलना ही नहीं है, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का यहाँ नारकियों में उदय है ही नहीं। इसी कारण इसका परोदय से बंध होता है। इसका बंध निरंतर होता है, क्योंकि एक समय में इसके बंध का विश्राम नहीं होता। इसके प्रत्यय — कारण दर्शनविशुद्धता, लब्धिसंवेगसंपन्नता, अरिहंतभक्ति, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति आदिक हैं। मनुष्यगति से संयुक्त इसका बंध होता है। नारकी जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। इसका बंध सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि यह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य रूप से नारकियों के बंधक और अबंधक का निरूपण करने वाले दश सूत्र हुए हैं।

संप्रति कियन्नरकपर्यन्तमस्यास्तित्वं क्व च नास्तित्वमिति निर्णयार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेयव्वं।।५३।।

चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए पुढवीए एवं चेव णेदव्वं। णवरि विसेसो तित्थयरं णत्थि।।५४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एषा तीर्थंकरप्रकृतिबंधव्यवस्था बंधस्वामित्वं प्रतीत्य कथितास्ति तृतीयनरकपर्यन्तं, किंतु विशेषेऽवलम्ब्यमाने भेदोऽस्ति। तदेवोच्यते—प्रथमपृथिव्यां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने मनुष्यगति-तद्गत्यानुपूर्विणोः सान्तरनिरन्तरो बंधो नास्ति, सान्तरश्चैव, तत्र तीर्थंकरसत्त्वकर्मिकमिथ्यादृष्टीनां अभावात्। द्वितीयदण्डके तिर्यग्गति-तद्गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरो बंधो नास्ति, सान्तरश्चैव, सप्तमीं पृथिवीं मुक्त्वान्यत्र नरकगतौ एतासां निरन्तरबंधाभावात्।एष भेदः प्रथम-द्वितीय-तृतीयपृथिवीषु ज्ञातव्यः।**

द्वितीय-तृतीयपृथिव्योः उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदय एव बंधः, तत्रापर्याप्तकालेऽसंयतसम्यग्दृष्टीनामभावात्। मनुष्यगतिद्विकं तीर्थंकरसत्त्वकर्मिमिथ्यादृष्टीनां निरन्तरं, शेषाणां सान्तरं।

असंयतसम्यग्दृष्टौ चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्यययोरभावात्। एतावांश्चैव भेदः, अन्यत्र कुत्रापि भेदो नास्ति।

अब तीर्थंकरप्रकृति का कितने नरक पर्यंत अस्तित्व है और कहाँ नहीं है ? इसके निर्णयार्थ दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

इस प्रकार यह व्यवस्था उपरिम तीन पृथिवियों में जानना चाहिए।।५३।।

चौथी, पाँचवी और छठी पृथिवी में इसी प्रकार जानना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि इन पृथिवियों में तीर्थंकर प्रकृति नहीं है।।५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह तीर्थंकर प्रकृति के बंध की व्यवस्था, बंध के स्वामी की अपेक्षा करके तीसरे नरकपर्यंत कही गई है किन्तु विशेष का अवलंबन लेने पर भेद है। उसे ही कहते हैं—

पहली पृथिवी में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में मनुष्यगति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी का बंध सान्तर-निरन्तर नहीं है, किन्तु सान्तर ही है क्योंकि यहाँ तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि नारकी जीव नहीं होते हैं। द्वितीय दण्डक में तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी और नीचगोत्र प्रकृतियों का बंध सान्तर-निरन्तर नहीं होता, किन्तु सान्तर ही होता है क्योंकि सप्तम पृथिवी को छोड़कर अन्यत्र नरकगति में इन प्रकृतियों के निरन्तर बंध का अभाव है। यह भेद प्रथम, द्वितीय, तृतीय पृथिवी में ही है।

द्वितीय और तृतीय पृथिवियों में उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर, इन प्रकृतियों का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि इन दोनों नरकों में अपर्याप्तकाल में असंयतसम्यग्दृष्टी नहीं होते हैं। मनुष्यगति-तदानुपूर्वी का तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टियों के निरन्तर बंध होता है, शेष प्रकृतियाँ नारकियों के सान्तर बंधती हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि के चालीस प्रत्यय होते हैं, क्योंकि इन दोनों नरकों में इनके वैक्रियक मिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। इतना ही भेद है, अन्यत्र कहीं और कोई भेद नहीं है।

एषा व्यवस्था तृतीयनरकपर्यन्तं कथितमस्ति। अग्रे चतुर्थपंचमषष्ठपृथिवीषु एवमेव ज्ञातव्यं। विशेषेण तु तीर्थंकरप्रकृतिबंधो नास्ति।

तीर्थंकरबंधः किमिति नास्ति इति चेत् ?

कथ्यते — तीर्थंकरप्रकृतिबध्यमानसम्यग्दृष्टीनां मिथ्यात्वं गत्वा तीर्थंकरसत्त्वेन सह द्वितीय-तृतीयपृथिव्योरिव उत्पद्यमानानां चतुर्थ्यादिषु पृथिवीषु अभावात्। एतेनैव कारणेन मनुष्यगतिद्विकं मिथ्यादृष्टिः सान्तरं बध्नाति। अन्यो भेदो नात्यत्र।

एवं द्वितीयस्थले प्रथमपृथिव्या आरभ्य षष्ठीपर्यन्तं बंधस्वामित्वकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

अधुना सप्तमीपृथिव्यां नारकाणां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सत्तमाए पुढवीए णेरइया पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सुर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।५५।।

यह व्यवस्था तीसरे नरक पर्यंत कही गई है। आगे चौथी, पाँचवीं और छठी पृथिवियों में इसी प्रकार से जानना चाहिए, विशेष यह है कि इनमें तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं है।

प्रश्न — चौथी आदि में तीर्थंकर प्रकृति का बंध क्यों नहीं है ?

उत्तर — कहते हैं — जिस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति को बांधने वाले सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व को प्राप्त होकर तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के समय दूसरी व तीसरी पृथिवियों में उत्पन्न होते हैं, वैसे इन चौथी आदि पृथिवियों में उत्पन्न नहीं हो सकते। इसी कारण से मनुष्यगति, तदानुपूर्वी को मिथ्यादृष्टि जीव सान्तर बांधते हैं। बाकी इन नरकों में प्रथमादि तीन नरकों की अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में प्रथम नरक से लेकर छठे पर्यंत बंध के स्वामी को कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब सातवें नरक में नारकियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातवीं पृथिवी के नारकियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता और असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रऋषभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।५५।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।५६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। तथाप्युत्तरसूचकसूत्रं देशामर्शकं तेन सूत्रेण सूचितार्थप्ररूपणां करिष्यामः—**

अत्रोदयाद्बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, अत्र तस्यासंभवात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, एतेषां ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सानां स्वोदय-परोदयौ बंधौ स्तः, अध्रुवोदयत्वात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टौ स्वोदयपरोदयौ बंधौ। शेषेषु स्वोदयश्चैव, तेषामत्रापर्याप्तकालेऽभावात्। पुरुषवेद-औदारिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिक शरीरांगोपांग-वज्रर्षभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्तीणां परोदयो बंधः, एतेषामुदयस्यात्र विरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-औदारिककशरीरांगोपांग-वर्णचतुष्क-अगुरुकलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक शरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां सान्तरो बंधः, सर्वगुणस्थानेषु एतासामेकानेक

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। फिर भी उत्तर देने वाला सूत्र देशामर्शक है अतः उस सूत्र द्वारा सूचित अर्थ की प्ररूपणा करेंगे—यहाँ उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् में व्युच्छिन्न होता है यह विचार नहीं है, क्योंकि यहाँ उसकी संभावना नहीं है। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि ये प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, साता, असाता, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। शेष गुणस्थानों में स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि को छोड़कर शेष—आगे के गुणस्थान यहाँ अपर्याप्तकाल में नहीं होते हैं। पुरुषवेद, औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति इनका परोदय बंध होता है क्योंकि इनके उदय का यहाँ विरोध है।

पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। साता, असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति प्रकृतियों

समयबंधसंभवात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभनाराचसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयानां मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सान्तरो बंधः, एकानेकसमयबंधसंभवात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बन्धाभावात्।

एताः प्रकृतीः बध्यमानमिथ्यादृष्टेर्मूलप्रत्ययाश्चत्वारः, नानासमयोत्तरप्रत्यया एकपञ्चाशत्, एकसमयिक-जघन्योत्कृष्टप्रत्यया दश अष्टदश। सासादनसम्यग्दृष्टेः मूलप्रत्ययास्त्रयः, नानासमयोत्तरप्रत्ययाश्चतुश्च-त्वारिंशत्, एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्यया दश सप्तदश। सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योः मूलप्रत्ययास्त्रयः, उत्तरप्रत्ययाश्चत्वारिंशत्, एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्यया नव षोडश भवन्ति।

उपर्युक्तकथिता एताः सर्वप्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति, सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टयश्च मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, उभयत्रान्यगतीनां बंधाभावात्।

एतासां नारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां-मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषगुणस्थानेषु ध्रुवबंधो नास्ति, बंधव्युच्छेदमकुर्वतां सासादनादीनामभावात्।

अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः सर्वगुणस्थानेषु साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

का सान्तर बंध होता है, क्योंकि सभी गुणस्थानों में इनका एक और अनेक समय तक बंध संभव है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय, इनका मिथ्यादृष्टि व सासादनगुणस्थानों में सान्तर बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनका एक-अनेक समय तक बंध संभव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि में उनका निरन्तर बंध है, क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

इन प्रकृतियों को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि नारकी के मूल प्रत्यय चार, नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय इक्यावन तथा एक समय संबंधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय दश और अठारह होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि के मूल प्रत्यय तीन, नाना समय संबंधी उत्तर प्रत्यय चवालीस और एक समय संबधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय दश और सत्रह होते हैं। सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में मूल प्रत्यय तीन, उत्तर प्रत्यय चालीस तथा एक समय संबंधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय नौ और सोलह होते हैं।

उपर्युक्त कथित इन सर्व प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि व सासादन जीव तिर्यग्गति संयुक्त बांधते हैं तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि दोनों जगह अन्य गतियों के बंध का अभाव है। नारकी जीव इनके बंध के स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्ट स्थान सुगम हैं।

पाँच ज्ञानावरण, छह दर्शनावरण, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। शेष गुणस्थानों में ध्रुवबंध नहीं हैं क्योंकि इनके बंध व्युच्छेद को न करने वाले सासादनसम्यग्दृष्टि आदिकों का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सब गुणस्थानों में सादि और अध्रुव होता है, क्योंकि वे प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी हैं।

अधुना सप्तमनरके निद्रानिद्रादिप्रकृतीनां बंधाबंधकानां प्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि कोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।५७।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — एतस्यार्थः उच्यते — अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादने चैव बंधोदययोर्द्वयोः व्युच्छेदोपलंभात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सासादनसम्यग्दृष्टौ बंधे व्युच्छिन्ने सति पश्चात् असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदोपलंभात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्रीवेद-तिर्यग्गति-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतानां पूर्वं पश्चात् बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, एतासामत्रोदयाभावात्।

अनंतानुबंधिचतुष्कस्य स्वोदयपरोदयेन बंधः अध्रुवोदयत्वात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वरयोर्मिथ्यादृष्टौ स्वोदयपरोदयेन बंधः, अपर्याप्तकाले एतासामुदयाभावात्। सासादने स्वोदयेनैव बंधः, तस्यात्रापर्याप्त-कालाभावात्। दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां स्वोदयेनैव बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्रीवेद-

---

अब सातवें नरक में निद्रानिद्रा आदि प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातवें नरक में निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबधंक है ?।।५७।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र का अर्थ कहते हैं — अनंतानुबंधीचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादन गुणस्थान में ही बंध और उदय दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इनका पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंध के व्युच्छिन्न हो जाने पर तत्पश्चात् असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उनके उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। स्त्यानगृद्धि आदि त्रिक, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत इनके पूर्व में या पश्चात् बंधोदय व्युच्छेद होने का विचार नहीं है, क्योंकि यहाँ इनके उदय का अभाव है।

अनंतानुबंधीचतुष्क का स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनका उदय नहीं रहता। सासादन गुणस्थान में स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि इस गुणस्थान का यहाँ अपर्याप्तकाल में

तिर्यग्गति-चतु:संस्थान-चतु:संहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतानां परोदयेनैव बंध:, विस्रसात्वात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यग्गति-तिर्यगत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां निरन्तरो बंध:, अत्र ध्रुवबंधित्वात्, शेषाणां सान्तर:, एक समयेनापि बंधव्युच्छेदोपलंभात्।

प्रत्ययाश्चतु:स्थानप्रकृतिप्रत्ययसमा:।

एता: सर्वा: प्रकृती: तिर्यग्गतिसंयुक्तं नारका: बध्नन्ति। नारका: स्वामिन:। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने चतुर्विधो बंध:, ध्रुवबंधित्वात्। सासादने साद्यध्रुवौ। शेषाणां प्रकृतीनां बंध: सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मिथ्यात्वादिपंचप्रकृतीनां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-तिरिक्खाउ-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।५९।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।६०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्य व्याख्यानं नारकौघ-एकस्थानिकव्याख्यानतुल्यं। विशेषेण तु तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति सप्तमीपृथिवीगतनारका: इति ज्ञातव्यं।**

अभाव है। दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र, इनका स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि ये प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं। स्त्यानगृद्धि आदि तीन, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत इनका परोदय से ही बंध होता है, इसका कारण स्वभाव ही है।

स्त्यानगृद्धित्रिक, अनंतानुबंधीचतुष्क, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र, इनका निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ वे ध्रुवबंधी हैं। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय के द्वारा भी इनका बंध व्युच्छेद पाया जाता है।

प्रत्ययों की प्ररूपणा चतु:स्थानिक प्रकृतियों के समान है।

इन सब प्रकृतियों को तिर्यग्गति से संयुक्त नारकी जीव बांधते हैं। नारकी जीव इनके बंध के स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

स्त्यानगृद्धि आदिक तीन और अनंतानुबंधीचतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। सासादनगुणस्थान में सादि व अध्रुव बंध होता है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब मिथ्यात्व आदि पाँच प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

सातवें नरक में मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन प्रकृतियों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।५९।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का व्याख्यान नरक सामान्य की एकस्थानिक प्रकृतियों के व्याख्यान के तुल्य है। विशेष इतना है कि यहाँ सातवीं पृथिवी में तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं, ऐसा कहना चाहिए।

अधुना मनुष्यगत्यादित्रिप्रकृतिबंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।६१।।

सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।६२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — अत्र बंधादुदयः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्नः इति विचारो नास्ति, एतासामत्रोदयाभावात्। एतासां परोदयेनैव बंधः, नरकगतौ मनुष्यगतेरुदयाभावात्। निरन्तरो बंधः एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः चतुःस्थानिकप्रकृतिप्रत्ययतुल्याः। इमे सप्तमीपृथिवीगतनारकाः सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयो वा मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। नारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। सादि-अध्रुवौ बंधः, अध्रुवबंधित्वात्, सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिनिर्वाणोपगमे नियमाद्वा।

तात्पर्यमेतत् — यद्यपि सप्तमीपृथिवीगतनारकाः मनुष्यगतिद्विकं बध्नन्ति तथापि मनुष्यायुर्बंधाभावात् ते ततो निर्गत्य मनुष्याः न भवन्तीति नियमात् ते तिर्यञ्च एव भवन्ति एतज्ज्ञातव्यं।

एवं तृतीयस्थले सप्तमनरकनारकाणां बंधाबंधव्यवस्थाकथनत्वेनाष्टौ सूत्राणि गतानि।

इति नरकगतौ बंधस्वामित्वप्रतिपादकोऽयं प्रथमोऽन्तराधिकारः।

अब मनुष्यगति आदि तीन प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातवें नरक में मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियों का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।६१।।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ बंध से उदय पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या पश्चात्, यह विचार ही नहीं है क्योंकि इनका यहाँ उदय नहीं है। इनका परोदय से ही बंध होता है क्योंकि नरकगति में इनके उदय का अभाव है। इनका यहाँ बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से इनके बंध का विश्राम नहीं होता। इनके प्रत्यय चतुःस्थानिक प्रकृतियों के प्रत्ययों के समान हैं। ये सातवीं पृथ्वी के नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। यहाँ इनके बंध के नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं अथवा सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों के मुक्तिगमन में नियम होने से भी सादि व अध्रुव बंध होता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि यद्यपि सप्तमी पृथिवी में रहने वाले नारकी मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वी इन दोनों का बंध करते हैं, तथापि उनके मनुष्यायु का बंध नहीं होता है, अतः वे वहाँ से निकल कर मनुष्य नहीं हो सकते हैं, ऐसा नियम है क्योंकि वे सातवें नरक से निकले नारकी तिर्यंच ही होते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार तीसरे स्थल में सातवें नरक के नारकियों के बंधक और अबंधक की व्यवस्था के कथन रूप से आठ सूत्र पूर्ण हुए।

ऐसा यह नरकगति में बंधस्वामित्व को प्रतिपादित करने वाला प्रथम अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

अथ तिर्यग्गत्यां बंधस्वामित्वस्य द्वितीयोऽन्तराधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वादशसूत्रैः तिर्यग्गतौ बंधस्वामित्वं कथ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यतिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिविधानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''तिरिक्खगदीए'' इत्यादिदशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले अपर्याप्तपंचेन्द्रियतिरश्चां बंधस्वामित्वकथनमुख्यत्वेन ''पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका भवति।

अधुना तिर्यग्गतौ ज्ञानावरणादिप्रकृतिबंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-अट्ठकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगदिपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।६३।।

अब तिर्यंचगति में बंधस्वामित्व को कहने वाला दूसरा अन्तराधिकार प्रारंभ होता है

इस अधिकार में दो स्थलों से बारह सूत्रों द्वारा तिर्यंचगति में बंधस्वामित्व को कहते हैं। उसमें पहले स्थल में सामान्य तिर्यंच और तीन भेद वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के बंधस्वामित्व को कहने वाले 'तिरिक्खगदीए' इत्यादि दश सूत्र हैं। पुनः दूसरे स्थल में अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के बंधस्वामित्व के कथन की मुख्यता से 'पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता' इत्यादि दो सूत्र हैं, इस प्रकार यह पातनिका हुई।

अब तिर्यंचगति में ज्ञानावरणादि प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तिर्यंचगति में तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।६३।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।६४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — देवगति-वैक्रियिकद्विक-देवगत्यानुपूर्वि-उच्चगोत्राणां तिर्यक्षूदयाभावात् पूर्वं पश्चात् बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, सत्त्वासत्त्वयोः सन्निकर्षविरोधात्। अवशेषप्रकृतिष्वपि एष विचारो नास्ति, अत्र गतावेतासां बंधोदयव्युच्छेदाभावात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधो, ध्रुवोदयत्वात्। निद्राप्रचला-सातासात-अष्टकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां सर्वस्थानेषु स्वोदयपरोदयौ बंधः। नवरि योनिनीषु पुरुषवेदबंधः परोदयः।

उपघातबंधः मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टीनां स्वोदयपरोदयौ, विग्रहगतावुपघातस्योदया-भावात्।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि-संयतासंयतयोः स्वोदयः एव, तयोरपर्याप्तकालाभावात्।

परघातोच्छ्वासप्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदय-परोदयौ बंधोऽस्ति, एतासां प्रकृतीनां अपर्याप्तकाले उदयाभावात्। शेष द्विगुणस्थाने स्वोदयो बंधः। नवरि योनिनीषु असंयतसम्यग्दृष्टयः एताः प्रकृतीः स्वोदयेनैव बध्नन्ति, तत्रैतस्यापर्याप्तकालाभावात्।

त्रस-बादर-पर्याप्त-पंचेन्द्रियजाति प्रकृतीः मिथ्यादृष्टिः स्वोदयपरोदयेन बध्नाति, प्रतिपक्ष- प्रकृतीनामुदय-

---

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक बंधक हैं ? ये बंधक हैं, अबधंक नहीं हैं।।६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र, इनका तिर्यंचों में उदय न होने से बंध उदय और उनकी व्युच्छित्ति की पूर्वापरता का विचार नहीं है क्योंकि सत्त्व और असत्त्व के सन्निकर्ष का विरोध है। शेष प्रकृतियों में भी यह विचार नहीं है क्योंकि यथार्थरूप से इनके बंधोदय व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर, इनका सब गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। विशेष इतना है कि योनिमती तिर्यंचों में पुरुषवेद का बंध परोदय से होता है। उपघात का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों के स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि विग्रहगति में उपघात का उदय नहीं होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और संयतासंयतों के स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि उनके अपर्याप्तकाल का अभाव है। परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि इन प्रकृतियों का अपर्याप्तकाल में उदय नहीं होता। शेष दो गुणस्थानों में स्वोदय बंध होता है। विशेषता यह है कि योनिमतियों में असंयतसम्यग्दृष्टि जीव इन्हें स्वोदय से ही बांधता है क्योंकि योनिमतियों के अपर्याप्तकाल में असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान का अभाव है। त्रस, बादर, पर्याप्त और पंचेन्द्रियजाति, इनको मिथ्यादृष्टि जीव स्वोदय-परोदय से बांधता है

संभवात्। अवशेषाः स्वोदयेनैव, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनामुदयाभावात्। पंचेन्द्रियतिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्त-पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु स्वोदयेनैव सर्वगुणस्थानेषु बंधः, अत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनामुदयाभावात्। विशेषेण—पंचेन्द्रियतिर्यक्षु मिथ्यादृष्टीनां पर्याप्तप्रकृतेः स्वोदयपरोदयो बंधः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतेरुदयसंभवात्।

सुभग-आदेय-यशःकीर्तीणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषुबंधः स्वोदयपरोदयः, अत्र प्रतिपक्षोदयदर्शनात्। संयतासंयतेषु स्वोदयश्चैव, तत्र प्रतिपक्षाणामुदयाभावात्।

मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु अयशःकीर्तेबंधः स्वोदयपरोदयः, अत्र प्रतिपक्षोदयदर्शनात्। संयतासंयतेषु परोदयः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतेश्चैवोदयदर्शनात्।

देवद्विक-वैक्रियिकद्विक-उच्चगोत्राणां परोदयो बंधः, एतेषां कर्मणामत्रउदयविरोधात्।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-अष्टकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण शरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधो, ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेदस्य मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सान्तरो निरन्तरश्च बंधः, पद्मशुक्ललेश्ययोर्निरन्तरबंधदर्शनात्। शेषगुणस्थानेषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। पंचेन्द्रिय-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां बंधो मिथ्यादृष्टौ सान्तर-निरन्तरः, तेजः-पद्म-शुक्ललेश्येषु निरन्तरबंधदर्शनात्। शेषोपरमगुणस्थानेषु निरन्तरः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। समचतुरस्रसंस्थानस्य बंधो मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरः, असंख्यातवर्षायुष्केषु तेजः पद्मशुक्ललेश्यिक-संख्यातवर्षायुष्केषु च निरन्तरबंधदर्शनात्। उपरिमगुणस्थानेषु निरन्तरः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। शेष गुणस्थानवर्ती स्वोदय से ही बांधते हैं क्योंकि उन गुणस्थानों में प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में स्वोदय से ही सब गुणस्थानों में बंध होता है क्योंकि इनमें प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टियों के पर्याप्त प्रकृति का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति का उदय संभव है।

सुभग, आदेय और यशकीर्ति का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यक्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में प्रतिपक्ष प्रकृतियों का उदय देखा जाता है। संयतासंयतों में इनका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में अयशकीर्ति का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति का भी उदय देखा जाता है। संयतासंयतों में उसका परोदय बंध होता है क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृति का ही उदय देखा जाता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र, इनका परोदय बंध होता है क्योंकि तिर्यंचों में इनके उदय का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरंतर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति, इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर व निरन्तर बंध होता है क्योंकि पद्म और शुक्ललेश्या वाले जीवों में निरन्तर बंध देखा जाता है। शेष गुणस्थानों में निरन्तर बंध होता है क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों के

परघातोच्छ्वासयोः मिथ्यादृष्टौ सान्तर निरन्तरो बंधः, अपर्याप्तसंयुक्तबंधाभावात् तेजः-पद्म-शुक्ललेश्येषु संख्यातवर्षायुष्केषु असंख्यातवर्षायुष्केषु च निरन्तरबंधदर्शनात्। उपरिमगुणस्थानेषु निरन्तरो बंधः, तत्रापर्याप्तस्य बंधाभावात्।

प्रशस्तविहायोगतिप्रकृतेः मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तर-निरन्तरः, शुभत्रिकलेश्यावत्सु संख्यातासंख्यात-वर्षायुष्केषु निरन्तरबंधदर्शनात्। उपरिमगुणस्थानेषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। शुभ-सुस्वर-आदेयानां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तर-निरन्तरः, शुभत्रिकलेश्यासहित-संख्यातासंख्यातवर्षायुष्केषु निरन्तरबंधदर्शनात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सान्तरनिरन्तरः बंधः, शुभत्रिक-लेश्यिक-संख्यातासंख्यातवर्षायुष्केषु निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरो बंधः।

तिर्यक्षु मिथ्यादृष्टीनां मूलप्रत्ययाश्चत्वारः। उत्तरप्रत्ययास्त्रिपंचाशत्, वैक्रियिकद्विकप्रत्ययानामभावात्। नवरि देवगतिचतुष्कस्य एकपंचाशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानामभावात्। एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्यया दश अष्टादश। सासादनस्य मूलप्रत्ययास्त्रयः उत्तरप्रत्यया अष्टचत्वारिंशत्।

बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि तेज, पद्म और शुक्ललेश्या वाले जीवों में इनका निरन्तर बंध देखा जाता है। शेष उपरिम गुणस्थानों में निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। समचतुरस्रसंस्थान का बंध मिथ्यादृष्टि संख्यातवर्षायु वाले और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क और तेज, पद्म एवं शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंचों के इन गुणस्थानों में निरन्तर बंध देखा जाता है। उपरिम गुणस्थानों में उसका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। परघात और उच्छ्वास प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध देखा जाता है क्योंकि अपर्याप्त के बंध से संयुक्त इनके बंध का अभाव होने से तेज, पद्म एवं शुक्ल लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्कों में निरन्तर बंध देखा जाता है। उपरिम गुणस्थानों में दोनों प्रकृतियों का निरंतर बंध होता है क्योंकि उनमें अपर्याप्त के बंध का अभाव है।

प्रशस्तविहायोगति का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि शुभ तीन लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्कों में निरंतर बंध देखा जाता है। उपरिम गुणस्थानों में उसका निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्षी प्रकृति के बंध का अभाव है। शुभ, सुस्वर और आदेय प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि शुभ तीन लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्कों में निरंतर बंध देखा जाता है। ऊपर निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि शुभ तीन लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्क और असंख्यातवर्षायुष्कों में निरंतर बंध पाया जाता है। ऊपर निरंतर बंध होता है।

तिर्यंचों में मिथ्यादृष्टियों के मूल प्रत्यय चार होते हैं। उत्तर प्रत्यय तिरेपन होते हैं क्योंकि यहाँ वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र प्रत्ययों का अभाव है। विशेष इतना है कि देवगतिचतुष्क के इक्यावन प्रत्यय होते हैं क्योंकि वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। एक समयसंबंधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से दश और अठारह होते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि के मूल प्रत्यय तीन और उत्तर प्रत्यय

वैक्रियिकचतुष्कस्य षट्चत्वारिंशत् पूर्वोक्तानां चैवाभावात्। एकसमयजघन्योत्कृष्टप्रत्यया दश सप्तदश।

सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योः मूलौघप्रत्यया एव। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वैक्रियिककाययोगः असंयतसम्यग्दृष्टौ वैक्रियिकद्विकयोगः अपनेतव्यः। संयतासंयते ओघप्रत्यया एव। एवं चतुर्विधानां तिरश्चां प्रत्ययप्ररूपणा कृता। नवरि पंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु पुरुषनपुंसकप्रत्ययौ अपनेतव्यौ। असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ अपनेतव्यौ।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-अष्टकषाय-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येक शरीर-निर्माण-पञ्चान्तरायाणां मिथ्यादृष्टिः चतुर्गतिसंयुक्तानां बंधं करोति। सासादनः नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तानां बंधकाः, शेषा देवगतिसंयुक्तानां बंधकाः सन्ति।

सातावेदनीय-हास्य-रतीः मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। एवं यशःकीर्तिमपि बध्नन्ति, विशेषाभावात्। असातावेदनीय-अयशःकीर्तिप्रकृती मिथ्यादृष्टिः चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनः त्रिगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं। पुरुषवेदं मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयानामेवं चैव वक्तव्यं।

देवगतिद्विकं सर्वे देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। वैक्रियिकद्विकं मिथ्यादृष्टिः देवनरकगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं। स्थिरशुभयोः सातावेदनीयवद्भंगः। अस्थिराशुभयोः असातावत्। उच्चगोत्रं मिथ्यादृष्टिः

अड़तालीस होते हैं। वैक्रियिकचतुष्क के मूल प्रत्यय छ्यालिस होते हैं क्योंकि पूर्वोक्त प्रत्ययों का ही अभाव रहता है। एक समयसंबंधी जघन्य व उत्कृष्ट प्रत्यय क्रम से दश और सत्रह होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि के मूलोघ प्रत्यय ही होते हैं। विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में वैक्रियिककाययोग और असंयतसम्यग्दृष्टि में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र योगों को कम करना चाहिए। संयतासंयत गुणस्थान में ओघ प्रत्यय ही होते हैं। इस प्रकार चार प्रकार के तिर्यंचों के प्रत्ययों की प्ररूपणा की है। विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्यय कम करना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, आठ कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय, इन प्रकृतियों के मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त और शेष जीव देवगति से संयुक्त बंधक हैं। सातावेदनीय, हास्य और रति को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त तथा शेष जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। इसी प्रकार यशकीर्ति को भी बांधते हैं क्योंकि इसके कोई विशेषता नहीं है। असातावेदनीय और अयशकीर्ति को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादन तीन गतियों से संयुक्त और शेष जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। पुरुषवेद को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त और शेष जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय प्रकृतियों का गति संयोग भी इसी प्रकार कहना चाहिए। देवगति और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को सब देवगति से संयुक्त बांधते हैं। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग को मिथ्यादृष्टि देव व नरकगति से

सासादनश्च देव-मनुष्यगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

उपर्युक्तसर्वासां प्रकृतीनां बंधस्य तिर्यञ्चः एव स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-अष्टकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरु-लघुक-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, शेषेषु त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां सादिरध्रुवश्च ज्ञातव्यः।

संप्रति सामान्यतिर्यक्त्रिविधपंचेन्द्रियतिर्यग्जीवानां बंधस्वामित्वविचये निद्रानिद्रादि-एकत्रिंशत्प्रकृतीनां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-चउसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।६५।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।६६।।

संयुक्त तथा शेष देवगति से संयुक्त बांधते हैं। स्थिर और शुभ प्रकृतियों का गतिसंयोग सातावेदनीय के समान है। अस्थिर और अशुभ प्रकृतियों का गतिसंयोग असातावेदनीय के समान है। उच्चगोत्र को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष तिर्यंच देवगति से संयुक्त बांधते हैं।

सब प्रकृतियों के बंध के तिर्यंच ही स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, आठ कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में चारों प्रकार का बंध होता है। शेष गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि उनमें ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है, ऐसा जानना चाहिए।

अब सामान्य तिर्यंच और तीन प्रकार के पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के बंधस्वामित्वविचय में निद्रानिद्रा आदि इकतीस प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय व नीचगोत्र, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।६५।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।६६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतेन सूचितार्थाणां प्ररूपणा क्रियते—**

स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्रीवेद-तिर्यगायु:-तिर्यग्गति-औदारिकशरीर-चतु:संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-पंचसंहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दु:स्वर-नीचगोत्राणां तिर्यग्गतावुदयव्युच्छेदो नास्ति, सासादने बंधव्युच्छेदश्चैव। नवरि तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृते: पूर्वं बंधो व्युच्छिन्न: पश्चादुदय:, असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेदात्। अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादनसम्यग्दृष्टिचरमसमये उदयव्युच्छेद-दर्शनात्। मनुष्यायु:-मनुष्यद्विकस्य तिर्यग्गतावुदय एव नास्ति, विरोधात्। तेनैतासां बंधोदययो: पूर्वं पश्चात् व्युच्छेदविचारो नास्ति। दुर्भगानादेययो: पूर्वं बंधो व्युच्छिद्यते पश्चादुदय:, सासादने व्युच्छिन्नबंधानां असंयत-सम्यग्दृष्टावुदयव्युच्छेददर्शनात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-चतु:संस्थान-पंचसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दु:स्वर-अनादेयानां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंध:, नवरि तिर्यग्योनिनीषु स्त्रीवेदस्य स्वोदयेनैव बंध:। तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिनीचगोत्राणां स्वोदयेनैव बंध:। मनुष्यायुर्मनुष्यगतिद्विकानां परोदयेनैव बंध:। औदारिकशरीर-औदारिकांगोपांगयो: स्वोदयपरोदयाभ्यां बंध:, विग्रहगतावुदयाभावात्। तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-प्रकृतेरपि स्वोदयपरोदयाभ्यां बंध:, विग्रहगत्या विनान्यत्रोदयाभावात् ।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंध:, ध्रुवबंधित्वात्। स्त्रीवेद-मनुष्यगति-चतु:संस्थान-पंचसंहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दु:स्वर-अनादेयानां सान्तरो बंध:,

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसके द्वारा सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं—स्त्यानगृद्धि आदिक तीन, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरोंगांग, पाँच संहनन, तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुस्वर और नीचगोत्र, इनका तिर्यग्गति में उदय व्युच्छेद नहीं है, सासादनगुणस्थान में केवल बंधव्युच्छेद ही है। विशेष इतना ही है कि तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है पश्चात् उदय, क्योंकि (सासादनगुणस्थान में बंध के नष्ट हो जाने पर तत्पश्चात्) असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद होता है। अनंतानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि के चरम समय में दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का तिर्यग्गति में उदय ही नहीं है क्योंकि वहाँ इनके उदय का विरोध है। इसी कारण इनके बंध और उदय पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने का विचार नहीं है। दुर्भग और अनादेय का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है पश्चात् उदय, क्योंकि सासादनगुणस्थान में इनके बंध के नष्ट हो जाने पर असंयतसम्यग्दृष्टि में उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

स्त्यानगृद्धि आदिक तीन, अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है किन्तु विशेष इतना है कि तिर्यंच योनिमतियों में स्त्रीवेद का स्वोदय से ही बंध होता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति और नीचगोत्र का स्वोदय से ही बंध होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय से बंध होता है। औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में इनका उदय नहीं रहता। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का भी स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि विग्रहगति को छोड़कर अन्यत्र उसके उदय का अभाव है।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का निरंतर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। स्त्रीवेद, मनुष्यगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर

एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यगायुर्मनुष्यायुषोर्निरन्तरो बंधः, जघन्येनापि एकसमयबंधानुपलंभात्। तिर्यग्गतिद्विक-औदारिकद्विक-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरः, तेजोवायुकायिकानां तेजष्कायिकानां तेजोवायुकायिक-सप्तमपृथिवीनारकेभ्य आगत्य पंचेन्द्रियतिर्यक्-तत्पर्याप्तयोनिनीषु उत्पन्नानां सनत्कुमारादिदेव-नारकेभ्य तिर्यक्षूत्पन्नानानां च निरन्तरबंधदर्शनात्। नवरि सासादने सान्तरश्चैव, तस्य तेजोवायुकायिकेषु अभावात् सप्तमपृथिव्याः तद्गुणस्थानेन निर्गमनाभावाच्च। औदारिकद्विकस्य सान्तर-निरन्तरो बंधो भवति।

एतासां प्रत्ययाः सर्वगुणस्थानेषु पंचस्थानिकप्रकृतिप्रत्ययैस्तुल्याः। नवरि तिर्यग्मनुष्यायुषोः मिथ्यादृष्टौ कार्मणप्रत्ययो नास्ति। पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तपंचेन्द्रियतिर्यग्योनिनीषु औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ न स्तः। चतुर्विधेषु तिर्यक्षु सासादने औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ न स्तः, अपर्याप्तकाले तस्यायुर्बंधाभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानां मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं बंधकः। स्त्रीवेदं नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, मनुष्यायुर्मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृतेः मनुष्यगतिसंयुक्तं, तिर्यगायुः-तिर्यग्गत्यानुपूर्विउद्योतानि तिर्यग्गतिसंयुक्तं, औदारिकशरीर-चतुःसंस्थान-औदारिकांगोपांग-पंचसंहनन-तिर्यग्मनुष्य-गतिसंयुक्तं, अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि देवगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

एतासां प्रकृतीनां बंधस्य तिर्यञ्चः स्वामिनः।

बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

और अनादेय इनका सान्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम देखा जाता है। तिर्यगायु और मनुष्यायु का निरंतर बंध होता है क्योंकि जघन्य से भी इनका एक समय बंध नहीं पाया जाता। तिर्यग्गति, औदारिकद्विक, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र, इनका सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि तेजस्कायिक व वायुकायिकों के तथा तेजस्कायिक, वायुकायिक व सप्तम पृथिवी के नारकियों में से आकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच और उसके पर्याप्त व योनिनियों में उत्पन्न हुए जीवों के और सनत्कुमारादि देव व नारकियों में से आकर तिर्यंचों में उत्पन्न हुए जीवों के इनका निरंतर बंध देखा जाता है। विशेषता यह है कि सासादन गुणस्थान में सान्तर ही बंध होता है क्योंकि वह गुणस्थान तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में नहीं होता है तथा सप्तम पृथिवी से इस गुणस्थान के साथ निर्गमन भी नहीं होता। औदारिकद्विक का सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

इन प्रकृतियों के प्रत्यय सब गुणस्थानों में पंचस्थानिक प्रकृतियों के समान हैं। विशेषता केवल यह है कि तिर्यगायु और मनुष्यायु का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में कार्मण प्रत्यय नहीं होता। पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिनियों में औदारिकमिश्र व कार्मण प्रत्यय नहीं होते। चार प्रकार के तिर्यंचों में सासादनगुणस्थान में औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्यय नहीं होते क्योंकि अपर्याप्तकाल में उसके आयु का बंध नहीं होता।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनंतानुबंधिचतुष्क के मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त और सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बंधक हैं। स्त्रीवेद को नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त, मनुष्यायु और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को मनुष्यगति से संयुक्त, तिर्यगायु, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यंचगति से संयुक्त, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग और पाँच संहनन को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं। इन प्रकृतियों के बंध के तिर्यंच स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बन्धविनष्टस्थान सुगम हैं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधः, अनादिध्रुवाभावात्। शेषप्रकृतीनां बंधः सादि-अध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।६७।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।६८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका —**एतस्यार्थः उच्यते — मिथ्यात्व-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणाणां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, मिथ्यादृष्टिं मुक्त्वा एतासां उपरिमेषु उदयाभावात्। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानां बंधव्युच्छेदश्चैव नोदयस्य, सर्वगुणस्थानेषूदयदर्शनात्। नरकायुः-नरकगत्यानुपूर्विप्रकृत्योः तिर्यग्गतावुदयाभावात् पूर्वं पश्चात् बंधोदयव्यु-च्छेदविचारो नास्ति।**

मिथ्यात्वस्य स्वोदयेनैव,नारकायु-र्नरकगतिद्विकानां परोदयेनैव, शेषाणां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादनगुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ अनादि और ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकाशरीरसंहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आताप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।६७।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष तिर्यंच अबंधक हैं।।६८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — इसका अर्थ कहते हैं — मिथ्यात्व, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इनका बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थान को छोड़कर उपरिम गुणस्थानों में इन प्रकृतियों के उदय का अभाव है। नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन इनके बंध का ही व्युच्छेद है, उदय नहीं क्योंकि सब गुणस्थानों में इनका उदय देखा जाता है। नरकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का तिर्यग्गति में उदय न होने से इनके पूर्व या पश्चात् बन्धोदयव्युच्छेद होने का विचार नहीं है।

मिथ्यात्व का स्वोदय से ही, नरकायु और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय से ही तथा शेष प्रकृतियों का

नवरि पंचेन्द्रियतिर्यक्त्रिकेषु एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणाणां अपि परोदयेन बंधः। पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तयोनिनीषु अपर्याप्तस्य परोदयेन बंधः। योनिनीषु नपुंसकवेदस्य परोदयेन बंधः।

मिथ्यात्व-नरकायुषोः निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधस्योपरमाभावात्। शेष प्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-नरकद्विक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणाणां त्रिपंचाशत्प्रत्ययाः।योनिनीषु एकपंचाशत्प्रत्ययाः। नरकायुषः तिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु एकपंचाशत्प्रत्ययाः। पंचेन्द्रियतिर्यक्योनिनीषु एकोनपंचाशत्प्रत्ययाः।

मिथ्यात्वं चतुर्गतिसंयुक्तं, नपुंसकवेद-हुंडसंस्थाने त्रिगतिसंयुक्ते, नरकायुर्नरकगतिद्विकानि नरकगतिसंयुक्तं, एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानि तिर्यग्गतिसंयुक्तं, असंप्राप्तसृपाटिकासंहननमपर्याप्तं च तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं मिथ्यादृष्टिर्बध्नाति।

एतासां प्रकृतीनां बंधस्य तिर्यञ्चः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

मिथ्यात्वस्य सादिरनादिर्ध्रुवोऽध्रुवश्चेति चतुर्विधो बंधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अपच्चक्खाणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?।।६९।।

स्वोदय-परोदय से बंध होता है। विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियादिक तीन प्रकारके तिर्यंचों में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण प्रकृतियों का भी परोदय से बंध होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच और योनिमतियों में अपर्याप्त का परोदय से बंध होता है। योनिनियों में नपुंसकवेद का परोदय से बंध होता है।

मिथ्यात्व और नारकायु का निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम नहीं होता। शेष प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से इनके बंध का विश्राम देखा जाता है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इनके तिरेपन प्रत्यय होते हैं। योनिमतियों में इक्यावन प्रत्यय होते हैं। नरकायु के तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तों में इक्यावन प्रत्यय होते हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियों में उनंचास प्रत्यय होते हैं।

मिथ्यादृष्टि तिर्यंच मिथ्यात्व को चारों गतियों से संयुक्त, नपुंसकवेद व हुण्डकसंस्थान को तीन गतियों से संयुक्त, नरकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को नरकगति से संयुक्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इनको तिर्यग्गति से संयुक्त तथा असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और अपर्याप्त को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। इन प्रकृतियों के बंध के तिर्यंच स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बन्धविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का सादिक, अनादिक, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब अप्रत्याख्यानचतुष्क के बंधक और अबंधक के निरूपण के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।६९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।७०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतेन संगृहीतार्थानां प्रकाशः क्रियते—एतासां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, द्वयोरसंयतसम्यग्दृष्टौ विनाशोपलंभात्। स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्।**

प्रत्ययाः तिरश्चां पंचस्थानिकप्रकृतिप्रत्ययैस्तुल्याः।

मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिर्देवगतिसंयुक्तं बध्नाति। तिर्यञ्चः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, शेषगुणस्थानेषु त्रिविधः, ध्रुवाभावात्।

देवायुर्बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।७१।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।७२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र बंधोदययोः पूर्वं पश्चात् व्युच्छेदविचारो नास्ति, तिर्यग्गतौ देवायुषः उदयाभावात्। परोदयेन बंधः, बंधोदययोरक्रमेणास्तित्व विरोधात्। निरंतरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।**

तिर्यक्सामान्य-पंचेन्द्रियतिर्यक्-पंचेन्द्रियतिर्यक्पर्याप्तकेषु मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिरसंयतसम्यग्दृष्टिः

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।७०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र के द्वारा संग्रहीत अर्थों का प्रकाश करते हैं—इन चारों प्रकृतियों का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दोनों का विनाश पाया जाता है। इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। निरंतर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। इनके प्रत्यय तिर्यंचों के पंचस्थानिक प्रकृतियों के समान हैं। मिथ्यादृष्टि तिर्यंच इन्हें चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति से संयुक्त बांधते हैं। तिर्यंच जीव इनके स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। शेष गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध है क्योंकि उनमें ध्रुवबंध का अभाव है।

देवायु के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देवायु का बंधक कौन और अबंधक कौन है ?।।७१।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष तिर्यंच अबंधक हैं।।७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ बंध और उदय का पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने का विचार नहीं है क्योंकि तिर्यग्गति में देवायु के उदय का अभाव है। देवायु का परोदय से बंध होता है क्योंकि उसके बंध और उदय दोनों के एक साथ अस्तित्व का विरोध है। बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से बंधविश्राम का अभाव है। तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंच और पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकों में मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि,

संयतासंयतश्चैतेषां यथाक्रमेण एकपंचाशत्-षट्चत्वारिंशत्-द्विचत्वारिंशत्-सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः भवन्ति। योनिनीषु एकोनपंचाशत्-चतुश्चत्वारिंशत्-चत्वारिंशत्-पंचत्रिंशत्प्रत्यया भवन्ति। शेषं सुगमं।

सर्वे देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। तिर्यञ्चः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। देवायुषो बंधः सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

एवं चतुर्विधतिर्यक्षु बंधाबंधव्यवस्थाप्रतिपादनत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

अधुना पंचेन्द्रियलब्ध्यपर्याप्ततिरश्चां बंधाबंधकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुस्साउ-तिरिक्खगइ-मणुस्सगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी- अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।७३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों के यथाक्रम से इक्यावन, छ्यालीस, बयालीस और सैंतीस प्रत्यय होते हैं। योनिमतियों में उनंचास, चवालीस, चालीस और पैंतीस प्रत्यय होते हैं। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

सब तिर्यंच देवायु को देवगति से संयुक्त बांधते हैं। तिर्यंच स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। देवायु का बंध सर्वत्र सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

इस प्रकार चार प्रकार के तिर्यंचों में बंधक-अबंधक की व्यवस्था को कहते हुए दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंचों के बंधक-अबंधक का कथन करने केलिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों में पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक शरीर, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है।।७३।।

सव्वे एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।७४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**स्त्यानगृद्धित्रिक-मनुष्यायु-र्मनुष्यगति-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-हुंडसंस्थानविरहितपंचसंस्थान-सृपाटिकासंहननरहित पंचसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-आतप-उद्योत-द्विविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्र-स्त्री-पुरुषवेदानामपर्याप्तकेषूदयाभावात् अवशेषाणां प्रकृतीनामुदय व्युच्छेदाभावात् पूर्वं पश्चाद् बंधोदयव्युच्छेद-विचारो नास्ति।**

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-तिर्यगायुस्तिर्यग्गति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुकलघु-त्रस-बादर-अपर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माण-पञ्चान्तराय-नीचगोत्राणां स्वोदयेनैव बंधः। निद्रा-प्रचला-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषायाणां स्वोदयपरोदयाभ्यामेव बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। औदारिकशरीर-हुंडसंस्थान-औदारिकांगोपांग-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-उपघात-प्रत्येकशरीराणां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, विग्रहगतावेतासां उदयाभावात्। तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृतेरपि स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, विग्रहगतौ एवोदयात्। अन्यप्रकृतीनां परोदयेनैव बंधः, अत्र नास्तिसमुदयाभावात्।

पंचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यायुः-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्, एकसमयेन बंधोपरमाभावाच्च। तिर्यग्द्विक-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरो बंधः, तैजस्कायिक-वायुकायिकेभ्यः

ये सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—स्त्यानगृद्धित्रय, मनुष्यायु, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान से रहित पांच संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन से रहित पाँच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र, स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इनका अपर्याप्तों में उदय न होने से तथा शेष प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद न होने से यहाँ बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने का विचार नहीं है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण, पाँच अन्तराय और नीचगोत्र, इनका स्वोदय से ही बंध होता है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय और छह नोकषाय, इनका स्वोदय-परोदय से ही बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिका-संहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इनका स्वोदय-परोदय से ही बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का भी स्वोदय-परोदय से ही बंध होता है क्योंकि उसका विग्रहगति में ही उदय रहता है। अन्य प्रकृतियों का परोदय से ही बंध होता है क्योंकि यहाँ उनके उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं तथा एक समय में इनका बंध विश्राम भी नहीं

पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेषूत्पन्नानामन्तर्मुहूर्तकालं निरन्तरं बंधोपलंभात्, अन्यत्र सान्तरत्वदर्शनात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमोपलंभात्।

अत्र सर्वकर्मणां द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकद्विक-स्त्री-पुरुषवेद-औदारिकयोग-मनोवचनयोगानामभावात्। नवरि तिर्यगायुर्मनुष्यायुषोः एकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, कार्मणकाययोगेन सह चतुर्दशानां प्रत्ययानामभावात्। शेषं सुगमं।

तिर्यगायुस्तिर्यग्गति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-आताप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मनुष्यत्रिक-उच्चगोत्राणि मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, स्वाभाविकात्। अवशेषाः प्रकृतीः तिर्यग्गति-मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। सर्वासां प्रकृतीनां बंधस्य तिर्यञ्चः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

पंचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

एवं द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतं।

इति बंधस्वामित्वविचये तिर्यग्गतिनाम
द्वितीयोऽन्तराधिकारः समाप्तः।

होता। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में से पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका निरंतर बंध पाया जाता है तथा अन्यत्र सान्तर बंध देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में उनके बंध का विश्राम पाया जाता है।

यहाँ सब कर्मों के बयालीस प्रत्यय हैं क्योंकि वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र,स्त्रीवेद, पुरुषवेद, औदारिककाययोग, चार मन और चार वचन योग प्रत्ययों का अभाव है। विशेषता यह है कि तिर्यगायु और मनुष्यायु के इकतालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि कार्मणकाययोग के साथ यहाँ चौदह प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, ये प्रकृतियाँ तिर्यंचगति से संयुक्त बंधती हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियाँ मनुष्यगति से संयुक्त बंधती हैं, इसका कारण स्वभाव ही है। शेष प्रकृतियाँ तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बंधती हैं। सब प्रकृतियों के बंध के तिर्यंच स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बन्धविनष्टस्थान सुगम हैं। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका चारों प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। अवशेष प्रकृतियों का सादि और अध्रुव बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवबंधी हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों के बंधस्वामित्व को कहने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस बंधस्वामित्वविचय में तिर्यंचगति नाम वाला
यह द्वितीय अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

अथ मनुष्यगति-अन्तराधिकारः

अथ स्थलद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां मनुष्यगतिअधिकारः कथ्यते। तत्र प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''मणुस्सगदीए'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''मणुस-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका भवति।

संप्रति त्रिविधमनुष्याणां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतार्यते —

मणुस्सगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरेत्ति। णवरि विसेसो, बेट्ठाणी अपच्चक्खाणावरणीयं जधा पंचिंदियतिरिक्खभंगो।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतस्यार्थ उच्यते—ओघे—गुणस्थाने यासां प्रकृतीनां ये बंधकाः प्ररूपितास्ते चैव तासां प्रकृतीनां बंधका अत्रापि भवन्तीति ओघमिति उक्तं। सर्वगुणस्थानेषु ओघत्वे संप्राप्ते तन्निषेधार्थं द्विस्थानिकप्रकृतीनां अप्रत्याख्यानावरणीयस्य च पंचेन्द्रियतिर्यग्वत् भंग इति प्ररूपितं। एतेन देशामर्शकेन सूचितार्थप्ररूपणं करिष्यामः।**

तद्यथा—पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-यशःकीर्ति-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां गुणस्थानगतबंध-स्वामित्वेन, बंधोदययोः पूर्वं पश्चाद् व्युच्छेदविचारेण, स्वोदय-परोदय-सान्तर-निरन्तरबंधविचारणायां,

---

मनुष्यगति-अन्तराधिकार

अब दो स्थलों से दो सूत्रों द्वारा मनुष्यगति अधिकार कहते हैं—यहाँ प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाला ''मणुस्सगदीए'' इत्यादि एक सूत्र है। अनंतर द्वितीय स्थल में लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने वाला ''मणुस'' इत्यादि एक सूत्र है, इस प्रकार से यह समुदायपातनिका है।

अब तीन प्रकार के मनुष्यों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए एक सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

मनुष्यगति में मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त एवं मनुष्यिनियों में तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान जानना चाहिए। विशेषता इतनी है कि द्विस्थानिक प्रकृतियों और अप्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के समान है।।७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—ओघ—गुणस्थान में जिनप्रकृतियों के जो बंधक कहे गये हैं, वे ही उन प्रकृतियों के बंधक यहाँ भी हैं, इसीलिए सूत्र में 'ओघ के समान'' ऐसा कहा है। सब स्थानों में ओघत्व के प्राप्त होने पर उसके निषेधार्थ ''द्विस्थानिक प्रकृतियों और अप्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के समान है'' ऐसा कहा है। इस देशामर्शक सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं।

वह इस प्रकार है—पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका गुणस्थानगत बंधस्वामित्व, बंध और उदय का पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने का विचार, स्वोदय-परोदय बंध का विचार, सान्तर-निरन्तर बंध का विचार, बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान तथा सादि आदि बंध

बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च साद्यादिविचारेष्वपि ओघाद् नास्ति भेदः। यत्रास्ति भेदस्तद् प्ररूपयामः—

मनुष्येषु मिथ्यादृष्टेस्त्रिपंचाशत्प्रत्ययाः, सासादने अष्टचत्वारिंशत्, सम्यग्मिथ्यादृष्टौ द्विचत्वारिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टौ चतुश्चत्वारिंशत् भवन्ति, वैक्रियिकद्विकाभावात्।

मानुषीषु एवं चैव, विशेषेण तु आसां सर्वगुणस्थानेषु पुरुष-नपुंसकवेदौ न स्तः, असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिकमिश्र-कार्मणशरीरे, अप्रमत्ते आहारद्विकं च न स्तः।

मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं मनुष्यगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति। नवरि मिथ्यादृष्टय सासादनाश्च उच्चगोत्रं नरकतिर्यग्गती च मुक्त्वा द्विगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। यशःकीर्तिं नरकगतिं मुक्त्वा त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धि-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यगायुर्मनुष्यायुः-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-औदारिकशरीर-चतुःसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-पंचसंहनन-तिर्यग्गति-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि इत्येताः अत्र द्विस्थानिकप्रकृतयः। ओघ द्विस्थानप्रकृतिभ्यः येन मनुष्यायुः-मनुष्यद्विक-औदारिकद्विक-वज्रऋषभसंहननैरधिकास्तेन पंचेन्द्रियतिर्यग्द्वि-स्थानप्रकृतिवत्-प्ररूपणा ज्ञातव्या।

अत्र स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्रीवेद-मनुष्यायुः मनुष्यगति-औदारिकशरीर-चतुःसंस्थान-औदारिकांगोपांग-पंचसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः। अनंतानुबंधिचतुष्क बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, सासादने द्वयोर्व्युच्छेददर्शनात्। तिर्यक्त्रिक-उद्योतप्रकृतीनां

के विचारों में भी ओघ से कोई भेद नहीं है। जहाँ भेद है, उसे कहते हैं—मनुष्यों में मिथ्यादृष्टि में तिरेपन प्रत्यय, सासादन में अड़तालीस, सम्यग्मिथ्यादृष्टि में बयालीस और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चवालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि उक्त जीवों में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र प्रत्यय नहीं होते। मनुष्यिनियों में इसी प्रकार प्रत्यय होते हैं। विशेष इतना है कि इनके सब गुणस्थानों में पुरुष व नपुंसकवेद, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकमिश्र व कार्मण तथा अप्रमत्तगुणस्थान में आहारकद्विक प्रत्यय नहीं होते। मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त और उपरिम जीव देवगति से संयुक्त व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। इतनी विशेषता है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव उच्चगोत्र को, नरकगति और तिर्यंचगति को छोड़कर दो गति से संयुक्त बांधते हैं। यश को, नरकगति को छोड़कर तीन गति से संयुक्त बांधते हैं।

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, ये यहाँ द्विस्थानिक प्रकृतियाँ हैं। ओघद्विस्थान प्रकृतियों से चूँकि यहाँ मनुष्यायु, मनुष्यगति,मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन प्रकृतियों से अधिक हैं अतएव पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की द्विस्थान प्रकृतियों के समान प्ररूपण कहा है, ऐसा कहा है।

यहाँ स्त्यानगृद्धित्रय, स्त्रीवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय, इनका पूर्व में बंधव्युच्छिन्न होता है, पश्चात् उदय। अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं

मनुष्येषूदयाभावात् बंधोदययोः पूर्वं पश्चात् व्युच्छेदविचारो नास्ति। नीचगोत्रस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, बंधे सासादने नष्टे सति पश्चात् संयतासंयते उदयव्युच्छेददर्शनात्।

मनुष्यायुर्मनुष्यगती स्वोदयेनैव बध्नीतः। तिर्यग्गतित्रिक-उद्योतानां परोदयेनैव, मनुष्येषु एतासामुदयाभावात्। अवशेषाःप्रकृतयः स्वोदय-परोदयाभ्यां बध्नन्ति, अध्रुवोदयत्वात् कासां विग्रहगतावुदयाभावात् कासां च तत्रोदयात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। तिर्यगायुर्मनुष्यायुषोरपि निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। मनुष्यद्विक-औदारिकद्विकानां सान्तर-निरंतरः, सर्वत्र सान्तरस्य एतासां बंधस्यानतादि देवेभ्यः मनुष्येषूत्पन्नानामन्तर्मुहूर्तकालं निरन्तरत्वोपलंभात्। अवेशषाः सान्तरं बध्यन्ते एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

एतासां प्रत्यया द्वयोरपि गुणस्थानयोः तिर्यग्-द्विस्थानिकप्रकृतिप्रत्ययैस्तुल्याः।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कं च मिथ्यादृष्टिः चतुर्गतिसंयुक्तं, स्त्रीवेदं द्वावपि मिथ्यादृष्टिसासादनौ नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, तिर्यक्त्रिक-उद्योतप्रकृतीः तिर्यग्गतिसंयुक्तं, मनुष्यत्रिकं मनुष्यगतिसंयुक्तं, औदारिकद्विक-चतुःसंस्थान-पंचसंहननानि तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि देवगत्या विना मिथ्यादृष्टिस्त्रिगतिसंयुक्तं, सासादनस्तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नाति।

क्योंकि सासादन गुणस्थान में दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत, इनका चूँकि मनुष्यों में उदय होता नहीं है अतः इनके बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने का यहाँ विचार नहीं है। नीचगोत्र का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादन में बंध के नष्ट हो जाने पर पश्चात् संयतासंयत में उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

मनुष्यायु और मनुष्यगति स्वोदय से ही बंधती हैं। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत प्रकृतियाँ परोदय से ही बंधती हैं क्योंकि मनुष्यों में इनके उदय का अभाव है। शेष प्रकृतियाँ स्वोदय-परोदय से बंधती हैं क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं तथा किन्हीं के विग्रहगति में उदय का अभाव है तो किन्हीं का वहाँ ही उदय रहता है।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। तिर्यगायु और मनुष्यायु का भी निरंतर बंध होता है क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम नहीं होता। मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि इनके बंध के सर्वत्र सान्तर होने पर भी आनतादिक देवों में से मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल निरन्तरता पाई जाती है। शेष प्रकृतियाँ सान्तर बंधती हैं क्योंकि एक समय में उनके बंध का विश्राम देखा जाता है।

इनके प्रत्यय दोनों ही गुणस्थानों में तिर्यंचों की द्विस्थानिक प्रकृतियों के प्रत्ययों के समान हैं। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, स्त्रीवेद को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि दोनों ही नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यग्गति से संयुक्त, मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को मनुष्यगति से संयुक्त, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग और पाँच संहनन इनको तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को मिथ्यादृष्टि देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति एवं मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं।

सर्वासां प्रकृतीनां बंधस्य स्वामिनः मनुष्याः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं साद्यादिविचारोऽपि ओघतुल्यः।

निद्राप्रचलयोः पूर्वं पश्चात् बंधोदयव्युच्छेद-स्वोदय-परोदय-सान्तर-निरन्तर-बंधाध्वान-बंधविनष्टस्थान-साद्यादिबंधपरीक्षा ओघतुल्याः।

प्रत्यया मनुष्यगतौ प्ररूपितप्रत्ययतुल्याः।

मिथ्यादृष्टिश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनसम्यग्दृष्टिः त्रिगतिसंयुक्तं, शेषा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मनुष्याः स्वामिनो भवन्ति।

सातावेदनीयपरीक्षापि मूलौघतुल्याः विशेषेण प्रत्ययभेदः स्वामिभेदश्च ज्ञातव्यः।

मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दष्टिः सातावेदनीयं नरकगत्या विना त्रिगतिसंयुक्तं, उपरिमाः देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। एवं सर्वपदेषु प्रत्ययसंयुक्तंस्वामित्वभेदश्चैव।सोऽपि सुगमः। अन्यत्र मूलौघं दृष्ट्वा न कोऽपि भेदोऽस्ति इति न प्ररूप्यते।

विशेषेण—पंचेन्द्रिय-त्रस-बादराणां बंधो मिथ्यादृष्टौ स्वोदयः सान्तरनिरन्तरः। मनुष्यपर्याप्तकेषु अपर्याप्त-प्रकृतेर्बंधः परोदयः। एवं मानुषीष्वपि वक्तव्यं। नवरि उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां असंतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयः बंधः। पुरुष-नपुंसकवेदयोः सर्वत्र परोदयः। स्त्रीवेदस्य स्वोदयः। क्षपकश्रेण्यां तीर्थकरस्य नास्ति बंधः, स्त्रीवेदेन सह क्षपकश्रेणिसमारोहणे संभवाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—मानुषीषु भाववेदिनीषु क्षपकश्रेण्यारोहणं संभवति किन्तु तत्र तीर्थकर प्रकृति-उदयो न भवति अतः क्षपकश्रेण्यां तीर्थकरप्रकृतिबंधो न संभवति। कदाचित् भाववेदे तीर्थकरप्रकृतिबंधो भवेत्तर्हि

सब प्रकृतियों के बंध के मनुष्य स्वामी हैं। बन्धाध्वान, बन्धविनष्टस्थान और सादि आदिक का विचार भी ओघ के समान है।

निद्रा व प्रचला का पूर्व या पश्चात् होने वाला बन्धोदयव्युच्छेद, स्वोदय-परोदय बंध, सान्तर-निरन्तर बंध, बंधाध्वान, बंधविनष्टस्थान और सादि-आदि बंध की परीक्षा ओघ के समान है। प्रत्यय मनुष्यगति में कहे हुए प्रत्ययों के समान हैं। मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त और शेष गुणस्थानवर्ती देवगति से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्य स्वामी हैं।

सातावेदनीय की परीक्षा भी मूलोघ के समान है। विशेष यह है कि प्रत्ययभेद व स्वामिभेद जानना चाहिए। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि सातावेदनीय को नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त और उपरिमजीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। इस प्रकार सब पदों में प्रत्ययसंयुक्त स्वामित्वभेद ही है। यह भी सुगम है। अन्यत्र मूलोघ की अपेक्षा और कुछ भेद नहीं है इसीलिए उसकी यहाँ प्ररूपणा नहीं की जाती। विशेषता यह है कि पंचेन्द्रिय, त्रस और बादर का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में और सान्तर-निरन्तर होता है। मनुष्यपर्याप्तकों में अपर्याप्त का बंध परोदय से होता है। इसी प्रकार मनुष्यिनियों में भी कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर, इनका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय बंध होता है तथा पुरुषवेद और नपुंसकवेद का सर्वत्र परोदय से बंध होता है। स्त्रीवेद का स्वोदय बंध होता है। इनके क्षपकश्रेणी में तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता है क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति को बंध करने वाले का स्त्रीवेद के साथ क्षपकश्रेणी पर चढ़ना संभव नहीं है।

तात्पर्य यह है कि—भाववेदी मनुष्यिनियों में—द्रव्य से जो पुरुषवेदी हैं और भाव से स्त्रीवेदी हैं ऐसे मुनियों के क्षपक श्रेणी पर चढ़ना संभव है, किन्तु वहाँ तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता है अतः इनके

तृतीयभवे पुरुषवेदे उदयो जायते।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधमनुष्याणां बंधकाबंधकप्रतिपादनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

अधुना लब्ध्यपर्याप्तकमनुष्याणां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।।७६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — **इदं बध्यमानप्रकृतीनां संख्यायाः समानत्वं दृष्ट्वा पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तभंगवत् कथितं। पर्यायार्थिकनयेऽवलम्ब्यमाने भेद उपलभ्यते। तद्यथा — पंचज्ञानावरण-नवदर्शनावरण-सातासात-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-नवनोकषाय-तिर्यगायुर्मनुष्यायुः-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-एकेन्द्रियादिपंचजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-औदारिकांगोपांग-षट्संहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-तिर्यग्मनुष्य-गत्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-निर्माण-नीचोच्चगोत्र-पंचान्तरायाणि-इत्येताः अत्र बध्यमानप्रकृतयः।**

अत्र स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्री-पुरुषवेद-तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-हुंडसंस्थानरहितपंचसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकाव्यतिरिक्तपंचसंहनन-तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-

---

क्षपकश्रेणी में तीर्थंकर प्रकृति का बंध संभव नहीं है।

कदाचित् भाववेद में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होवे तो तीसरे भव में पुरुषवेद का उदय होने पर तीर्थंकर प्रकृति का उदय आता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के मनुष्यों के बंधक और अबंधक के प्रतिपादनरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब लब्ध्यपर्याप्तक-संमूर्च्छन मनुष्यों के बंधक-अबंधक के स्वामी का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

मनुष्य अपर्याप्तकों की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों के समान है।।७६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह बध्यमान प्रकृतियों की (१०९) संख्या से समानता की अपेक्षा करके ''पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों के समान हैं'' ऐसा कहा गया है। पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन करने पर भेद पाया जाता है, वह इस प्रकार है — पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, ये यहाँ बध्यमान प्रकृतियाँ हैं। इनमें स्त्यानगृद्धित्रय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान से रहित पाँच संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन को छोड़कर शेष पाँच संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात,

यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां उदयाभावात् बंधोदययोः सत्त्वासत्त्वयोः सन्निकर्षाभावात् पूर्वं पश्चात् बंधोदयव्युच्छेदपरीक्षा न क्रियते। शेषप्रकृतीनामपि बंधस्येवात्रोदयस्य व्युच्छेदाभावात् न क्रियते।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-मनुष्यायुः-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-वर्णचतुष्क-अगुरुकलघुक-त्रस-बादर-अपर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-औदारिकशरीर-हुंडसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-उपघात-प्रत्येकशरीराणां स्वोदय-परोदयेन-बंधः, अध्रुवोदयत्वात्, कासां च विग्रहगतावुदयाभावात् एकस्या विग्रहगतौ चैवोदयत्वात्। अवशिष्टाः प्रकृतयः परोदयेनैव बध्यन्ते।

पंचज्ञानावरण-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यायुः-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र बंधेन ध्रुवत्वात्। अवशेषाणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधस्य विरामदर्शनात्।

कश्चिदाह—तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां बंधस्य सान्तरनिरन्तरत्वं किन्न उच्यते ?

आचार्यः प्राह—नोच्यते, तेजोवायुकायिकानां सप्तमपृथिवीनारकाणां च मनुष्येषूत्पत्तेरभावात्।

लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां प्रत्ययाः तिर्यगपर्याप्तानामिव प्ररूपयितव्याः। तिर्यक्त्रिक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-

---

उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र, इनका उदयाभाव होने से विद्यमान बंध और अविद्यमान उदय में समानता न होने के कारण पूर्व या पश्चात् होने वाले बन्धोदयव्युच्छेद की परीक्षा नहीं की जाती है। शेष प्रकृतियों के भी बंध के समान यहाँ उदय का व्युच्छेद न होने से उक्त परीक्षा नहीं की जाती।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, त्रस, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीरांगेपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात और प्रत्येकशरीर, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं तथा किन्हीं का विग्रहगति में उदय नहीं रहता और एक का विग्रहगति में ही उदय रहता है। शेष प्रकृतियाँ परोदय से ही बंधती हैं।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि बंध की अपेक्षा ये प्रकृतियाँ ध्रुव हैं। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में उनके बंध का विश्राम देखा जाता है।

शंका—तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र के बंध में सान्तर-निरन्तरता क्यों नहीं कहते ?

समाधान—नहीं कहते, क्योंकि तेजस्कायिक, वायुकायिक और सातवीं पृथिवी के नारकियों का मनुष्यों में उत्पत्ति का अभाव है।

प्रत्ययों की प्ररूपणा तिर्यंच अपर्याप्तकों के समान करना चाहिए। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय,

आतापोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीराणि तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मनुष्यत्रिक-उच्चगोत्राणि मनुष्यगति-संयुक्तं बध्नन्ति। अवशेषाः प्रकृतीः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

मनुष्याःस्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं साद्यादिप्ररूपणा च पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तप्ररूपणाया-स्तुल्याः।

तात्पर्यमेतत्—लब्ध्यपर्याप्तक—सम्मूर्च्छन मनुष्याणां यद्यपि मनुष्यगति नाम कर्मण उदयो भवति तथापि पशूनामपेक्षयापि निंद्यमेव, एतज्ज्ञात्वा पर्याप्तक मनुष्य भवं संप्राप्य एतत्प्रयत्नो विधातव्यः येन मोक्षमार्गः सुलभो भवेदिति।

एवं द्वितीयस्थले लब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणां बंधकाबंधक प्रतिपादनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर को तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष प्रकृतियों को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं।

मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान, बंधविनष्टस्थान और सादि आदि की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों की प्ररूपणा के समान है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—लब्ध्यपर्याप्तक—सम्मूर्च्छन मनुष्यों के यद्यपि मनुष्यगति नामकर्म का उदय होता है फिर भी पशुओं की अपेक्षा भी निंद्य ही हैं, ऐसा जानकर पर्याप्तक मनुष्य भव को प्राप्त कर यह प्रयत्न करना चाहिए कि जिससे मोक्षमार्ग सुलभ हो जावे।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्यों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करते हुए एक सूत्र पूर्ण हुआ।

मनुष्यगति अन्तराधिकार पूर्ण हुआ।

अथ देवगति अन्तराधिकार:

अथ चतुर्भिः अन्तरस्थलैः पंचविंशतिसूत्रैः देवगतौ बंधाबंधप्रतिपादकोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले सामान्यदेवानां बंधकाबंधकप्रतिपादनत्वेन ''देवगदीए'' इत्यादिदशसूत्राणि। तदनु द्वितीयस्थले भवनत्रिकदेवानां बंधस्वामित्वप्ररूपणत्वेन ''भवणवासिय-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले सौधर्मादिनवग्रैवेयकवासिनां देवानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''सोहम्मीसाण-'' इत्यादिद्वादशसूत्राणि। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले अनुदिशादिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तानां अहमिन्द्राणां बंधस्वामित्व कथनत्वेन ''अणुदिस-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका भवति।

अधुना देवगतौ ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगदीए देवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ—पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-

---

देवगति अन्तराधिकार

अब चार अन्तरस्थलों द्वारा पच्चीस सूत्रों से देवगति में बंधक-अबंधक का प्रतिपादक अन्तराधिकार प्रारंभ होता है—उसमें प्रथम स्थल में सामान्य देवों के बंधक-अबंधक के प्रतिपादनरूप से "देवगदीए" इत्यादि दश सूत्र हैं। इसके बाद दूसरे स्थल में भवनत्रिक देवों के बंध के स्वामी को बतलाते हुए "भवणवासिय-" इत्यादि एक सूत्र है। इसके बाद तीसरे स्थल में सौधर्म स्वर्ग से लेकर नव ग्रैवेयकवासी देवों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए "सोहम्मीसाण-" इत्यादि बारह सूत्र हैं। इसके अनंतर चौथे स्थल में अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत के अहमिन्द्रों के बंध के स्वामी को कहने वाले 'अणुदिस-' इत्यादि दो सूत्र हैं, इस प्रकार यह समुदायपातनिका हुई।

अब देवगति में ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

देवगति में देवों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक-शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर,

पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।७७।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उत्तरसूत्रं देशामर्शकं वर्तते, तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणां करिष्यन्ति श्रीवीरसेनाचार्यदेवाः—मनुष्यगतिद्विक-औदारिकशरीरद्विक-वज्रवृषभसंहनन-अयशःकीर्तीणां उदयाभावात् देवगतौ, अतः बंधोदययोः पूर्वं पश्चात् व्युच्छेदपरीक्षा न क्रियते। न शेषाणां अपि, बंधस्येवोदयस्य व्युच्छेदाभावात्।

पंचज्ञानावरण-चर्तुदर्शनावरण-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुकलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयेनैव बंधः।निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सानां स्वोदयःपरोदयाभ्यां बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रत्येकशरीर-उपघातानां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, विग्रहगतावुदयाभावात्। परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, अपर्याप्तकाले उदयाभावेऽपि बंधदर्शनात्। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टेः एतासां स्वोदयेन बंधः। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकशरीरद्विक-वज्रवृषभसंहनन-अयशःकीर्तीणां परोदयेनैव बंधः, तत्रैतेषां कर्मणामुदयविरोधात्।

स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।७७।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।७८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह उत्तर सूत्र देशामर्शक है इसलिए श्री वीरसेनाचार्यदेव इससे सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं—मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और अयशकीर्ति, इनके उदय का अभाव होने से बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने की परीक्षा नहीं की जाती है। शेष प्रकृतियों की भी वह परीक्षा नहीं की जाती क्योंकि बंध के समान उनके उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय से ही बंध होता है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। समचतुरस्रसंस्थान, प्रत्येक शरीर और उपघात का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव है। परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनके उदय का अभाव होने पर भी बंध देखा जाता है। विशेषता यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि के इनका स्वोदय से बंध होता है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी और अयशकीर्ति, इनका परोदय से ही बंध होता है, क्योंकि देवों में इनके उदय का विरोध है।

पंचज्ञानावरणीय-षट्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छवास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, देवगतौ बंधविरामाभावात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधविरामोपलंभात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधविरामदर्शनात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः निरन्तरः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-मनुष्यद्विक-औदारिकांगोपांग-त्रसाणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरः। सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। नवरि मनुष्यद्विकस्य सासादने सान्तरनिरन्तरः।

देवेषु प्रत्ययाः मिथ्यादृष्टेः द्विपंचाशत्, सासादनस्य सप्तचत्वारिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टेः त्रिचत्वारिंशत् भवन्ति। ओघप्रत्ययेषु नपुंसकवेद-औदारिकद्विकानामभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टेः एकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु नपुंसकवेदौदारिककाययोगयोरभावात्। शेषं सुगमं।

एताः सर्वप्रकृतीः सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तत्र तिर्यग्गतेर्बंधाभावात्। मनुष्यगतिद्विक-उच्चगोत्राणि मनुष्यगतिसंयुक्तं, अवशेषाः प्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नंति, अविरोधात्।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि देवगति में इनके निरन्तर बंध का विराम नहीं है। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ और यशकीर्ति, अयशकीर्ति, इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम पाया जाता है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र, इनका मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में इनके बंध का विश्राम देखा जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिकशरीरांगोपांग और त्रस, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। विशेष इतना है कि मनुष्यद्विक का सासादन गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

देवों में मिथ्यादृष्टि के बावन, सासादन के सैंतालिस और असंयतसम्यग्दृष्टि के तेतालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि यहाँ ओघ प्रत्ययों में नपुंसकवेद और औदारिकद्विक का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि के इकतालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि उसके ओघ प्रत्ययों में नपुंसकवेद और औदारिक काययोग का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

इन सब प्रकृतियों को सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि इन गुणस्थानों में तिर्यंचगति का बंध नहीं होता। मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है।

सर्वप्रकृतीनां बंधस्य देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, चतुर्विधाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां सर्वगुणस्थानेषु साद्यध्रुवौ भवतः।

संप्रति निद्रानिद्रादिपंचविंशति प्रकृतीनां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।७९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनन्तानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, सासादने उभयाभावदर्शनात्। स्त्रीवेदस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सासादनगुणस्थाने व्युच्छिन्नस्त्रीवेदबंधस्य असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेददर्शनात्। अथवा देवगतौ बंध एव व्युच्छिद्यते नोदयः, तदुदयविरोधिगुणस्थानाभावात्।**

सर्वप्रकृतियों के बंध के देव स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बन्धविनष्ट स्थान सुगम है। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव होने से चार प्रकार का बंध नहीं है। शेष प्रकृतियों का सब गुणस्थानों में सादि व अध्रुव बंध होता है।

अब निद्रानिद्रा आदि पच्चीस प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।७९।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादनगुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। स्त्रीवेद का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनगुणस्थान में स्त्रीवेद के बंध के व्युच्छिन्न हो जाने पर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। अथवा देवगति में बंध ही व्युच्छिन्न होता है, उदय नहीं क्योंकि देवगति में उक्त प्रकृतियों के उदय के विरोधी गुणस्थानों का अभाव है। इस

इदमर्थपदमन्यत्रापि योजयितव्वं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-तिर्यक्त्रिक-चतु:संस्थान-चतु:संहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दु:स्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां देवेषूदयाभावात् बंधोदययो: पूर्वं पश्चाद् व्युच्छेदपरीक्षा न क्रियते।

अनन्तानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदा: स्वोदयपरोदयाभ्यां, अवशेषा: प्रकृतय: परोदयेनैव बध्यन्ते।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यगायुषां निरन्तरो बंध:, अवशेषाणां सान्तर:, एकसमयेन बंधोपरमोपलंभात्।

कश्चिदाशंकते — कदाचित् द्वित्रिसमयादिकालप्रतिबद्धबंधदर्शनात् सान्तरनिरन्तरबंध: किन्नोच्यते?

आचार्य: प्राह — नोच्यते, एतासु प्रकृतिषु निरन्तरबंधनियमाभावात्।

एतासां प्रकृतीनां प्रत्यया: देवगतिचतु:स्थानप्रकृतिप्रत्ययतुल्या:। विशेषेण तिर्यगायुष: पूर्वोक्तप्रत्ययेषु वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ अपनेतव्यौ।

तिर्यकत्रिक-उद्योतप्रकृती:तिर्यग्गतिसंयुक्तं, अवशेषा: प्रकृती: मिथ्यादृष्टि: सासादनसम्यग्दृष्टि: तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, अविरोधात्।

देवा: स्वामिन:। बंधध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंध:। सासादने द्विविध:, अनादिध्रुवत्वाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंध: साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अर्थपद की अन्यत्र भी योजना करना चाहिए।

स्त्यानगृद्धित्रय, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इनका देवों में उदयाभाव होने से बंध और उदय से पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने की परीक्षा नहीं की जाती।

अनन्तानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद स्वोदय-परोदय से तथा शेष प्रकृतियाँ परोदय से ही बंधती हैं। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और तिर्यगायु का निरन्तर बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय में उनके बंध का विश्राम पाया जाता है।

कोई आशंका करता है — कदाचित् दो, तीन समयादि काल से सम्बद्ध बंध के देखे जाने से सान्तर-निरन्तर बंध क्यों नहीं कहते?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं — नहीं कहते, क्योंकि इन प्रकृतियों में निरन्तर बंध के नियम का अभाव है।

इन प्रकृतियों के प्रत्यय देवगति की चतुस्थानिक प्रकृतियों के प्रत्ययों के समान हैं। विशेषता यह है कि तिर्यगायु के पूर्वोक्त प्रत्ययों में वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत, प्रकृति इनको तिर्यग्गति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उसमें कोई विरोध नहीं है। देव स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्टय का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ अनादि और ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुव प्रकृतियाँ हैं।

इदानीं मिथ्यात्वादिसप्तप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।८१।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, मिथ्यादृष्टौ चैव तदुभयमुपलभ्य उपरि तदनुपलंभात्। नपुंसकवेद-एकेन्द्रियजाति-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप-स्थावराणामत्रोदयाभावात् बंधोदययोः पूर्वापूर्वव्युच्छेदपरीक्षा न क्रियते।**

मिथ्यात्वं स्वोदयेन, अन्याः प्रकृतयः परोदयेनैव बध्यन्ते, तथोपलंभात्।

मिथ्यात्वं निरन्तरं बध्यते, ध्रुवबंधित्वात्, अपराः सान्तरं बध्यन्ते, एकसमयेन बंधोपरमोपलंभात्।

एतासां प्रत्यया देवचतुःस्थानप्रकृतिप्रत्ययतुल्याः।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, एकेन्द्रियजाति-आताप-स्थावराणि-तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति, स्वाभाविकत्वात्।

देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमम्। मिथ्यात्वस्य बंधः चतुर्विधो, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अब मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियों के बंध के स्वामी का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आताप और स्थावर नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।८१।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इसका अर्थ कहते हैं — मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों पाए जाते हैं, ऊपर वे नहीं पाए जाते। नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और स्थावर, इनके उदय का यहाँ अभाव होने से बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद की परीक्षा नहीं की जाती।

मिथ्यात्व प्रकृति स्वोदय से और अन्य प्रकृतियाँ परोदय से ही बंधती हैं क्योंकि वैसा पाया जाता है। मिथ्यात्व प्रकृति निरन्तर बंधती है क्योंकि ध्रुवबंधी है, अन्य प्रकृतियाँ सान्तर बंधती हैं क्योंकि एक समय में उनका बंधविश्राम पाया जाता है। इन प्रकृतियों के प्रत्यय देवों की चतुस्थानिक प्रकृतियों के प्रत्ययों के समान हैं।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, ये तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर, ये तिर्यग्गति से संयुक्त बंधती हैं क्योंकि ऐसा स्वभाव है। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

संप्रति मनुष्यायुषः बंधाबंधकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।८३।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवेषु मनुष्यायुषः उदयाभावात् बंधोदययोः पूर्वापरव्युच्छेदपरीक्षा नास्ति। इयं प्रकृतिः परोदयेन बध्यते, मनुष्यायुषः देवेषु उदयविरोधात्। निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टीनां यथाक्रमेण पंचाशत्-पंचचत्वारिंशत्-एकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, स्वक-स्वकौघप्रत्ययेषु औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-नपुंसकवेदप्रत्ययानामभावात्। मनुष्यगतिसंयुक्तं देवाःस्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानेन जीवाः किन्न म्रियन्ते ?

तत्रायुषः बंधाभावात्।

मा बध्येत आयुः तत्र, पूर्वमन्यगुणस्थाने आयुर्बद्ध्वा पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्वं प्रतिपद्य तेन गुणस्थानेन किन्न कालं क्रियते ?

अब मनुष्यायु के बंधक-अबंधक का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्य आयु का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।८३।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देवों में मनुष्यायु का उदय न होने से पूर्व या पश्चात् बंधोदयव्युच्छेद की परीक्षा नहीं है। मनुष्यायु को परोदय से ही बांधते हैं क्योंकि देवों में मनुष्यायु के उदय का विरोध है। बंध उसका निरन्तर होता है क्योंकि एक समय में बंधविश्राम का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों के यथाक्रम से पचास, पैंतालिस और इकतालिस प्रत्यय होते हैं क्योंकि अपने-अपने ओघ प्रत्ययों में यहाँ औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। मनुष्यायु को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

शंका — सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान के साथ जीव क्यों नहीं मरते ?

समाधान — चूँकि इस गुणस्थान में आयु के बंध का अभाव है अतएव जीव यहाँ मरण नहीं करते।

शंका — वहाँ आयुबंध भले ही न हो, फिर भी पहले अन्य गुणस्थान में आयु को बांधकर और पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्तकर उस गुणस्थान के साथ क्या नियम से मरण करता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि जिस गुणस्थान के द्वारा आयुबंध संभव है उसी गुणस्थान के साथ जीव मरता है, अन्य गुणस्थान के साथ नहीं, ऐसा परमगुरु का उपदेश है।

न क्रियते, किंच—येन गुणस्थानेनायुर्बंधः संभवति तेनैव गुणस्थानेन म्रियते, नान्यगुणस्थानेनेति परमगुरूपदेशात्। न उपशामकैरनेकान्तः, सम्यक्त्वगुणेन आयुर्बंधाविरोधिना निःसरणे विरोधाभावात्। साद्यध्रुवौ बंधः, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति तीर्थकरप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।।८५।।

असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, उदयाभावात्। तेनैव कारणेन इयं तीर्थकरप्रकृतिः परोदये बध्यते। निरन्तरो तीर्थकर बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। दर्शनविशुद्धिता-लब्धिसंवेगसंपन्नता-अर्हदाचार्यबहुश्रुत प्रवचनभक्तयस्तीर्थकरकर्मणः विशेषप्रत्ययाः। शेषं सुगमं।**

मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अत्र बंधविनाशो नास्ति।

सादिरध्रुवश्च बंधः, अनादिध्रुवभावेनावस्थितकारणाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—मनुष्यगतौ कर्मभूमिजा मनुष्या एव केचित् तीर्थकरकर्मप्रकृतिं बध्द्वा स्वर्गेषूत्पद्यन्ते ते नियमेन असंयतसम्यग्दृष्टयः सन्ति। अतएव तस्य कर्मणः बंधः सादिः अध्रुवो भवति। ततश्च्युत्वा देवो मनुष्येषु उत्पद्य पंचकल्याणपूजामवाप्य समवसरणविभूतिं लब्ध्वानन्तजीवान् दिव्यध्वनिना संतर्पयति, अनन्तरं सिद्धिपदमवाप्नोति, इति ज्ञात्वा संततं समवसरणस्वामिनं नमस्कुर्वद्भिरस्माभिः तद्गुणलब्धये

इस नियम में उपशामकों के साथ अनैकान्तिक दोष भी संभव नहीं है क्योंकि आयुबंध के अविरोधी सम्यक्त्वगुण के साथ निकलने में कोई विरोध नहीं है।[1]

मनुष्यायु का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

अब तीर्थंकरप्रकृति में बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।८५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि देव बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ तीर्थंकरनामकर्म के बंधोदयव्युच्छेद का विचार नहीं है क्योंकि देवों में उसके उदय का अभाव है। इसी कारण वह तीर्थंकर प्रकृति परोदय से बंधती है। तीर्थंकर प्रकृति का बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। दर्शनविशुद्धता, लब्धिसंवेगसम्पन्नता, अर्हंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति और प्रवचनभक्ति, ये तीर्थंकरकर्म के विशेष प्रत्यय हैं।[2] शेष प्रत्यय सुगम हैं। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। यहाँ बंधविनाश नहीं है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि अनादि व ध्रुवरूप से अवस्थित रहने के कारणों का अभाव है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—मनुष्यगति में कोई-कोई कर्मभूमिया मनुष्य ही तीर्थंकरकर्मप्रकृति को बांधकर स्वर्गों में उत्पन्न होते हैं वे नियम से वहाँ असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं अतः उनके उस कर्म का बंध सादि और अध्रुव होता है। वे देव वहाँ से च्युत होकर मनुष्यों में उत्पन्न होकर पंचकल्याणक पूजा को प्राप्त करके समवसरण विभूति को प्राप्त कर अनंत जीवों को अपनी दिव्यध्वनि से संतर्पित करते हैं अनंतर सिद्धपद को प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा जानकर सतत ही समवसरण के स्वामी भगवन्तों को नमस्कार करते हुए

---

१. देखो जीवस्थान-चूलिका ९, सूत्र १३० की टीका। २. जो सूत्र ४१ में विस्तार से कहे जा चुके हैं।

जिनेन्द्रवरस्य श्रीऋषभदेवस्य चरणकमलयोः प्राथ्यते भक्तिभावेन।

एवं प्रथमस्थले सामान्यदेवानां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन दशसूत्राणि गतानि।

इदानीं भवनत्रिकदेवानां बंधकाबंधककथनाय सूत्रमवतार्यते —

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं देवभंगो। णवरि विसेसो तित्थयरं णत्थि।।८७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका— **एतेन सूत्रेण देशामर्शकेन 'तित्थयरं णत्थि' इति बध्यमानप्रकृतिभेदश्चैव प्ररूपितः प्रथममुच्चारणायाः।**

समचतुरस्रसंस्थान-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीर-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वरनामानि कर्माणि असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयेनैव बध्यन्ते। वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ असंयतसम्यग्दृष्टौ अपनेतव्यौ, भवनवासि-वानव्यंतर-ज्योतिष्केषु सम्यग्दृष्टीनामुपपादाभावात्। पंचेन्द्रिय-त्रसनामकर्मणी सान्तरं बध्येते, एकेन्द्रिय-स्थावर प्रतिपक्षप्रकृत्योः संभवात्। मनुष्यगतिद्विकं मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरं बध्यते। औदारिकांगोपांगं मिथ्यादृष्टेः सान्तरं बध्यते। एष भेदः सन्नपि न कथितः।

कश्चिदाशंकते— एवंविधे भेदे सत्यपि तस्याकथयतो वाक्यस्य सूत्रभावः कथं न नश्यति ?

आचार्यः समाधत्ते— नैष दोषः, देशामर्शकसूत्रेषु एवं विधभावाविरोधात्।

उनके गुणों की प्राप्ति के लिए जिनेन्द्रवर श्री ऋषभदेव के चरण कमलों में हम भक्तिभाव से प्रार्थना करते हैं।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्य देवों के बंधस्वामित्व का निरूपण करते हुए दश सूत्र पूर्ण हुए।

अब भवनत्रिक देवों के बंधक-अबंधक का कथन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों की प्ररूपणा सामान्य देवों के समान है। विशेषता केवल यह है कि इन देवों के तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती।।८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— इस देशामर्शक सूत्र के द्वारा "तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती" यह प्रथम उच्चारणा से केवल बध्यमान प्रकृतियों का भेद ही कहा गया है।

समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रत्येकशरीर, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर नामकर्म असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय से ही बंधते हैं। वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में कम करना चाहिए क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी देवों में सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति और त्रस नामकर्म मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंधते हैं क्योंकि उक्त देवों के इस गुणस्थान में एकेन्द्रिय जाति और स्थावररूप प्रतिपक्ष प्रकृतियों की संभावना है।मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि सान्तर बांधते हैं। औदारिकशरीरांगोपांग को मिथ्यादृष्टि सान्तर बांधते हैं। यद्यपि बध्यमान प्रकृतिभेद के साथ यह भेद भी है तथापि देशामर्शक होने से वह सूत्र में नहीं कहा गया।

यहाँ कोई शंका करता है —

शंका — इस प्रकार के भेद के होने पर भी उसे न कहने वाले वाक्य का सूत्रत्व क्यों नहीं नष्ट होता ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं —

समाधान — यह कोई दोष नहीं, क्योंकि देशामर्शक सूत्रों में इस प्रकार के स्वरूप का कोई विरोध नहीं है।

एवं द्वितीयस्थले भवनत्रिकदेवानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति सौधर्मैशानदेवानां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रमेकमवतार्यते —

सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवाणं देवभंगो।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका —**यथा देवौघे सर्वप्रकृतयः प्ररूपितास्तथा अत्रापि प्ररूपयितव्याः। एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, तेनैतेन सूचितार्थः उच्यते — पंचेन्द्रिय-त्रसप्रकृती मिथ्यादृष्टिः देवौघे सान्तरनिरन्तरं बध्नाति, सनत्कुमारादिषु एकेन्द्रिय-स्थावरबंधाभावेन निरन्तरबंधोपलंभात्। किन्त्वत्र सान्तरमेव बध्नाति, प्रतिपक्षप्रकृतिभावं प्रतीत्य एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। मिथ्यादृष्टिः सासादनसम्यग्दृष्टिश्च मनुष्यगतिद्विकं देवौघे सान्तरनिरन्तरं बध्नाति, शुक्ललेश्येषु मनुष्यगतिद्विकस्य निरन्तरबंधदर्शनात्। अत्र सौधर्मैशानकल्पयोः पुनः सान्तरं बध्नाति, मनुष्यगतिद्विकनिरन्तरबंधकारणाभावात्। औदारिकांगोपांग देवौघे मिथ्यादृष्टिः सान्तरनिरन्तरं बध्नाति, सनत्कुमारादिषु निरन्तरबंधोपलंभात्। अत्र पुनः सान्तरं एव, स्थावरबंधकाले अंगोपांगस्य बंधाभावादिति।**

इदानीं सनत्कुमारादारभ्य सहस्रारपर्यन्तदेवानां बंधाबंधकथनाय सूत्रमेकमवतार्यते —

सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवाणं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो।।८९।।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में भवनत्रिकदेवों के बंधस्वामित्व के कथनरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब सौधर्म-ईशान स्वर्गों के देवों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए एक सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

सौधर्म व ईशान कल्पवासी देवों की प्ररूपणा सामान्य देवों के समान है।।८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार सामान्य देवों में सब प्रकृतियों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार यहाँ भी प्ररूपणा करना चाहिए। यह अर्पणासूत्र देशामर्शक है, इसलिए इसके द्वारा सूचित अर्थ को कहते हैं— पंचेन्द्रिय जाति और त्रस नामकर्म को मिथ्यादृष्टि देव सामान्य देवों में सान्तर-निरन्तर बांधते हैं क्योंकि सनत्कुमारादि देवों में एकेन्द्रिय और स्थावर प्रकृतियों के बंध का अभाव होने से निरंतर बंध पाया जाता है परन्तु वहाँ उन्हें सान्तर ही बांधते हैं क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों के सद्भाव की अपेक्षा करके एक समय से बंध देखा जाता है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यगतिद्विक को देवोघ में सान्तर-निरन्तर बांधते हैं क्योंकि शुक्ललेश्या वालों में मनुष्यगतिद्विक का निरन्तर बंध देखा जाता है परन्तु यहाँ सौधर्म-ईशान स्वर्ग में सान्तर बांधते हैं क्योंकि मनुष्यगतिद्विक के निरंतर बंध के कारणों का अभाव है। औदारिकशरीरांगोपांग को देवोघ में मिथ्यादृष्टि सान्तर-निरन्तर बांधते हैं क्योंकि सनत्कुमारादि देवों में निरंतर बंध पाया जाता है परन्तु यहाँ सान्तर ही बांधते हैं क्योंकि स्थावरबंधकाल में अंगोपांग का बंध नहीं होता।

अब सानत्कुमार स्वर्ग से लेकर सहस्रारपर्यंत देवों के बंधक-अबंधक का कथन करते हुए एक सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

सनत्कुमार से लेकर शतार-सहस्रार तक कल्पवासी देवों की प्ररूपणा प्रथम पृथिवी के नारकियों के समान है।।८९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — विशेषेण — अत्र पुरुषवेदस्य स्वोदयेन बंधः, अन्यवेदस्योदयाभावात्। नपुंसकवेदस्य प्रथमायां पृथिव्यां स्वोदयेन बंधः, अत्र पुनःपरोदयेन। प्रत्ययेषु नपुंसकवेदः स्त्रीवेदेन सह अपनेतव्यः। सासादने वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ प्रक्षेतव्यौ, नारकसासादनेषु तयोरभावात्। शतारसहस्रारदेवेषु मिथ्यादृष्टि-सासादनाः मनुष्यगतिद्विकं सान्तरनिरन्तरं बध्नन्ति, तत्रतनशुक्ललेश्येषु मनुष्यगतिद्विकं मुक्त्वा तिर्यग्गतिद्विकस्य बंधाभावात्।

संप्रति आनतादि-ग्रैवेयकवासिदेवानां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आणद जाव णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।९०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — विशेष इतना है कि यहाँ पुरुषवेद का स्वोदय से बंध होता है, क्योंकि अन्य वेद के उदय का अभाव है। नपुंसकवेद का प्रथम पृथिवी में स्वोदय से बंध होता है परन्तु यहाँ उसका परोदय से बंध होता है। प्रत्ययों में नपुंसकवेद को स्त्रीवेद के साथ कम करना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में यहाँ वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को जोड़ना चाहिए क्योंकि नारकी सासादनसम्यग्दृष्टियों में उनका अभाव है। शतार-सहस्रार कल्पवासी देवों में मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यगतिद्विक को सान्तर-निरन्तर बांधते हैं क्योंकि उन कल्पों के शुक्ललेश्या वाले देवों में मनुष्यगतिद्विक को छोड़कर तिर्यक्गतिद्विक के बंध का अभाव है।

अब आनत आदि स्वर्ग से लेकर ग्रैवेयकवासी देवों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आनत कल्प से लेकर नव ग्रैवेयक तक विमानवासी देवों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।९०।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेन सूचितार्थान् भणिष्यन्ति श्रीवीरसेनाचार्यवर्याः—मनुष्यगति-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अयशःकीर्तीणामुदयाभावात् शेषप्रकृतीनां उदयव्युच्छेदाभावाच्च बंधोदययोः पश्चादपश्चाद्व्युच्छेदपरीक्षा न क्रियते।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पुरुषवेद-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयेनैव बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सानां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधोऽध्रुवोदयत्वात्। समचतुरस्रसंस्थान-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-सुस्वरनामानि मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वोदयपरोदयाभ्यां बध्नन्ति। सम्यग्मिथ्यादृष्टयः स्वोदयनैव बध्नन्ति, तेषामपर्याप्त-कालाभावात्। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनन-अयशःकीर्तीणां परोदयेन बंधः, देवेषु एतासां बंधोदययोरक्रमेण उक्तिविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-औदारिकांगोपांग-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अगुरुकलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।९१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र के द्वारा सूचित अर्थों को कहते हैं—मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और अयशकीर्ति, इनका उदयाभाव होने से तथा शेष प्रकृतियों के उदय व्युच्छेद का अभाव होने से यहाँ बंध और उदय के पूर्व या पश्चात् व्युच्छेद होने की परीक्षा नहीं की जाती है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पुरुषवेद, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येकशरीर और सुस्वर नामकर्मों को मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वोदय-परोदय से बांधते हैं। सम्यग्दृष्टि देव स्वोदय से ही बांधते हैं क्योंकि उनके अपर्याप्तकाल का अभाव है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी और अयशकीर्ति का परोदय से ही बंध होता है क्योंकि देवों में इन प्रकृतियों के बंध और उदय के एक साथ अस्तित्व का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका

सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरः, एकसमयेन बंधविरामदर्शनात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणि मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः सान्तरं बध्नन्ति, एकसमयेन बंधविरामोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः निरन्तरं बध्नन्ति, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

एतासां प्रत्यया देवौघप्रत्ययतुल्याः। नवरि सर्वत्र स्त्रीवेदप्रत्ययोऽपनेतव्यः। सर्वे सर्वाः प्रकृतीः मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति अन्यगतीनां बंधाभावात्। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः सर्वगुणस्थानेषु साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

इदानीं निद्रानिद्रादिएकविंशतिप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-चउसंठाण-चउसंघडण-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।९२।।

निरंतर बंध होता है क्योंकि यहाँ ये प्रकृतियाँ ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति, इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र, इनको मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि सान्तर बांधते हैं क्योंकि एक समय से इनका बंध विश्राम पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि इन्हें निरंतर बांधते हैं क्योंकि उनके प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

इन प्रकृतियों के प्रत्यय देवोघ प्रत्ययों के समान हैं। विशेषता केवल इतनी है कि सब जगह स्त्रीवेद प्रत्यय को कम करना चाहिए। उक्त सब देव सब प्रकृतियों को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनके अन्य गतियों के बंध का अभाव है। देव स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्यत्र तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सब गुणस्थानों में सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब निद्रानिद्रा आदि इक्कीस प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।९२।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।९३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्यार्थ उच्यते—अनन्तानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, सासादने तदुभयव्युच्छेददर्शनात्। अवशेषाणां बंधोदयव्युच्छेदपरीक्षा नास्ति, तासामत्रोदयाभावात्। अनन्तानुबंधिचतुष्कस्य स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः, अध्रुवोदयत्वात् अवशेषाणां प्रकृतीनां परोदयेनैव, अत्र तासां बंधेनोदयस्यावस्थानविरोधात् स्त्यानगृद्धित्रिकानन्तानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां सान्तरः एकसमयेन बंधविरामदर्शनात्।**

प्रत्ययानां सहस्रारवत् भंगः। सर्वे सर्वाः प्रकृतीः मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टेः चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र द्विविधः, अनादिध्रुवाभावत्वात्। शेषाणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति मिथ्यात्वादिचतुःप्रकृतीनां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।९४।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।९५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतस्यार्थ उच्यते—मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, मिथ्यादृष्टौ**

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका अर्थ कहते हैं—अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादनगुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। शेष प्रकृतियों के बन्धोदयव्युच्छेद की परीक्षा नहीं है क्योंकि यहाँ उनके उदय का अभाव है। अनन्तानुबंधि का स्वोदय-परोदय से बंध होता है। क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। शेष प्रकृतियों का बंध परोदय से ही होता है क्योंकि यहाँ उनके बंध के साथ उदय के अवस्थान का विरोध है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का निरंतर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्ययप्ररूपणा सहस्रार देवों के समान है। उक्त सब देव सब प्रकृतियों को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। देव स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बन्धविनष्टस्थान सुगम हैं। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का मिथ्यादृष्टि के चारों प्रकार का बंध होता है। अन्यत्र दो प्रकार का बंध होता है। वहाँ अनादि और ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं।

अब मिथ्यात्व आदि चार प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।९४।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।९५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों साथ

तदुभयाभावदर्शनात्। अवशेषाणां बंधोदयव्युच्छेदपरीक्षा नास्ति अत्रैकान्तेनैतासामुदयाभावदर्शनात्। मिथ्यात्वं स्वोदयेन बध्यते, स्वाभाविकत्वात्। अवशेषाः प्रकृतयः परोदयेन। मिथ्यात्वं निरन्तरं बध्यते, ध्रुवबंधित्वात्। अवशेषाः सान्तरमध्रुवबंधित्वात्।

प्रत्ययाः सहस्रारस्वर्गप्रत्ययतुल्याः। मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति इमे देवाः। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

मिथ्यात्वस्य बंधश्चतुर्विधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मनुष्यायुषो बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।९६।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**बंधोदययोः व्युच्छेदपरीक्षात्र नास्ति, उदयाभावात्। परोदयेन बध्यते, बंधेनोदयस्यात्रावस्थानविरोधात्। निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। मिथ्यादृष्टेः एकोनपंचाशत्प्रत्ययाः, सासादनस्य चतुश्चत्वारिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टेः चत्वारिंशत्प्रययाः। मरनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नंति मनुष्यायुषं देवाः। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधः, अध्रुवबंधित्वात्।**

व्युच्छिन्न होते हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। शेष प्रकृतियों के बंधोदयव्युच्छेद की परीक्षा नहीं है क्योंकि यहाँ नियम से इनके उदय का अभाव है। मिथ्यात्व प्रकृति स्वोदय से बंधती है, इसका कारण स्वभाव है। शेष प्रकृतियाँ परोदय से बंधती हैं। मिथ्यात्व प्रकृति निरन्तर बंधती है क्योंकि ध्रुवबंधी है। शेष प्रकृतियाँ सान्तर बंधती हैं क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं। प्रत्ययप्ररूपणा सहस्रार स्वर्ग के देवों के प्रत्ययों के समान है। ये देव मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। देव स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है क्योंकि ध्रुवबंधी है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब मनुष्यायु के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्यायु का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।९६।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — बंध और उदय के व्युच्छेद की परीक्षा यहाँ नहीं है क्योंकि मनुष्यायु के उदय का देवों में अभाव है। वह परोदय से बंधती है क्योंकि यहाँ उसके बंध के साथ उदय के अवस्थान का विरोध है। निरंतर बंध होता है क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। मिथ्यादृष्टि के उनंचास, सासादनसम्यग्दृष्टि के चवालीस और असंयतसम्यग्दृष्टि के चालीस प्रत्यय होते हैं। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। सादि अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

इदानीं तीर्थकरप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।।९८।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।९९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—एतस्यार्थ उच्यते—बंधोदययोः व्युच्छेदविचारो नास्ति, सदसतोर्बंधोदययोः सन्निकर्षविरोधात्। परोदयेन बंधः, सर्वत्र तीर्थकरकर्मबंधोदययोरक्रमेण उक्तिविरोधात्। निरन्तरो बंधः, संख्यातावलिकादिकालेन विना एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। एतस्य प्रत्ययाःदेवौघप्रत्ययसमाः। उत्तरोत्तरप्रत्ययाः पुनः अर्हदाचार्य-बहुश्रुत-प्रवचनभक्ति-लब्धिसंवेगसंपत्ति-दर्शनविशुद्धि-प्रवचनप्रभावनादयः।

मनुष्यगतिसंयुक्तं बंधः देवानां। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंध विनष्टस्थानं च सुगमं। सादिरध्रुवश्च बंधः, अध्रुवबंधित्वात्।

एवं तृतीयस्थले सौधर्मादिनवग्रैवेयकवासिनां देवानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अधुना अनुदिशादिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्ताहमिन्द्राणां बंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-

---

अब तीर्थंकर प्रकृति के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।९८।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष देव अबंधक हैं।।९९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इसका अर्थ कहते हैं—बंध और उदय के व्युच्छेद का विचार यहाँ नहीं है क्योंकि सत् और असत् बंधोदय की समानता का विरोध है। परोदय से बंध होता है क्योंकि सर्वत्र तीर्थंकर नामकर्म के बंध और उदय के एक साथ रहने का विरोध है। निरंतर बंध होता है क्योंकि संख्यात आवली आदि काल के बिना एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। इसके प्रत्यय देवोघ प्रत्ययों के समान हैं परन्तु इसके उत्तरोत्तर प्रत्यय अर्हंतभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, लब्धिसंवेगसम्पत्ति, दर्शनविशुद्धि और प्रवचनप्रभावनादिक हैं। इन देवों के मनुष्यगति से संयुक्त तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। सादि अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में सौधर्म से लेकर नवग्रैवेयकवासी देवों तक के बंध-अबंध का निरूपण करने वाले बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब अनुदिश से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत के देवों में बंधक और अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अनुदिशों से लेकर सर्वार्थसिद्धि तक के विमानवासी देवों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति,

भय-दुगुंछा-मणुस्साउ-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय सरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१००।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा, अबंधा णत्थि।।१०१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—मनुष्यत्रिक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनन-अयशःकीर्ति-तीर्थकरप्रकृतीना-मुदयाभावात् अवशेषाणां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदाभावात् 'बंधात् उदयस्य किं पूर्वं किं वा पश्चाद् व्युच्छेदो भवति, इति अत्र परीक्षा नास्ति।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पुरुषवेद-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुकलघुक-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सानां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः, अपर्याप्तकाले उदयाभावेऽपि बंधोपलंभात्। समचतुरस्रसंस्थान-

---

अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन बंधक है ?।।१००।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अयशकीर्ति और तीर्थंकर, इनके उदय का अभाव होने से तथा शेष प्रकृतियों के उदयव्युच्छेद का अभाव होने से बंध से उदय का क्या पूर्व में या क्या पश्चात् व्युच्छेद होता है इस प्रकार की यहाँ परीक्षा नहीं है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पुरुषवेद, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि ये यहाँ ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय और जुगुप्सा का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का स्वोदय-परोदय

उपघात-प्रत्येकशरीराणामपि स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि बंधदर्शनात्।

मनुष्यायुः-मनुष्यगति- औदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग- वज्रवृषभसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अयशःकीर्ति-तीर्थकराणां परोदयेन बंधः, अत्रैतासामुदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-भय-जुगुप्सा-मनुष्यायुर्मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-तीर्थकर-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एतासामेकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातासात-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमात्।

अत्र असंयतसम्यग्दृष्टौ द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु औदारिकद्विक-स्त्री-नपुंसकवेदप्रत्ययानामभावात्। शेषं सुगमं।

एतासां प्रकृतीनां बंधो मनुष्यगतिसंयुक्तं। देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधविनाशोऽत्र नास्ति।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां सादिअध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

से बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उदय का अभाव होने पर भी इनका बंध पाया जाता है। समचतुरस्रसंस्थान, उपघात और प्रत्येकशरीर का भी स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में उदय के अभाव के होने पर भी बंध देखा जाता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अयशकीर्ति और तीर्थंकर का परोदय से बंध होता है क्योंकि यहाँ इनके उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यायु, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका निरंतर बंध होता है क्योंकि इनके एक समय से बंधविश्राम का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति, इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम है।

यहाँ असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बयालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों में से औदारिकद्विक, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है। इन प्रकृतियों का बंध मनुष्यगति से संयुक्त होता है। देव स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधविनाश यहाँ है नहीं। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

तात्पर्यमेतत्—चतुर्गतिषु सर्वासां प्रकृतीनां मध्ये औदारिकादिप्रकृतयः उपादेया भवन्ति, मनुष्यगतौ तासामुदयत्वात् मोक्षप्राप्तिरपि मनुष्यगतावेव संभवात्। पुनश्च तीर्थकरप्रकृतिरेव सर्वश्रेष्ठा अनंताप्राणिनामुपकारकारणत्वात्।

एवं चतुर्थ स्थले अनुदिशादिसर्वार्थसिद्धिपर्यन्तानां अहमिन्द्राणां बंधकाबंधकनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचयनाम्नि ग्रन्थे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां गतिमार्गणानाम-प्रथमोऽधिकारः समाप्तः।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—चारों गतियों में सभी प्रकृतियों के मध्य औदारिक आदि प्रकृतियाँ उपादेय हैं क्योंकि मनुष्यगति में उनका उदय पाया जाता है एवं मोक्षप्राप्ति भी मनुष्यगति में ही संभव है। पुनः तीर्थंकर प्रकृति ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि वह अनंत प्राणियों के उपकार का कारण है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में अनुदिश आदि से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत के अहमिन्द्रों के बंधक और अबंधक का निरूपण करनेरूप से दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ के तृतीयखण्ड में बंधस्वामित्वविचय नाम के ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती माताजी कृत सिद्धांतचिंतामणिटीका में गतिमार्गणा नाम का यह प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ इन्द्रियमार्गणाधिकार:

मंगलाचरण

समवादिसृतावादिब्रह्मा योऽस्ति चतुर्मुखः।
चतुर्धा बंधनाशाय, तस्मै नित्यं नमो नमः।।१।।
बंधकारणनिर्मुक्ताः, भाव पञ्चेन्द्रियैर्गताः।
अतीन्द्रिया जिनेन्द्रास्तान्, भक्त्या वन्दामहे वयम्।।२।।

अथ षड्भिः अन्तरस्थलैः पंचत्रिंशत्सूत्रैः बंधस्वामित्वविचये इंद्रियमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''इंदियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले पंचेन्द्रियाणां ज्ञानावरणादीनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''पंचिंदिय-'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले सातादिप्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''सादावेदणीयस्स'' इत्यादिषट्सूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले अप्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां बंधकथनत्वेन।

''अपच्चक्खाणा-'' इत्यादिद्वादशसूत्राणि। तत्पश्चात् पंचमस्थले मनुष्यायुरादीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''मणुस्सा-'' इत्यादिषट्सूत्राणि। ततः परं षष्ठस्थले आहारशरीरादीनां बंधनिरूपणत्वेन ''आहारसरीर'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयमिति समुदायपातनिका।

अधुना इन्द्रियमार्गणायां एकेन्द्रियविकलेन्द्रियाणां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रमेकमवतार्यते —

अथ इंद्रियमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो आदिब्रह्मा समवसरण में चतुर्मुख विराजमान हैं। उन्हें चार प्रकार के बंध का नाश करने के लिए नित्य ही नमस्कार हो, नमस्कार हो।।१।।

जो बंध के कारणों से रहित होकर पाँचों भाव इन्द्रियों से रहित हैं, ऐसे उन अतीन्द्रिय जिनेन्द्र भगवन्तों की हम भक्तिपूर्वक वन्दना करते हैं।।२।।

अब छह अन्तरस्थलों से पैंतीस सूत्रों द्वारा बंधस्वामित्वविचय में इन्द्रियमार्गणा अधिकार प्रारंभ करते हैं—उसमें सर्वप्रथम पहले स्थल में एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियों के पर्याप्त और अपर्याप्तक जीवों के बंध-स्वामित्व का कथन करने रूप से ''इन्द्रियअनुवाद से-'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। पुनः दूसरे स्थल में पंचेन्द्रिय जीवों के ज्ञानावरण आदि के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए ''पंचेन्द्रिय-'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। आगे तीसरे स्थल में साता आदि प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए 'सातावेदनीय-'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। इसके बाद चौथे स्थल में अप्रत्याख्यानावरण आदि प्रकृतियों के बंध का कथन करने के लिए 'अप्रत्याख्यान-' इत्यादिरूप से बारह सूत्र हैं। इसके बाद पाँचवें स्थल में मनुष्यायु आदि के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए ''मनुष्य-'' इत्यादि छह सूत्र हैं। पुनः छठे स्थल में आहारकशरीर आदि के बंध का निरूपण करते हुए ''आहारशरीर-'' आदि चार सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका हुई है।

अब इन्द्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय-विकलेन्द्रियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए एक सूत्र अवतार लेता है —

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।।१०२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, बध्यमानप्रकृतीनां संख्यामपेक्ष्यावस्थितत्वात्। तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणां करिष्यन्ति श्रीधवलाटीकाकाराः।**

अत्र तावद्बध्यमानप्रकृतिनिर्देशं क्रियते—पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-सातासात-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-नवनोकषाय-तिर्यगायुः-मनुष्यायुः-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-औदारिकांगोपांग-षट्संहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-तिर्यग्मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारण-शरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीच-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयोऽत्र बध्यमानाः सन्ति।

एकेन्द्रियमाश्रित्य एतासां प्ररूपणा क्रियते—स्त्रीपुरुषवेद-मनुष्यायु-मनुष्यगति-द्वीन्द्रियादिपंचेन्द्रियजाति-अनंतिमपंचसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-द्विविहायोगति-त्रस-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां उदयाभावात् शेषाणामुदयव्युच्छेदाभावात्। 'उदयाद्बंधः किं पूर्वं व्युच्छिद्यते किं पश्चाद् व्युच्छिद्यते' इति विचारो नास्ति, सदसतोः सन्निकर्षविरोधात्।

सूत्रार्थ—

इन्द्रिय मार्गणानुसार एकेन्द्रिय बादर, सूक्ष्म, इनके पर्याप्त व अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्त तथा पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों के समान है।।१०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यह अर्पणासूत्र देशामर्शक है क्योंकि बध्यमान प्रकृतियों की (१०९) संख्या की अपेक्षा करके अवस्थित है। इसी कारण इससे सूचित अर्थ की श्री वीरसेनाचार्य प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है — यहाँ पहले बध्यमान प्रकृतियों का निर्देश करते हैं। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीर आंगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दोनों विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीच व उच्च गोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियाँ यहाँ बध्यमान प्रकृतियाँ हैं। एकेन्द्रिय जीव का आश्रय करके इनकी प्ररूपणा करते हैं— स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, अंतिम संस्थान को छोड़कर पाँच संस्थान, औदारिकशरीरआंगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, दो विहायोगतियाँ, त्रस, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र, इनके उदय का अभाव होने से तथा शेष प्रकृतियों के उदयव्युच्छेद का अभाव होने से यहाँ 'उदय से बंध क्या पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या क्या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है' यह विचार नहीं है, क्योंकि सत् और असत् की समानता का विरोध है।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-तिर्यगायुस्तिर्यग्गति-एकेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-स्थावर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्रैतासां ध्रुवोदयदर्शनात्।

पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषाय-आतापोद्योत-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। औदारिक शरीर-हुंडसंस्थान-उपघातानामपि-स्वोदयपरोदयौ बंधः, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि बंधोपलंभात्। तिर्यग्गति-प्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतेरपि स्वोदयपरोदयौ, गृहीतशरीरेषु उदयाभावेऽपि बंधदर्शनात्। परघातोच्छ्वासयोरपि स्वोदयपरोदयौ बंधः अपर्याप्तकाले उदयाभावेऽपि बंधदर्शनात्। अवशेषाणां परोदयो बंधः, अत्र तासां सर्वतः उदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यायुः-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुकलघुक-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातासात- सप्तनोकषाय-मनुष्यगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-षट्संस्थान-औदारिकांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गति-

---

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय जिनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि इनका ध्रुव उदय देखा जाता है। पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, छह नोकषाय, आतप, उद्योत, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण शरीर, यशकीर्ति और अयशकीर्ति इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान और उपघात का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव होने पर भी बंध पाया जाता है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि जिन जीवों ने शरीर ग्रहण कर लिया है उनके तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उदय का अभाव होने पर भी बंध देखा जाता है। परघात और उच्छ्वास का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उदयाभाव के होने पर उनका बंध देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का परोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ उनके उदय का सर्वदा अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, औदारिक शरीरआंगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र, इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र इनका सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि

तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरोबंधः, सर्वैकेन्द्रियेषु सान्तरबंधानामेतासां तैजोवायुकायिकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां बंधः सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः ?

एकेन्द्रियेषूत्पन्नदेवानामन्तर्मुहूर्तकालं निरन्तरबंधदर्शनात्।

एकेन्द्रियेषु मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगभेदेन चत्वारो मूलप्रत्ययाः। उत्तरप्रत्ययेषु पंचमिथ्यात्वप्रत्ययाः, पंचविधमिथ्यात्वैः सह नानामनुष्याणामेकेन्द्रियेषूत्पन्नानां पंचमिथ्यात्वोपलंभात्। एक इंद्रियासंयमः, षट्प्राणासंयमाः, कषायाः षोडश, स्त्रीपुरुषवेदाभ्यां विना नोकषायाः सप्त, औदारिकद्विक-कार्मणमिति त्रयो योगाः, एते सर्वेऽपि अष्टत्रिंशदुत्तरप्रत्ययाः। विशेषेण—तिर्यग्मनुष्यायुषोः कार्मणप्रत्ययेन विना सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः। एतेष्वेकेन्द्रियेषु एकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्यया एकादश अष्टादश।

इमे तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-आतापोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीराणि तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मनुष्यत्रिक-उच्चगोत्राणि मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। अवशेषाः सर्वाः प्रकृतयः तिर्यग्गति-मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, द्विगतिभ्यां विरोधाभावात्। एकेन्द्रियाः स्वामिनः आसां प्रकृतीनां बंधस्य।

बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति। पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुक-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां चतुर्विधो बंधः। अनशेषाणां सादि-अध्रुवौ।

सर्व एकेन्द्रियों में सान्तर बंध वाली इन प्रकृतियों का तेजोकायिक व वायुकायिक जीवों में निरंतर बंध पाया जाता है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर प्रकृतियों का बंध सान्तर-निरन्तर होता है।

शंका—इनका निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुए देवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका निरन्तर बंध देखा जाता है।

एकेन्द्रियों में मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग के भेद से चार मूल प्रत्यय होते हैं। उत्तर प्रत्ययों में पाँच मिथ्यात्व प्रत्यय, क्योंकि पाँच मिथ्यात्वों के साथ एकेन्द्रियों में उत्पन्न हुए नाना मनुष्यों के पाँच मिथ्यात्व प्रत्यय पाये जाते हैं। एक एकेन्द्रिय या संयम, छह प्राणि असंयम, सोलह कषाय, स्त्री और पुरुषवेद के बिना सात नोकषाय तथा दो औदारिक व कार्मण ये तीन योग, ये सब ही अड़तीस उत्तर प्रत्यय एकेन्द्रियों में होते हैं। विशेषता केवल यह है कि तिर्यगायु व मनुष्यायु के कार्मण प्रत्यय के बिना सैंतीस प्रत्यय होते हैं। ग्यारह व अट्ठारह एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय होते हैं।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रियजाति, द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति, चतुरिन्द्रियजाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण शरीर को तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष सब प्रकृतियों को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। क्योंकि, दोनों गतियों के साथ उनके बंध का विरोध नहीं है। एकेन्द्रिय जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद है नहीं। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघुक, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

एवं बादरैकेन्द्रियाणां। विशेषेण बादरं स्वोदयेन बध्यते। सूक्ष्मस्य परोदयो बंधः। बादरैकेन्द्रियपर्याप्तानां बादरैकेन्द्रियवत् भंगः। नवरि पर्याप्तस्य स्वोदयः, अपर्याप्तस्य परोदयः बंधः। बादरैकेन्द्रियापर्याप्तानामपि बादरैकेन्द्रियवत् भंगः। नवरि स्त्यानगृद्धित्रिक-परघातोच्छ्वास-आतापोद्योत-पर्याप्त यशःकीर्तीणां परोदयो बंधः। अपर्याप्त-अयशःकीर्त्योः स्वोदयः। परघातोच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां एकेन्द्रियेषु सान्तरो निरन्तरो बंधः। अत्र पुनः सान्तरः, अपर्याप्तेषु देवानामुत्पत्तेरभावात्। औदारिककाययोगप्रत्ययो नास्ति। सूक्ष्मैकेन्द्रियाणां एकेन्द्रियवत् भंगोऽस्ति। नवरि परघातोच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां सान्तरो बंधः, सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तानां सूक्ष्मैकेन्द्रियभंगः। नवरि पर्याप्तस्य स्वोदयः, अपर्याप्तस्य परोदयः बंधः। सूक्ष्मैकेन्द्रियापर्याप्तानां सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तभंगः। नवरि स्त्यानगृद्धित्रिक-परघातोच्छ्वासपर्याप्तानां परोदयो बंधः। अपर्याप्तनामकर्मणः स्वोदयः। प्रत्ययेषु औदारिककाययोगप्रत्ययोऽपनेतव्यः।

संप्रति द्वीन्द्रियाणां कथयन्ति—स्त्री-पुरुषवेद-मनुष्यत्रिक-एकेन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-अनंतिमपंचसंस्थान-पंचसंहनन-आताप-प्रशस्तविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणामुदयाभावात् शेषप्रकृतीनां चोदयव्युच्छेदाभावात् द्वीन्द्रियेषु पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तकेभ्यः बध्यमानप्रकृतीः बध्यमानेषु 'बंधादुदयः किं पूर्वं किं वा पश्चाद् व्युच्छिन्नः' इति विचारो नास्ति।

इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय जीवों की भी प्ररूपणा है। विशेष इतना है कि इनके बादर नामकर्म स्वोदय से बंधता है। सूक्ष्म प्रकृति का बंध परोदय से होता है। बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों की प्ररूपणा बादर एकेन्द्रियों के समान है। विशेषता केवल इतनी है कि उनके पर्याप्त प्रकृति का स्वोदय और अपर्याप्त प्रकृति का परोदय बंध होता है। बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की भी प्ररूपणा बादर एकेन्द्रियों के समान है। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रय, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, पर्याप्त और यशकीर्ति का उनके परोदय बंध होता है। अपर्याप्त और अयशकीर्ति का स्वोदय बंध होता है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर इनका एकेन्द्रियों में सान्तर-निरंतर बंध होता है। परन्तु यहाँ उनका सान्तर ही बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकों में देवों की उत्पत्ति का अभाव है। यहाँ प्रत्ययों में औदारिक काययोग प्रत्यय नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रियों की प्ररूपणा एकेन्द्रियों के समान है। विशेषता यह है कि परघात, उच्छ्वास, बादर पर्याप्त और प्रत्येक शरीर का उनके सान्तर बंध होता है क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियों में देवों की उत्पत्ति का अभाव है। बादर, आताप, उद्योत और यशकीर्ति का परोदय बंध होता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्तों की प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों के समान है। विशेष इतना है कि उनके पर्याप्त प्रकृति का स्वोदय और अपर्याप्त प्रकृति का परोदय बंध होता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्तों की प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के समान है। विशेष इतना है कि स्त्यानगृद्धित्रय, परघात, उच्छ्वास और पर्याप्त प्रकृतियों का परोदय बंध होता है। अपर्याप्त नामकर्म का स्वोदय बंध होता है। प्रत्ययों में औदारिककाययोग प्रत्यय को कम करना चाहिए।

अब द्वीन्द्रिय जीवों की प्ररूपणा करते हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, अंतिम संस्थान को छोड़ शेष पाँच संस्थान, अंतिम संहनन को छोड़ शेष पाँच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारणशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र, इनके उदय का अभाव होने से तथा शेष प्रकृतियों के उदयव्युच्छेद का अभाव होने से पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों को बांधने वाले द्वीन्द्रिय जीवों में बंध से उदय क्या पूर्व में या क्या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-तिर्यगायु:-तिर्यग्गति-द्वीन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुक-त्रस-बादर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंध:, अत्रैतासां ध्रुवोदयत्वदर्शनात्। स्त्यानगृद्धि-निद्रानिद्रा-प्रचलाप्रचला-निद्रा-प्रचला-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषाय- पर्याप्तापर्याप्त-यश:कीर्ति-अयश:कीर्तीणां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंध:, उभयथापि बंधस्य विरोधाभावात्। औदारिकशरीर-हुंडसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-उपघात-प्रत्येकशरीराणामपि स्वोदयपरोदयौ, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि बंधोपलंभात्। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतेरपि स्वोदयपरोदयौ बंध:, विग्रहगत्या अन्यत्र उदयाभावे बंधदर्शनात्। परघात-उच्छ्वास-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दु:स्वराणामपि स्वोदयपरोदयौ बंध:, अपर्याप्तकाले उदयाभावेऽपि बंधदर्शनात् उद्योतस्य उद्योतोदयविरहिताविरहतेषु बंधोपलंभात्। स्त्री-पुरुष-मनुष्यायु:-मनुष्यगति-एकेन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-अनन्तिमपंचसंस्थान-पंचसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-आताप-प्रशस्त-विहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां परोदयो बंध:।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुषायु:-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंध:, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। द्वयोरायुषोर्निरन्तरो बंध:, एकसमयेन व्युच्छेदाभावात्। सातासात-सप्तनोकषाय-मनुष्यगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-

---

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, द्वीन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ इनका ध्रुव उदय देखा जाता है। स्त्यानगृद्धि, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, छह नोकषाय, पर्याप्त, अपर्याप्त, यशकीर्ति और अयशकीर्ति, इनका स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं है। औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, उपघात और प्रत्येकशरीर, इनका भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में उदय का अभाव होने पर भी इनका बंध पाया जाता है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि विग्रहगति को छोड़कर अन्य अवस्था में उसके उदय का अभाव होने पर भी बंध देखा जाता है। परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनका उदयाभाव होने पर भी बंध देखा जाता है तथा उद्योत का, उद्योत के उदय से रहित और उससे सहित जीवों में उसका बंध पाया जाता है। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यायु, एकेन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, अंतिम संस्थान को छोड़कर पाँच संस्थान, पाँच संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, प्रशस्तविहायोगति, स्थावर, सूक्ष्म, साधारणशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र इनका परोदय बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलहकषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। दो आयुओं का निरंतर बंध होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधव्युच्छेद का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग,

मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन एतासां बंधोपरमदर्शनात्।

परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणामेकेन्द्रियेषु इव सान्तर-निरन्तरो बंधः द्वीन्द्रियादिषु किन्न प्ररूपितः ?

न प्ररूपितः, देवानामेकेन्द्रियेषु इव विकलेन्द्रियेषु उपपादाभावात्।

तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां सान्तर-निरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः?

न, तेजोवायुकायिकेभ्यः द्वीन्द्रियादिषु उत्पन्नानामन्तर्मुहूर्तकालमेतासां निरन्तरबंधोपलंभात्।

एतासां मूलप्रत्ययाश्चत्वारः। पंच मिथ्यात्वं, द्वौ इन्द्रियासंयमौ, षट्प्राणानां असंयमाः, षोडश कषायाः, सप्त नोकषायाः, चत्वारो योगाः सर्वे एते द्वीन्द्रियस्य चत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः। नवरि तिर्यग्मनुष्यायुषोः कार्मणप्रत्ययेन विना एकोनचत्वारिंशत्प्रत्ययाः। एकादश अष्टादश एकसमयिकजघन्योत्कृष्टप्रत्ययाः भवन्ति।

तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-तिर्यगायुः-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्यत्रिक-उच्चगोत्राणां मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। शेषाणां प्रकृतीनां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः, द्वाभ्यां गतिभ्यां सह विरोधाभावात्।

छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है।

शंका — परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का एकेन्द्रिय जीवों के समान सान्तर-निरन्तर बंध द्वीन्द्रिय जीवों में क्यों नहीं कहा गया ?

समाधान — एकेन्द्रियों के समान विकलेन्द्रियों में देवों की उत्पत्ति न होने से यहाँ उक्त प्रकृतियों का सान्तर-निरंतर बंध नहीं कहा गया।

तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में से द्वीन्द्रियों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

इनके मूल प्रत्यय चार होते हैं। पाँच मिथ्यात्व, दो इन्द्रिय संयम, छह प्राणी असंयम, सोलह कषाय, सात नोकषाय और चार योग ये सब द्वीन्द्रिय जीव के चालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। विशेषता केवल इतनी है कि तिर्यगायु व मनुष्यायु कार्मण प्रत्यय के बिना उनतालीस प्रत्यय होते हैं। ग्यारह व अठारह क्रम से एक समय संबंधी जघन्य और उत्कृष्ट प्रत्यय होते हैं।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण इनका तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का तिर्यग्गति

बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति।

ध्रुवप्रकृतीनां चतुर्विधो बंधः। अवशेषाणां सादि-अध्रुवौ। एवं पर्याप्तानां। नवरि पर्याप्तनामकर्मणः स्वोदयः, अपर्याप्तनामकर्मणः परोदयो बंधः। एवमपर्याप्तानामपि वक्तव्यम्।

नवरि स्त्यानगृद्धित्रिक-परघात-उच्छ्वास-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-पर्याप्त-दुःस्वर-यशःकीर्तीणां परोदयो बंधः। अपर्याप्त-अयशःकीर्त्योः स्वोदयः।

अपर्याप्तानां अष्टत्रिंशत्प्रत्ययाः, औदारिककाय-असत्यमृषावचनयोगानामभावात्।

त्रीन्द्रियाणां त्रीन्द्रियपर्याप्तानां त्रीन्द्रियापर्याप्तानां च द्वीन्द्रिय-द्वीन्द्रियपर्याप्तवत् भंगो भवति। नवरि घ्राणेन्द्रियेण सह त्रीन्द्रिय-त्रीन्द्रियपर्याप्तानां एकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः। अपर्याप्तानामेकोनचत्वारिंशत्, औदारिककाय-असत्यमृषावचोयोगयोरभावात्।

त्रीन्द्रियनामकर्मणः स्वोदयो बंधः। अवशेषेन्द्रियानामकर्मणां परोदयो बंधो भवति।

चतुरिन्द्रियाणामेवमेव वक्तव्यं। नवरि चतुरिन्द्रियजातिबंधः स्वोदयः। शेषेन्द्रियजातिबंधः परोदयः। द्वाचत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः, चक्षुरिन्द्रियप्रवेशात्। अपर्याप्तानां चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिककाय-असत्यमृषावचोयोगयोरभावात्।

अधुना पंचेन्द्रियापर्याप्तानां भणिष्यन्ति—अत्र बध्यमानप्रकृतयः पंचेन्द्रियतिर्यगपर्याप्तैः बध्यमानाश्चैव, नान्याः। अत्र एतासां उदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, सदसतोर्बंधोदययोरत्र व्युच्छेदाभावात्।

और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि दोनों गतियों के साथ उनके बंध का विरोध नहीं है। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है। ध्रुव प्रकृतियों का चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवों की प्ररूपणा है। विशेषता केवल इतनी है कि उनके पर्याप्त नामकर्म का स्वोदय और अपर्याप्त नामकर्म का परोदय बंध होता है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय अपर्याप्तकों का भी कथन करना चाहिए। विशेष यह है कि स्त्यानगृद्धित्रय, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, पर्याप्त, दुस्वर और यशकीर्ति का परोदय बंध होता है। अपर्याप्त और अयशकीर्ति का स्वोदय बंध होता है। अपर्याप्तों के अड़तीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि औदारिक काययोग और असत्यमृषा वचनयोग का उनके अभाव है। त्रीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय पर्याप्त और त्रीन्द्रिय अपर्याप्त जीवों की प्ररूपणा द्वीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय पर्याप्त और द्वीन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के समान है। विशेषता इतनी है कि घ्राण इन्द्रिय के साथ त्रीन्द्रिय और त्रीन्द्रिय पर्याप्त जीवों के इकतालीस प्रत्यय होते हैं। अपर्याप्तों के उनतालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि उनके औदारिक काययोग और असत्यमृषा वचनयोग का अभाव है। त्रीन्द्रिय नामकर्म का स्वोदय बंध होता है। शेष इन्द्रिय नामकर्मों का परोदय बंध होता है।

चतुरिन्द्रिय जीवों का भी इसी प्रकार ही कथन करना चाहिए। विशेष इतना है कि उनके चतुरिन्द्रिय जाति का स्वोदय बंध होता है। शेष इन्द्रिय जातियों का बंध परोदय होता है। यहाँ चक्षु इन्द्रिय का प्रवेश होने से बयालीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। अपर्याप्तों के चालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि उनके औदारिक काययोग और असत्य मृषा वचनयोग का अभाव है।

पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों की प्ररूपणा करते हैं—यहाँ बध्यमान प्रकृतियाँ पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तों द्वारा बांधी जाने वाली ही हैं, अन्य नहीं हैं। यहाँ, इनका उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि सत् और असत् बंधोदय के व्युच्छेद का यहाँ अभाव है।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-त्रस-बादर-अपर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयः बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषाय-तिर्यगायु-तिर्यग्द्विक-मनुष्यत्रिकाणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, उदयेन विनापि, सत्यपि उदये बंधोपलंभात्।

औदारिकद्विक-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-उपघात-प्रत्येकशरीराणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि अन्यत्रोदये सत्यपि बंधदर्शनात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-स्त्री-पुरुषवेद-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-पंचसंस्थान-पंचसंहनन-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-स्थावर-सूक्ष्म-पर्याप्त-साधारण-शरीर-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां परोदयेन बंधः, एतासामत्रोदय-विरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यगायुः-मनुष्यायुः-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र एतासां ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-सप्तनोकषाय-मनुष्यगति-एकेन्द्रियादिपंचजाति-षट्संस्थान-औदारिकांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन एतासां बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरो बंधः।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, छह नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि उदय के बिना भी तथा उदय के होने पर भी इनका बंध पाया जाता है । औदारिक शरीर, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, उपघात और प्रत्येक शरीर का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में उदयाभाव के होने पर भी तथा अन्यत्र उदय के होते हुए भी इनका बंध देखा जाता है। स्त्यानगृद्धित्रय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, परघात, उच्छ्वास, आताप, उद्योत, दो विहायोगतियां, स्थावर, सूक्ष्म, पर्याप्त, साधारण शरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र इनका परोदय से बंध होता है यहाँ इनके उदय का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक, तैजस, कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरंतर बंध होता है क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र इनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरंतर बंध होता है।

कथं निरन्तरो बंधः एतासां ?

न, तेजोवायुकायिकाभ्यां पंचेन्द्रियापर्याप्तेषु उत्पन्नानामन्तर्मुहूर्तकालमेतासां निरन्तरबन्धोपलंभात्।

पंचेन्द्रियापर्याप्तानामेताः प्रकृतीः बध्यमानानां पंच मिथ्यात्वानि, द्वादश असंयमाः, षोडश कषायाः, सप्त नोकषायाः, द्वौ योगौ इति द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः भवन्ति। तिर्यग्मनुष्यायुषोः एकचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, कार्मणप्रत्ययाभावात्। शेषं सुगमं।

तिर्यक्त्रिक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-उद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीराणां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्यगतित्रिक-उच्चगोत्राणां मनुष्यगतिसंयुक्तः। शेषाणां प्रकृतीनां बंधः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः।

पंचेन्द्रियापर्याप्तकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति। पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

अद्य वैशाखशुक्लापंचम्यां[1] श्रीऋषभदेवकमलमंदिरशिखरस्योपरि स्वर्णमयकलशारोहणं संजातं मम संघसानिध्ये लघुपंचकल्याणकप्रतिष्ठापि संजाता श्रीऋषभदेवादिजिनबिम्बानां। ह्यः अक्षयतृतीयादिवसे भगवतः श्रीऋषभदेवस्य महामुनेः प्रथमाहारोऽपि दर्शितः श्रीश्रेयांसकुमारेण राज्ञा दान तीर्थप्रवर्तकेणेति। एतदक्षयतृतीयापर्व अस्मिन् भूतले अक्षयं भूयात्, असौ स्वर्णकलशमयं कमलमंदिरमपि तस्मिन् विराजमाना

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — यह ठीक नहीं, क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में से पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक इनका निरंतर बंध पाया जाता है।

इन प्रकृतियों को बांधने वाले पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों के पाँच मिथ्यात्व, बारह असंयम, सोलह कषाय, सात नोकषाय और दो योग, इस प्रकार बयालीस प्रत्यय होते हैं। तिर्यगायु और मनुष्यायु के इकतालीस प्रत्यय होते हैं क्योंकि उनके कार्मण प्रत्यय का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर इनका तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र का मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों का बंध तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। पंचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद यहाँ है नहीं। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका चार प्रकार का बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

आज वैशाख शुक्ला पंचमी के दिन (वीर नि. सं. २५२४ में भारत की राजधानी दिल्ली में प्रीतविहार कालोनी में प्रातः सवा सात बजे) श्री ऋषभदेव कमल मंदिर के शिखर पर स्वर्णमयी कलशारोहण मेरे संघ सानिध्य में हुआ। साथ ही श्री ऋषभदेव आदि जिनप्रतिमाओं की लघु पंचकल्याणक प्रतिष्ठा भी सम्पन्न हुई है। दो दिन पूर्व 'अक्षयतृतीया' पर्व के दिन भगवान श्री ऋषभदेव का महामुनि के वेष में प्रथम आहार भी दानतीर्थ प्रवर्तक राजा श्री श्रेयांसकुमार के द्वारा दिखाया गया। यह अक्षयतृतीया पर्व इस पृथिवीतल पर

---

१. अद्य चतुर्विंशत्याधिकपंचविंशतिशततमे वीराब्दे भारतस्य राजधानी दिल्लीमहानगरे प्रीतविहारे उपनगरे प्रातः सपादसप्तवादनसमये।

सर्वाः जिनप्रतिमाश्च सर्वत्र देशे राज्ये राष्ट्रे शासकानां जनतानां भाक्तिनां च मंगलं वितरन्तु इति।

अद्य प्रीतिविहारनामोपनगरे श्रीऋषभदेवसमवसरण- श्रीविहारः सर्वत्र मंगलं कुर्यात्।

अधुना सामान्यपंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रियपर्याप्तजीवानां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१०३।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१०४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र प्राक् पृच्छासूत्रस्य विवेचनं क्रियते, किं च इदं देशामर्शकं तेनैतेन सूचितार्थानां प्ररूपणा क्रियते। तद्यथा—**

किं मिथ्यादृष्टिः बंधकः, किं सासादनो बंधकः, किं सम्यग्मिथ्यादृष्टिर्बंधकः, किमसंयतसम्यग्दृष्टिर्बंधकः, किं संयतासंयतः किं प्रमत्तः किमप्रमत्तः किमपूर्वः किमनिवृत्तिः किं सूक्ष्मसांपरायिकः किमुपशान्तकषायः किं क्षीणकषायः किं सयोगिजिनः किमयोगिभट्टारको बंधकः इति एवमेषः एकसंयोगः। संप्रति अत्र

अक्षय होवे और स्वर्णकलश सहित यह कमल मंदिर भी तथा इस मंदिर में विराजमान सभी जिनप्रतिमाएँ सर्वत्र देश, राज्य और राष्ट्र में शासकों के लिए सर्वजनता के लिए एवं सभी भाक्तिकों के लिए मंगलकारी होवें, ऐसी भावना है।

आज यहाँ प्रीतविहार कालोनी में 'श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार' का आगमन हुआ है, यह आगमन भी सभी के लिए मंगलकारी होवे।

अब सामान्य पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तक जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१०३।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में उपशामक व क्षपक तक बंधक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ पहले पृच्छासूत्र का विवेचन करते हैं, क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है इसलिए इसके द्वारा सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—

क्या मिथ्यादृष्टि बंधक है, क्या सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक है, क्या सम्यग्मिथ्यादृष्टि बंधक है, क्या असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक है, क्या संयतासंयत, क्या प्रमत्त, क्या अप्रमत्त, क्या अपूर्वकरण, क्या अनिवृत्तिकरण, क्या सूक्ष्मसांपरायिक, क्या उपशांतकषाय, क्या क्षीणकषाय, क्या सयोगी जिन या क्या अयोगी भट्टारक

द्विसंयोगादिभिः अक्षसंचारं कृत्वा षोडशसहस्र-त्रिशत-त्रयशीतिप्रश्नभंगाः उत्पादयितव्याः।

किं पूर्वमेतासां बंधो व्युच्छिद्यते किमुदयः किं द्वौ अपि समं व्युच्छिद्येते एवमत्र त्रयो भंगाः।

किं स्वोदयेन बंधः किं परोदयेन किं स्वोदय-परोदयाभ्यां अत्रापि त्रयो भंगाः। किं सान्तरो बंधः किं निरन्तरः किं सान्तरनिरन्तरोऽत्रापि त्रयो भंगाः।

एतासां किं मिथ्यात्वप्रत्ययिको बंधः किमसंयतप्रत्ययिकः किं कषायप्रत्ययिकः किं योगप्रत्ययिको बंधः इति पंचाशत् मूलप्रत्ययाः प्रश्नभंगा भवन्ति।

एकान्त-विपरीत-मूढ-संदेह-अज्ञानमिथ्यात्व-चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-जिह्वा-स्पर्श-मनः-पृथिवीकायिक-अप्कायिक-तेजःकायिक-वायुकायिक-वनस्पतिकायिक-त्रसकायिकअसंयम-षोडशकषाय-नवनोकषाय-पंचदशयोगप्रत्ययान् स्थापयित्वा-चतुर्दशशतएकचत्वारिंशत्कोटाकोटि-पंचदशलक्ष-अष्टादशसहस्र-अष्टशत-सप्तकोटि-अष्टपंचाशल्लक्ष-पंचपंचाशत्सहस्र-अष्टशत-एकसप्तति-उत्तरप्रश्नभंगा उत्पादयितव्याः। (१४४११५१८८०७५८५५८७१)।

किं नरकगतिसंयुक्तं बध्नन्ति किं तिर्यग्गतिसंयुक्तं किं मनुष्यगतिसंयुक्तं किं देवगतिसंयुक्तं इति अत्र पंचदश प्रश्नभंगा उत्पादयितत्याः। अध्वानभंगप्रमाणं सुगमं।

किमर्पितगुणस्थानस्यादौ मध्ये अन्ते बंधः व्युच्छिद्यते इति एकैकस्मिन् गुणस्थाने त्रयः त्रयो भंगाः उत्पादयितव्याः। सर्वबंधव्युच्छेदप्रश्नसमासो द्विचत्वारिंशत्।

किं सादिकः बंधः किमनादिकः किं ध्रुवः किमध्रुवश्चेति अत्र पंचदश प्रश्नभंगाः उत्पादयितव्याः।

बंधक हैं, इस प्रकार ये एक संयोगी भंग हैं।अब यहाँ द्विसंयोगादिकों के द्वारा अक्षसंचार करके सोलह हजार तीन सौ तेरासी प्रश्नभंग उत्पन्न कराना चाहिए। क्या पूर्व में इनका बंध व्युच्छिन्न होता है, क्या उदय या क्या दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं, इस प्रकार यहाँ तीन भंग होते हैं। क्या स्वोदय से बंध होता है, क्या परोदय से या क्या स्वोदय-परोदय से, इस प्रकार यहाँ भी तीन भंग होते हैं। क्या सान्तर बंध होता है, क्या निरंतर बंध होता है, या क्या सान्तर-निरंतर इस प्रकार यहाँ भी तीन ही भंग होते हैं।

इनका बंध क्या मिथ्यात्वप्रत्यय है, क्या असंयमप्रत्यय है, क्या कषायप्रत्यय है, या क्या योगप्रत्यय बंध है। इस प्रकार पन्द्रह मूलप्रत्यय संबंधी प्रश्नभंग होते हैं।

एकान्त, विपरीत, मूढ़, संदेह और अज्ञानरूप पाँच मिथ्यात्व, चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिव्हा, स्पर्श, मन, पृथिवीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक, इनके निमित्त से होने वाले बारह असंयम, सोलह कषाय, नौ नोकषाय और पन्द्रह योग प्रत्ययों को स्थापित कर चौदह सौ इकतालीस कोड़ाकोड़ी पन्द्रह लाख अठारह हजार, आठ सौ सात करोड़, अट्ठावन लाख, पचपन हजार, आठ सौ इकहत्तर उत्तर प्रत्यय निमित्तक प्रश्नभंग उत्पन्न कराना चाहिए। १४४११५१८८०७५८५५८७१।

ये क्या नरकगति से संयुक्त बांधते हैं, क्या तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं, क्या मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं या क्या देवगति से संयुक्त बांधते हैं, इस प्रकार यहाँ पन्द्रह प्रश्नभंग उत्पन्न कराना चाहिए। बंधाध्वान का भंगप्रमाण सुगम है। क्या विवक्षित गुणस्थान के आदि में, मध्य में या अन्त में बंधव्युच्छिन्न होता है इस प्रकार तीन-तीन भंग उत्पन्न कराना चाहिए। बंधव्युच्छेद के प्रश्नविषयक सर्व भंगों का योग बयालीस होता है।

क्या सादि क्या अनादि, क्या ध्रुव और क्या अध्रुव बंध होता है, इस प्रकार यहाँ पन्द्रह प्रश्नभंग उत्पन्न कराना चाहिए।

एतानि प्रश्नानि अस्मिन् पृच्छासूत्रे समहितानि सन्ति।

एषां प्रश्नानां उत्तराणि अग्रिमसूत्रेण दीयन्ते।

सामान्येन पंचज्ञानावरणादीनां षोडशप्रकृतीनां बंधका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानादारभ्य सूक्ष्मसांपरायिक-मुनिपर्यन्ता भवन्ति। विशेषेण—

पंचज्ञानावरण-चर्तुर्दशनावरण-पंचान्तरायाणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सूक्ष्मसांपरायिक-चरमसमये नष्टबंधानां एतासां क्षीणकषायचरमसमये उदयव्युच्छेदोपलंभात्। यशःकीर्त्ते उच्चगोत्रस्य च पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानचरमसमये नष्टबंधानां अयोगिचरमसमये उदयव्युच्छेदोपलंभात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः। यशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् असंयतसम्यग्दृष्टिरिति स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः, एतेषु अयशःकीर्त्तेरपि उदयदर्शनात्। उपरि स्वोदयेनैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य संयतासंयतपर्यन्तानां उच्चगोत्रस्य स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, एतेषु नीचगोत्रस्यापि उदयदर्शनात्। उपरि स्वोदयः, प्रतिपक्षोदयाभावात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, सर्वगुणस्थानेषु एकसमयेन बंधव्युच्छेदा-भावात्। यशःकीर्त्तेः सान्तरनिरन्तरो बंधः, मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तानां सान्तरो बंधः, एतेषु प्रतिपक्षप्रकृतिबंधदर्शनात्। उपरि निरन्तरः प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः

ये प्रश्न इस पृच्छासूत्र में समाहित हैं।

इन प्रश्नों का उत्तर आगे के (१०४वें) सूत्र से दे रहे हैं—

सामान्य से इन पाँच ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों के बंधक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से प्रारंभ करके सूक्ष्मसांपरायपर्यंत मुनियों के होते हैं। विशेषरूप से कहते हैं—

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में बंध के नष्ट हो जाने पर क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में उनका उदयव्युच्छेद पाया जाता है। यशकीर्ति और उच्चगोत्र का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि, सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में बंध के नष्ट हो जाने पर अयोगिकेवली के अंतिम समय में इनका उदयव्युच्छेद पाया जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है। यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि इन गुणस्थानों में अयशकीर्ति का भी उदय देखा जाता है। इसका स्वोदय से ही बंध होता है, क्योंकि वहाँ अयशकीर्ति के उदय का अभाव है। मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक उच्चगोत्र का स्वोदय-परोदय से बंध होता है, क्योंकि इन गुणस्थानों में नीचगोत्र का भी उदय देखा जाता है। आगे के गुणस्थानों में उसका स्वोदय से बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति नीचगोत्र के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है, क्योंकि सब गुणस्थानों में एक समय से इनके बंधव्युच्छेद का अभाव है। यशकीर्ति का सान्तर-निरंतर बंध होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक इनमें प्रतिपक्ष प्रकृति का बंध देखे जाने से सान्तर बंध होता है और इससे ऊपर प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव होने से उसका निरंतर बंध होता है। उच्चगोत्र का

सान्तरनिरन्तर:, असंख्यातवर्षायुष्कतिर्यग्मनुष्येषु, संख्यातवर्षायुष्कशुभत्रिकलेश्येषु निरन्तरबंधदर्शनात्। उपरिमगुणस्थानेषु निरन्तर:, प्रतिपक्षप्रकृते: बंधाभावात्।

प्रत्ययानां मूलौघवत् व्यवस्था ज्ञातव्या। गतिसंयुक्तादिकथनं उपरि ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

अत्र एतत् कथनं अपि ज्ञातव्यं—वर्तमानकाले केचिद् विद्वान्स: साध्वश्चापि कथयन्ति यत् नीचगोत्रोदयवर्तिन: शूद्रादयोऽपि मोक्षं प्राप्नुवन्ति, तत्कथनं तु अत्र न घटते किं च नीचगोत्रोदयधारिणां संयतासंयतगुणस्थानपर्यन्तमेव न चाग्रिमगुणस्थानानि, ते यदि प्रमत्ताप्रमत्तसंयता अपि न भवितुमर्हन्ति तर्हि ते क्षपकश्रेणिमारुह्य मोक्षं कथं प्राप्स्यन्ति ? अत: कर्मसिद्धान्तग्रन्थान् पठित्वा वर्णव्यवस्था अनतिक्रम्य

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर बंध होता है क्योंकि यहाँ असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच व मनुष्यों में तथा संख्यातवर्षायुष्क तीन शुभ लेश्या वालों में उसका निरन्तर बंध देखा जाता है। उपरिम गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्ययों की प्ररूपणा मूलोघ के समान है। गति संयुक्तादि उपरिम पृच्छाओं के विषय में जानकर कहना चाहिए।

विशेषतया यहाँ यह कथन भी जानना चाहिए—

वर्तमानकाल में कोई-कोई विद्वान् एवं कोई-कोई साधु भी कहते हैं कि नीच गोत्र के उदय वाले शूद्रादि भी मोक्ष को प्राप्त करते हैं, किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है क्योंकि नीच गोत्र के उदय को धारण करने वाले संयतासंयत गुणस्थान पर्यंत ही हैं न कि आगे के गुणस्थान वालों में। यदि वे प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त मुनि भी नहीं हो सकते हैं तो वे क्षपक श्रेणी में आरोहण कर मोक्ष को कैसे प्राप्त कर सकते हैं ?

अत: कर्मसिद्धान्त के ग्रंथों को पढ़कर वर्णव्यवस्था का उल्लंघन न करते हुए जैनेन्द्रव्याकरण और महापुराण आदि के प्रमाण भी मन में निर्धारित करना चाहिए।

जैनेन्द्र व्याकरण में सूत्र है—

वर्णेनार्हद्रूपाऽयोग्यानां।।९७।।

विशेषार्थ—वर्णेन जातिविशेषेणार्हद्रूपस्य नैर्ग्रंथ्यस्यायोग्यानां एकवद् भवति। तक्षायस्कारं।कुलालवरूटं। रजकतंतुवायं। वर्णेनेति किं ? मूकबधिरौ। अर्हद्रूपायोग्यानामिति किं ? ब्राह्मणक्षत्रियौ।

वर्ण से जो अर्हंतमुद्रा के अयोग्य हैं उनमें द्वंद एकवद् होता है। वर्ण से—जातिविशेष से, अर्हदरूप के—निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा के, जो अयोग्य हैं उनका द्वंदसमास एकवत् होता है। जैसे—तक्षायस्कारं तक्ष—बढ़ई, अयस्कार—लुहार, इनमें एकवचन हो जाता है तथा रजक—धोबी और तंतुवाय—जुलाहा, इनमें एकवचन हो गया है।

सूत्र में ''वर्णेन'' यह पद क्यों दिया है ?

''मूकबधिरौ'' यह वर्ण नहीं है अत: इनमें द्वंद समास में द्विवचन है।

सूत्र में ''अर्हद्रूपायोग्यानां'' ऐसा क्यों कहा ?

''ब्राह्मणक्षत्रियौ'' ये वर्ण से अर्हंतरूप निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा के योग्य हैं अत: इनमें द्वंद समास में द्विवचन होता है।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये तीन वर्ण वाले ही निर्ग्रंथ दिगम्बर मुद्रा के योग्य हैं तथा शूद्र वर्ण वाले बढ़ई, लुहार, धोबी, जुलाहा आदि नग्न दिगम्बर दीक्षा के लिए योग्य नहीं हैं और जब दैगम्बरी दीक्षा के योग्य नहीं हैं तो भला शुक्लध्यान के योग्य, मोक्षप्राप्ति के योग्य कैसे हो सकते हैं

'वर्णेनार्हद्रूपायोग्यानामिति[१]' जैनेन्द्रव्याकरणसूत्रमपि मनसि निर्धार्य—

''जातिगोत्रादिकर्माणि शुक्लध्यानस्य हेतवः।
येषां स्युस्ते त्रयो वर्णाः शेषाः शूद्राः प्रकीर्तिताः।।''[२]

इत्यादि आर्षवाक्यानि श्रद्धाय उच्चगोत्रबंधकारणानि अपि संततं भावयितव्यानि।

उक्तं च श्रीमदुमास्वामिभिः—

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।।२५।।

तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।२६।।

अर्थात् नहीं हो सकते हैं। ऐसा श्री पूज्यपाद स्वामी जो कि सर्वार्थसिद्धि ग्रंथ के कर्ता हैं उन्होंने व्याकरण ग्रंथ में स्पष्ट किया है।

महापुराण में भी कहा है—

जाति, गोत्र आदि क्रियाएँ शुक्लध्यान के लिए कारण हैं। जिनमें ये हैं—जो जाति और गोत्र आदि से उच्च हैं—शुद्ध हैं वे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्ण वाले हैं, शेष शूद्र वर्ण वाले कहे गये हैं।

श्री उमास्वामी आचार्य ने भी उच्च-नीच गोत्र माना है। यथा—

दूसरों की निंदा करना, अपनी प्रशंसा करना, दूसरों के सद्गुणों का छादन करना, अपने अविद्यमान गुणों का उद्भावन करना, ये सब नीचगोत्र के आस्रव के कारण हैं।।२५।।

विशेषार्थ—उनका विपर्यय—परप्रशंसा, आत्मनिंदा, सद्गुणों का उद्भावन और असद् गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक ये उच्चगोत्र के आस्रव हैं।।२६।।

इन नीचगोत्रादि के कारणों को छोड़कर उच्चगोत्रादि के कारणों को ग्रहण करना चाहिए, यहाँ यह अभिप्राय जानना चाहिए।

श्री भट्टाकलंक देव ने तत्त्वार्थराजवार्तिक में विस्तार किया है कि—

'जाति, कुल, बल, रूप, श्रुत, आज्ञा, ऐश्वर्य और तप का मद करना, दूसरों की अवज्ञा तथा हंसी—उपहास करना, पर की निंदा का स्वभाव, धार्मिकजन की निंदा—परिहास, आत्मोत्कर्ष की भावना, परयक्ष का विलोप करना, असत्य कीर्ति का उपार्जन करना, गुरुओं का तिरस्कार करना, गुरुजनों के दोषों का उद्भावन, गुरुओं की आज्ञा का लोप, उनका अपमान, स्थान का अपमान, गुणावसादन करना और गुरुजनों की अंजलि—स्तुति, अभिवादन, अभ्युत्थान आदि नहीं करना, तीर्थंकर भगवन्तों पर दोषारोपण आदि करना, ये सब नीचगोत्र के आस्रव के कारण हैं।

अब उच्चगोत्र के आस्रव के कारणों को कहते हैं—

नीच गोत्र के आस्रव के कारणों से विपरीत कारण—आत्मनिंदा, परप्रशंसा, परसद्गुणोद्भावन, आत्म असद्गुण आच्छादन, गुरुजनों के प्रति नम्रवृत्ति, अहंकार का अभाव तथा अनुत्सेक—उद्दंड स्वभाव नहीं रखना, ये सब उच्चगोत्र के आस्रव के कारण हैं।।२६।।

विशेष रीति से—किसी की निंदा, किसी की असूया, उपहास, बदनामी आदि नहीं करना, मान नहीं करना, धर्मात्माओं का सन्मान करना, उनके आने पर खड़े होना, उनको हाथ जोड़ना, नमस्कार करना, इस युग में अन्य जनों में नहीं पाये जाने वाले ज्ञानादि गुणों के होने पर भी उनका अहंकार नहीं करना,

---

१. शब्दार्णवचन्द्रिका, १/४/९७। २. महापुराण।

एतन्नीचगोत्रादिकारणानि त्यक्त्वा उच्चगोत्रादिकारणानि गृहीतव्यानि भवन्ति, एतदभिप्रायो ज्ञातव्यः।

अधुना निद्रानिद्रादिपंचविंशतिप्रकृतीनां बंधाबंधकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।१०५।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतयोरर्थः कथ्यते — स्त्यानगृद्धित्रिकस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सासादनसम्यग्दृष्टि-प्रमत्तसंयतेषु यथाक्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ द्वौ**

निरहंकार — नम्रवृत्ति, भस्म से ढकी हुई अग्नि की तरह अपने ढके हुए माहात्म्य का प्रकाशन नहीं करना और धार्मिक साधनों में अत्यंत आदर बुद्धि रखना आदि कारणों से उच्चगोत्र कर्म का आस्रव होता है।

अतएव आप षट्खण्डागम ग्रंथों के स्वाध्यायी जनों को इस आठवीं पुस्तक में श्रीवीरसेनाचार्य द्वारा लिखित पंक्तियों को अच्छी तरह हृदयंगम करके नीचगोत्री — शूद्रों को दैगंबरी — अर्हंतमुद्रा वाली दीक्षा नहीं देना चाहिए, इसका श्रद्धान करना चाहिए। यथा — "मिच्छाइट्ठीप्पहुडि जाव संजदासंजदो उच्चागोदस्स सोदय-परोदएण बंधो, एदेसु णीचागोदस्स वि उदयदंसणादो। उवरि सोदयो, पडिवक्खुदयाभावादो।"[1]

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक उच्चगोत्र का स्वोदय और परोदय से बंध होता है, क्योंकि इन गुणस्थानों में नीचगोत्र का भी उदय देखा जाता है — अर्थात् नीचगोत्री शूद्र भी पाँचवें गुणस्थान तक देशव्रती — अणुव्रती बन सकते हैं। आगे के गुणस्थानों में उनका स्वोदय बंध नहीं होता, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति — नीचगोत्र के उदय का अभाव है।

कहने का तात्पर्य यही है कि श्री वीरसेनस्वामी की पंक्तियों को एवं व्याकरण तथा पुराण आदि ग्रंथों के उद्धरणों को पढ़कर त्रैवर्णिक ही जैनेश्वरी — मुनिदीक्षा एवं आर्यिका आदि दीक्षा के पात्र हैं ऐसा विश्वास रखना चाहिए।

अब निद्रानिद्रा आदि पच्चीस प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेदी, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक हैं ?।।१०५।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन दो सूत्रों का अर्थ कहते हैं — स्त्यानगृद्धित्रय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और प्रमत्तसंयत गुणस्थान में यथाक्रम से इनके बंध

---

१. धवला पुस्तक ८, पृ. १७३।

अपि समं व्युच्छिद्येते, सासादने तदुभयाभावदर्शनात्। स्त्रीवेदस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सासादन-अनिवृत्तिकरणेषु यथाक्रमेण बंधोदय—व्युच्छेदोपलंभात्। तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-उद्योत-नीचगोत्राणां पूर्वं सासादने बंधः, पश्चात् संयतासंयतेषु उदयो व्युच्छिद्यते। चतुःसंस्थानानां पूर्वं सासादनेषु बंधो व्युच्छिद्यते पश्चात् सयोगिकेवलिषु उदयो व्युच्छेदोपलंभात्। एवं चतुःसंहननानां एवं वक्तव्यं, सासादने नष्टबंधानाम-प्रमत्तोपशान्तकषायेषु उक्तचतुःसंहननानां प्रथम-द्वितीयसंहननद्विकोदय व्युच्छेददर्शनात्। एवं तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-दुर्भग-अनादेयानां वक्तव्यं, सासादने बंधस्य असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्। एवमप्रशस्त-विहायोगति-दुःस्वरयोर्वक्तव्यं, सासादने बंधस्य सयोगिनि उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्।

स्त्यानगृद्धित्रिकादीनां सर्वासां प्रकृतीनां बंधः स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि विरोधाभावात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यगायुषां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपराभावात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां सांतरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरो बंधः ?

न, तेजस्कायिक-वायुकायिकचरपंचेन्द्रियमिथ्यादृष्टिषु, सप्तमपृथिवी-मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-नारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। शेषाणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

प्रत्यया ओघप्रत्ययतुल्याः।

तिर्यग्गतित्रिक-उद्योतानां द्वौ अपि गुणस्थानवर्तिनौ तिर्यग्गतिसंयुक्तं, स्त्रीवेदं नरकगत्या विना

व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादनगुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। स्त्रीवेद का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादन और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में यथाक्रम से उसके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, उद्योत और नीचगोत्र, इनका पूर्व में सासादन में बंधव्युच्छेद और पश्चात् संयतासंयतों में उदय व्युच्छिन्न होता है चार संस्थानों का पूर्व में सासादन में बंध व्युच्छेद और पश्चात् सयोग केवलियों में उदय व्युच्छिन्न होता है। इसी प्रकार चार संहननों के विषय में पूर्व-पश्चात् बंधोदय व्युच्छेद को कहना चाहिए क्योंकि सासादन गुणस्थान में बंध के नष्ट हो जाने पर अप्रमत्त व उपशान्तकषाय गुणस्थानों में क्रम से उक्त चार संहननों के प्रथम व द्वितीय युगल के उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, दुर्भग और अनादेय के भी कहना चाहिए क्योंकि सासादन व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः इनके बंध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर के भी कहना चाहिए क्योंकि सासादन और सयोगकेवली गुणस्थानों में इनके बन्ध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

स्त्यानगृद्धित्रय आदिक सब प्रकृतियों का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी उनके बंध का विरोध नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और तिर्यगायु का निरंतर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवों में से आकर पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टियों में उत्पन्न हुए जीवों तथा सप्तम पृथिवी के मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों में उक्त प्रकृतियों का निरंतर बंध पाया जाता है।

त्रिगतिसंयुक्तं, चतुःसंस्थान-चतुःसंहननानि द्वौ अपि गुणस्थानवर्तिनौ तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, अप्रशस्त-विहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि मिथ्यादृष्टयो देवगत्या विना त्रिगति संयुक्तं बध्नन्ति, सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं च। शेषाः प्रकृतीः मिथ्यादृष्टयश्चतुगतिसंयुक्तं सासादनस्त्रिगतिसंयुक्तं। शेषं चिन्तयित्वा वक्तव्यम्।

संप्रति निद्रा-प्रचलाबंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?।।१०७।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणसंजदद्धाए संखेजदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतयो प्रकृत्योः बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते पश्चादुदयः, अपूर्वकरणे बंधस्य क्षीणकषाये च उदयव्युच्छेददर्शनात्। स्वोदयपरोदयाभ्यां सर्वगुणस्थानेषु बंधोऽध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्यया ओघप्रत्ययतुल्याः। मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयत- सम्यग्दृष्टयश्च द्विगतिसंयुक्तं, शेषाः देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

गतिस्वामित्व-बंधाध्वान-बंधव्युच्छेदस्थानानि सुगमानि।

शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध है क्योंकि एक समय से उनके बंध का विश्राम देखा जाता है। प्रत्ययों की प्ररूपणा ओघप्रत्ययों के समान है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को दोनों ही गुणस्थानवर्ती जीव तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। स्त्रीवेद को नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं। चार संस्थान और चार संहनन को दोनों ही तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को मिथ्यादृष्टि देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं तथा सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त और सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं। शेष विचार कर कहना चाहिए।

अब निद्रा-प्रचला प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

निद्रा और प्रचला का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१०७।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्टशुद्धिसंयतों में उपशामक व क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण संयतकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छेद होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन प्रकृतियों का बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है और उदय पश्चात् क्योंकि अपूर्वकरण व क्षीणकषाय गुणस्थानों में क्रम से इनके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। सब गुणस्थानों में इनका बंध स्वोदय-परोदय से होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। निरंतर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सब गुणस्थानों में ओघप्रत्ययों के समान है। मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गतियों से संयुक्त तथा शेष गुणस्थानवर्ती देवगति से संयुक्त बांधते हैं। गतिस्वामित्व, बंधाध्वान और बंधव्युच्छेद स्थान सुगम हैं।

मिथ्यादृष्टेश्चतुर्विधो बंधः। शेषेषु त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्।

सातावेदनीयबंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।१०९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवली अद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अस्याः प्रकृतेः बंधः पूर्वं पश्चादुदयः व्युच्छिन्नः, सयोगिकेवलिषु बंधस्य अयोगिकेवलिषु उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्। स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, सर्वगुणस्थानेषु अध्रुवोदयत्वात्।**

मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् प्रमत्तसंयत इति सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधाभावात्। प्रत्ययाः सर्वगुणस्थानेषु ओघप्रत्ययतुल्याः।

मिथ्यादृष्टि-सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगत्या सह सातबंधाभावात्। शेषं सर्वं ओघतुल्यम्।

असातादिषट्प्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असादावेदणीयस्स-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१११।।

मिथ्यादृष्टि के चारों प्रकार का बंध होता है। शेष गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है।

अब सातावेदनीय के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१०९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक बंधक हैं। सयोगिकेवलीकाल के अंतिम समय को जाकर बंधव्युच्छेद होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।११०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सातावेदनीय का बंध पूर्व में और उदय पश्चात् व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि वह सब गुणस्थानों में अध्रुवोदयी है। मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ एक समय से उसका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रमत्तसंयत से ऊपर निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्यय सब गुणस्थानों में ओघप्रत्ययों के समान है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ सातावेदनीय का बंध नहीं होता। शेष सब प्ररूपणा ओघ के समान है।

अब असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१११।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदो त्ति बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।११२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**असातावेदनीयस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयः व्युच्छिन्नः प्रमत्तसंयतेषु बंधस्य अयोगिकेवलिषु उदयस्य च व्युच्छेदोपलंभात्। एवमरति-शोकयोः वक्तव्यं, प्रमत्तापूर्वकरणयोः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। एवं अस्थिराशुभयोः वक्तव्यं, प्रमत्त-सयोगिकेवलिनोः क्रमशः बंधोदयव्युच्छेदो-पलंभात्। अयशःकीर्त्तेः पूर्वं उदयः पश्चाद् बंधः व्युच्छिन्नः, प्रमत्तसंयत-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः बंधोदयव्युच्छेदो-पलंभात्।**

असातावेदनीय-अरति-शोकानां-स्वोदय-परोदयाभ्यां सर्वगुणस्थानेषु बंधः, परावर्तनोदयत्वात्। अस्थिराशुभयोः सर्वत्र स्वोदयेन बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। अयशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तानां स्वोदय-परोदयाभ्यां बंधः, एतेषु प्रतिपक्षोदयेनापि बंधोपलंभात्। उपरि परोदयेन, यशःकीर्त्तेः एव तत्रोदयदर्शनात्।

एतासां षण्णां प्रकृतीनां सान्तरो बंधः, द्वि-त्रिसमयादिकालप्रतिबद्धबंधनियमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। एताः षट्प्रकृतीः मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽसंयतसम्यग्दृष्टयश्च द्विगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। उपरि ओघभंगः।

मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष जीव अबंधक हैं।।११२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदयव्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्तसंयत और अयोगिकेवली गुणस्थानों में यथाक्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। इसी प्रकार अरति और शोक के कहना चाहिए क्योंकि प्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानों में क्रमशः इनके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार ही अस्थिर और अशुभ के भी कहना चाहिए क्योंकि प्रमत्त और सयोगिकेवली गुणस्थानों में उनके क्रमशः बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। अयशकीर्ति का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से इनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है।

असातावेदनीय, अरति और शोक का सब गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि इनका उदय परिवर्तनशील है। अस्थिर और अशुभ का सर्वत्र स्वोदय से बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवोदयी हैं। अयशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय के साथ भी उसका बंध पाया जाता है। इसके ऊपर परोदय से बंध होता है क्योंकि वहाँ अयशकीर्ति का ही उदय देखा जाता है। इन छह प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि दो-तीन समयादिरूप काल से संबद्ध इनके बंध के नियम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। इन छह प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि चार गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि दो गतियों से संयुक्त तथा उपरिम जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं। उपरिम प्ररूपणा ओघ के समान है।

अधुना मिथ्यात्वादिषोडशप्रकृतीनां बंधकाबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-णिरयाणुपुव्विआदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधा को अबंधो ?।।११३।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इमाः षोडशप्रकृतीः मिथ्यात्वगुणस्थाने अनन्तानन्ता मिथ्यादृष्टयो जीवा बध्नन्ति किन्तु अत्र पंचेन्द्रियाणामेवाधिकारात् इमे असंख्यातासंख्याता एव सन्ति।

कश्चिदाह—'एदे बंधा' इति निदेशोऽनर्थकः, अवगतार्थप्ररूपणात् ? आचार्यः प्राह—नैष दोषः, मेधावर्जितजनानुग्रहार्थं तन्निर्देशोऽस्ति। मिथ्यात्वापर्याप्तयोः बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, मिथ्यादृष्टौ एव तदुभयव्युच्छेददर्शनात्। एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानामेष विचारो नास्ति, पंचेन्द्रियेषु तेषामुदयाभावात्। नवरि पंचेन्द्रियपर्याप्तेषु अपर्याप्तस्यापि एष विचारो नास्तीति वक्तव्यं। नपुंसकवेदस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बंधस्य अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्। एवं नरकायुर्नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वीणां वक्तव्यम्, मिथ्यादृष्टि-असंयत-

---

अब मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, नरकानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।११३।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।११४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सोलह प्रकृतियों को मिथ्यात्व गुणस्थान में अनंतानन्त मिथ्यादृष्टि जीव बांधते हैं किन्तु यहाँ पंचेन्द्रिय जीवों का ही अधिकार होने से ये असंख्यातासंख्यात ही हैं।

कोई प्रश्न करता है—'ये बंधक हैं' यह निर्देश अनर्थक है क्योंकि वह ज्ञात अर्थ का प्ररूपण करता है ?

आचार्य देव उत्तर देते हैं—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि मेधावर्जित अर्थात् मूर्खजनों के अनुग्रह के लिए वह निर्देश किया गया है।

मिथ्यात्व और अपर्याप्त का बंध व उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इन प्रकृतियों के यह विचार नहीं है क्योंकि पंचेन्द्रिय जीवों में उनके उदय का अभाव है। विशेष इतना है कि पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में अपर्याप्त प्रकृति के भी यह विचार नहीं है, ऐसा कहना चाहिए। नपुंसकवेद का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि मिथ्यादृष्टि और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में क्रमशः उसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार नरकायु, नरकगति और नरकानुपूर्वी के कहना चाहिए क्योंकि मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से इनके बंध और

सम्यग्दृष्ट्योः क्रमशः बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। एवं हुंडसंस्थानस्य वक्तव्यं, मिथ्यादृष्टौ बंधस्य सयोगिकेवलिषु उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्। असंप्राप्तसृपाटिकासंहननस्यापि एवमेव, मिथ्यादृष्टौ बंधस्य अप्रमत्तेषु उदयव्युच्छेदोपलंभात्।

मिथ्यात्वस्य स्वोदयेन बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। नपुंसकवेदापर्याप्तयोः स्वोदयपरोदयौ बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। नवरि पंचेन्द्रियपर्याप्तेषु, अपर्याप्तस्य परोदयो बंधः, तत्र तदुदयाभावात्। हुंडसंस्थान-असंप्राप्त-सृपाटिकासंहननयोः स्वोदयपरोदयौ बंधः, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि बंधदर्शनात् सर्वेषां तदुदयनियमाभावाद्वा। नरकगतित्रिक-एकेन्द्रियादिजातिचतुष्क-आतप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां परोदयो बंधः, पंचेन्द्रियेषु एतासामुदयाविरोधात् उदयेन सह बंधस्योक्तिविरोधात्।

मिथ्यात्व-नरकायुषोर्निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां सान्तरः, निरन्तरबंधे नियमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः।

मिथ्यात्वं चतुर्गतिसंयुक्तं, नपुंसकवेद-हुंडसंस्थाने त्रिगतिसंयुक्तं, अपर्याप्त असंप्राप्तसृपाटिकासंहनने तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, नरकगतित्रिकं नरकगतिसंयुक्तं, शेषां सर्वप्रकृतीः तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। शेषं ओघवद् ज्ञातव्यं।

अप्रत्याख्यानावरणादिनवप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार हुण्डसंस्थान के भी कहना चाहिए क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सयोगकेवली गुणस्थानों में इसके बंध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। इसी प्रकार असंप्राप्तसृपाटिका संहनन के भी कहना चाहिए क्योंकि मिथ्यादृष्टि और अप्रमत्त गुणस्थानों में इसके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है।

मिथ्यात्व का स्वोदय से बंध होता है क्योंकि वह ध्रुवोदयी है। नपुंसकवेद और अपर्याप्त का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। विशेष इतना है कि पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में अपर्याप्त का परोदय बंध होता है क्योंकि उनमें अपर्याप्त के उदय का अभाव है। हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में उनका उदयाभाव होने पर भी बंध देखा जाता है अथवा सब पंचेन्द्रियों के उनके उदय का नियम भी नहीं है। नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इनका परोदय बंध होता है क्योंकि पंचेन्द्रियों में इनके उदय का विरोध होने से उदय के साथ उनके बंध के कथन का विरोध है अतः पंचेन्द्रियों में इनका परोदय बंध होता है।

मिथ्यात्व और नरकायु का निरंतर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि निरंतर बंध में नियम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। मिथ्यात्व को चारों गतियों से संयुक्त, नपुंसकवेद और हुण्डसंस्थान को देवगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त तथा अपर्याप्त और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। नरकायु, नरकगति और नरकानुपूर्वी को नरकगति से संयुक्त तथा शेष सब प्रकृतियों को तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। शेष प्ररूपणा ओघ के समान है।

अब अप्रत्याख्यानावरण आदि नव प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभ-मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडण-मणुसगइपा-ओग्गाणुपुव्वीणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।११५।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्यानुपूर्वि-अप्रत्याख्यानचतुष्काणां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, असंयतसम्यग्दृष्टिचरमसमये तदुभयाभावदर्शनात्। मनुष्यगतेः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधस्य अयोगिकेवलिषु उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्। औदारिकद्विक-वज्रवृषभवज्रनाराचशरीरसंहननानां च एवं वक्तव्यं, असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधस्य सयोगिकेवलिषु उदयस्य व्युच्छेदोपलंभात्।

अप्रत्याख्यानचतुष्कादीनां स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकशरीरद्विकानां मिथ्यादृष्टिसासादनेषु बंधः सान्तरनिरन्तरः, तिर्यग्मनुष्येषु सान्तरस्य आनतादिदेवेषु निरन्तरोपलंभात्।सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, एकसमयेन तत्र बंधोपराभावात्। वज्रवृषभनाराचसंहननस्य मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सान्तरो बंधः। उपरि

सूत्रार्थ—

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी नामकर्म, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।११५।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।११६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—मनुष्यगत्यानुपूर्वी और अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के अंत में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। मनुष्यगति का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि और अयोगिकेवली गुणस्थानों में क्रमशः उसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन के भी इसी प्रकार ही कहना चाहिए क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कादिकों का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध निरंतर होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का बंध मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर होता है क्योंकि वह तिर्यंच व मनुष्यों में सान्तर होकर भी आनतादि देवों में निरंतर पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उनका निरंतर बंध होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है। आगे उसका निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का

निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। उपरि मूलौघबंधाः।

प्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय षोडश सूत्राण्यवतार्यन्ते —

पच्चक्खाणावरणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?।।११७।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।।११८।।

पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।११९।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे संखेज्जेसु भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२०।।

माण-माया-संजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।१२१।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टि-बादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२२।।

अभाव है। प्रत्यय सुगम है। उपरिम प्ररूपणा मूलोघ के समान है।

अब प्रत्याख्यानावरण आदि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सोलह सूत्रों का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया और लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।११७।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।११८।।

पुरुषवेद और संज्वलन क्रोध का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।११९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणबादरसाम्परायिकप्रविष्ट उपशामक व क्षपक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरणबादरकाल के शेष में संख्यात भाग के बीत जाने पर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१२०।।

संज्वलन मान और माया का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१२१।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण, उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिबादरकाल के शेष-शेष में संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१२२।।

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।।१२३।।

मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्ठि- बादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२४।।

हस्स रदि भय दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?।।१२५।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरण-द्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२६।।

मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।१२७।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंज सम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१२८।

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।१२९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१३०।।

संज्वलन लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१२३।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण, उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरणबादरकाल के अंतिम समय में जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१२४।।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१२५।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के अंतिम समय में जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१२६।।

मनुष्यायु का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।१२७।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१२८।।

देवायु का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।१२९।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। अप्रमत्तकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतेषां चतुर्दशसूत्राणां अर्थः सुगमो वर्तते।

देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१३१।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतस्यार्थ उच्यते—देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिन्नः, अपूर्वकरणेषु बंधोच्छेदः, असंयतसम्यग्दृष्टिषु उदयव्युच्छेदश्च भवति। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभग-आदेयानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, अपूर्वकरणेषु-बंधव्युच्छेदस्य अयोगिकेवलिषु उदयव्युच्छेदस्य दर्शनात्। तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-रस-गंध-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुस्वर-निमार्णनाम्नां एवमेव वक्तव्यं,

---

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ इन चौदह सूत्रों का अर्थ सुगम है।

सूत्रार्थ—

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण नामकर्म, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१३१।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अपूर्वकरण और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः उनके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और आदेय, इनका पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अपूर्वकरण और अयोगिकेवली गुणस्थानों में क्रम से इनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति,

अपूर्वकरणेषु बंधस्य सयोगिषु उदयस्य च व्युच्छेददर्शनात्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां परोदयो बंधः, उदये सति एतासां बंधविरोधात्। पंचेन्द्रिय-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माणानां स्वोदयेनैव बंधः, ध्रुवोदयत्वात्, परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वर-आदेयानां स्वोदयपरोदयौ बंधः, अपर्याप्तकाले उदयाभावेऽपि बंधोपलंभात्, प्रशस्तविहायोगति-सुस्वरयोरध्रुवोदयत्वदर्शनात्, आदेयस्य मिथ्यादृष्टि-गुणस्थानादारभ्य असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तेषु उदयस्य भजनीयत्वोपलंभात्, उपरि सर्वत्र ध्रुवोदयत्वदर्शनाच्च। समचतुरस्रसंस्थानोपघात, प्रत्येकशरीरयोरेवमेव वक्तव्यं, विग्रहगतावुदयाभावेऽपि बंधोपलंभात्, समचतुरस्रसंस्थानोदयस्य भजनीयत्वदर्शनात् च। एवं सुभग-पर्याप्तयोरपि वक्तव्यं। पंचेन्द्रियेषु प्रतिपक्ष प्रकृतेरुदयदर्शनात्। नवरि पंचेन्द्रियपर्याप्तेषु पर्याप्तस्य स्वोदयेनैव बंधः, तत्र प्रतिपक्ष-प्रकृतेरुदयाभावात्। एवमेतद् मिथ्यादृष्टीनां प्ररूपितं। सासादन-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः एवमेव प्ररूपयितव्यं। नवरि पर्याप्तस्य स्वोदयेनैव बंधः। एवं सम्यग्मिथ्यादृष्ट्यादि-उपरिमगुणस्थानानामपि वक्तव्यं। नवरि उपघात-परघात-उच्छ्वास-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणामपि स्वोदयेनैव बंधः, तत्र अपर्याप्तकालाभावात्।

तैजस-कार्मण-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माणानां सर्वगुणस्थानेषु निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। पंचेन्द्रियजातेः मिथ्यादृष्टिषु सान्तर-निरन्तरः।

कथं निरन्तरः ?

प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुस्वर और निर्माण नामकर्म, इनके भी बंध व उदय का व्युच्छेद इसी प्रकार कहना चाहिए क्योंकि अपूर्वकरण और सयोगिकेवली गुणस्थानों में इनके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है।

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है क्योंकि उदय के होने पर इनके बंध का विरोध है। पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और निर्माण नामकर्म का स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर और आदेय, इनका स्वोदय-परोदय बंधहोता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उदय के न होने पर भी इनका बंध पाया जाता है। प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर प्रकृतियों का अध्रुवोदय देखा जाता है तथा मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक आदेय का उदय भजनीय अर्थात् विकल्प से पाया जाता है और इससे ऊपर सर्वत्र ध्रुवोदय देखा जाता है। समचतुरस्रसंस्थान, उपघात और प्रत्येकशरीर के भी इसी प्रकार कहना चाहिए क्योंकि विग्रहगति में उदय के न होने पर भी बंध पाया जाता है तथा समचतुरस्रसंस्थान का उदय भजनीय देखा जाता है। इसी प्रकार सुभग और पर्याप्त के भी कहना चाहिए क्योंकि पंचेन्द्रियों में प्रतिपक्ष प्रकृति का उदय देखा जाता है। विशेष इतना है कि पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों में पर्याप्त प्रकृति का स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है। इस प्रकार यह मिथ्यादृष्टियों की प्ररूपणा हुई। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों की भी प्ररूपणा इसी प्रकार करना चाहिए। विशेषता यह है कि पर्याप्त का स्वोदय से ही बंध होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि उपरिम गुणस्थानों के भी कहना चाहिए। विशेष इतना है कि उपघात, परघात, उच्छ्वास, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का भी स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि उन गुणस्थानों में अपर्याप्तकाल का अभाव है।

तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण, इनका सब गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। पंचेन्द्रिय जाति का मिथ्यादृष्टियों में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

न, सनत्कुमारादिदेवेषु नारकेषु असंख्यातवर्षायुष्क-शुभत्रिकलेश्येषु तिर्यग्मनुष्येषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादनादिषु निरन्तरो बंधः, तत्र एकेन्द्रियजात्यादीनां बंधा भावात्। एवं परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणामपि वक्तव्यं, भेदाभावात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयानां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तर-निरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः?

न, असंख्यातवर्षायुष्केषु एतासां निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। स्थिरशुभयोः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् प्रमत्तसंयत इति सान्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधसंभवात्। उपरि निरन्तरः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तर-निरन्तरः, शुभत्रिकलेश्यिकतिर्यग्मनुष्येषु निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः। प्रत्ययाः सुगमाः। शेषमोघभंगः।

आहारशरीरद्विकबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आहारसरीर-आहारअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१३३।।

अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१३४।।

समाधान — यह ठीक नहीं, क्योंकि सनत्कुमारादि देव, नारकी, असंख्यातवर्षायुष्क और शुभ तीन लेश्या वाले तिर्यंच मनुष्यों में निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि आदि उपरिम गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में एकेन्द्रिय जाति आदिकों का बंध नहीं होता। इसी प्रकार परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर के भी कहना चाहिए क्योंकि इनके कोई विशेषता नहीं है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — यह ठीक नहीं, क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्कों में इनका निरन्तर बंध पाया जाता है। उपरिम गुणस्थानों में इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का यहाँ अभाव है। स्थिर और शुभ का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति का बंध संभव है। इससे ऊपर निरंतर बंध होता है। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि शुभ तीन लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में निरंतर बंध पाया जाता है। इससे ऊपर निरंतर बंध होता है। प्रत्यय सुगम हैं। शेष प्ररूपणा ओघ के समान है।

अब आहारकशरीरद्विक के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१३३।।

अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यद्यपि आहारशरीरस्योदयः षष्ठगुणस्थाने भवति, तथापि बंधस्तु अप्रमत्तमुनय एव कुर्वन्ति इति ज्ञातव्यं।**

तीर्थकरप्रकृतिबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

तित्थयरणामाए को बंधो को अबंधो ?।।१३५।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१३६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अधःकरणादारभ्य अपूर्वकरणपर्यन्ता ये क्षपकास्ते यदि तीर्थकरप्रकृतिं बध्नन्ति तर्हि ते केवलज्ञाननिर्वाणद्वयमेव कल्याणकं प्राप्नुवन्ति इति नियमो वर्तते। इमे भगवन्तः केवलज्ञानमुत्पाद्य समवसरणविभूतिं संप्राप्य धर्मचक्रेण धर्मतीर्थं कुर्वन्ति अतस्ते तीर्थकरा उच्यन्ते। तेभ्यो नित्यं नमो नमः अस्माकं तेषां सदृशगुणलब्धये इति।**

इति श्रीषट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचयनाम्नि गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां इन्द्रिय-मार्गणानामद्वितीयोऽधिकारः समाप्तः।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—यद्यपि आहारकशरीर का उदय छठे गुणस्थान में होता है, तथापि बंध तो अप्रमत्तगुणस्थानवर्ती मुनि ही करते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

अब तीर्थंकर प्रकृति के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१३५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१३६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—अधःकरणगुणस्थान से—भाग से प्रारंभ करके अपूर्वकरणपर्यंत जो क्षपक महामुनि हैं—क्षपकश्रेणी पर आरोहण कर चुके हैं, यदि वे तीर्थकर प्रकृति का बंध करते हैं तो वे केवलज्ञान और निर्वाण ऐसे दो कल्याणकों को प्राप्त करते हैं, ऐसा नियम है। ये तीर्थंकर भगवान केवलज्ञान को उत्पन्न करके समवसरण की विभूति को प्राप्तकर धर्मचक्र से धर्मतीर्थ का प्रवर्तन करते हैं। अतः ये 'तीर्थंकर' कहलाते हैं। उनके सदृश गुणों की प्राप्ति के लिए हमारा उन्हें नित्य ही नमस्कार हो, नमस्कार हो।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के बंधस्वामित्वविचय नाम के तृतीयखण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धांतचिंतामणिटीका में इन्द्रियमार्गणा नाम का यह दूसरा अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ कायमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

षट्कायैर्निर्गताश्चापि, बन्धशून्या अकायिकाः।
ज्ञानदेहा नमामस्तान्, मनोवाक्कायशुद्धितः।।१।।

अथ स्थलत्रयेन त्रिभिः सूत्रैः बंधस्वामित्वविचये तृतीयोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पृथिव्यादिजीवानां बंधाबंधकथनत्वेन ''कायाणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले तेजस्कायिकादिजीवानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''तेउकाइय-'' इत्यादिसूत्रमेकं। ततः परं तृतीयस्थले त्रसकायिकपर्याप्तानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''तसकाइय-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति पातनिका सूचिता भवति।

अधुना पृथिव्यादिजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर पज्जत्ता-पज्जत्ताणं तसकाइयअपज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, तेनैतेन सूचितार्थानां प्ररूपणा क्रियते — तत्र तावत्पृथिवीकायिकानां भण्यमाने पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-सातासात-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-**

अथ कायमार्गणाधिकार

मंगलाचरण

जो छह कायों से रहित हो चुके हैं, बंध से शून्य हैं, कायरहित होकर भी ज्ञानशरीरी हैं, ऐसे सिद्ध भगवन्तों को हम मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।१।।

अब तीन स्थलों से तीन सूत्रों द्वारा बंधस्वामित्वविचय में तीसरा अधिकार प्रारंभ होता है — 'उसमें प्रथम स्थल में पृथिवी आदि जीवों के बंधक-अबंधक का कथन करने रूप से ''कायाणुवादेण-'' इत्यादि एक सूत्र है। इसके बाद दूसरे स्थल में तेजस्कायिकादि जीवों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए ''तेउकाइय-'' इत्यादि एक सूत्र है। पुनः तीसरे स्थल में त्रसकायिक पर्याप्तकों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए 'तसकाइय-' इत्यादि एक सूत्र है, इस प्रकार समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब पृथिवीकायिक आदि जीवों के बंधस्वामी का प्रतिपादन करते हुए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

कायमार्गणानुसार पृथिवीकायिक, अप्कायिक, वनस्पतिकायिक और निगोदजीव बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त तथा बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर, पर्याप्त, अपर्याप्त तथा त्रसकायिक अपर्याप्त जीवों की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों के समान है।।।१३७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह अर्पणा सूत्र देशामर्शक है, अतएव इससे सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं — उनमें पहले पृथिवीकायिक जीवों की प्ररूपणा करते समय पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय,

नवनोकषाय-तिर्यग्गतित्रिक-मनुष्यत्रिक-एकेन्द्रियादिपंचजाति-औदारिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-षट्संहनन-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचगोत्र-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयः बध्यमानाः पृथिवीकायिकैः स्थापयितव्याः। अत्र बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, तदुभयव्युच्छेदाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-एकेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-स्थावर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र एतासां ध्रुवोदयत्वात्। स्त्री-पुरुषवेद-मनुष्यायुः-मनुष्यगति-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-पंचसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-साधारण-द्विविहायोगति-त्रस-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां परोदयो बंधः, एतासामत्रोदयविरोधात्।

पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषाय-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां स्वोदयपरोदयौ बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। औदारिकशरीर-हुंडसंस्थान-उपघात-प्रत्येकशरीर-आतापोद्योतानामपि स्वोदयपरोदयौ बंधः, विग्रहगतावुदयाभावादध्रुवोदयत्वाच्च। परघातोच्छ्वासयोरपि स्वोदयपरोदयौ बंधः, एतयोरुदयानुदयसहितपर्याप्तापर्याप्तकालेषु बंधदर्शनात्। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतेः

साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र, ऊँचगोत्र और पाँच अंतराय प्रकृतियाँ पृथिवीकायिक जीवों द्वारा बध्यमान स्थापित करना चाहिए। यहाँ बंध और उदय के व्युच्छेद का विचार नहीं है, क्योंकि दोनों के व्युच्छेद का यहाँ अभाव है।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, साधारणशरीर, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र, इनका परोदय से बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनके उदय का विरोध है।

पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, छह नोकषाय, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि ये अध्रुवोदयी हैं। औदारिकशरीर, हुण्डकसंस्थान, उपघात, प्रत्येक शरीर, आतप और उद्योत का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव है तथा ये अध्रुवोदयी भी हैं। परघात और उच्छ्वास का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि क्रमशः इनके उदय और अनुदय सहित पर्याप्त व अपर्याप्त कालों में उनका बंध

स्वोदयपरोदयौ बंधः, स्वोदयानुदयविग्रहाविग्रहगतिषु बंधोपलंभात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यायुः-औदारिक तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-रस-गंध-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात् ध्रुवबंधित्वाच्च।

सातासात-सप्तनोकषाय-मनुष्यगतिद्विक-एकेन्द्रियादिपंचजाति-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संस्थान-षट्संहनन-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां सान्तर-निरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, तेजोवायुकायिकाभ्यां पृथिवीकायिकेषु उत्पन्नानां निरन्तरबंधोपलंभात्।

परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां अपि सान्तर-निरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरो बंधः?

न, देवानां पृथिवीकायिकेषु उत्पन्नानां मुहूर्तस्यान्ते निरन्तरबंधोपलंभात्।

एतेषां कर्मणां प्रत्ययाः एकेन्द्रियप्रत्ययैः समाः।

तिर्यग्गतित्रिक-एकेन्द्रियादिचतुष्क-आतापोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीरणि तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देखा जाता है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि क्रमशः अपने उदय व अनुदय सहित विग्रह व अविग्रह गतियों में उसका बंध पाया जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है तथा ये ध्रुवबंधी भी हैं।

साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय-जाति, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संस्थान, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का सान्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह ठीक नहीं है, क्योंकि, तेज व वायुकायिकों में से पृथिवीकायिकों में उत्पन्न हुए जीवों के निरंतर बंध पाया जाता है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर का भी सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह ठीक नहीं, क्योंकि पृथिवीकायिकों में उत्पन्न हुए देवों के अन्तर्मुहूर्त तक निरंतर बंध पाया जाता है।

इन प्रकृतियों के प्रत्यय एकेन्द्रिय प्रत्ययों के समान हैं। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारणशरीर इनको

मनुष्यगतित्रिक-उच्चगोत्राणि मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। शेषाः प्रकृतीः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

तिर्यञ्चः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अत्र बंधव्युच्छेदो नास्ति। ध्रुवबंधिनां चतुर्विधो बंधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधः।

बादरपृथिवीकायिकानां एवमेव वक्तव्यं। नवरि बादरस्य स्वोदयेन बंधः, सूक्ष्मस्य परोदयेन। बादरपृथिवीकायिकपर्याप्तानां अपि एवं चैव वक्तव्यं। विशेषेण पर्याप्तस्य स्वोदयः, अपर्याप्तस्य परोदयो बंधः। बादरपृथिवीकायिकापर्याप्तानां अपि बादरपृथिवीकायिकवद्भंगः। विशेषतया पर्याप्त-स्त्यानगृद्धित्रिक-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-यशःकीर्तीणां परोदयः, अपर्याप्त-अयशःकीर्तीणां स्वोदयो बंधः। परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां सान्तरो बंधः, अपर्याप्तकेषु देवानामुपपादाभावात्। प्रत्ययाः षट्त्रिंशत्, औदारिककाययोगप्रत्ययस्याभावात्।

सूक्ष्मपृथिवीकायिकानां पृथिवीकायिकवद्भंगः, नवरि बादरआतापोद्योत-यशःकीर्तीणां परोदयः, सूक्ष्मायशःकीर्त्योः स्वोदयः बंधः। परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां सान्तरः बंधः, सूक्ष्मैकेन्द्रियेषु देवानामुपपादाभावात्, निरन्तरबंधाभावात्। सूक्ष्मपृथिवीकायिकपर्याप्तानामेवं चैव वक्तव्यं। नवरि पर्याप्तस्य स्वोदयः, अपर्याप्तस्य परोदयो बंधः। सूक्ष्मपृथिवीकायिकापर्याप्तानां एवं चैव वक्तव्यम्। नवरि अपर्याप्तस्य स्वोदयः, पर्याप्त-स्त्यानगृद्धित्रिक-परघात-उच्छ्वासानां परोदयो बंधः। सर्वाप्कायि-कायिकानां स्व-स्वप्रत्यासत्ति-अनुसारेण पृथिवीकायिकवद्भंगः। नवरि आतापस्य परोदयो बंधः,

---

तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष प्रकृतियों को मनुष्य व तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं।

तिर्यंच स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। यहाँ बंध व्युच्छेद है नहीं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

बादर पृथिवीकायिकों की भी इसी प्रकार प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि बादर का स्वोदय और सूक्ष्म का परोदय से बंध होता है। बादर पृथिवीकायिक पर्याप्तकों की भी इसी प्रकार प्ररूपणा करना चाहिए। विशेषता इतनी है कि पर्याप्त का स्वोदय और अपर्याप्त का परोदय बंध होता है। बादर पृथिवीकायिक अपर्याप्तकों की भी प्ररूपणा बादर पृथिवीकायिकों के समान है। विशेषता यह है कि पर्याप्त, स्त्यानगृद्धित्रय, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत और यशकीर्ति का परोदय तथा अपर्याप्त और अयशकीर्ति का स्वोदय बंध होता है। परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर का सान्तर बंध होता है, क्योंकि, अपर्याप्तकों में देवों की उत्पत्ति नहीं होती। प्रत्यय सैंतीस होते हैं क्योंकि, उनके औदारिक काययोग प्रत्यय का अभाव है।

सूक्ष्म पृथिवीकायिकों की प्ररूपणा पृथिवीकायिकों के समान है। विशेष यह है कि बादर, आतप, उद्योत और यशकीर्ति का परोदय तथा सूक्ष्म और अयशकीर्ति का स्वोदय बंध होता है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर का सान्तर बंध होता है, क्योंकि सूक्ष्म एकेन्द्रियों में देवों की उत्पत्ति न होने से वहाँ निरंतर बंध का अभाव है। सूक्ष्म पृथिवीकायिक पर्याप्तकों की इसी प्रकार ही प्ररूपणा करना चाहिए। विशेषता इतनी है कि पर्याप्त का स्वोदय और अपर्याप्त का परोदय बंध होता है। सूक्ष्म पृथिवीकायिक अपर्याप्तों की भी इसी प्रकार ही प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि अपर्याप्त का स्वोदय और पर्याप्त, स्त्यानगृद्धित्रय, परघात व उच्छ्वास का परोदय बंध होता है। सब अप्कायिक जीवों की प्ररूपणा अपनी-अपनी प्रत्यासत्ति के अनुसार पृथिवीकायिकों के समान है। विशेषता यह है कि आतप का परोदय बंध होता है क्योंकि पृथिवीकायिकों

पृथिवीकायिकान् मुक्त्वान्यत्र आतापस्योदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-सातासात-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-नवनोकषाय-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिक-पंचजाति-औदारिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-षट्संहनन-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचगोत्र-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतीः स्थापयित्वा वनस्पतिकायिकानां प्ररूपणा क्रियते—

बंधोदययोः पूर्वापूर्वकालगतव्युच्छेदपरीक्षा नास्ति, बंधोदययोरत्र व्युच्छेदाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-एकेन्द्रियजाति-तैजसकार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थावर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-अनादेय-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अर्थगत्या ध्रुवोदयत्वात्। स्त्रीवेद-पुरुषवेद-मनुष्यत्रिक-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियजाति-पंचसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-आताप-द्विविहायोगति-त्रस-सुभग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां परोदयो बंधः। पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-षण्णोकषाय-हुंडसंस्थान-औदारिकशरीर-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उपघात-परघात-उच्छ्वास-उद्योत-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-यशःकीर्त्ययशःकीर्तीणां स्वोदयपरोदयौ बंधः।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यायुः-औदारिक-

---

को छोड़कर अन्यत्र आतप कर्म का उदय नहीं होता।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, पाँच जातियाँ, औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, छह संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्णादिक चार, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदिक चार, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीचगोत्र, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियों को स्थापित कर वनस्पतिकायिकों की प्ररूपणा करते हैं— बंध और उदय के पूर्व व अपूर्व कालगत व्युच्छेद की परीक्षा नहीं है, क्योंकि यहाँ बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, एकेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, स्थावर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, निर्माण, नीचगोत्र और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है, क्योंकि वास्तव में ये प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, मनुष्यायु, मनुष्यगति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, औदारिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, दो विहायोगति, त्रस, सुभग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र इनका परोदय बंध होता है। पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, छह नोकषाय, हुण्डकसंस्थान, औदारिकशरीर, तिर्यगानुपूर्वी, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येकशरीर, साधारणशरीर, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का स्वोदय-परोदय बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु,

तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः। सातासात-सप्तनोकषाय-मनुष्यगति-एकेन्द्रियादिपंचजाति-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वि-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमोपलंभात्।

तिर्यग्द्विक-नीचगोत्राणां-सान्तरो निरन्तरो बंधः। कुतः ?

तेजोवायुकायिकाभ्यां वनस्पतिकायिकेषूत्पन्नानां मुहूर्तस्यान्तः निरन्तरबंधोपलंभात्।

परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः ?

न, देवेभ्यो वनस्पतिकायेषूत्पन्नानां मुहूर्तस्यान्तः निरन्तरबंधोपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। गतिसंयुक्ताद्युपरिमप्ररूपणा एकेन्द्रियप्ररूपणातुल्याः सन्ति।

एवं बादरवनस्पतिकायिकानां वक्तव्यं। नवरि बादरस्य स्वोदयो बंधः, सूक्ष्मस्य परोदयः। बादरपर्याप्तानां बादरवनस्पतिवद्भंगः। विशेषेण पर्याप्तस्य स्वोदयः, अपर्याप्तस्य परोदयो बंधः। बादरवनस्पति-अपर्याप्तानां बादरैकेन्द्रियापर्याप्तवद्भंगः। सूक्ष्मवनस्पतिपर्याप्तापर्याप्तानां सूक्ष्मैकेन्द्रियपर्याप्तापर्याप्तवद्भंगः। त्रसापर्याप्तानां

औदारिक-तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरंतर बंध होता है। साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, मनुष्यगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का सान्तर बंध होता है, क्योंकि इनका एक समय से बंधविश्राम पाया जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है। क्यों ? क्योंकि तेज व वायुकायिकों में से वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न हुए जीवों के इनका अन्तर्मुहूर्त तक निरंतर बंध पाया जाता है। परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — यह ठीक नहीं, क्योंकि देवों में से वनस्पतिकायिकों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त तक निरंतर बंध पाया जाता है।

प्रत्यय सुगम है। गति संयुक्तता आदि उपरिम प्ररूपणा एकेन्द्रिय प्ररूपणा के समान हैं।

इसी प्रकार बादर वनस्पतिकायिकों के कहना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि बादर का स्वोदय बंध होता है और सूक्ष्म का परोदय। बादर वनस्पतिकायिक पर्याप्तों की प्ररूपणा बादर वनस्पतिकायिकों के समान है। विशेषता यह है कि पर्याप्त का स्वोदय और अपर्याप्त का परोदय बंध होता है। बादर वनस्पतिकायिक अपर्याप्तों की प्ररूपणा बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्तकों के समान है। सूक्ष्म वनस्पतिकायिक पर्याप्त व अपर्याप्तकों की प्ररूपणा सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त व अपर्याप्तकों के समान है। त्रस अपर्याप्तकों की प्ररूपणा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तकों के समान है।

विशेषता यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का स्वोदय-परोदय बंध होता है। बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त व अपर्याप्त जीवों सहित निगोद जीवों की प्ररूपणा वनस्पतिकायिकों के समान है।

पंचेन्द्रियापर्याप्तवद्भंगः। नवरि द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियाणां स्वोदयपरोदयौ बंधः।

निगोदजीवानां त्रस-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्तानां वनस्पतिकायिकवद्भंगः। विशेषेण प्रत्येकशरीरस्य परोदयः सान्तरो बंधः। त्रस-बादर-पर्याप्त-परघात-उच्छ्वासानां बंधः सान्तरः। साधारणशरीरस्य स्वोदयपरोदयौ बंधः।

बादरवनस्पतिकायिकप्रत्येकशरीर पर्याप्तपर्याप्तानां अपि एवमेव वक्तव्यं। नवरि साधारणशरीरस्य परोदयो बंधः, प्रत्येकशरीरस्य स्वोदयपरोदयौ बंधः।

एवं प्रथमस्थले कायमार्गणायां तेजोवायुवर्जितपृथिव्यादीनां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना तेजोवायुकायिकानां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं सो चेव भंगो। णवरि विसेसो मणुस्साउ-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदं णत्थि।।१३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते — परघातोच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां सान्तरो बंधः, देवानां तेजोवायुकायिकेषूपपादाभावात्। तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां निरन्तरो बंधः, स्वोदयश्चैव। नवरि तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृतेः बंधः स्वोदयपरोदयौ। आतापोद्योतयोः परोदयः बंधः।**

विशेष यह है कि प्रत्येक शरीर का परोदय व सान्तर बंध होता है। त्रस, बादर, पर्याप्त, परघात और उच्छ्वास का सान्तर बंध होता है। साधारण शरीर का स्वोदय-परोदय बंध होता है।

बादर वनस्पतिकायिक, प्रत्येक शरीर, पर्याप्त व अपर्यातकों के भी इसी प्रकार ही कहना चाहिए। विशेषता यह है कि साधारण शरीर का परोदय बंध होता है। प्रत्येक शरीर का स्वोदय-परोदय बंध होता है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में कायमार्गणा में तेजस्कायिक और वायुकायिक को छोड़कर शेष पृथिवीकाय आदि जीवों के बंधस्वामित्व को कहने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए सूत्र का अवतार होता है —

सूत्रार्थ —

तेजस्कायिक और वायुकायिक बादर सूक्ष्म पर्याप्त व अपर्याप्तकों की प्ररूपणा भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकों के समान है। विशेषता केवल यह है कि मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र प्रकृतियाँ इनके नहीं है।।१३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह अर्पणासूत्र देशामर्शक है, इसीलिए इससे सूचित अर्थों की प्ररूपणा करते हैं — परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का सान्तर बंध होता है, क्योंकि देवों की तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में उत्पत्ति नहीं होती। तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी और नीचगोत्र का बंध निरंतर व स्वोदय ही होता है। विशेषता यह है कि तिर्यगानुपूर्वी का बंध स्वोदय-परोदय होता है। आतप और उद्योत का परोदय बंध होता है।

कश्चिदाह — भवतु नाम वायुकायिकेषु आतापोद्योतयोरुदयाभावः, तत्र तदनुपलंभात्। न तेजस्कायिकेषु तदभावः, प्रत्यक्षेण उपलभ्यमानत्वात् इति ?

अत्राचार्यदेवः परिहार उच्यते —

न तावत् तेजस्कायिकेषु आतापोऽस्ति, उष्णप्रभायास्तत्राभावात्।

तेजसि अपि उष्णत्वमुपलभ्यत इति चेत् ?

उपलभ्यतां नाम किन्तु न तस्य आतापव्यपदेशः, किन्तु तेजःसंज्ञास्ति।

उक्तं च धवलाटीकायां —

''मूलोष्णवती प्रभा तेजः, सर्वांगव्याप्युष्णवती प्रभा आतापः, उष्णरहिता प्रभोद्योतः।'' इति त्रयाणां भेदोपलंभात्। तस्मात् न उद्योतोऽपि तत्रास्ति, मूलोष्णोद्योतस्य तेजोव्यपदेशात्। एतावांश्चैव भेदः, नान्यत्र कुत्राणि। विशेषेण सर्वासां प्रकृतीनां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः भवति।

प्रोक्तं च गोम्मटसारकर्मकाण्डग्रंथेऽपि —

मूलुण्हपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।
आइच्चे तेरिच्छे, उण्हूणपहा हु उज्जोओ।।३३।।

एवं द्वितीयस्थले कायमार्गणायां तेजस्कायिक-वायुकायिकबंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

कोई कहता है — वायुकायिक जीवों में आतप और उद्योत का अभाव भले ही हो, क्योंकि उनमें वह पाया नहीं जाता। किन्तु तेजस्कायिक जीवों में उन दोनों का उदयाभाव संभव नहीं है, क्योंकि यहाँ उनका उदय प्रत्यक्ष से देखा जाता है ?

यहाँ आचार्यदेव समाधान देते हैं —

तेजस्कायिक जीवों में आतप नहीं है, क्योंकि, उसमें उष्ण प्रभा का अभाव है।

शंका — तेज में भी तो उष्णता पाई जाती है ?

समाधान — भले ही पाई जाए परन्तु उसका नाम आतप नहीं है किन्तु 'तेज' संज्ञा है।

धवलाटीका में कहा भी है —

"मूल में उष्णवती प्रभा का नाम तेज, सर्वांगव्यापी उष्णवती प्रभा का नाम आतप और उष्णतारहित प्रभा का नाम उद्योत है, इस प्रकार तीनों भेद पाया जाता है।"

इसी कारण वहाँ उद्योत भी नहीं है, क्योंकि मूल में उष्ण उद्योत का नाम तेज है। इनमें केवल इतना ही भेद है और कहीं भी कुछ भेद नहीं है। विशेष इतना है कि सब प्रकृतियों का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है।

गोम्मटसार कर्मकांड में भी कहा है —

आग की मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं। इस कारण उसके स्पर्शनाम कर्म के भेद उष्ण स्पर्शनामकर्म का उदय जानना और जिसकी केवल प्रभा (किरणों का फैलाव) ही उष्ण हो उसको आतप कहते हैं। इस आतप नामकर्म का उदय सूर्य के बिम्ब (विमान) में उत्पन्न हुए बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के तिर्यंच जीवों के समझना तथा जिसकी प्रभा भी उष्णतारहित हो उसको नियम से उद्योत जानना।

इस प्रकार दूसरे स्थल में कायमार्गणा में तेजस्कायिक और वायुकायिक के बंध के स्वामी का निरूपण करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अधुना-त्रसकायिकानां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते- —

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतदपि देशामर्शकमर्पणासूत्रं, तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते—द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियाणां स्वोदयपरोदयौ बंधः। त्रसबादरयोः स्वोदयश्चैव। एकेन्द्रिय-स्थावर-सूक्ष्म-साधारण-आतापानां परोदयश्चैव बंधः। अवशेषाणां प्रकृतीनां पंचेन्द्रिय-पंचेन्द्रियपर्याप्तानां उक्तविधानेन वक्तव्यं भवति।

एवं तृतीयस्थले त्रसकायिकानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनी-ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कायमार्गणानाम तृतीयोऽधिकारः समाप्तः।

अब त्रसकायिक जीवों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करते हुए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकों के तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान कथन करना चाहिए।।१३९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह देशामर्शक अर्पणासूत्र है, इसलिए इससे सूचित होने वाली अर्थ की प्ररूपणा करते हैं — द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय का स्वोदय-परोदय बंध होता है। त्रस और बादर का स्वोदय ही बंध होता है। एकेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म, साधारण और आतप का परोदय ही बंध होता है। शेष प्रकृतियों के पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकों की प्ररूपणा कही गई विधि के अनुसार कहनी चाहिए।

इस प्रकार तृतीय स्थल में त्रसकायिक जीवों के बंधस्वामित्व को कहने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

इस तरह षट्खण्डागम के बंधस्वामित्वविचय नाम के तीसरे खण्ड में गणिनी ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीका में कायमार्गणा नाम का यह तीसरा अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ योगमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

बंधप्रत्ययशून्या ये, त्रिभिर्योगैर्विनिर्गता:।
सयोगिनो नमामश्चा-योगिन: सिद्धिगानपि।।१।।

अथ पंचभि: स्थलै: एकोनत्रिंशत्सूत्रै: बंधस्वामित्वविचये योगमार्गणा नाम चतुर्थोऽधिकार: प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले पंचमनोयोगिपंचवचनयोगि औदारिककाययोगिनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''जोगाणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनु द्वितीयस्थले औदारिकमिश्रकाययोगिनां बंधकथनत्वेन ''ओरालियमिस्स-'' इत्यादिना सूत्रदशकं। तत: परं तृतीयस्थले वैक्रियिककाययोगिनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''वेउव्विय-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले आहारयोगिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''आहारकाययोगि-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनंतरं पंचमस्थले कार्मणकाययोगिनां बंधनिरूपणत्वेन ''कम्मइयकायजोगीसु'' इत्यादि दशसूत्राणि इति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना योगमार्गणायां मनोयोगि-वचनयोगि-सामान्यकाययोगिनां बंधकथनाय सूत्रमवतार्यते —

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरे त्ति।।१४०।।

योगमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो बंध के कारणों से शून्य होकर तीनों योगों से रहित हो चुके हैं। इनमें से सयोगी—केवली भगवान, अयोगी—चौदहवें गुणस्थानवर्ती भगवान एवं सिद्धिपद को प्राप्त सभी सिद्ध परमेष्ठी भगवन्तों को भी हम नमस्कार करते हैं।।१।।

अब पाँच स्थलों में उनतीस सूत्रों द्वारा ''बंधस्वामित्वविचय'' नाम के ग्रंथ में योगमार्गणा नाम का चौथा अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें प्रथम स्थल में पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और औदारिककाययोगियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए ''जोगाणुवादेण-'' इत्यादि चार सूत्र कहेंगे। पुन: दूसरे स्थल में औदारिकमिश्रकाययोगियों के बंधस्वामित्व को कहने वाले ''ओरालियमिस्स-'' इत्यादि दश सूत्र कहेंगे। इसके बाद तीसरे स्थल में वैक्रियककाययोगियों के बंधक-अबंधक के निरूपण करने वाले ''वेउव्विय-'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके अनंतर चौथे स्थल में आहारककाययोगियों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाले ''आहारकायजोगि-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इसके बाद पाँचवें स्थल में कार्मणकाययोगियों के बंधस्वामित्व को कहने वाले ''कम्मइयकायजोगीसु-'' इत्यादि दश सूत्रों को कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब योगमार्गणा में मनोयोगी-वचनयोगी और सामान्यकाययोगियों के बंधस्वामित्व को कहने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

योगमार्गणानुसार पाँच मनोयोगी, पाँच वचनयोगी और काययोगियों में तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान जानना चाहिए।।१४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**ओघे कथितसप्तदशानां सूत्राणां अर्थः ससूत्रोऽत्र निरवयो वक्तव्यो, भेदाभावात्। विशेषेण प्रत्ययगतो भेदोऽस्ति तद् निगद्यते—मनोयोगे निरूद्धे—मनोयोगस्याश्रिते षट्चत्वारिंशत्-एकचत्वारिंशत्-सप्तत्रिंशत्-सप्तत्रिंशत्-द्वात्रिंशत्-एकोनविंशति-सप्तदश-सप्तदश-एकादश-दश-नव-अष्ट-सप्त-षट्-पंच-पंच-चतुश्चतुर्द्विसंख्यकाः मिथ्यादृष्ट्यादिसर्वगुणस्थानानां यथाक्रमेण एते प्रत्यया भवन्ति। अन्योऽपि विशेषो मनोयोगे निरूद्धे सत्यस्ति।**

चतुर्जाति-चतुरानुपूर्वि-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां परोदयेन, उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-पंचेन्द्रियजातीनां स्वोदयेन बंधः इति वक्तव्यं। एवं चैव चतुर्णां मनोयोगानां प्ररूपणा कर्तव्या। नवरि एकस्मिन् मनोयोगे निरूद्धे—आश्रिते अवशेषसर्वयोगा मूलौघोत्तरप्रत्ययेषु अपनेतव्याः। अवशेषाः निरूद्धमनोयोगिनां प्रत्यया भवन्ति। नास्त्यन्यत्र कुत्रापि विशेषः।

वचोयोगिनामेवमेव वक्तव्यं, सान्तर-निरन्तरः, स्वोदय-परोदय-स्वामित्वप्रत्ययादिभिः मनोयोगिभ्यः वचोयोगिनां भेदाभावात्। नवरि द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पंचेन्द्रियाणां स्वोदय-परोदयौ बंधः इति वक्तव्यं। असत्यमृषावचोयोगिनां वचोयोगिवद्भंगः। नवरि गुणस्थानानां उत्तरप्रत्ययेषु असत्यमृषावचनयोगं मुक्त्वा शेषसर्वयोगाः अपनेतव्याः। सत्य-मृषा-सत्यमृषावचोयोगिनां सत्य-मृषा-सत्यमृषामनोयोगिवद्भंगः, विशेषाभावात्।

काययोगिनामपि ओघभंगश्चैव। नवरि सर्वगुणस्थानानामोघप्रत्ययेषु मनोवचोयोगाष्टप्रत्यया अपनेतव्याः। सयोगिप्रत्ययेषु द्वि-द्विमनोयोगप्रत्यया अपनेतव्याः। नास्त्यन्यत्र विशेषः। ओघे प्रोक्तसप्तदशसूत्रेषु चतुर्थसूत्रे

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ओघ में कहे गये (५वें सूत्र से ३८वें सूत्र तक १७+१७=३४) सूत्रों का अथ ससूत्र यहाँ संपूर्ण कहना चाहिए, क्योंकि, ओघ से यहाँ विशेषता का अभाव है। विशेष यह है कि प्रत्ययगत जो भेद उसे यहाँ कहते हैं—मनोयोग के निरुद्ध होने अर्थात् उसके आश्रित व्याख्यान करने पर छ्यालीस, इकतालीस, सैंतीस, सैंतीस, बत्तीस, उन्नीस, सत्तरह, सत्तरह, ग्यारह, दश, नौ, आठ, सात, छह, पाँच, पाँच, चार, चार और दो, इस प्रकार ये क्रम से मिथ्यादृष्टि आदि सब गुणस्थानों की अपेक्षा प्रत्यय होते हैं। मनोयोग के विवक्षित होने पर और भी विशेषता है। चार जातियाँ, चार आनुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इनका परोदय से तथा उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर और पंचेन्द्रिय जाति का स्वोदय से बंध होता है, ऐसा कहना चाहिए। इसी प्रकार ही चार मनोयोगों की प्ररूपणा करनी चाहिए। विशेषता यह है कि एक मनोयोग के विवक्षित होने पर शेष सब योगों को मूलोघ तथा उत्तर प्रत्ययों में से कम करना चाहिए। इस प्रकार शेष रहे विवक्षित मनोयोगियों के प्रत्यय होते हैं। अन्यत्र और कहीं विशेषता नहीं है।

वचनयोगियों के भी इसी प्रकार ही कहना चाहिए, क्योंकि सान्तर-निरन्तर, स्वोदय-परोदय, स्वामित्व और प्रत्ययादिकों की अपेक्षा मनोयोगियों से वचनयोगियों के समान है। विशेष यह है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों के स्वोदय-परोदय बंध होता है, ऐसा कहना चाहिए। पुनः विशेषता यह है कि सब गुणस्थानों के उत्तर प्रत्ययों में से असत्यमृषावचनयोग को छोड़कर शेष सब योग को कम करना चाहिए। सत्य, मृषा और सत्यमृषा वचनयोगियों की प्ररूपणा सत्य, मृषा और सत्यमृषा मनोयोगियों के समान है, क्योंकि कोई विशेषता नहीं है।

काययोगियों की भी प्ररूपणा ओघ के समान ही है। विशेष इतना है कि सब गुणस्थानों के ओघ प्रत्ययों में से चार मनोयोग और चार वचनयोग, इस प्रकार आठ प्रत्ययों को कम करना चाहिए। सयोगिकेवली के

भेदप्रतिपादनार्थमुत्तरसूत्रं भण्यते।

अधुना सातावेदनीयबंधाबंधनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ? मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**ओघे 'अवशेषा अबंधाः' इत्युक्तं। अत्र पुनः 'अबंधा णत्थि' इति वक्तव्यं योगप्रधानात्। न च सयोगेषु अयोगा भवन्ति, विप्रतिषेधात्।**

यदि एतावन्मात्रश्चैव भेदस्तर्हि एतावत एव निर्देशः किन्न कृतः ?

नैष दोषः, एतस्य सूत्रस्य एतस्मिन् उद्देशे विशेषोऽस्ति इति स्थूलबुद्धीनामपि सुखग्रहणार्थं तथोपदेशात्।

संप्रति औदारिककाययोगिनां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

ओरालियकायजोगीणं मणुसगइभंगो।।१४२।।

णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचान्तरायाणां बंधोदयव्युच्छेदे मनुष्यगत्या नास्ति विशेषः, विशेषकारणाभावात्। यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोर्विशेषोऽस्ति, तयोरत्रोदयव्युच्छेदाभावात्।**

प्रत्ययों में दो-दो मन, वचनयोग प्रत्ययों को घटाना चाहिए। अन्यत्र विशेषता नहीं है। ओघ में उक्त सत्रह सूत्रों में से चतुर्थ सूत्र में भेद प्ररूपणार्थ उत्तर सूत्र कहेंगे।

अब सातावेदनीय के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ? मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१४१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ओघ में 'अवशेष अबंध है' ऐसा कहा गया है। परन्तु यहाँ 'अबंधक नहीं हैं' ऐसा कहना चाहिए, क्योंकि यहाँ योग की प्रधानता है और सयोगियों में अयोगी होते नहीं हैं क्योंकि ऐसा होने में विरोध है।

शंका — यदि केवल इतनी मात्र ही विशेषता थी तो इतने का ही निर्देश क्यों नहीं किया ?

समाधान — यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि इस सूत्र का इस उद्देश्य में विशेष है, इसलिए स्थूलबुद्धि शिष्यों के भी सुखपूर्वक ग्रहण करने के लिए उस प्रकार का उपदेश किया गया है।

अब औदारिककाययोगियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

औदारिककाययोगियों की प्ररूपणा मनुष्यगति के समान है।।१४२।।

विशेषता यह है कि सातावेदनीय की प्ररूपणा मनोयोगियों के समान है।।१४३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय, इन प्रकृतियों के बंध और उदय के व्युच्छेद में मनुष्यगति से कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि विशेष कारणों का यहाँ अभाव

मनुष्यगतौ पुनः उदयव्युच्छेदोऽस्ति, अयोगिचरमसमये मनुष्यगत्या सह एतयोरुदयव्युच्छेददर्शनात्।

स्वोदय-परोदय-सान्तर-निरन्तर-परीक्षासु नास्ति भेदः, भेदकारणानुपलंभात्।

प्रत्ययेष्वस्ति भेदः औदारिक मिश्र-कार्मण-वैक्रियिकद्विक-चतुर्मनोयोग-चतुर्वचनयोगप्रत्ययैर्विना मिथ्यादृष्टौ सासादने च यथाक्रमेण त्रिचत्वारिंशत्-अष्टत्रिंशत्प्रत्ययदर्शनात्, सम्यग्मिथ्यादृष्टिअसंयतसम्यग्दृष्टयोः चतुस्त्रिंशत्प्रत्ययदर्शनात् उपरिमगुणस्थानप्रत्ययेष्वपि औदारिककाययोगं मुक्त्वा शेषयोग प्रत्ययानामभावात्। उपरिमपरीक्षास्वपि नास्ति विशेषः।

विशेषेण —मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयताः तिर्यग्गति-मनुष्यगत्या अधिष्ठिताः स्वामिनो भवन्ति इति वक्तव्यं। अयं प्रथमसूत्रास्थितभेदः। अत्रोक्तप्रत्ययगतिगत-स्वामित्वभेदः सर्वसूत्रेषु दृष्टव्यः।

नवरि द्विस्थानिकप्रकृतिषु तिर्यक्त्रिक-उद्योतानां बंधः मनुष्यगतौ परोदयः, अत्र पुनः स्वोदयपरोदयौ इति वक्तव्यं। नवरि तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृतेर्बंधः परोदयश्चैव, औदारिककाययोगे तस्याः उदयाभावात्। तिर्यग्गति-गत्यानुपूर्विप्रकृत्योः मनुष्यगतौ सान्तरो बंधः, अत्र पुनः सान्तरनिरन्तरः, एवं चैव नीचगोत्रस्यापि वक्तव्यं।

मनुष्यायुः-मनुष्यगत्योः मनुष्यगतौ स्वोदयो बंधः, अत्र पुनः स्वोदयपरोदयौ। औदारिकशरीरांगोपांग-मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्विणां सान्तरनिरन्तरः मनुष्यगतौ बंधः, अत्र पुनः सान्तरः। मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृतेः मनुष्यगतौ स्वोदयपरोदयौ, अत्र पुनः परोदयः। औदारिकशरीरस्य मनुष्यगतौ स्वोदयपरोदयौ बंधः, अत्र

है। मात्र यशकीर्ति और उच्चगोत्र में विशेषता है, क्योंकि, यहाँ उनके उदय के व्युच्छेद का अभाव है। परन्तु मनुष्यगति में इनका उदय व्युच्छेद है, क्योंकि अयोगिकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में मनुष्यगति के साथ इनका उदय व्युच्छेद देखा जाता है। स्वोदय-परोदय और सान्तर-निरंतर बंध की परीक्षा में कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि यहाँ विशेषता के उत्पादक कारणों का अभाव है।

प्रत्ययों में विशेषता है, क्योंकि औदारिकमिश्र, कार्मण, वैक्रियिकद्विक, चार मनोयोग और चार वचनयोग प्रत्ययों के बिना मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में यथाक्रम से तेतालीस और अड़तीस प्रत्यय देखे जाते हैं, सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चौंतीस प्रत्यय देखे जाते हैं तथा उपरिम गुणस्थान प्रत्ययों में भी औदारिककाययोग को छोड़कर शेष योगप्रत्ययों का अभाव है। उपरिम परीक्षाओं में भी कोई विशेषता नहीं है।

केवल इतना विशेष है कि मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तिर्यग्गति व मनुष्यगति के अधिष्ठित होकर स्वामी हैं ऐसा कहना चाहिए। यह प्रथम सूत्र स्थितभेद है। यहाँ पूर्वोक्त प्रत्यय संबंधी गतिगत स्वामित्व का भेद सब सूत्रों में देखना चाहिए। विशेष इतना है कि द्विस्थानिक प्रकृतियों में तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत का बंध मनुष्यगति में परोदय होता है, परन्तु यहाँ इनका बंध स्वोदय-परोदय होता है, ऐसा कहना चाहिए। विशेषता यह है कि तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय ही बंध होता है, क्योंकि औदारिककाययोग में उसके उदय का अभाव है। तिर्यग्गति और तिर्यगानुपूर्वी का मनुष्यगति में सान्तर बंध होता है, किन्तु यहाँ उनका बंध सान्तर-निरंतर होता है। इसी प्रकार ही नीचगोत्र के भी कहना। मनुष्यायु और मनुष्यगति का मनुष्यगति में स्वोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ स्वोदय-परोदय बंध होता है। औदारिक शरीरांगोपांग मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध मनुष्यगति में सान्तर-निरंतर होता है, परन्तु यहाँ सान्तर होता है। मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगति में स्वोदय-परोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ परोदय बंध होता है। औदारिक शरीर का मनुष्यगति में स्वोदय-

पुनः स्वोदयः। औदारिकशरीरस्य मनुष्यगतौ सान्तरनिरन्तरो बंधः, अत्रापि सान्तरनिरन्तरश्चैव। एषः द्विस्थानिकसूत्रस्थितभेदः।

एकेन्द्रियादिपंचेन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीराणां मनुष्यगतौ परोदयो बंधः, अत्र पुनः स्वोदयपरोदयौ। अपर्याप्तस्य मनुष्यगतौ स्वोदयपरोदयौ, अत्र परोदयः। एषः एकस्थानिकसूत्रस्थितभेदः।

संप्रति अन्यसूत्रेषु भेदाभावात् तानि मुक्त्वा अष्टस्थानिकसूत्रस्थितभेद उच्यते—

मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु उपघात-परघात-उच्छ्वास-पर्याप्तानां मनुष्यगतौ स्वोदयपरोदयौ, अत्र पुनः स्वोदयश्चैव। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादराणां मनुष्यगतौ स्वोदयः, अत्र पुनः स्वोदयपरोदयौ। येनेदं देशामर्शकमर्पणासूत्रं तेनैते सर्वविशेषाः अत्रोपलभ्यन्ते। अन्यदपि भेदसंदर्शनार्थमुपरिमसूत्रं भण्यते—

नवरि विशेषः सातावेदनीयस्य मनोयोगिवद्भंगो ज्ञातव्यः, औदारिककाययोगिषु अबंधकाभावात्।

एवं प्रथमस्थले योगमार्गणायां मनोयोगिवचनयोगि-औदारिककाययोगिनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

अधुना औदारिकमिश्रकाययोगिनां ज्ञानावरणादिप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

ओरालियमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदणीय-बारसकषाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-

---

परोदय बंध है, परन्तु यहाँ स्वोदय बंध होता है। औदारिक शरीर का मनुष्यगति में सान्तर-निरंतर बंध होता है, यहाँ भी सान्तर-निरंतर ही होता है। यह द्विस्थानिक सूत्र स्थित भेद है।

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण का मनुष्यगति में परोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ स्वोदय-परोदय बंध होता है। अपर्याप्त का मनुष्यगति में स्वोदय-परोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ परोदय बंध होता है। यह एक स्थानिक सूत्रस्थित भेद है।

इस समय अन्य सूत्रों में भेद न होने से उन्हें छोड़कर अष्टस्थानिक सूत्रस्थित भेद को कहते हैं— मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उपघात, परघात, उच्छ्वास और पर्याप्त का मनुष्यगति में स्वोदय-परोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ स्वोदय ही बंध होता है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस और बादर का मनुष्यगति में स्वोदय बंध होता है, परन्तु यहाँ स्वोदय-परोदय बंध होता है। चूँकि यह अर्पणा सूत्र देशामर्शक है, अतएव ये सब विशेषताएँ यहाँ पाई जाती हैं। अन्य भी भेद दिखलाने के लिए उपरिम सूत्र कहा है—

यहाँ यह विशेष है कि सातावेदनीय का मनोयोगी के समान भंग जानना चाहिए।

क्योंकि औदारिककाययोगियों में साता वेदनीय के अबंधकों का अभाव है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में योगमार्गणा में मनोयोगी-वचनयोगी और औदारिककाययोगियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब औदारिकमिश्रकाययोगियों के ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

औदारिकमिश्रकाययोगियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय

दुगंछा-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१४४।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणामत्रोदयाभावात् बंधोदययोः पूर्वापरकालसंबंधि-व्युच्छेदविचारो नास्ति। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, असंयतसम्यग्दृष्टौ तदुभयाभावदर्शनात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-द्वादशकषाय-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-असातावेदनीय-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधः।

कथमुच्चगोत्रस्य बंधः सम्यग्दृष्टिषु परोदयः ?

न, तिर्यक्षु पूर्वायुर्बंधवशेन उत्पन्नक्षायिकसम्यग्दृष्टिषु परोदयेनोच्चगोत्रस्य बंधोपलंभात्। पुरुषवेद-

---

जाति, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१४४।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं ?।।१४५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का यहाँ उदयाभाव होने से बंध व उदय के पूर्व और अपरकाल संबंधी व्युच्छेद का विचार नहीं। शेष प्रकृतियों का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, बारह कषाय, हास्य, रति,अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, असाता वेदनीय और उच्चगोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है।

शंका—सम्यग्दृष्टियों में उच्चगोत्र का परोदय बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि पूर्व में बांधी गई आयुबंध के वश से तिर्यंचों में उत्पन्न हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टियों में परोदय से उच्चगोत्र का बंध पाया जाता है।

समचतुरस्रसंस्थान-सुभगादेय-यशःकीर्तीणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः स्वोदयपरोदयौ। असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयः। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टौ स्वोदयपरोदयौ बंधः। सासादन-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः स्वोदयेन। परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां त्रिष्वपि गुणस्थानेषु परोदयेन बंधः। अयशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्ट्योः स्वोदयेन परोदयेन च बंधः, असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयेन।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः।

असात-हास्य-रति-अरति-शोक-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-स्थिरास्थिर-शुभाशुभानां सान्तरो बंधः, त्रिष्वपि गुणस्थानेषु एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-सुभगादेय-उच्चगोत्र-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरो बंधः, असंयतसम्यग्दृष्टौ निरन्तरः। पंचेन्द्रिय-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-परघात-उच्छ्वासानां मिथ्यादृष्टिषु सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः ?

तिर्यग्मनुष्येषु उत्पन्नसनत्कुमारादिदेवानां नारकाणां च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादन-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः निरन्तरः।

मिथ्यादृष्टिषु त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु औदारिकमिश्रयोगव्यतिरिक्त-द्वादशयोगानामभावात्।

पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, आदेय और यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनका स्वोदय बंध होता है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येक शरीर का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय से बंध होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय से बंध होता है। परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का तीनों ही गुणस्थानों में परोदय से बंध होता है। अयशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय से और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में परोदय से बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय इनका निरन्तर बंध होता है।

असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, स्थिर, अस्थिर, शुभ और अशुभ का सान्तर बंध होता है, क्योंकि, तीनों ही गुणस्थानों में इनका एक समय से बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, आदेय, उच्चगोत्र, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है, असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में निरंतर बंध होता है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, परघात और उच्छ्वास का मिथ्यादृष्टियों में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — क्योंकि, तिर्यंच व मनुष्यों में उत्पन्न हुए सानत्कुमारादि देवों और नारकियों के निरंतर बंध पाया जाता है।

उक्त प्रकृतियों का सासादन सम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है।

मिथ्यादृष्टि के तेतालीस प्रत्यय होते हैं, क्योंकि ओघ प्रत्ययों में से उसके औदारिकमिश्र काययोग को छोड़कर अन्य बारह योगों का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि के अड़तीस और असंयतसम्यग्दृष्टि के बत्तीस

सासादनस्य अष्टत्रिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टेः द्वात्रिंशत् प्रत्ययाः, तेषां चैव योगानामभावात् असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्त्री-नपुंसकवेदाभ्यां सह द्वादशयोगाभावात्।

एताः सर्वाः प्रकृतीः असंयतसम्यग्दृष्टयो देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मिथ्यादृष्टि-सासादनाः उच्चगोत्रं मनुष्यगतिसंयुक्तं, शेषाः सर्वप्रकृतीः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देवनरकगती मिथ्यादृष्टि-सासादनाः किन्न बध्नन्ति ?

न, अपर्याप्तकाले तयोः बंधाभावात्।

तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

पंचज्ञानावरणीय-षट्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। शेषेषु त्रिविधः ध्रुवबंधाभावात्। अवशेषाणां सर्वप्रकृतीनां त्रिष्वपि गुणस्थानेषु बंधः साद्यध्रुवौ।

निद्रानिद्रादि-एकोनत्रिंशत्प्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-ओरालियसरीर-चउसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणु-पुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।१४६।।

प्रत्यय होते हैं, क्योंकि, उन्हीं योगों का यहाँ भी अभाव है, चूँकि असंयतसम्यग्दृष्टियों में स्त्री और नपुंसकवेदों के साथ बारह योगों का अभाव है। इन सब प्रकृतियों को असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति से संयुक्त बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि उच्चगोत्र को मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष सब प्रकृतियों को तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं।

शंका — देवगति व नरकगति को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि क्यों नहीं बांधते ?

समाधान — नहीं बांधते, क्योंकि, अपर्याप्तकाल में उनका बंध नहीं होता।

तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। शेष दो गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव है। शेष सब प्रकृतियों का बंध तीनों ही गुणस्थानों में सादि व अध्रुव होता है।

अब निद्रानिद्रा आदि उन्नीस प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, तिर्यग्गति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१४६।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-पंचसंहनन-दुर्भग-अनादेयानां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते सासादनसम्यग्दृष्टौ, न मिथ्यादृष्टौ, अनुपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनामत्रोदयव्युच्छेदो नास्ति, उपरि तदुपलंभात्। केवलोऽत्र बंधव्युच्छेदश्चैव, तद्दर्शनात्।**

स्त्यानगृद्धित्रिक-तिर्यग्गति-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वराणां परोदयो बंधः, अपर्याप्तकेषु एतासामुदयाभावात्। औदारिकशरीरस्य स्वोदय बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। औदारिकांगोपांगस्य मिथ्यादृष्टौ स्वोदय-परोदयौ बंधः, सासादने स्वोदयः।

अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यग्गति-मनुष्यगति-चतुःसंस्थान-पंचसंहनन-दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां द्वयोरपि-गुणस्थानयोः स्वोदयपरोदयौ बंधः, अध्रुवोदयत्वात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-औदारिकशरीराणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-पंचसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टौ बंधः सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः ?

न, तेजोवायुकायिकेषु सप्तमपृथिवीतः तिर्यक्षूत्पन्ननारकेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादने सान्तरः,

---

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१४७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, दुर्भग और अनादेय का बंध व उदय दोनों सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नहीं, क्योंकि वहाँ इनका व्युच्छेद पाया नहीं जाता। औदारिकमिश्रकाययोगियों के शेष प्रकृतियों का यहाँ उदयव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि, ऊपर उनका उदय देखा जाता है। उनका यहाँ केवल बंधव्युच्छेद ही है, क्योंकि, वह यहाँ देखने में आता है।

स्त्यानगृद्धित्रय, तिर्यग्गति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का परोदय बंध होता है, क्योंकि, अपर्याप्तों में इनके उदय का अभाव है। औदारिकशरीर का स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ वह ध्रुवोदयी है। औदारिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है, सासादन में स्वोदय बंध होता है।

अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, चार संस्थान, पाँच संहनन, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र का दोनों ही गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि ये अध्रुवोदयी हैं।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और औदारिकशरीर का निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी हैं। स्त्रीवेद, चार संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह ठीक नहीं है, क्योंकि तेज व वायुकायिकों में तथा सातवीं पृथिवी से तिर्यंचों में उत्पन्न होने वाले नारकियों में उनका निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंध होता है, क्योंकि, वहाँ उक्त जीवों के उत्पाद का अभाव है।

तत्र तेषामुपपादाभावात्। मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृत्योः सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः ?

न, आनतादिदेवेभ्यः मनुष्येषूत्पन्नेषु सूत्रोक्तद्विविधगुणस्थानेषु मुहूर्तस्यान्तो निरन्तरबंधोपलंभात्।

औदारिकशरीरांगोपांगस्य मिथ्यादृष्टौ बंधः, सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, सानत्कुमारादिदेव-नारकेषु तिर्यग्मनुष्येषूत्पन्नेषु अन्तमुहूर्तं निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादने निरन्तरः बंधः।

मिथ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशत्, सासादने अष्टत्रिंशदुत्तरप्रत्ययाः। शेषं सुगमं।

तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतानां तिर्यग्गतिसंयुक्तं। मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृतिं मनुष्यगतिसंयुक्तं, शेषाणां तिर्यग्मनुष्यगति संयुक्तो बंधः।

तिर्यग्मनुष्य-मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधः, अनादि-ध्रुवत्वाभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र साद्यध्रुवौ बंधः।

सातावेदनीयबंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।१४८।।

मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि आनतादिक देवों के मनुष्यों में उत्पन्न होने पर सूत्रोक्त दोनों गुणस्थानों में अन्तर्मुहूर्त तक निरंतर बंध पाया जाता है। औदारिकशरीरांगोपांग का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — यह ठीक नहीं, क्योंकि, सनत्कुमार आदि के देवों के तथा नारकियों के तिर्यंच व मनुष्यों में उत्पन्न होने पर अन्तर्मुहूर्त तक उसका निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकशरीर आंगोपांग का निरंतर बंध होता है।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तेतालीस और सासादन गुणस्थान में अड़तीस उत्तर प्रत्यय होते हैं। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत का तिर्यग्गति से संयुक्त, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगति से संयुक्त होकर तथा शेष प्रकृतियों का तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त होकर बंध होता है। तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का होता है। सासादनगुणस्थान में दो प्रकार का होता है, क्योंकि, अनादि और ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र सादि और अध्रुव होता है।

अब सातावेदनीय के बंधस्वामित्व को कहने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१४८।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**औदारिकमिश्रकाययोगे इमानि चत्वार्येव गुणस्थानानि नान्यानि। अत्र सातावेदनीयस्य बंधादुदयः पूर्वं पश्चाद् व्युच्छिन्नः इति विचारो नास्ति, एतेषु चतुःषु गुणस्थानेषु तदुभयव्युच्छेदानुपलंभात्। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-सयोगिषु बंधः। स्वोदय परोदयौ, परावर्तनोदयत्वात्। मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधः सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। सयोगिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्।**

मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु यथाक्रमेण त्रिचत्वारिंशत्-अष्टत्रिंशत्-द्वात्रिंशत्प्रत्ययाः। सयोगिकेवलिनि एक एव औदारिकमिश्रकाययोगप्रत्ययः। शेषं सुगमं। मिथ्यादृष्टि-सासादनाः द्विगतिसंयुक्तं, असंयतसम्यग्दृष्टयो देवगतिसंयुक्तं, सयोगिजिना अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। तिर्यग्मनुष्यगति मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, मनुष्यगतिसयोगिजिनाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

सातावेदनीयस्य बंधः सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना मिथ्यात्वादिपंचदशप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मिच्छत्त-णउंसयवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-चदुजादि-हुंडसंठाण-

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली बंधक हैं। ये बंधक हैं, इस प्रकृति के अबंधक नहीं हैं।।१४९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—औदारिकमिश्र काययोग में ये चार ही गुणस्थान होते हैं। अन्य गुणस्थान नहीं होते हैं। यहाँ सातावेदनीय का उदय बंध से पूर्व में और पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है, क्योंकि चारों गुणस्थानों में उन दोनों का व्युच्छेद नहीं पाया जाता। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि, यहाँ परिवर्तित होकर असातावेदनीय का भी उदय होता है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सातावेदनीय का सान्तर बंध होता है, क्योंकि, एक समय से यहाँ उसका बंधविश्राम देखा जाता है। सयोगकेवलियों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि, यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में यथाक्रम से तेतालीस, अड़तीस और बत्तीस प्रत्यय होते हैं। सयोगिकेवली गुणस्थान में एक ही औदारिकमिश्रकाययोग प्रत्यय होता है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि दो गतियों से संयुक्त, असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति से संयुक्त और सयोगीजिन अगतिसंयुक्त बांधते हैं। तिर्यग्गति व मनुष्यगति के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि तथा मनुष्यगति के सयोगीजिन स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। सातावेदनीय का बंध सर्वत्र सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

अब मिथ्यात्व आदि पंद्रह प्रकृतियों के बंधस्वामित्व को बतलाने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, चार जातियाँ, हुंडकसंस्थान,

असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१५०।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**बंधोदययोरत्र व्युच्छेदो नास्ति, उपलंभात्। अथवा, मिथ्यात्व-चतुर्जाति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीराणामत्र बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, अवशेषाणां प्रकृतीनां पूर्वं बंधः पश्चात् उदयो व्युच्छिन्नः। आतापस्यात्रोदयो नास्ति चैव। मिथ्यात्वस्य स्वोदयो बंधः। आतापस्य परोदयः, अपर्याप्तकाले आतापस्योदयाभावात्। नपुंसकवेद-तिर्यग्मनुष्यायुः-चतुर्जाति-हुंडसंस्थान-असंप्राप्त-सृपाटिकासंहनन-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां स्वोदयपरोदयौ बंधः। मिथ्यात्व-तिर्यग्मनुष्यायुषां बंधः निरन्तरः। अवशेषाणां सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमोपलंभात्। प्रत्ययाः सुगमाः।**

तिर्यगायुः-चतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः, मनुष्यायुषः मनुष्यगतिसंयुक्तः शेषाणां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। द्विगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधः।

अधुना देवगत्यादिपंचप्रकृतीनां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१५०।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१५१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—बंध और उदय का यहाँ व्युच्छेद नहीं है, क्योंकि, वे दोनों पाये जाते हैं। अथवा मिथ्यात्व, चार जातियाँ, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण शरीर, इनका बंध और उदय दोनों यहाँ साथ में व्युच्छिन्न होते हैं। शेष प्रकृतियाँ का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है। आतप प्रकृति का उदय यहाँ है ही नहीं। मिथ्यात्व प्रकृति का स्वोदय बंध होता है। आतप का बंध परोदय होता है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में आतप के उदय का अभाव है। नपुंसकवेद, तिर्यगायु, मनुष्यायु, चार जातियाँ, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है। मिथ्यात्व, तिर्यगायु और मनुष्यायु का बंध निरंतर होता है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है, क्योंकि, एक समय से इनका बंधविश्राम पाया जाता है। प्रत्यय सुगम है।

तिर्यगायु, चार जातियाँ, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण, इनका तिर्यग्गति से संयुक्त, मनुष्यायु का मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों का तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। तिर्यंच व मनुष्य दो गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है।

अब देवगति आदि पाँच प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१५२।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१५३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अत्र बंधः उदयो वा पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिद्यते इति परीक्षा नास्ति, उदयाभावात्। नवरि तीर्थकरस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते। एताः पंचापि प्रकृतयः परोदयेन बध्यन्ते, औदारिकमिश्रकाययोगे एतासामुदयविरोधात्। निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

असंयतसम्यग्दृष्टौ एतासां बंधस्य द्वात्रिंशदुत्तरप्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु द्वादशयोग-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदानामभावात्। शेषं सुगमं।

चतुर्णां प्रकृतीनां तिर्यग्मनुष्यगतिअसंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। तीर्थकरस्य मनुष्याश्चैव, तिर्यक्षु उत्पन्नानां तत्रोत्पत्तिप्रायोग्य सम्यग्दृष्टीनां च तीर्थकरस्य बंधाभावात्।

गतिसंयुक्तत्वमभणित्वा किमिति स्वामित्वं प्ररूपितम् ?

न, देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। इत्यनुक्तसिद्धेः।

बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधः, अध्रुवबंधित्वात्।

एवं द्वितीयस्थले औदारिकमिश्रयोगिनां बंधनिरूपणत्वेन दशसूत्राणि गतानि।

सूत्रार्थ—

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१५२।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१५३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—यहाँ बंध व उदय पूर्व में अथवा पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह परीक्षा नहीं है, क्योंकि, यहाँ उन प्रकृतियों के उदय का अभाव है। विशेष इतना है कि तीर्थंकर प्रकृति का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है। ये पाँचों ही प्रकृतियाँ परोदय से बंधती है, क्योंकि औदारिकमिश्रकाययोग में इनके उदय का विरोध है। निरंतर बंध होता है, क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का यहाँ अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनके बंध के बत्तीस उत्तर प्रत्यय हैं, क्योंकि ओघप्रत्ययों में से बारह योग, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

चार प्रकृतियों के तिर्यंच व मनुष्यगति के असंतयसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। तीर्थंकर प्रकृति के मनुष्य ही स्वामी हैं, क्योंकि तिर्यंचों में उत्पन्न हुए तथा वहाँ उत्पत्ति के योग्य सम्यग्दृष्टियों के तीर्थंकर प्रकृति का बंध नहीं होता।

शंका—गति संयुक्तता को न कहकर स्वामित्व की प्ररूपणा क्यों की गयी है ?

समाधान—चूँकि उक्त प्रकृतियाँ देवगति से संयुक्त बंधती हैं, यह बिना कहे ही सिद्ध है, अतः गति-संयोग की प्ररूपणा नहीं हुई।

बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। इनका सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में औदारिकमिश्रकाययोगियों के बंधस्वामित्व का निरूपण करते हुए दश सूत्र पूर्ण हुए।

अधुना वैक्रियिककाययोगिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

वेउव्वियकायजोगीणं देवगईणं भंगो।।१५४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते — पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-मनुष्यानुपूर्वि-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयः अत्र चतुर्षु गुणस्थानेषु बंधप्रायोग्याः। अत्र पूर्वं बंधः उदयो वा व्युच्छिन्नः इति विचारो नास्ति, मनुष्यद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनन-अयशःकीर्त्तीणामुदयाभावात् शेषाणां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदाभावाच्च।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयः बंधः, वैक्रियिककाययोगे एतासां ध्रुवत्वदर्शनात्। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टिं मुक्त्वान्यत्र स्वोदयपरोदयौ बंधः, शरीर पर्याप्तेः पर्याप्तकस्यान्तर्मुहूर्तं गत्वा श्वासोच्छ्वासपर्याप्त्याः पर्याप्तकस्य उच्छ्वासोदयस्य दर्शनात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-सप्तनोकषाय-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-

---

अब वैक्रियिककाययोगियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिककाययोगियों की प्ररूपणा देवगति के जीवों के समान है।।१५४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — यह अर्पणासूत्र देशामर्शक है, इसलिए इससे सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं — पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णादिक चार, मनुष्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रस आदिक चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय प्रकृतियाँ यहाँ चार गुणस्थानों में बंध के योग्य हैं। यहाँ पूर्व में बंध या उदय व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है, क्योंकि मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और अयशकीर्ति, इनका उदयाभाव तथा शेष प्रकृतियों के उदय व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अंतराय, इनका स्वोदय बंध होता है, क्योंकि वैक्रियिक काययोग में इनका ध्रुवोदय देखा जाता है। विशेष इतना है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि को छोड़कर अन्यत्र उच्छ्वास का स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि, शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के अंतर्मुहूर्त जाकर श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर उच्छ्वास का उदय देखा जाता है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, सात नो कषाय, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र इनका

सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, अशुभानां नारकेषु उदयदर्शनात्। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वर्जवृषभसंहनानां परोदयो बंधः,वैक्रियिककाययोगे एतासामुदयविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्राशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधदर्शनात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-औदारिकशरीरांगोपांग-त्रसाणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः?

न, नारकेषु सनत्कुमारादिदेवेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, आनतादिदेवेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि नारकियों में अशुभ प्रकृतियों का उदय देखा जाता है। मनुष्यगति, औदारिक शरीर, औदारिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभनाराच संहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है, क्योंकि, वैक्रियिक काययोग में इनके उदय का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अंतराय का निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सांतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराचसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध सम्भव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरांगोपांग और त्रस नामकर्म का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि नारकियों और सनत्कुमारादि देवों में उनका निरंतर बंध पाया जाता है तथा उक्त प्रकृतियों का सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध पाया जाता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि आनतादि देवों में उनका निरंतर बंध देखा जाता है।

मिथ्यादृष्टयः एताः प्रकृतीः त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययौः, सासादनाः अष्टत्रिंशत्प्रत्ययैः, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः चतुस्त्रिंशत्प्रत्ययैः बध्नन्ति, मूलौघप्रत्ययेषु द्वादशयोगप्रत्ययाभावात्। शेषं सुगमं।

मनुष्यगतिद्विक-उच्चगोत्राणि मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानपर्यन्ताः मनुष्यगतिसंयुक्तं, अवशेषसर्वप्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देवनारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधविनाशो नास्ति।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मण-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवबंधित्वाभावात्। शेषसर्वप्रकृतयः सर्वत्र सादि-अध्रुवाः सन्ति।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यक्त्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि, द्विस्थानिकप्रकृतयः। एतासु अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादने तदुभयाभावदर्शनात्। स्त्रीवेद-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। अवशेषाणां एषा परीक्षा नास्ति, उदयाभावात्।

अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ

सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि, यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि इन प्रकृतियों को तेतालीस प्रत्ययों से सासादनसम्यग्दृष्टि अड़तालीस प्रत्ययों से तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि चौंतीस प्रत्ययों से बांधते हैं, क्योंकि मूलोघ प्रत्ययों में बारह योग प्रत्ययों का यहाँ अभाव है। शेष प्रत्यय प्ररूपणा सुगम है।

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र को मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। शेष सब प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति एवं मनुष्यगति से संयुक्त तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं।

देव और नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधविनाश है नहीं।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अंतराय का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में उनका तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनके ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियाँ सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध वाली हैं।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनंतानुबन्धिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र ये द्विस्थानिक प्रकृतियाँ हैं। इनमें अनंतानुबन्धिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि सासादन गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। स्त्रीवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्रमशः इनके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। शेष प्रकृतियों के यह परीक्षा नहीं है, क्योंकि उनका उदयाभाव है।

अनंतानुबन्धिचतुष्क, स्त्रीवेद, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का स्वोदय-

बंधः, वैक्रियिककाययोगे प्रतिपक्षोदयदर्शनात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां परोदयौ बंधः, तासामत्रोदयविरोधात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यगायुषां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। तिर्यग्द्विक-नीचगोत्राणां सान्तर-निरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः?

न, सप्तमपृथिवीनारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

प्रत्ययाः सुगमाः।

तिर्यक्त्रिक-उद्योतानि तिर्यग्गतिसंयुक्तं, शेषसर्वप्रकृतीः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देवनारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं, बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। सप्तानां ध्रुवप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधो बंधः।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-एकेन्द्रियजाति-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप-स्थावरप्रकृतयः मिथ्यादृष्टिभिर्बध्यमानाः। अत्र मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, उपरिमगुणस्थानेषु तदुभयानुपलंभात्। नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थानयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु तदुभयाभावदर्शनात्। शेषासु एष विचारो नास्ति, उदयाभावात्।

मिथ्यात्वस्य स्वोदयेन, नपुंसकवेद-हुंडसंस्थानयोः स्वोदयपरोदयौ, अवशेषाणां परोदयो बंधः।

मिथ्यात्वस्य बंधो निरन्तरः, अवशेषाणां सान्तरः।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि एकेन्द्रियजाति-आताप-स्थावराणां नपुंसकवेदप्रत्ययोऽपनेतव्यः, नारकेषु

परोदय बंध होता है, क्योंकि वैक्रियिककाययोग में इनका प्रतिपक्ष उदय देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का परोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ उनके उदय का विरोध है।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनंतानुबन्धिचतुष्क और तिर्यगायु का निरंतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरन्तर बंध कैसे होता है ?

समाधान—यह शंका ठीक नहीं, क्योंकि, सप्तम पृथिवी के नारकियों में उनका निरंतर बंध पाया जाता है।

शेष प्रकृतियों का बंध सांतर होता है, क्योंकि, एक समय से उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय सुगम है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यग्गति से संयुक्त तथा शेष सब प्रकृतियों को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। सात ध्रुवप्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन में दो प्रकार का बंध होता है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और स्थावर प्रकृति ये मिथ्यादृष्टि के द्वारा बध्यमान प्रकृतियाँ हैं, यहाँ मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में साथ ही व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि, उपरिम गुणस्थानों में वे दोनों पाए नहीं जाते। नपुंसकवेद और हुंडकसंस्थान का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में क्रम से उन दोनों का अभाव देखा जाता है। शेष प्रकृतियों में यह विचार नहीं है, क्योंकि, उनका उदयाभाव है। मिथ्यात्व का स्वोदय से, नपुंसकवेद और हुण्डकसंस्थान का स्वोदय-परोदय से तथा शेष प्रकृतियों का परोदय से बंध होता है। मिथ्यात्व का बंध निरंतर और शेष प्रकृतियों का सांतर होता है। प्रत्यय

एतासां बंधाभावात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, अवशेषाः प्रकृतीः तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

एकेन्द्रियजाति-आताप-स्थावराणां बंधस्य देवाः स्वामिनः। अवशेषाणां बंधस्य देवनारकाः स्वामिनः- बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

मिथ्यात्वस्य चतुर्विधो बंधः, अवशेषाणां साद्यध्रुवौ।

मनुष्यायुषः बंधः उदयात् पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिद्यते इति नास्ति सत्त्वासत्त्वयोः सन्निकर्षविरोधात्। परोदयो बंधः, वैक्रियिककाययोगे मनुष्यायुषः उदयविरोधात्। निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टीनां त्रिचत्वारिंशत्-अष्टत्रिंशत्-चतुस्त्रिंशत्प्रत्ययाः।

मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

देवा नारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिः इति नास्ति बंधविनाशः। साद्यध्रुवौ बंधः।

तीर्थकरस्य बंधोदयव्युच्छेदसन्निकर्षो नास्ति, सत्त्वासत्त्वयोः सन्निकर्षविरोधात्। परोदयो बंधः, मनुष्यगति मुक्त्वान्यत्रोदया भावात्। निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। मनुष्यगतिसंयुक्तं। देवा नारकाः स्वामिनः। असंयतसम्यग्दृष्टयः अध्वानं। बंधविनाशो नास्ति। साद्यध्रुवौ बंधः।

सुगम है। विशेष इतना है कि एकेन्द्रियजाति, आतप और स्थावर के प्रत्ययों में नपुंसकवेद प्रत्यय को कम करना चाहिए, क्योंकि नारकियों में इनके बंध का अभाव है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुंडकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियाँ तिर्यग्गति से संयुक्त बंधती हैं। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर के बंध के देव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का तथा शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव होता है।

यहाँ मनुष्यायु का बंध उदय से पूर्व या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, ऐसा यहाँ नहीं है, क्योंकि, सत् (बंध) और असत् (उदय) की तुलना का विरोध है। परोदय बंध होता है, क्योंकि, वैक्रियिक काययोग में मनुष्यायु के उदय का विरोध है। निरंतर बंध होता है, क्योंकि, एक समय से इसके बंधविश्राम का अभाव है। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि के क्रम से तेतालीस, अड़तीस व चौंतीस प्रत्यय होते हैं। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि तक है इसलिए बंधविनाश नहीं है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

तीर्थंकर प्रकृति के बंध उदय के व्युच्छेद की सदृशता नहीं है, क्योंकि, सत् और असत् की तुलना का विरोध है। परोदय बंध होता है क्योंकि, मनुष्यगति को छोड़कर अन्य गतियों में तीर्थंकर प्रकृति के उदय का अभाव है। इसलिए निरंतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। इसके बंध के यहाँ देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान है। बंधविनाश नहीं है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

वैक्रियकमिश्रकाययोगिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं देवगईणं भंगो।।१५५।।

णवरि विसेसो, बेट्ठाणियासु तिरिक्खाउअं णत्थि, मणुस्साउअं णत्थि।।१५६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतस्य देशामर्शकार्पणासूत्रस्यार्थः कथ्यते — पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-मनुष्यानुपुर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तराय प्रकृतीः त्रिभिर्गुणस्थानैः बध्यमानाः स्थापयित्वा प्ररूपणा क्रियते — बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, बंधेनोदयेनोभयाभ्यां वा विरहितगुणस्थानानामुपरि अनुपलंभात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-षण्णोकषाय-पुरुषवेदानां बंधः स्वोदयपरोदयौ, उभयथा अपि बंधविरोधाभावात्। समचतुरस्रसंस्थान-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां बंधो मिथ्यादृष्ट्य-

---

अब वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियों की प्ररूपणा देवगति के जीवों के समान है।।१५५।।

विशेषता केवल इतनी है कि द्विस्थानिक प्रकृतियों में तिर्यगायु नहीं है और मनुष्यायु नहीं है।।१५६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — इस देशामर्शक अर्पणासूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है — पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, वर्णादिक चार, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इन तीन गुणस्थानवर्ती वैक्रियिकमिश्र काययोगियों के द्वारा बध्यमान प्रकृतियों को स्थापित कर प्ररूपणा करते हैं — इनके बंध व उदय के व्युच्छेद का विचार यहाँ नहीं है, क्योंकि बंध, उदय या दोनों से रहित गुणस्थान ऊपर आगे पाये नहीं जाते।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अंतराय, इनका स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, छह नो कषाय और पुरुषवेद का बंध स्वोदय-परोदय होता है, क्योोंकि, दोनों प्रकार से भी इनके बंधविरोध का अभाव है। समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, आदेय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र का बंध मिथ्यादृष्टि

संयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ। सासादने स्वोदयः, अपर्याप्तकाले नारकेषु सासादनानामभावात्। मनुष्यगति-औदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-मनुष्यानुपूर्वि-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां परोदयौ बंधः, अत्रैतासामुदयविरोधात्। अयशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ। सासादने परोदयः, देवगतौ तस्याः उदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्त-विहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टिसासादनेषु बंधः सान्तरः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-औदारिकांगोपांग-त्रसनाम्नां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, सनत्कुमारादिदेवेषु नारकेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय, परोदय होता है। सासादन गुणस्थान में स्वोदय बंध होता है, क्योंकि, अपर्याप्तकाल में नारकियों में सासादन गुणस्थान का अभाव है। मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभनाराचसंहनन, मनुष्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का परोदय बंध होता है, क्योंकि, यहाँ इनके उदय का विरोध है। अयशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, सासादन गुणस्थान में परोदय बंध होता है, क्योंकि, देवगति में उसके उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, निर्माण और पाँच अंतराय इनका निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सांतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद, समुचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभनाराच संहनन, प्रशस्त विहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र इनका मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सांतर बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरांगोपांग और त्रस नामकर्म का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सनत्कुमारादि देवों और नारकियों में उनका निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

न, आनतादिदेवेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

मिथ्यादृष्टेः त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु चतुर्मनोवचनकाययोगप्रत्ययानामभावात्। सासादनस्य सप्तत्रिंशदुत्तरप्रत्ययाः, मिथ्यादृष्टिप्रत्ययेषु पंचमिथ्यात्वनपुंसकवेदानामभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु त्रयस्त्रिंशत्प्रत्ययाः, मिथ्यादृष्टिप्रत्ययेषु पंचमिथ्यात्व-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानामभावात्। शेषं सुगमं।

मनुष्यगति-मनुष्यानुपूर्वि-उच्चगोत्राणां मनुष्यगतिसंयुक्तः, अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधो मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः असंयतसम्यग्दृष्टिषु मनुष्यगतिसंयुक्तः।

मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो देवनारकाः स्वामिनः। सासादनसम्यग्दृष्टयो देवाश्चैव स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति। बंधेन ध्रुवप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां बंधः साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यग्गतिद्विक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां प्ररूपणा क्रियते—अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां-बंधोदयौ समं व्युच्छिद्यते सासादनगुणस्थाने, नान्यत्र, मिथ्यादृष्टौ तदनुपलंभात्। दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयः व्युच्छिद्यते, उपरिमासंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थाने बंधेन बिना उदयस्येव दर्शनात्। अवशेषाणामेष विचारो नास्ति बंधस्यैकस्यैवोपलंभात्।

समाधान— नहीं, क्योंकि आनतादिक देवों में उनका निरंतर बंध पाया जाता है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि, यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि के तेतालीस प्रत्यय होते हैं, क्योंकि, ओघप्रत्ययों में यहाँ चार मनोयोग, चार वचनयोग और चार काययोग प्रत्ययों का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि के सैंतीस उत्तर प्रत्यय होते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि के प्रत्ययों में से यहाँ पाँच मिथ्यात्व और नपुंसक वेद का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में तेतीस प्रत्यय होते हैं, क्योंकि यहाँ मिथ्यादृष्टि के प्रत्ययों में से पाँच मिथ्यात्व, अनंतानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेद प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रत्यय प्ररूपणा सुगम है।

मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और उच्चगोत्र का बंध मनुष्यगति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त और असंयतसम्यग्दृष्टियों में मनुष्यगति से संयुक्त होता है।

मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव व नारकी स्वामी हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि देव ही स्वामी है। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है। बंध से ध्रुवप्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनंतानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र की प्ररूपणा करते हैं—अनंतानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेद का बंध व उदय दोनों सासादन गुणस्थान में साथ व्युच्छिन्न होते हैं, अन्यत्र नहीं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उनके व्युच्छेद का अभाव है। दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि उपरिम असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंध के बिना केवल उदय ही देखा जाता है। शेष प्रकृतियों के यह विचार नहीं है, क्योंकि उनका केवल एक बंध ही यहाँ पाया जाता है।

अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां बंधः स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि अविरोधात्। दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टौ स्वोदयपरोदयौ। सासादने परोदयः, नारकेषु अपर्याप्तकाले तदभावात्। शेषषोडशप्रकृतयः परोदयेनैव बध्यन्ते, तासामत्रोदयविरोधात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां सान्तरो बंधः प्रतिपक्षप्रकृतिबंधदर्शनात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

सप्तमपृथिवीनारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादने सान्तरः, अपर्याप्तकाले सप्तपृथिवीस्थित-सासादनगुणस्थानानुपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। तिर्यग्गतिद्विक-उद्योतानि तिर्यग्गतिसंयुक्तं, अवशेषाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मिथ्यादृष्टिदेवनारकाः सासादना देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

सप्तानां ध्रुवबंधप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। सासादने द्विविधः, अनादिध्रुवाभावात्। शेषाणां सर्वत्र साद्यध्रुवौ बंधः।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-एकेन्द्रियजाति-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप-स्थावराणां प्ररूपणाः कियन्ते—

अनंतानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेद का बंध स्वोदय-परोदय होता है, क्योंकि दोनों ही प्रकार से कोई विरोध नहीं है। दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। सासादन गुणस्थान में परोदय बंध होता है, क्योंकि नारकियों में अपर्याप्तकाल में सासादन गुणस्थान का अभाव है। शेष सोलह प्रकृतियाँ परोदय से ही बंधती हैं, क्योंकि यहाँ उनके उदय का विरोध है।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनंतानुबन्धिचतुष्क का निरंतर बंध होता है, क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय का सांतर बंध होता है, क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका— निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान— क्योंकि, सप्तम पृथिवी के नारकियों में निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादन गुणस्थान में सांतर बंध होता है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में सप्तम पृथिवीस्थ सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यग्गति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। मिथ्यादृष्टि देव व नारकी तथा सासादनसम्यग्दृष्टि देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। सात ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ अनादि व ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय जाति, हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और स्थावर प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों (मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में) साथ ही

मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, उपरि तदुभयानुपलंभात्। नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थानयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्ट्योः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्।

अवशेषासु एव विचारो नास्ति, बंधस्यैकस्यैव दर्शनात्।

मिथ्यात्वस्य स्वोदयेन, नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थानयोः स्वोदयपरोदयाभ्यां, अवशेषाणां परोदयेन बंधः।

मिथ्यात्वस्य निरन्तरः, अवशेषाणां प्रकृतीनां सान्तरः, बंधककालगतसंख्यानियमानुपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां नपुंसकवेदप्रत्ययो नास्ति इति दुर्गमं एतत् स्मर्तव्यं।

उक्तं च—''णवरि एइंदियजादि-आदाव-थावराणं णवुंसय वेदपच्चयो णत्थि त्ति दुग्गममेयं संभरेदव्वं[१]।''

एकेन्द्रियजाति-आताप-स्थावराणि तिर्यग्गतिसंयुक्तं, शेषाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां देवाः स्वामिनः। शेषाणां देवनारकाः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं।

मिथ्यात्वस्य बंधश्चतुर्विधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ भवतः।

तीर्थकरस्य बंधोदयव्युच्छेदविचारो नास्ति, तस्यैकबंध एव भवति। परोदयो बंधः, सयोगिभट्टारकं मुक्त्वा तीर्थकरस्यान्यत्रोदयाभावात्। निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। देवा नारकाश्च असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधः।

व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि, मिथ्यात्व गुणस्थान से ऊपर वे दोनों पाये नहीं जाते। नपुंसकवेद और हुण्डकसंस्थान का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। शेष प्रकृतियों में यह विचार नहीं है, क्योंकि, उनका केवल एक बंध ही देखा जाता है।

मिथ्यात्व का स्वोदय से, नपुंसकवेद व हुण्डकसंस्थान का स्वोदय-परोदय से तथा शेष प्रकृतियों का परोदय से बंध होता है। मिथ्यात्व का निरंतर बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सांतर बंध होता है क्योंकि बंधककाल में उनकी संख्या का नियम पाया नहीं जाता। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर का नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं है, इस दुर्गम बात का स्मरण रखना चाहिए।

श्री वीरसेनाचार्य ने कहा है—एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर का नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं है, इस दुर्गम बात का स्मरण रखना चाहिए।

एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतियाँ तिर्यग्गति से संयुक्त और शेष प्रकृतियाँ तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बंधती हैं। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर प्रकृतियों के देव स्वामी हैं, शेष प्रकृतियों के देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

तीर्थंकर प्रकृति के बंध व उदय के व्युच्छेद का विचार नहीं है, क्योंकि उसका एक बंध ही होता है। परोदय बंध होता है, क्योंकि सयोगी भट्टारक—भगवान को छोड़कर अन्यत्र तीर्थंकर प्रकृति के उदय का अभाव है। निरंतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देव व नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी है। बंधाध्वान और बंध विनष्टस्थान सुगम है। सादि व अध्रुव बंध होता है। प्रकृतिबंधगत विशेष प्ररूपण के लिए उत्तरसूत्र (१५६) कह चुके हैं—विशेष

---

१. षट्खण्डागम पुस्तक ८, पृष्ठ २२८।

प्रकृतिबंधगतविशेषप्ररूपणार्थं उत्तरसूत्रं कथितमस्ति—विशेषेण द्विस्थानिकप्रकृतिषु तिर्यग्गायुर्मनुष्यायुश्च नास्ति, देवनारकाणां अपर्याप्तकाले आयुर्बंधविरोधात्।

एवं तृतीयस्थले वैक्रियिकवैक्रियिकमिश्रयोगिनां बंधस्वामित्व प्ररूपणत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

अधुना आहारकद्विकस्य बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्य-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवाउ-देवगइ-पंचिंदिय जादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१५७।।

पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अत्र बंध उदयो वा पूर्वं व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, एकगुणस्थाने

रूप से द्विस्थानिक प्रकृतियों में तिर्यंचायु और मनुष्यायु नहीं है। इसका कारण यह है कि देव-नारकियों के अपर्याप्तकाल में आयु बंध का विरोध है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रयोग वालों के बंधस्वामित्व का प्ररूपण करते हुए तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब आहारकद्विक के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारकाययोगी और आहारमिश्रकाययोगियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगति-प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१५७।।

प्रमत्तसंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१५८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—यहाँ बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या उदय, यह विचार नहीं है, क्योंकि

पूर्वापरभावाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पुरुषवेद-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः। निद्रा-प्रचला-सातासात-चतुःसंज्वलन-षण्णोकषायाणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, उभयथापि बंधविरोधाभावात्। देवत्रिक-वैक्रियिकद्विक-अयशःकीर्ति-तीर्थकराणां परोदयो बंधः, आहारकाययोगिषु एतासामुदयविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पुरुषवेद-भय-जुगुप्सा-देवायुर्देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-वर्णचतुष्क-देवगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-तीर्थकर-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातासात-हास्य-रत्यरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्।

चतुःसंज्वलन-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्साः आहारकाययोगै द्वादशप्रत्ययैः एताः प्रकृतयो बध्यन्ते। शेषं सुगमं। एतासां बंधः देवगतिसंयुक्तः।

मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति। ध्रुवबंधप्रकृतीनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ भवतः।

एवमाहारकाययोगिनामपि वक्तव्यं। नवरि परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-दुःस्वराणां परोदयो बंधः।

एक गुणस्थान में पूर्वापरभाव का अभाव होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पुरुषवेद, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णादिक चार, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रसादिक चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय इनका स्वोदय बंध होता है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, चार संज्वलन और छह नोकषायों का स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि दोनों ही प्रकार से बंध होने में कोई विरोध नहीं है। देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अयशकीर्ति और तीर्थंकर का परोदय बंध होता है, क्योंकि आहारकाययोगियों में इनके उदय का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्णादिक चार, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रसादिक चार, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इनका निरंतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनके बंध-विश्राम का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सांतर बंध होता है, क्योंकि, एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है।

ये प्रकृतियाँ चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और आहारककाययोग, इन बारह प्रत्ययों से बंधती हैं। शेष प्रत्यय प्ररूपण सुगम है। इनका बंध देवगति से संयुक्त होता है। मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंध व्युच्छेद नहीं है। ध्रुव प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

इसी प्रकार आहारमिश्रकाययोगियों के भी कहना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि इनके परघात,

कश्चिदाह—पूर्वमौदारिकशरीरस्योदये सति एतासां सत्त्वोदययोः कथमत्र अकारणेन उदयव्युच्छेदो भवेत् ?

आचार्य आह—नैतद् वक्तव्यं, औदारिकशरीरोदयेन उदयप्राप्तानां तदुदयाभावेन एतासां उदयाभावस्य न्यायत्वात्।

प्रत्ययेषु आहारकाययोगमपनीय आहारमिश्रकाययोगः प्रक्षेतव्यः। एतावांश्चैव भेदः, नास्त्यन्यत्र कश्चिदपि इति ज्ञातव्यः।

एवं चतुर्थस्थले आहारककाययोगिनां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अथ कार्मणकाययोगिनां ज्ञानावरणादिप्रकृतिबंधकाबंधकनिरूपणाय सूत्र द्वयमवतार्यते —

कम्मइयकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१५९।।

उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का परोदय बंध होता है।

कोई कहते हैं—चूँकि पूर्व में औदारिकशरीर के उदय के होने पर इनका उदय था, अतएव अब यहाँ उनका निष्कारण उदय व्युच्छेद क्यों हो जाता है ?

आचार्यदेव उत्तर देते हैं—ऐसा नहीं है, क्योंकि औदारिकशरीर के उदय के साथ उदय को प्राप्त होने वाली इन प्रकृतियों का उसके उदय का अभाव होने से उदयाभाव न्याययुक्त है।

प्रत्ययों में आहारककाययोग को कम करके आहारकमिश्रकाययोग को जोड़ना चाहिए। केवल इतना ही भेद है, और कहीं कुछ भेद नहीं है।

इस प्रकार चौथे स्थल में आहारक काययोग वालों के बंधस्वामित्व के कहने रूप से दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब कार्मणकाययोगियों के ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

कार्मणकाययोगियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, बारहकषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक-शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१५९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतयोरर्थ उच्यते—अत्र बंध उदयो वा पूर्वं व्युच्छिन्न इति नास्ति विचारः, अत्रौदारिकद्विक-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-सुस्वराणामेकान्तेन उदयाभावात्, शेषाणामुदयसंभवाच्च।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्रतनसर्वगुणस्थानेषु नियमेनोदयदर्शनात्। निद्रा-प्रचला-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पुरुषवेद-सुभग-आदेय-यशः-कीर्त्त्यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधः। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ बंधः, उभयथापि बंधविरोधाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयः, मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टीनां मनुष्यद्विकस्य बंधविरोधात्। पंचेन्द्रिय-त्रस-बादर-पर्याप्तानां मिथ्यादृष्टौ स्वोदयपरोदयौ बंधः, प्रतिपक्षोदयसंभवात्। सासादन-असंयतेषु स्वोदयः, विकलेन्द्रियेषु एतयोर्द्वयोः गुणस्थानयोरभावात्। औदारिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-सुस्वराणां परोदयो बंधः, विग्रहगतौ एतासामुदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-

---

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१६०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—इसका अर्थ कहते हैं—यहाँ बंध या उदय पूर्व में व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है, क्योंकि यहाँ औदारिकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर और सुस्वर का नियम से उदयाभाव है तथा शेष प्रकृतियों के उदय की सम्भावना है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मणशरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अंतराय का स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ सब गुणस्थानों में इनका नियम से उदय देखा जाता है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, बारह कषाय, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पुरुषवेद, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्च गोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है। मनुष्यगति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि दोनों प्रकार से ही बंध होने में कोई विरोध नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में परोदय बंध होता है, क्योंकि मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों के मनुष्यद्विक के बंध का विरोध है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर और पर्याप्त का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों का उदय सम्भव है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों में स्वोदय बंध होता है, क्योंकि विकलेन्द्रियों में इन दोनों गुणस्थानों का अभाव है। औदारिक शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येक शरीर और सुस्वर का परोदय बंध होता है, क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, औदारिक, तैजस व कार्मण शरीर,

गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। असातावेदनीय-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां सान्तरो बंधः, एकसमयेन-बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेद-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरो बंधः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टिसासादनेषु बंधः सान्तरनिरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, आनतादिदेवेभ्यः विग्रहगतौ मनुष्येषूत्पन्नानां मनुष्यगतिद्विकस्य निरन्तरबंधोपलंभात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरो बंधः, विग्रहगतौ मनुष्यद्विकबंधप्रायोग्यसम्यग्दृष्टीनामन्यगतिद्विकस्य बंधाभावात्। पंचेन्द्रिय-औदारिकशरीरांगोपांग-त्रस-बादर-पर्याप्त-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां बंधः मिथ्यादृष्टिषु सान्तर-निरन्तरः।

कथं निरन्तरः?

न, सनत्कुमारादिदेव-नारकेभ्यः तिर्यग्मनुष्येषूत्पन्नानां निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

मिथ्यादृष्टिषु त्रिचत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु कार्मणकाययोगं मुक्त्वा शेषद्वादशयोग-प्रत्ययानामभावात्। तत्र पंचमिथ्यात्वेषु अपनीतेषु अष्टत्रिंशत् सासादनसम्यग्दृष्टिप्रत्ययाः। तत्रानंतानुबंधिचतुष्क-

---

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अंतराय, इनका निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सांतर बंध होता है, क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद, समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टियों में सांतर बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि आनतादिक देवों में से मनुष्यों में से उत्पन्न हुए जीवों के विग्रहगति में मनुष्यगतिद्विक का निरंतर बंध पाया जाता है।

असंयतसम्यग्दृष्टियों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि विग्रहगति में मनुष्यद्विक के बंध के योग्य सम्यग्दृष्टियों में अन्य दो गतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरांगोपांग, त्रस, बादर, पर्याप्त, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर का बंध मिथ्यादृष्टियों में सांतर-निरंतर होता है।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि सनत्कुमारादि देव व नारकियों में से तिर्यंचों व मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीवों के निरंतर बंध पाया जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टियों में तेतालीस उत्तरप्रत्यय होते हैं, क्योंकि, ओघप्रत्ययों में कार्मणकाययोग को छोड़कर शेष बारह योग प्रत्ययों का अभाव है। उनमें से पाँच मिथ्यात्वों को कम करने पर अड़तीस सासादनसम्यग्दृष्टियों

स्त्रीवेदेष्वपनीतेषु त्रयस्त्रिंशदसंयतसम्यग्दृष्टिप्रत्ययाः। शेषं सुगमं।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणि मिथ्यादृष्टिः सासादनश्च तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, एतेषामपर्याप्तकाले निरयदेवगत्योः बंधाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टयो देवमनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तेषां नरकतिर्यग्गत्योर्बंधाभावात्। मनुष्यगतिद्विकं सर्वे मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नंति, स्वाभाविकात्। औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनानि मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, असंयतसम्यग्दृष्ट्यः मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति एतासामान्यगतिभिः सह विरोधात्। उच्चगोत्रं मिथ्यादृष्टि-सासादनाः मनुष्यगतिसंयुक्तं, एतेषामपर्याप्तकाले उच्चगोत्राविनाभाविदेवगत्या बंधाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टयो देवमनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तस्योभयत्र बंधसंभवदर्शनात्।

मनुष्यद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयः त्रिगतिसासादनाः देवनारकासंयतसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः त्रिगतिसासादनसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। एतेषामत्र बंधविनाशो नास्ति।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-

---

के प्रत्यय होते हैं। उनमें से अनंतानुबन्धिचतुष्क और स्त्रीवेद को कम करने पर तेंतीस असंयतसम्यग्दृष्टियों के प्रत्यय होते हैं। शेष प्ररूपणा सुगम है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अंतराय को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति एवं मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इनके अपर्याप्तकाल में नरक व देवगतियों के बंध का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि उनके नरकगति और तिर्यग्गति के बंध का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को सब मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि ऐसा स्वाभाविक है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इनका अन्य गतियों के साथ विरोध है। उच्चगोत्र को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि इनके अपर्याप्तकाल में उच्चगोत्र की अविनाभावी देवगति के बंध का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, क्योंकि उच्चगोत्र के बंध की सम्भावना उक्त दोनों गतियों के साथ देखी जाती है।

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि, तीन गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टि तथा देव व नारकी असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि तथा तीन गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। इनका यहाँ बंधविनाश नहीं है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक

अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवबंधाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

तात्पर्यमेतत्—कार्मणकाययोगो विग्रहगतावेव भवति। ''विग्रहगतौ कर्मयोगः[१]।' इति सूत्रात्। तत्र अनाहारका अपि नोकर्माहारवर्गणाग्रहणाभावात्। 'एकं द्वौ त्रीन् वानाहारकः[२] इति सूत्रवचनात्। इति ज्ञात्वा केन प्रकारेण कर्मणां बंधो न भवेत्तदेव कारणमन्वेषणीयम्। तत्कारणं नित्यनिरंजनस्वशुद्धपरमात्मानः सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपमभेदरत्नत्रयमेव। तदपि व्यवहारसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राविनाभाविरूपमिति अवबुध्य यावन्निर्विकल्पध्यानं न लभेत तावत्सविकल्परत्नत्रयमाराध्यमानैर्भवद्भिरस्माभिरपि देवशास्त्रगुरुणां भक्तिर्दृढीकर्तव्या भवति।

अधुना अस्मिन्नेव योगे निद्रानिद्रादीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइ-पाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।।१६१।।

चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अंतराय का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्यत्र तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि ये अध्रुवबंधी हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—कार्मण काययोग विग्रहगति में ही होता है। श्री उमास्वामी आचार्यदेव ने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है ''विग्रहगति में कार्मणयोग है।'' वहाँ वे अनाहारक होते हैं, क्योंकि नोकर्माहार वर्गणा को ग्रहण नहीं करते हैं। सूत्र में कहा है—''एक, दो अथवा तीन समय तक अनाहारक रहते हैं।'' ऐसा जानकर किस कारण से कर्मों का बंध नहीं होवे, वही कारण ढूँढना चाहिए। वह कारण नित्य, निरंजन, स्वशुद्ध परमात्मा का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और आचरणरूप अभेदरत्नत्रय ही है और वह भी व्यवहार सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ अविनाभावी रूप है—बिना व्यवहाररत्नत्रय के निश्चय रत्नत्रय नहीं हो सकता है। ऐसा निश्चय करके जब तक निर्विकल्प ध्यान नहीं प्राप्त हो सके तब तक सविकल्प रत्नत्रय की आराधना करते हुए आपको और हमें भी देव, शास्त्र और गुरुओं की भक्ति दृढ़ करना चाहिए।

अब इसी योग में निद्रानिद्रा आदि के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानगृद्धि, अनंतानुबन्धि क्रोध, मान, माया, लोभ, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१६१।।

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सूत्र २५। २. तत्त्वार्थसूत्र अ. २, सूत्र ३०।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनन्तानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादनसम्यग्दृष्टौ तदुभयाभावदर्शनात्। एवमन्यप्रकृतीनां ज्ञात्वा वक्तव्यं।**

स्त्यानगृद्धित्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वराणां परोदयः बंधः, विग्रहगतौ एतासामुदयाभावात्। अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यग्गतिद्विक-दुर्भग-अनादेय-नीचगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, एतासामुदयानियमाभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। तिर्यग्द्विक-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः?

सप्तमपृथिवीनारकेभ्यः तेजोवायुकायिकेभ्यश्च कृतविग्रहाणां निरन्तरबंधदर्शनात्। सासादने सान्तरः, तत्तः विनिर्गतसासादनानां संभवाभावात्।

अवशेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र सान्तरः बंधः, अनियमेन बंधोपरमदर्शनात्।

प्रत्ययाः सुगमाः।

तिर्यग्गतिद्विक-उद्योतप्रकृतीः तिर्यग्गतिसंयुक्तं, अवशेषाः प्रकृतीः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयस्त्रिगतिसासादनसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः।

बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनन्तानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१६२।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—अनंतानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। इसी प्रकार अन्य प्रकृतियों का पूर्व या पश्चात् होने वाला बंध व उदय का व्युच्छेद जानकर कहना चाहिए।

स्त्यानगृद्धित्रय, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर का परोदय बंध होता है, क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का अभाव है। अनंतानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनके उदय के नियम का अभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनंतानुबंधिचतुष्क का निरंतर बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सांतर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि, सप्तम पृथिवी के नारकियों और तेजकायिक व वायुकायिकों में से विग्रह को करने वाले जीवों के निरंतर बंध देखा जाता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में इनका सांतर बंध होता है, क्योंकि, वहाँ से निकले हुए सासादनसम्यग्दृष्टियों की सम्भावना नहीं है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सांतर बंध होता है, क्योंकि अनियम से उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय सुगम है।

तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यग्गति से संयुक्त तथा शेष प्रकृतियों को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और तीन गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनंतानुबंधिचतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान

बंधः। सासादने द्विविधः, अनादि-ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र बंधः साद्यध्रुवौ।

अधुना सातावेदनीयबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।१६३।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१६४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सातावेदनीयस्य बंध उदयो वा पूर्वं व्युच्छिन्नः किं पश्चाद् व्युच्छिन्न इति अत्र परीक्षा नास्ति, उभयव्युच्छेदाभावात्। स्वोदयपरोदयौ बंधः, अध्रुवोदयत्वात्।**

सयोगिकेवलिनि निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधाभावात्। अन्यत्र सान्तरः। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि सयोगिकेवलिनि कार्मणकाययोगप्रत्यय एकश्चैव। मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं असंयतसम्यग्दृष्टयः देवमनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। सयोगिकेवलिनोऽगति संयुक्तं।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिजीवाः त्रिगतिसासादनसम्यग्दृष्टयः मनुष्यगतिसयोगिकेवलिनश्च स्वामिनः।

बंधाध्वानं सुगमं। अत्र व्युच्छेदो नास्ति। साद्यध्रुवौ बंधः, परिवर्तमानबंधात्।

इदानीं मिथ्यात्वादिबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है, क्योंकि, वहाँ अनादि व ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है।

अब सातावेदनीय के बंधस्वामित्व को प्रतिपादित करते हुए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

साता वेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१६३।।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१६४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—सातावेदनीय का बंध अथवा उदय पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या क्या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, इसकी यहाँ परीक्षा नहीं है क्योंकि उन दोनों के व्युच्छेद का यहाँ अभाव है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवोदयी प्रकृति है। सयोगिकेवली गुणस्थान में निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। अन्यत्र सांतर बंध होता है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि सयोगिकेवली गुणस्थान में एक ही कार्मणकाययोग प्रत्यय है। मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा असंयतसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त बाँधते हैं। सयोगिकेवली गति संयोग से रहित बाँधते हैं।

चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीव, तीन गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टि तथा मनुष्यगति के सयोगिकेवली स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। यहाँ बंधव्युच्छेद नहीं है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि बंध परिवर्तनशील है।

अब मिथ्यात्व आदि के बंधस्वामित्व को प्रतिपादित करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-चउजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१६५।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अत्र पूर्वं पश्चाद्वा बंधो व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, एकगुणस्थाने तदसंभवात्। मिथ्यात्वस्य स्वोदयो बंधः, अन्यथा बंधानुपलंभात्। नपुंसकवेद-चतुर्जाति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्तनाम्नां बंधः स्वोदयपरोदयौ, विग्रहगतौ उदयनियमाभावात्। हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आतप-साधारणशरीरनाम्नां परोदयो बंधः, विग्रहगतौ नियमेन एतासां उदयाभावात्।

मिथ्यात्वस्य बंधो निरन्तरः। अवशेषाणां प्रकृतीनां सान्तरः, अनियमेन एकसमयबंधदर्शनात्। प्रत्यया: सुगमाः।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-अपर्याप्तानां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः, चतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः, अन्यगतिभिः सह एतासां बंधविरोधात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, चतुर्गति-उदयेन सह एतासां बंधस्य विरोधाभावात्। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, निरयगति-मिथ्यादृष्टौ तासां बंधाभावात्। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां

सूत्रार्थ—

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, चार जातियाँ, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म का कौन बंधक व कौन अबंधक है ?।।१६५।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१६६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—यहाँ उदय से पूर्व में अथवा पीछे बंधव्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में वह सम्भव ही नहीं है। मिथ्यात्व का स्वोदय बंध होता है क्योंकि अपने उदय के बिना उसका बंध पाया नहीं जाता। नपुंसकवेद, चार जातियाँ, स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त नामकर्म का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि विग्रहगति में इनके उदय का नियम नहीं है। हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और साधारणशरीर नामकर्म का परोदय बंध होता है क्योंकि विग्रहगति में नियम से इनके उदय का अभाव है।

मिथ्यात्व का निरंतर बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सांतर बंध होता है क्योंकि उनका अनियम से एक समय बंध देखा जाता है। प्रत्यय सुगम हैं। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और अपर्याप्त का तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा चार जातियाँ, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि अन्य गतियों के साथ इनके बंध का विरोध है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि चारों गतियों के उदय के साथ इनके बंध का विरोध नहीं है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उनके बंध का अभाव है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियों के तिर्यग्गति व मनुष्यगति

तिर्यग्मनुष्यगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, देवनारकेषु एतासां बंधाभावात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य बंधश्चतुर्विधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

अधुना वैक्रियिकादिप्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरांगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।१६७।।

असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र किं बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थाने तदसंभवात्। एतासां पंचानामपि परोदयो बंधः स्वोदयेन सह स्वकबंधस्य विरोधात्। निरन्तरो बंधः, नियमेनानेकसमयबंधदर्शनात्।**

विग्रहगतौ द्वयोः समययोः कथमनेकसमयव्यपदेशः ?

न, एकं मुक्त्वोपरिमसर्वसंख्यायां अनेकशब्दस्य प्रवृत्तेः।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि नपुंसकवेदप्रत्ययो नास्ति, विग्रहगतौ वर्तमाननारकासंयतसम्यग्दृष्टिषु वैक्रियिकचतुष्कस्य बंधाभावात्। तीर्थकरस्य पुनस्ते चैव त्रयस्त्रिंशत्प्रत्ययाः, तत्र नपुंसकवेदप्रत्ययदर्शनात्।

वैक्रियिकचतुष्कस्य देवगतिसंयुक्तः, तीर्थकरस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। वैक्रियिकचतुष्कबंधस्य तिर्यग्मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। तीर्थकरस्य त्रिगत्यसंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। तिर्यग्गत्यसंयत-

---

के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि देव-नारकियों में इनके बंध का अभाव है। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

अब वैक्रियिक आदि प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१६७।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१६८।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — क्या बंध उदय के पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार यहाँ नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में उक्त विचार सम्भव नहीं है। इन पाँचों प्रकृतियों का परोदय बंध होता है क्योंकि इनके अपने उदय के साथ बंध होने का विरोध है। निरंतर बंध होता है क्योंकि नियम से इनका अनेक समय तक बंध देखा जाता है।

शंका — विग्रहगति में दो समयों का नाम अनेक समय कैसे हो सकता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि एक को छोड़कर ऊपर की सब संख्या में ''अनेक'' शब्द की प्रवृत्ति है।

प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि यहाँ नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं है क्योंकि विग्रहगति में वर्तमान नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियों में वैक्रियिकचतुष्क के बंध का अभाव है किन्तु तीर्थंकर प्रकृति के वे ही तेंतीस प्रत्यय हैं क्योंकि उनमें नपुंसकवेद प्रत्यय देखा जाता है।

वैक्रियिकचतुष्क का देवगति से संयुक्त और तीर्थंकर प्रकृति का देव एवं मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। वैक्रियिकचतुष्क के बंध के तिर्यंच व मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। तीर्थंकर प्रकृति के तीन गतियों

सम्यग्दृष्टिषु तीर्थकरप्रकृतिबंधाभावात्। बंधाध्वानं बंधव्युच्छेदस्थानं च सुगमं। एतासां बंधः साद्यध्रुवौ, ध्रुवबंधित्वाभावात्।

तात्पर्यमेतत्—अस्यां योगमार्गणायां कायमार्गणान्तर्गतमौदारिककाययोगं संप्राप्य मनुष्यगतौ संयमं संयमासंयमं वा गृहीत्वा अस्माभिर्मोक्षमार्गे चलितव्यमेष एवास्याः मार्गणायाः अध्ययनस्याभिप्रायोऽस्ति।

**इति श्रीषट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचये गणिनी-
ज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां योगमार्गणानाम
चतुर्थोऽधिकारः समाप्तः।**

के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि तिर्यग्गति के असंयतसम्यग्दृष्टियों में तीर्थंकर प्रकृति के बंध का अभाव है। बंधाध्वान और बंधव्युच्छित्तिस्थान सुगम हैं। इनका बंध सादि और अध्रुव होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी नहीं हैं।

यहाँ तात्पर्य यह है कि—इस योगमार्गणा में कायमार्गणाओं के अंतर्गत औदारिककाययोग को प्राप्त करके मनुष्यगति में संयम अथवा संयमासंयम को ग्रहण करके मोक्षमार्ग में हम लोगों को चलना चाहिए यही इस मार्गणा को पढ़ने का अभिप्राय है।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में कार्मणकाययोगियों के बंधस्वामित्व का कथन करते हुए दश सूत्र पूर्ण हुये।

**इस प्रकार श्रीषट्खंडागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम वाले इस तीसरे खण्ड में गणिनी
ज्ञानमती कृत सिद्धांतचिंतामणिटीका में योगमार्गणा नाम का
यह चौथा अधिकार पूर्ण हुआ।**

अथ वेदमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

त्रिभिर्वेदैर्विनिर्मुक्ता, अवेदा ब्रह्मचारिणः।
प्रत्ययैर्निगतास्तांस्तान्, नुमः स्वात्मसुधाप्तये।।१।।

अथ स्थलद्वयेन एकोनविंशतिसूत्रैः, बंधस्वामित्वविचये वेदमार्गणाधिकारः कथ्यते—तत्र तावत् प्रथमस्थले त्रिविधवेदेषु बंधाबंधप्रतिपादनत्वेन ''वेदाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रनवकं। तदनु द्वितीयस्थले अपगतवेदेषु बंधकाबंधकव्यवस्थापनाय ''अवगदवेदएसु'' इत्यादिसूत्रदशकमिति पातनिका भवति।

इदानीं त्रिविधवेदेषु ज्ञानावरणादिद्वाविंशतिप्रकृतिबंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णवुंसयवेदएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचांतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१६९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१७०।।

वेदमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो तीनों भाव वेदों से छूटकर अवेदी, ब्रह्मचारी हो चुके हैं एवं कर्मबंध के प्रत्यय—कारणों से रहित हो गये हैं, उन-उन सभी महामुनियों को एवं सिद्ध भगवन्तों को हम अपनी आत्मा से उत्पन्न सुखरूपी अमृत की प्राप्ति के लिए नमस्कार करते हैं।।१।।

अब दो स्थलों द्वारा उन्नीस सूत्रों से 'बंधस्वामित्वविचय' में वेदमार्गणा अधिकार कहते हैं—उसमें सर्वप्रथम पहले स्थल में तीन प्रकार के वेदों में बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करते हुए 'वेदाणुवादेण-' इत्यादि नव सूत्र कहेंगे। पुनः दूसरे स्थल में वेदरहित महामुनियों के बंधक-अबंधक की व्यवस्था बतलाने हेतु 'अवगदवेदएसु-' इत्यादि दश सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका कही गई है।

अब तीन प्रकार के वेदों में ज्ञानावरण आदि बत्तीस प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदमार्गणानुसार स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१६९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१७०।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**अत्र प्रथमतः स्त्रीवेदस्योच्यते—अत्रोदयात् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा विचारो नास्ति, पुरुषवेदस्य एकांतेनोदयाभावात् शेषाणां च प्रकृतीनां बंधोदयव्युच्छेदाभावात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचान्तरायाणां च स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। पुरुषवेदस्य परोदयो बंधः, स्त्रीवेदे उदये सति पुरुषवेदस्योदयाभावात्। सातावेदनीय-चतुःसंज्वलनानां स्वोदयपरोदयौ बंधः, उदयेन परावर्तनप्रकृतित्वात्। यशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टिरिति स्वोदयपरोदयौ, एतेषु प्रतिपक्षोदयसंभवात्। उपरि स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षप्रकृतेरुदयाभावात्। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य संयतासंयतपर्यन्तानां बंधः, स्वोदयपरोदयौ, एतेषु नीचगोत्रोदयसंभवात्। उपरि स्वोदय एव, नीचगोत्रस्योदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पञ्चान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। सातावेदनीय-यशःकीर्त्योः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् प्रमत्तसंयत इति सान्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरो, निष्प्रतिपक्षत्वात्। पुरुषवेदोच्चगोत्रयोः मिथ्यादृष्टिसासादनेषु सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः ?

न, पद्मशुक्ललेश्येषु तिर्यग्मनुष्येषु पुरुषवेदोच्चगोत्रयोः निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पहले स्त्रीवेदी के विषय में कहते हैं—यहाँ उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि एकांत—नियम से वहाँ पुरुषवेद के उदय का अभाव है तथा शेष प्रकृतियों के बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। पुरुषवेद का परोदय बंध होता है क्योंकि स्त्रीवेद का उदय होने पर पुरुषवेद के उदय का अभाव है। सातावेदनीय और चार संज्वलन का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि उदय की अपेक्षा ये प्रकृतियाँ परिवर्तनशील हैं। यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति का उदय संभव है। उपरिम गुणस्थानों में उसका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है। उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि इन गुणस्थानों में नीचगोत्र का उदय संभव है। संयतासंयत से ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ नीचगोत्र के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, चार संज्वलन और पाँच अन्तराय का निरंतर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। सातावेदनीय और यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर उनका निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ इनका बंध प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित है। पुरुषवेद और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पद्म और शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में पुरुषवेद और उच्चगोत्र का निरंतर बंध पाया जाता है। ऊपर उनका निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

सर्वगुणस्थानामोघप्रत्ययेषु पुरुषवेद-नपुंसकवेदयोः अपनीतयोः अवशेषा अत्र एतासां प्रत्यया भवन्ति। नवरि प्रमत्तसंयतेषु आहारकायआहारमिश्रयोगप्रत्ययौ अपनेतव्यौ, स्त्रीवेदोदययुक्तानां तदसंभवात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोगप्रत्यया अपनेतव्याः, तत्रासंयत-सम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकालाभावात्। शेषं सुगमं।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पंचान्तरायाणि मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनसम्यग्दृष्टयस्त्रिगतिसंयुक्तं, निरयगतौ अभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं अगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति। सातावेदनीय-पुरुषवेद-यशःकीर्तीः मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयस्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तमगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति। उच्चगोत्रं सर्वेऽपि देवमनुष्यगति संयुक्तमगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति।

त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, नरकगतौ स्त्रीवेदस्योदयाभावात्। द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः, देवनारकयोरणुव्रतिनामभावात्। उपरि मनुष्या एव, अन्यत्रोपरिम-गुणस्थानाभावात्। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पञ्चान्तरायाणां मिथ्यादृष्टिषु चतुर्विधो बंधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। शेषप्रकृतीनां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

सब गुणस्थानों के ओघ प्रत्ययों में पुरुषवेद और नपुंसकवेद को कम करने पर शेष यहाँ इन प्रकृतियों के प्रत्यय होते हैं। विशेष इतना है कि प्रमत्तसंयतों में आहारक और आहारकमिश्र काययोग प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि स्त्रीवेद के उदय युक्त जीवों के वे दोनों प्रत्यय संभव नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण काययोग प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि स्त्रीवेदियों में असंयतसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्तकाल का अभाव है। शेष प्ररूपणा सुगम है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायों को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त तथा सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों में नरकगति के बंध का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं। उपरिम स्त्रीवेदी जीव देवगति से संयुक्त और गतिसंयोग से रहित बांधते हैं। सातावेदनीय, पुरुषवेद और यशकीर्ति को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति व मनुष्यगति से संयुक्त तथा उपरिम जीव देवगति से संयुक्त और गतिसंयोग से रहित बांधते हैं। उच्चगोत्र को सभी जीव देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा गतिसंयोग से रहित होकर बांधते हैं।

तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में स्त्रीवेद के उदय का अभाव है। दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं क्योंकि देव-नारकियों में अणुव्रतियों का अभाव है। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में उपरिम गुणस्थानों का अभाव है। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद है नहीं।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, चार संज्वलन और पाँच अन्तरायों का मिथ्यादृष्टियों में चारों प्रकार का बंध होता है, अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

इदानीं द्विस्थानिकप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्ररूपणाय सूत्रमवतार्यते —

बेट्ठाणी ओघं।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **द्विस्थानिकाः इति मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु, बंधप्रायोग्यभावेनावस्थितानि इति प्रोक्तं भवति। तेषां प्ररूपणा ओघं भवति 'ओघतुल्या' इत्यभिप्रायः। एतदर्पणासूत्रं देशामर्शकं, ओघात्। एतस्मिन् स्तोकभेदोपलंभात्। तत्कथनं शिष्यानुग्रहार्थं क्रियते —**

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यक्त्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि द्विस्थानिकानि। एतेषु अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ। अन्यप्रकृतीनां सर्वासामपि पूर्वं बंधः पश्चादुदयः व्युच्छेदमुपगतः।

कुतः ? तथोपलंभात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यक्त्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्त-विहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां बंधः स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधाविरोधात्। स्त्रीवेदस्य स्वोदयेनैव बंधः, तदुदयमधिकृत्य इयं प्ररूपणा प्रारब्धा।

'ओघात्' अत्रायं विशेषः तत्र स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधोपदेशात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यगायुषां बंधो निरन्तरः। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टौ सान्तर-निरन्तरः, सप्तमपृथिवीनारकेभ्यः तेजोवायुकायिकेभ्यश्च निःसृत्य स्त्रीवेदेषु उत्पन्नानां मुहूर्तस्यान्तः

अब द्विस्थानिकप्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्ररूपण करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

द्विस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — द्विस्थानिक का अर्थ मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में बंध की योग्यता से अवस्थित प्रकृतियाँ हैं। उनकी प्ररूपणा ओघ है अर्थात् ओघ के समान है, यह अभिप्राय है। यह अर्पणासूत्र देशामर्शक है क्योंकि ओघ से इसमें थोड़ा भेद पाया जाता है। उसका कथन करने पर उक्त अर्थ के साथ शिष्यों के अनुग्रहार्थ कथन करते हैं — स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, ये द्विस्थानिक प्रकृतियाँ हैं। इनमें अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं। अन्य सब ही प्रकृतियों का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छेद को प्राप्त होता है।

ऐसा क्यों ? क्योंकि वैसा पाया जाता है।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यगानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, और नीचगोत्र का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से ही उनके बंध के विरोध का अभाव है। स्त्रीवेद का स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि उसके उदय का अधिकार करके इस प्ररूपणा का प्रारंभ हुआ है।

ओघ से यहाँ यह विशेष है क्योंकि वहाँ ओघ में स्वोदय-परोदय से बंध का उपदेश है।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और तिर्यगायु का बंध निरंतर होता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरंतर होता है क्योंकि सप्तम पृथिवी के नारकियों में

निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादने सान्तरः, तत्तः तेषामुपपादाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः सान्तरः, अनियमेन एकसमयबंधोपलंभात्। एषा प्ररूपणा ओघात् स्तोकेनापि न विरुध्यते, समानत्वोपलंभात्।

प्रत्यया ओघप्रत्ययतुल्याः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनानां यथाक्रमेण त्रिपंचाशत्-अष्टचत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः, पुरुष-नपुंसकवेदप्रत्ययोरभावात्। तिर्यगायुषः मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु क्रमेण पंचाशत्-पंचचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोग-पुरुष-नपुंसकवेदप्रत्ययानामभावात्। तदभावोऽपि स्त्रीवेदोदयप्राप्तानामपर्याप्तकाले आयुः कर्मणो बंधाभावात्।

तिर्यक्त्रिक-उद्योतानि मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि मिथ्यादृष्टयः त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, देवगतौ बंधाभावात्। सासादनसम्यग्दृष्टयः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, देवनरकगत्योः बंधाभावात्। स्त्रीवेदं मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, नरकगत्या सह बंधाभावात्। चतुःसंस्थान-चतुःसंहननानि तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, एतासां नरकदेवगतिभ्यां सह बंधाभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानि मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनाः त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, नरकगतेरभावात्।

सर्वासां प्रकृतीनां त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, नरकगतौ स्त्रीवेदोदयाभावात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं, सूत्रोद्दिष्टत्वात्। सप्तानां ध्रुवबंधप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः,

---

से तथा तेजस्कायिक व वायुकायिक जीवों में से निकलकर स्त्रीवेदियों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक निरंतर बंध पाया जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सांतर बंध होता है क्योंकि उस गुणस्थान से उक्त जीवों के उत्पाद का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है क्योंकि बिना नियम के उनका एक समय बंध पाया जाता है। यह प्ररूपणा ओघ से थोड़ी भी विरुद्ध नहीं है क्योंकि समानता पायी जाती है।

प्रत्यय ओघप्रत्ययों के समान है। विशेषता इतनी है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों के यथाक्रम से तिरेपन और अड़तालीस उत्तर प्रत्यय हैं क्योंकि उनके पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। तिर्यगायु के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से पचास और पैंतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि उनके औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। उनका अभाव भी स्त्रीवेदोदय युक्त जीवों के अपर्याप्तकाल में आयुकर्म के बंध का अभाव होने से है।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि जीव तिर्यग्गति से संयुक्त बांधते हैं। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को मिथ्यादृष्टि जीव तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनका देवगति के साथ बंध का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उनके देव व नरकगति के बंध का अभाव है। स्त्रीवेद को मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव तीन गतियों से संयुक्त होकर बांधते हैं क्योंकि उनका नरकगति के साथ बंध का अभाव है। चार संस्थान और चार संहनन को तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि इनका नरकगति व देवगति के साथ बंध नहीं होता। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क को मिथ्यादृष्टि चार गतियों से संयुक्त बांधते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि स्त्रीवेदी होने से उनके नरकगति का अभाव है।

सब प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में स्त्रीवेद के उदय का अभाव है। बन्धाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं क्योंकि वे सूत्र में ही निर्दिष्ट हैं। सात

सासादने द्विविधः, अनादिध्रुवाभावात्। अवशेषाणां सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना निद्रा-प्रचलाप्रकृतिबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

णिद्दा य पयला य ओघं।।१७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतयोर्द्वयोः प्रकृत्योः यथा ओघे प्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या। नवरि प्रत्ययेषु पुरुष-नपुंसकवेदप्रत्ययो अपनेतव्यौ। नवरि असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिक-वैक्रियिकमिश्र-कामर्णकाययोगाश्चापनेतव्याः स्त्रीवेदाधिकारात्। प्रमत्तसंयते पुरुष-नपुंसकवेदाभ्यां आहारद्विकं चापनेतव्यं, अप्रशस्तवेदोदयप्राप्तानां आहारशरीरस्योदयाभावात्। त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, नरकगतौ स्त्रीवेदोदययुक्तानामभावात्। एतावांश्चैव विशेषः, नास्त्यन्यत्र कुत्रापि। तेन द्रव्यार्थिकनयं प्रतीत्य ओघमिति युक्तं।**

असातावेदनीयप्रकृतिबंधकनिरूपणाय सूत्रमवतरति —

असादावेदणीयमोघं।।१७३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—**असातावेदनीयमित्येतेन प्रकृतिनिर्देशो न कृतः, किन्तु असातावेदनीय-अरति-शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्तयः इति, षट्प्रकृतिघटितो 'ऽसातदण्डकः' असातावेदनीयमिति निर्दिष्टः।**

ध्रुवबंध प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादनगुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ अनादि व ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब निद्रा-प्रचला प्रकृति के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

निद्रा और प्रचला प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दो प्रकृतियों की जैसे ओघ में प्ररूपणा की गई है, वैसे करना चाहिए। विशेष यह है कि प्रत्ययों में पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए। इतनी और भी विशेषता है कि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग प्रत्ययों को भी कम करना चाहिए क्योंकि स्त्रीवेद का अधिकार है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में पुरुष और नपुंसकवेदों को भी कम करना चाहिए, क्योंकि अप्रशस्त वेदोदययुक्त जीवों के आहारकशरीर के उदय का अभाव है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में स्त्रीवेदोदय युक्त जीवों का अभाव है। केवल इतनी ही ओघ से विशेषता है अन्यत्र और कहीं भी विशेषता नहीं है। इसीलिए द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा कर 'ओघ के समान है' ऐसा कहा गया है।

अब असातावेदनीय प्रकृति के बंधकर्ता के निरूपण करने हेतु सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय इस पद से प्रकृति का निर्देश नहीं किया है किन्तु असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति, इन छह प्रकृतियों से सम्बद्ध असातादण्डक

यथा 'सत्यभामा भामा, भीमसेनः सेनः, बलदेवो देव' इति। एतासां षण्णां प्रकृतीनां प्ररूपणा ओघतुल्या। नवरि अत्रापि प्रत्ययविशेषः स्वामित्वविशेषश्च ज्ञातव्यः।

अधुना एकस्थानिकप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

एक्कट्ठाणी ओघं।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एकस्मिन् मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने याः प्रकृतीः बंधप्रायोग्याः भूत्वा तिष्ठन्ति तासामेकस्थानिका इति संज्ञा। तस्या एकस्थानिकायाः प्ररूपणा ओघतुल्या। तद्यथा—मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ। नपुंसकवेद-नरकगतित्रिक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां बंधोदय व्युच्छेदविचारो नास्ति, एषामत्र नियमेनोदयाभावात्। अवशेषाणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, बंधे विनष्टेऽपि उपरिमगुणस्थानेषु एतासामुदयदर्शनात्।**

मिथ्यात्वस्य स्वोदयो बंधः। नपुंसकवेद-नरकगतित्रिक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण शरीरनाम्नां परोदयो बंधः, स्त्रीवेदोदयेन सह एतासामुदयविरोधात्। एषोऽत्र ओघाद् विशेषः, तत्र स्वोदय-परोदयाभ्यामेतासां बंधोपदेशात्। हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननयोः स्वोदय-परोदयौ बंधः, स्त्रीवेदोदयेन सह एतयोरूदयस्य विप्रतिषेधाभावात्। मिथ्यात्व-नरकायुषोर्निरन्तरो बंधः। अवशेषाणां सान्तरः, अनियतैकसमयबंधदर्शनात्।

'असातावेदनीय' पद से निर्दिष्ट किया गया है। जैसे—सत्यभामा को भामा, भीमसेन को सेन और बलदेव को देव पद से निर्दिष्ट किया जाता है। इन छह प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि यहाँ भी प्रत्ययभेद और स्वामित्वभेद जानना चाहिए।

अब एकस्थानिक प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में जो प्रकृतियाँ बंधयोग्य होकर स्थित हैं उनकी 'एकस्थानिक' संज्ञा है। उन एकस्थानिकों की प्ररूपणा ओघ के समान है, वह इस प्रकार है—मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं। नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इनके बंध और उदय के व्युच्छेद का विचार नहीं है क्योंकि यहाँ नियम से इनके उदय का अभाव है। शेष प्रकृतियों का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि बंध के नष्ट होने पर भी उपरिम गुणस्थानों में इनका उदय देखा जाता है।

मिथ्यात्व का स्वोदय बंध होता है। नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, नारकानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर नामकर्म, इनका परोदय बंध होता है क्योंकि स्त्रीवेद के उदय के साथ इनके उदय का विरोध है। यह यहाँ ओघ से विशेषता है क्योंकि वहाँ स्वोदय-परोदय से इनके बंध का उपदेश है। हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि स्त्रीवेद के उदय के साथ इनका विरोध नहीं है। मिथ्यात्व और नरकायु का निरंतर बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सांतर बंध होता है क्योंकि उनका नियम रहित एक समय बंध देखा जाता है।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां त्रिपंचाशत्प्रत्ययाः, पुरुषवेद-नपुंसकवेदयोरभावात्। नरकगतित्रिकस्य एकोनपंचाशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु औदारिकमिश्र-कार्मण-वैक्रियिकद्विक-पुरुष-नपुंसकवेदानामभावात्। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां एकपंचाशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु वैक्रियिकद्विक-पुरुष-नपुंसकवेद-प्रत्ययानामभावात्। शेषं सुगमं।

मिथ्यात्वं चतुर्गतिसंयुक्तं बध्नाति। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थानयोः त्रिगतिसंयुक्तं, देवगत्या सह बंधाभावात्। नरकायुः-नरकगत्यानुपूर्विप्रकृती नरकगतिसंयुक्तं बध्नाति, स्वाभाविकात्। अपर्याप्त-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनने तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, नरकदेवगतिभ्यां सह बंधाभावात्। अवशेषाः प्रकृतीः तिर्यग्गतिसंयुक्तं, तत्र तासां नियमदर्शनात्। मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-एकेन्द्रिय-आताप-स्थावर-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननानां त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, नरकगतौ स्त्रीवेदोदयाभावात्। नरकत्रिक-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जाति-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य चतुर्विधो बंधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

अप्रत्याख्यानावरणकर्मणां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

अपच्चक्खाणावरणीयमोघं।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्रापि पूर्वमिव प्ररूपयितव्यं। अथवा अप्रत्याख्यानावरणीयप्रधानो दण्डकः**

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियों के तिरेपन प्रत्यय हैं क्योंकि यहाँ पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। नरकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के उनंचास प्रत्यय हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों में औदारिकमिश्र, कार्मण, वैक्रियिकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियों के इक्यावन प्रत्यय हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों में वैक्रियिकद्विक, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

मिथ्यात्व को चारों गतियों से संयुक्त बांधता है। नपुंसकवेद और हुण्डकसंस्थान को तीन गतियों से संयुक्त बांधता है क्योंकि देवगति के साथ उनके बंध का अभाव है। नरकायु, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को नरकगति से संयुक्त बांधता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है। अपर्याप्त और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन को तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बांधता है क्योंकि नरकगति और देवगति के साथ इनके बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों को तिर्यग्गति से संयुक्त बांधता है क्योंकि तिर्यग्गति के साथ उनके बंध का नियम देखा जाता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रिय, आतप, स्थावर, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं, क्योंकि नरकगति में स्त्रीवेद के उदय का अभाव है। नारकायु, नरकगति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, नारकानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण इन प्रकृतियों के बंध के तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यात्व का चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

अब अप्रत्याख्यानावरण कर्मों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

अप्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ भी पूर्व के समान प्ररूपणा करना चाहिए अथवा अप्रत्याख्यानावरणीय

अप्रत्याख्यानावरणीयमिति भण्यते। यथा निम्बाम्ब-कदम्ब-जंबू-जंबीरवनमिति। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मनुष्यगति-औदारिकद्विक-वज्रवृषभवज्रनाराचसंहनन-मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृतीनां अप्रत्याख्यानावरणीयसंज्ञितानां प्ररूपणा ओघतुल्या। तद्यथा—अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, असंयतसम्यग्दृष्टौ एव तदुभयदर्शनात्। मनुष्यगत्यानुपूर्विप्रकृतेः पूर्वं उदयः पश्चात् बंधः, सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु तद्व्युच्छेद-दर्शनात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, तथोपलंभात्।

सर्वासां प्रकृतीनां बंधः सर्वत्र स्वोदय-परोदयौ भवतः। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां परोदयो बंधः, देवेषूदयाभावात्।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टिसासादनेषु सान्तरनिरन्तरः।

कुतः निरन्तरः ?

आनतादिदेवेभ्यः स्त्रीवेदमनुष्येषूत्पन्नानां अन्तर्मुहूर्तकालं निरन्तरत्वेन तदुभयबंधदर्शनात्। उपरि निरन्तरः, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरबंधोपलंभात्। एवमौदारिकद्विकस्यापि वक्तव्यं, सनत्कुमारादिदेवेभ्यः स्त्रीवेदेषूत्पन्नानां निरन्तरबंधोपलंभात्। वज्रवृषभसंहननस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरो बंधः।

प्रधान दण्डक को अप्रत्याख्यानावरणीय शब्द से कहा जाता है। जैसे कि नीम, आम, कदम्ब, जामुन और जम्बीर वन अर्थात् इन वृक्षों की प्रधानता से इतर वृक्षों से भी युक्त वनों को नीमवन, आमवन, कदम्बवन, जामुनवन और जम्बीरवन शब्दों से कहा जाता है। अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराच शरीरसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, इन अप्रत्याख्यानावरणीयसंज्ञित प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है। वह इस प्रकार से है—अप्रत्याख्यानचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में ही उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः इनका व्युच्छेद देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि वैसा पाया जाता है।

सब प्रकृतियों का बंध सर्वत्र स्वोदय-परोदय होता है। विशेष इतना है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन का परोदय बंध होता है क्योंकि देवों में इनका उदयाभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध निरंतर होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

शंका—निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि आनतादिक देवों में स्त्रीवेदी मनुष्यों में उत्पन्न हुए जीवों के अन्तर्मुहूर्त काल तक निरंतर रूप से उन दोनों प्रकृतियों का बंध देखा जाता है।

सासादन से ऊपर उनका निरंतर बंध होता है क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवों में निरंतर बंध पाया जाता है। इसी प्रकार औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग के भी कहना चाहिए क्योंकि सनत्कुमारादिक देवों में से स्त्रीवेदियों में उत्पन्न हुए जीवों के उनका निरंतर बंध पाया जाता है। वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में निरंतर बंध

उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य सर्वगुणस्थानेषु ओघप्रत्ययाः एव। नवरि पुरुषनपुंसकप्रत्ययौ सर्वत्र अपनेतव्यौ। असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाश्चापनेतव्याः। एवं वज्रवृषभवज्रनाराचशरीर संहननस्यापि वक्तव्यम्। नवरि सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु औदारिककाययोगप्रत्ययश्चापनेतव्यः। मनुष्यगतिद्विकौदारिकद्विकानां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु द्व्यूनौघप्रत्ययाश्चैव भवन्ति, पुरुषनपुंसकवेद-प्रत्यययोरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, पुरुषनपुंसकवेदाभ्यां सह औदारिकद्विकाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्यययोरभावात् च। शेषं सुगमं।

अप्रत्याख्यानचतुष्कं मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं, उपरिम द्विगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। मनुष्यगति-गत्यानुपूर्विद्विकं मनुष्यगतिसंयुक्तं सर्वे बध्नन्ति स्त्रीवेदिनः। अवशेषत्रिप्रकृतीः मिथ्यादृष्टि-सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य त्रिगतिकचतुर्गुणस्थानजीवाः स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां त्रिगतिकमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयो देवगतिकसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, अन्यत्र त्रिविधः। अवशेषाणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

होता है क्योंकि वहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के सब गुणस्थानों में ओघप्रत्यय ही हैं। विशेषता केवल इतनी है कि पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को सर्वत्र कम करना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणप्रत्ययों को भी कम करना चाहिए। इसी प्रकार वज्रर्षभनाराचशरीरसंहनन का भी कथन करना चाहिए। विशेष इतना है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिक-काययोग प्रत्यय कम करना चाहिए। मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग के मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो कम ओघ प्रत्यय ही हैं क्योंकि पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में चालीस प्रत्यय हैं क्योंकि वहाँ पुरुष और नपुंसकवेदों के साथ औदारिकद्विक का अभाव है तथा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव भी है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क को मिथ्यादृष्टि चार गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त और उपरिम जीव दो गतियों से संयुक्त बांधते हैं। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी को मनुष्यगति से संयुक्त सभी स्त्रीवेदी जीव बांधते हैं। शेष तीन प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यग्गति एवं मनुष्यगति से संयुक्त तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क की तीन गतियों के चार गुणस्थानवर्ती स्त्रीवेदी जीव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तथा देवगति के सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का और अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

अधुना प्रत्याख्यानावरणप्रकृतिबंधकप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणीयमोघं।।१७६।।

हस्स-रदिजाव तित्थयरेत्ति ओघं।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **ओघमिति वचनात् एतेषु सूत्रेषु अवस्थितस्तोकभेदसंदर्शनार्थं मंदबुद्धिशिष्यानुग्रहार्थं च पुनरपि प्ररूप्यते—हास्य-रति-भय-जुगुप्सार्थं बंधोदयौ व्युच्छिद्येते, अपूर्वकरणचरमसमये द्वयोर्व्युच्छेदोपलंभात्। सर्वगुणस्थानेषु बंधः स्वोदय-परोदयौ, परोदयेऽपि सति बंधविरोधाभावात्। भयजुगुप्सयोः सर्वगुणस्थानेषु निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। हास्यरत्योः मिथ्यादृष्टेरारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तं बंधः सान्तरः, अत्र प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।**

प्रत्ययाः सुगमाः, बहुशः प्ररूपितत्वात्।

मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गति संयुक्तं बध्नन्ति। नवरि हास्यरती-त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगत्या सह बंधविरोधात्। सर्वप्रकृतीः सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, तत्र नरकगतेर्बंधाभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः द्विगतिसंयुक्तं, तत्र नरकतिर्यग्गत्योर्बंधाभावात्। उपरिमा देवगतिसंयुक्तं, तत्र शेषगतीनां बंधाभावात्। नवरि अपूर्वकरणे चरमसप्तमभागे अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

अब प्रत्याख्यानावरण प्रकृति के बंधकर्ता का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

प्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१७६।।

हास्य व रति से लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।१७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — ओघ की अपेक्षा सूत्रों में अवस्थित कुछ थोड़ी सी विशेषता को दिखलाने तथा मंदबुद्धि शिष्य के अनुग्रह के लिए फिर भी प्ररूपणा करते हैं — हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि अपूर्वकरण के अंतिम समय में उनके बंध व उदय दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। सब गुणस्थानों में उनका बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि अन्य प्रकृतियों के उदय के होने पर भी इनके बंध का कोई विरोध नहीं है। भय और जुगुप्सा का सब गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। हास्य और रति का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि उनका बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है। मिथ्यादृष्टि जीव इन्हें चार गतियों से संयुक्त बांधते हैं विशेष इतना है कि हास्य और रति को तीन गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ उनके बंध का विरोध है। सब प्रकृतियों को सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बांधता है क्योंकि इस गुणस्थान में नरकगति का बंध नहीं होता। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि दो गतियों से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उन गुणस्थानों में नरकगति और तिर्यग्गति के बंध का अभाव है। उपरिम जीव देवगति से संयुक्त बांधते हैं क्योंकि उपरिम गुणस्थानों में शेष गतियों के बंध का अभाव है। विशेषता यह है कि अपूर्वकरण के अंतिम सप्तम भाग में गतिसंयोग से रहित बांधते हैं।

त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, नरकगतौ निरुद्धस्त्रीवेदाभावात्। द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः, देवगतौ देशव्रतिनामभावात्। उपरिमा मनुष्याश्चैव, अन्यत्र महाव्रतिनामभावात्।

बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमम्।

भयजुगुप्सयोः मिथ्यादृष्टौ बंधः चतुर्विधः। उपरि त्रिविधः, ध्रुवबंधाभावात्। हास्यरत्योः सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मनुष्यायुषः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, असंयतसम्यग्दृष्टि अनिवृत्तिकरणयोः यथाक्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः स्वोदयपरोदयाभ्यां बंधः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयेनैव, स्वाभाविकात्।

सर्वत्र बंधो निरन्तरः, जघन्यबंधकालस्यापि अन्तर्मुहूर्तप्रमाणोपलंभात्। मिथ्यादृष्टेः पंचाशत् सासादनस्य पंचचत्वारिंशत् प्रत्ययाः, औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोग-पुरुष-नपुंसकवेदप्रत्ययानामभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, ओघप्रत्ययेषु औदारिक-औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोग-पुरुष-नपुंसकवेदानामभावात्। शेषं सुगमम्।

सर्वेऽपि मनुष्यगतिसंयुक्तं एव बध्नन्ति, अन्यगतिभिः सह विरोधात्।

त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। असंयतसम्यग्दृष्टयो देवाश्चैव स्वामिनः, अन्यत्र स्त्रीवेदोदययुक्तानां सम्यग्दृष्टीनां मनुष्यायुषो बंधाभावात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमम्। सर्वत्र

तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में स्त्रीवेद के उदय सहित जीवों का अभाव है। दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं क्योंकि देवगति में देशव्रतियों का अभाव है। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में महाव्रतियों का अभाव है। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं।

भय और जुगुप्सा का मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में चारों प्रकार का बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। हास्य और रति का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

मनुष्यायु का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय से बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में परोदय से ही बंध होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव ही है।

सर्वत्र निरंतर बंध होता है क्योंकि उसका जघन्य बंधकाल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाया जाता है। मिथ्यादृष्टि के पचास और सासादनसम्यग्दृष्टि के पैंतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि वहाँ औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में चालीस प्रत्यय हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों में से औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मणकाययोग, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है। सब ही मनुष्यगति से संयुक्त ही बांधते हैं क्योंकि अन्य गतियों के साथ उसके बंध का विरोध है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि देव ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में स्त्रीवेदोदययुक्त सम्यग्दृष्टियों के मनुष्यायु के बंध

साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

देवायुषः पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिद्यते, अप्रमत्तासंयतसम्यग्दृष्ट्योः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। सर्वगुणस्थानेषु परोदयेनैव बंधः, स्वोदये बंधस्यात्यन्ताभावस्यावस्थानात्। निरन्तरो बंधः, अंतर्मुहूर्तेन विना बंधोपरमाभावात्।

मिथ्यादृष्टेः एकोनपंचाशत्, सासादनस्य चतुश्चत्वारिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टेश्चत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः, वैक्रियिक-तन्मिश्र-औदारिकमिश्र-कार्मणकाययोग-पुरुष-नपुंसकवेदानामभावात्। उपरि पुरुष-नपुंसकवेद-आहारकद्विकेन विना ओघप्रत्ययाश्चैव वक्तव्याः। शेषं सुगमम्।

सर्वत्र देवगतिसंयुक्तो बंधः, अन्यगतिभिः सह बंधविरोधात्। तिर्यग्मनुष्य-मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयताः स्वामिनः, अन्यत्र स्थितानां तद्बंधविरोधात्। उपरिमा मनुष्याश्चैव, अन्यत्र महाव्रतिनामभावात्।

बंधाध्वानं सुगमम्।

अप्रमत्तकाले संख्यातभागं गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते, सूत्रानुसारिगुरूपदेशात्। साद्यध्रुवौ बंधो भवति।

देवगति-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वैक्रियिकशरीरांगोपांग-वर्णचतुष्क-देवगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माणेषु देवद्विक-वैक्रियिकद्विकानां पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो

का अभाव है। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है।

देवायु का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अप्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से बंध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। सब गुणस्थानों में परोदय से ही बंध होता है क्योंकि अपने उदय के होने पर उसके बंध का अत्यन्ताभाव है। उसका बंध निरंतर होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि के उनंचास, सासादनसम्यग्दृष्टि के चवालीस और असंयतसम्यग्दृष्टि के चालीस उत्तर प्रत्यय हैं क्योंकि यहाँ वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मणकाययोग, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के ऊपर पुरुषवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विक के बिना ओघप्रत्यय ही कहना चाहिए। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

सर्वत्र देवगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि अन्य गतियों के साथ उसके बंध का विरोध है। तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि एवं संयतासंयत स्वामी हैं क्योंकि अन्यत्र स्थित जीवों के उसके बंध का विरोध है। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में महाव्रतियों का अभाव है। बंधाध्वान सुगम है।

अप्रमत्तकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है क्योंकि ऐसा सूत्रानुसारी गुरू का उपदेश है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय व निर्माण, इनमें से देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न

व्युच्छिद्यते। अपूर्वकरणासंयत-सम्यग्दृष्टिगुणस्थानयोः देवगत्यानुपूर्विप्रकृतेः अपूर्वसासादनयोः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। तैजस-कार्मण-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुस्वर-निर्माणानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, अपूर्व-अनिवृत्तिकरणयोः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-सुभगादेयानां अप्येवं एव वक्तव्यम्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां परोदयेनैव सर्वत्र बंधः, स्वोदयेनैतासां बंधविरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माणानां सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयो बंधः, अत्रैतासां ध्रुवोदयत्वदर्शनात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां सर्वत्रस्वोदयपरोदयौ बंधः, उभयथापि बंधाविरोधात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः बंधः स्वोदयपरोदयौ, विग्रहगतौ केषांचित् अपर्याप्तकाले च उदयेन बिना बंधोपलंभात्। उपरिमेषु गुणस्थानेषु स्वोदयेनैव, अपर्याप्तकाले तेषां गुणस्थानानामभावात्। मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु सुभगादेययोः स्वोदयपरोदयौ बंधः। उपरिस्वोदयश्चैव, स्वाभाविकात्।

तैजस-कार्मण-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माणानां बंधः निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। पंचेन्द्रियजाति-समचतुरस्रसंस्थान-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिन्तरो बंधः।

होता है क्योंकि अपूर्वकरण और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तथा देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के अपूर्वकरण और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुस्वर और निर्माण, इनका पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में क्रम से इनके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग और आदेय के भी इसी प्रकार कहना चाहिए।

देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का परोदय से ही सर्वत्र बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श ,अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और निर्माण का सब गुणस्थानों में स्वोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ ये प्रकृतियाँ ध्रुवोदयी देखी जाती है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का सर्वत्र स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि विग्रहगति में और किन्हीं के अपर्याप्तकाल में भी इनका उदय के बिना बंध पाया जाता है। उपरिम गुणस्थानों में स्वोदय से ही बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उन गुणस्थानों का अभाव है। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सुभग व आदेय का स्वोदय-परोदय बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण का बंध निरंतर होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। पंचेन्द्रियजाति, समचतुरस्रसंस्थान, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय, देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरंतर बंध होता है।

कथं निरन्तरः ?

न, असंख्यातवर्षायुष्क-तिर्यग्मनुष्येषु भोगभूमिजेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। एवं सासादनस्यापि वक्तव्यम्। नवरि पंचेन्द्रियजाति-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां बंधो निरन्तरश्चैव। सम्यग्मिथ्यादृष्टिप्रभृति उपरिमाणां सासादनवद्भंगः। नवरि देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-समचतुरस्रसंस्थान-सुभग-सुस्वर-आदेयानां निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

स्थिर-शुभयोः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तं सान्तरो बंधः, प्रतिपक्ष-प्रकृतिबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, बहुशः प्ररुपितत्वात्। नवरि देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्र-औदारिकमिश्र-कार्मण-प्रत्ययाः पुरुष-नपुंसकवेदाभ्यां सह अपनेतव्याः। शेषं सुगमम्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकप्रकृतीः सर्वत्र देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। नवरि वैक्रियिकद्विकं मिथ्यादृष्टयो देव-नरकगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुस्वर-आदेय नामानि मिथ्यादृष्टि-सासादनाः त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगत्या सह बंधाभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः देव-मनुष्यगतिसंयुक्तं शेषाः देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। अवशेषाः प्रकृतीः मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनास्त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो देवगति-मनुष्यगतिसंयुक्तमुपरिमा देवगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

शंका — निरंतर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क भोगभूमिज तिर्यंच और मनुष्यों में निरंतर बंध पाया जाता है।

इसी प्रकार सासादनगुणस्थान के भी कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि पंचेन्द्रियजाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का बंध निरंतर ही होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि से लेकर उपरिम गुणस्थानों की प्ररूपणा सासादनसम्यग्दृष्टि के समान है। विशेष यह है कि देवगति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, सुभग, सुस्वर और आदेय का निरंतर बंध होता है क्योंकि इनकी विपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। स्थिर और शुभ का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर प्रमत्तसंयत तक सांतर बंध होता है क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर इनका निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि उनकी प्ररूपणा कई बार की जा चुकी है। विशेषता यह है कि देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को पुरुष और नपुंसकवेदों के साथ कम करना चाहिए। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक सर्वत्र देवगति से संयुक्त बांधते हैं। विशेषता इतनी है कि वैक्रियिकद्विक को मिथ्यादृष्टि स्त्रीवेदी जीव देव व नरकगति से संयुक्त बाँधते हैं समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर और आदेय नामकर्मों को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ इनके बंध का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त बाँधते हैं, शेष गुणस्थानवर्ती देवगति से संयुक्त बाँधते हैं। शेष प्रकृतियों को मिथ्यादृष्टि चारों गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवगति एवं मनुष्यगति से संयुक्त तथा उपरिम गुणस्थानवर्ती देवगति से संयुक्त बाँधते हैं।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयताः स्वामिनः। उपरिमा मनुष्याश्चैव, अन्यत्र तेषामभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो द्विगतिसंयतासंयताः मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। अन्यत्र त्रिविधो बंधः, ध्रुवबंधाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः साद्यध्रुवौ भवतः, अध्रुवबंधित्वात्।

आहारकद्विकस्य ओघप्ररूपणां निश्चित्य वक्तव्यं। तीर्थकरस्यापि ओघप्ररूपणामपि ज्ञात्वा वक्तव्यम्। नवरि वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणकाययोग-पुरुष-नपुंसकवेदाः असंयतसम्यग्दृष्टि प्रत्ययेषु अपनेतव्याः। अन्यत्र पुरुष नपुंसकवेदप्रत्ययाश्चैवा प्रत्यया एवापनेतव्याः। तीर्थकरस्य बंधस्य मनुष्याश्चैव स्वामिनः, अन्यत्र स्त्रीवेदोदययुक्तानां तीर्थकरस्य बंधाभावात्। अपूर्वकरणोपशामकेषु तीर्थकरस्य बंधः, न क्षपकेषु, स्त्रीवेदोदयेन तीर्थकरकर्म बध्यमानानां क्षपकश्रेणिसमारोहणाभावात्।

अस्यायमर्थः —

ये केचिदुपशमश्रेण्यारोहकाः अपूर्वकरणगुणस्थाने तीर्थकरप्रकृतिं बध्नन्ति ते नियमेन ततोऽवतीर्य समाधिना कालं कृत्वा देवेषूत्पद्यन्ते, ततश्च्युत्वा मनुष्येषु द्रव्यभावाभ्यां पुरुषवेदं संप्राप्य क्षपकश्रेणिमारोहंति तत्र घातिकर्माणि निर्मूल्य तीर्थकरप्रकृत्युदयेन सह केवलिनो भवन्ति। किं च भावस्त्रीवेदेन सह तीर्थकरप्रकृत्युदयो न जायते। अतएव इमे क्षपकश्रेण्यारोहणं न कुर्वन्ति।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत स्वामी हैं। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में उन गुणस्थानों का अभाव है। शेष प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग की प्ररूपणा ओघप्ररूपणा का निश्चय कर कहना चाहिए। तीर्थंकर प्रकृति की भी ओघ प्ररूपणा को ही जानकर कहना चाहिए। विशेषता केवल यह है कि वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र, कार्मणकाययोग, पुरुषवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को असंयतसम्यग्दृष्टि के प्रत्ययों में से कम करना चाहिए। अन्यत्र पुरुषवेद, नपुंसकवेद ही कम करना चाहिए। तीर्थंकरप्रकृति के बंध के मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में स्त्रीवेदोदययुक्त जीवों के तीर्थंकर प्रकृति के बंध का अभाव है। अपूर्वकरण उपशामकों में तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, क्षपकों में नहीं क्योंकि स्त्रीवेद के उदय के साथ तीर्थंकर कर्म को बाँधने वाले जीवों के क्षपकश्रेणी के आरोहण का अभाव है।

इसका अर्थ यह है कि—जो कोई महामुनि उपशमश्रेणी में आरोहण करने वाले अपूर्वकरण गुणस्थान में तीर्थंकर प्रकृति का बंध करते हैं वे नियम से वहाँ से उतरकर समाधिपूर्वक मरण करके देवों में उत्पन्न होते हैं, पुनः वहाँ से च्युत होकर मनुष्यों में द्रव्य और भाव से पुरुषवेद को प्राप्त करके क्षपकश्रेणी में आरोहण करते हैं वहाँ घातिकर्मों का निर्मूलन करके तीर्थंकरप्रकृति के उदय के साथ केवली भगवान हो जाते हैं, क्योंकि भावस्त्रीवेद के साथ तीर्थंकर प्रकृति का उदय नहीं होता है इसलिये ये क्षपक श्रेणी में आरोहण नहीं करते हैं।

भावस्त्रीवेदेन भावनपुंसकवेदेन वा मुनयः तीर्थकरप्रकृतिबंधं तु कर्तुं क्षमाः भवन्ति किन्तु तद्भवेव क्षपकश्रेणिं नारोहन्ति, एतयोर्वेदयोस्तीर्थकरप्रकृत्युदयाभावात् इत्यार्षग्रन्थेषु लिखितं वर्तते।

अत्र पर्यंतं एकोनसप्तत्यधिकशततमसूत्रादारभ्य सप्तसप्तत्यधिकशततमसूत्रं यावत् स्त्रीवेदे बंधस्वामित्वविवेचना कृता, अग्रे नपुंसकेवेदे विवेचना क्रियते—

यथा स्त्रीवेदोदययुक्तानां सर्वसूत्राणि प्ररूपितानि तथा नपुंसकवेदोदययुक्तानामपि वक्तव्यम्। नवरि स्त्रीवेद भणितप्रत्ययेषु स्त्रीवेदमपनीय नपुंसकवेदः प्रक्षेतव्यः। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रत्ययेषु वैक्रियिक-कार्मणकाययोगप्रत्ययौ प्रक्षेतव्यौ, नारकेषु आयुर्बंधवशेन सम्यग्दृष्टीनामुत्पत्तिदर्शनात्। नरकत्रिक-स्त्रीवेदानां सर्वत्र पुरुषवेदोदयस्येव परोदयेनेव बंधः। नपुंसकवेदस्य स्वोदयेन। एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां स्वोदयपरोदयौ बंधः, एतेषु उक्तगुणस्थानेषु एतेषां प्रतिपक्षस्थानेषु च नपुंसकवेदोदयदर्शनात्।

तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कुतः ?

तेजोवायुकायिकेषु सप्तमपृथिवीनारकेषु च द्वयोः अपि गुणस्थानयोः निरन्तरबंधोपलंभात्। मनुष्यगतिद्विकस्य सान्तरनिरन्तरो मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्बंधः, आनतादिदेवेभ्यः नपुंसकवेदोदययुक्तमनुष्येषु उत्पन्नानां तीर्थकरसत्त्वकर्मणा नारकेषूत्पन्नमिथ्यादृष्टीनां च निरन्तरबंधोपलंभात्।

भावस्त्रीवेद के साथ अथवा भावनपुंसकवेद से मुनिगण तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में तो सक्षम हो सकते हैं किंतु उसी भव में क्षपकश्रेणी पर आरोहण नहीं कर सकते हैं क्योंकि इन दोनों वेदों में तीर्थंकर प्रकृति के उदय का अभाव है ऐसा आर्षग्रंथों में लिखा है।

यहाँ तक एक सौ उनहत्तरवें सूत्र से प्रारंभ करके एक सौ सतत्तरवें सूत्र तक स्त्रीवेद में बंधस्वामित्व की विवेचना की है। आगे नपुंसकवेद में विवेचना करते हैं—

जिस प्रकार स्त्रीवेदोदययुक्त जीवों की अपेक्षा सब सूत्रों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार नपुंसकवेदोदययुक्त जीवों के भी कहना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि सर्वत्र स्त्रीवेद में कहे हुए प्रत्ययों में से स्त्रीवेद को कम कर नपुंसकवेद को जोड़ना चाहिए। असंयत सम्यग्दृष्टि के प्रत्ययों में वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग प्रत्ययों को जोड़ना चाहिए क्योंकि आयुबंध के वश से सम्यग्दृष्टियों की नारकियों में उत्पत्ति देखी जाती है। नरकायु, नरकगतिद्विक और स्त्रीवेद का सर्वत्र पुरुषवेद के समान परोदय से बंध होता है। नपुंसकवेद का स्वोदय से बंध होता है। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप,स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि इन उक्त स्थानों में तथा इसके प्रतिपक्ष स्थानों में नपुंसकवेद का उदय देखा जाता है।

तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरंतर बंध होता है। क्यों ?

क्योंकि तेज व वायुकायिक तथा सप्तम पृथिवी के नारकियों में मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि इन दोनों ही गुणस्थानों में निरंतर बंध पाया जाता है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर बंध होता है क्योंकि आनतादिक देवों में से नपुंसकवेदोदययुक्त मनुष्यों में उत्पन्न हुए तथा तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के साथ नारकियों में उत्पन्न हुए मिथ्यादृष्टियों के निरंतर बंध पाया जाता है।

औदारिकद्विकस्य मिथ्यादृष्टिसासादनयोः सनत्कुमारादिदेव-नारकान् आश्रित्य निरन्तरो बंधः। अन्यत्र सान्तरो वक्तव्यः, असंख्यातवर्षायुष्केषु भोगभूमिजेषु नपुंसकवेदोदयाभावात्। तेजःपद्मशुक्ललेश्यायुक्तनपुंसक-वेदोदयसहिततिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनान् आश्रित्य देवगतिद्विक-वैक्रियिकशरीरद्विकानां निरन्तरो वक्तव्यः।

उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ बंधः, नरकगतौ अपर्याप्तासंयतसम्यग्दृष्टिष्वपि एतासां बंधो भवति। त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-पंचेन्द्रियजातीनां मिथ्यादृष्टौ बंधः स्वोदय-परोदयौ, स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-विकलेन्द्रियेष्वपि एतासां बंध उपलभ्यते।

सर्वप्रकृतीनां बंधस्य नास्ति देवानां स्वामित्वं तत्र नपुंसकवेदोदयाभावात्। एकेन्द्रिय-आतप-स्थावराणां तिर्यग्गति-मनुष्यगति-मिथ्यादृष्टयश्चैव स्वामिनः, देवा न भवन्ति, तेषु नपुंसकवेदोदयाभावात्। अन्योऽपि यदि भेदोऽस्ति स स्मृत्वा वक्तव्यः।

अत्र पर्यन्तं नपुंसकवेदे बंधस्वामित्वं कथितं पुरश्चाग्रे पुरुषवेदे कथयन्ति—

यथा स्त्रीवेदस्य प्ररूपणा कृता तथा पुरुषवेदस्यापि कर्तव्या। विशेषेण—ओघप्रत्ययेषु स्त्री-नपुंसकवेदप्रत्ययौ एव सर्वगुणस्थानेषु अपनेतव्यौ, शेषाशेषप्रत्ययानां तत्र संभवात्।

अत्र पुरुषवेदे स्त्रीवेद-नपुंसकवेदयोर्बंधः परोदयः, पुरुषवेदस्य स्वोदयः। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदय-परोदयौ बंधः।

तीर्थकरस्य प्ररूपणा ओघतुल्या। एवमन्योऽपि यदि भेदोऽस्ति सः स्मृत्वा वक्तव्यः।

औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सानत्कुमारादि देव व नारकियों का आश्रय कर निरंतर बंध होता है। अन्यत्र सांतर बंध कहना चाहिए क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्कों — भोगभूमिजों में नपुंसकवेद के उदय का अभाव है। तेज, पद्म और शुक्ललेश्या वाले नपुंसकवेदोदय युक्त तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों का आश्रय कर देवगतिद्विक और वैक्रियिकशरीरद्विक का निरंतर बंध कहना चाहिए।

उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का असंयतसम्यग्दृष्टियों में स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि नरकगति में अपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियों में भी इनका बंध पाया जाता है। त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर और पंचेन्द्रियजाति का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और विकलेन्द्रियों में इनका बंध पाया जाता है। सब प्रकृतियों के बंध के स्वामी देव नहीं हैं क्योंकि उनमें नपुंसकवेद के उदय का अभाव है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर के तिर्यग्गति व मनुष्यगति के मिथ्यादृष्टि ही स्वामी हैं, देव नहीं हैं, क्योंकि उनमें नपुंसकवेद के उदय का अभाव है। अन्य भी यदि भेद हैं, तो उसको स्मरण कर कहना चाहिए।

यहाँ तक नपुंसकवेद में बंधस्वामित्व का कथन किया है, आगे पुरुषवेद में कहते हैं—

जिस प्रकार स्त्रीवेद की प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार पुरुषवेद की भी करना चाहिए। विशेष इतना है कि ओघप्रत्ययों में से स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को ही सब गुणस्थानों में कम करना चाहिए क्योंकि शेष सब प्रत्ययों की वहाँ सम्भावना है। यहाँ पुरुषवेद में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद का बंध परोदय होता है, पुरुषवेद का स्वोदय बंध होता है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। तीर्थंकर प्रकृति की प्ररूपणा ओघ के समान है। इसी प्रकार अन्य भी यदि भेद है तो उसको स्मरण कर कहना चाहिए।

अत्र तात्पर्यमेतत्—अस्मिन् संसारे मिथ्यादृष्टिस्थानादारभ्य नवमगुणस्थानस्य सवेदभागपर्यन्तं सर्वे संसारिणो जीवाः एकेन्द्रियादारभ्यपंचेन्द्रियपर्यन्ता अशुभोपयोगिनः शुभोपयोगिनो वा इमे सवेदिन एव। एषु त्रिविधिवेदिषु नपुंसका अनन्तानंताः सन्ति, एकेन्द्रियापेक्षत्वात्, नित्यनिगोद-इतरनिगोदजीवराशि-अपेक्षत्वात् वा। पुनश्च स्त्रीपुरुषवेदिनौ पंचेन्द्रियेष्वेव भवन्ति।

भाववेदापेक्षया इमे त्रिवेदिनोऽपि मोक्षमार्गिणो भवन्ति। कदाचित् काललब्ध्यादिवशेन सम्यक्त्वमुत्पाद्य सम्यग्ज्ञानमाराध्यमानाः यथाशक्ति चारित्रमवलम्ब्य यदि एकदेशव्रतिनो महाव्रतिनो वा भवन्ति तर्हि पंचेन्द्रियविषयान् विजिगीषवः मोहनीयकर्मण उपरि विजयं लब्धुमीहन्ते।

उक्तं च परमात्मप्रकाशग्रन्थे टीकायां—

अक्खाण रसणीं कम्माण मोहणीं तह वयाण बंभं च।
गुत्तीसु य मणगुत्ती चउरो दुक्खेहिं सिज्झंति।।

अतएव पंचेन्द्रियविषयभोगान् परिहृत्य विशेषेण तु रसनेन्द्रियं वशीकृत्य शिष्यपरिकरमोहं त्यक्त्वा शरीरेऽपि ममतां अपाकृत्य ब्रह्मचर्यव्रतं निरतिचारं परिपालयन् आत्मब्रह्मणि निरतो भूत्वा मनोमर्कटो वशीकर्तव्योऽतिप्रयत्नेन अस्माभिरिति।

एवं प्रथमस्थले सवेदेषु बंधाबंधनिरूपणत्वेन नव सूत्राणि गतानि।

यहाँ तात्पर्य यह समझना कि—इस संसार में मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर नवमें गुणस्थान के सवेदभाग तक सभी संसारी जीव एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय पर्यंत अशुभोपयोगी हों या शुभोपयोगी हों ये सभी वेदसहित ही हैं। इन तीनों प्रकार के वेद वालों में नपुंसकवेद वाले जीव अनंतानंत हैं, क्योंकि ये एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा से अथवा नित्य निगोदिया और इतर निगोदिया जीवों की अपेक्षा से अनंतानंत हैं। पुनः स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी जीव पंचेन्द्रियों में ही होते हैं यह बात ध्यान रखना है।

भाववेद की अपेक्षा से ये तीनों वेद वाले भी मोक्षमार्गी होते हैं, अथवा मोक्षगामी होते हैं। कदाचित् कोई भव्यात्मा काललब्धि आदि के निमित्त से सम्यक्त्व को उत्पन्न करके, सम्यग्ज्ञान की आराधना करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार चारित्र का अवलंबन लेकर यदि देशव्रती अथवा महाव्रती होते हैं तो पंचेन्द्रिय विषयों को जीतने की इच्छा रखने वाले मोहनीय कर्म के ऊपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं या मोहनीयकर्म को जीतने में समर्थ हो जाते हैं।

परमात्मप्रकाश ग्रंथ की टीका में भी कहा है—

इंद्रियों में रसना इंद्रिय, कर्मों में मोहनीय कर्म, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत और गुप्तियों में मनोगुप्ति ये चारों ही बहुत ही कष्ट से सिद्ध होते हैं।

इसलिए पंचेन्द्रिय विषयों के भोगों को छोड़कर के तथा विशेष रीति से रसनेन्द्रिय को वश में करके शिष्य परिकर के मोह को छोड़कर शरीर से भी ममता को दूरकर ब्रह्मचर्य व्रत को निरतिचार पालन करते हुये हम सभी को आत्मारूपी ब्रह्मा में लीन होकर अति प्रयत्नपूर्वक मनरूपी बंदर को वश में करना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में वेदसहित अवस्थापर्यंत बंधक-अबंध जीवों को कहते हुए नव सूत्र हुये हैं।

अधुना अपगवेदानां ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अवगदवेदएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१७८।।

अणियट्टिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइय-सुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१७९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — देशामर्शकसूत्रमेतत्, बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं चैतयोर्द्वयोरेव प्ररूपणात्। तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते।

तद्यथा — एतासां षोडशानां प्रकृतीनां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, तथोपलंभात्।

अत्रोपयोगिनी गाथा —

आगमचक्खू साहू इंदियचक्खू असेसजीवा जे।
देवा य ओहिचक्खू केवलचक्खू जिणा सव्वे[१]।।

सर्वे दिगम्बरमुनयः आगमचक्षुषा पदार्थानवलोक्य एव ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपणसमितिभिः प्रवर्तन्ते, चतुरिन्द्रियादारभ्य सर्वे संसारिणो जीवाः चक्षुर्भिः पश्यन्ति, देवाः अवधिज्ञाननेत्रैः मूर्तिकसीमितपदार्थान्

अब वेदरहित जीवों के ज्ञानावरण आदि सोलह प्रकृतियों का बंध-अबंध निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अपगत वेदियों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय का कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।१७८।।

अनिवृत्तिकरण से लेकर सूक्ष्मसांपरायिक उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिक शुद्धिसंयत काल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१७९।।

सिद्धांचिंतामणिटीका — यह सूत्र देशामर्शक है क्योंकि वह बंधाध्वान और बंध विनष्टस्थान इन दोनों की ही प्ररूपण करता है। इसीलिये इससे सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है —

इन सोलह प्रकृतियों का पूर्व में बंध पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि वैसा पाया जाता है।

यहाँ उपयोगिनी गाथा इस प्रकार है —

साधु आगमरूप चक्षु के धारक हैं तथा जितने सब जीव हैं वे इंद्रिय चक्षु के धारक होते हैं। देव अवधिज्ञान चक्षु से सहित होते हैं तथा सभी जिनेन्द्र भगवान केवलज्ञान रूपी चक्षु से सहित होते हैं।

सभी दिगम्बर मुनिगण आगमचक्षु के द्वारा पदार्थों का अवलोकन करके ही ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणा समिति, आदाननिक्षेपण समिति और उत्सर्ग समिति से प्रवृत्ति करते हैं। चार इंद्रिय वाले जीवों से लेकर

---

१. षट्खण्डागम पु. ८, पृ. २६४। २. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा १०१। ३. दैवसिकप्रतिक्रमण सिद्धभक्ति।

अवलोकयन्ति, सर्वे अर्हन्तः सिद्धाश्च जिनाः परमात्मानः केवलज्ञानचक्षुर्भिर्विश्वं चराचरं पश्यन्ति।

सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानस्यान्ते एताः षोडशप्रकृतयः बंधेन व्युच्छिद्यन्ते।

उक्तं च—''पढमं विग्घं दंसणचउजसउच्चं च सुहुमंते।[१]''

क्षीणकषायगुणस्थानस्यान्ते पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां उदयव्युच्छित्तिर्भवति। सयोगिजिनस्यान्ते यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोरुदयव्युच्छित्तिर्जायते।

सयोगिजिनाः ज्ञानावरणाद्यभावेन केवलज्ञानसूर्या भूत्वा सर्वं लोकालोकं प्रकाशन्ते।

उक्तं च तथैव— श्रीमते वर्धमानाय नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा त्रैलोक्यं गोष्पदायते[२]।।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पञ्चान्तराय-यशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां स्वोदयश्चैव बंधः, अत्र एतासां ध्रुवोदयत्वदर्शनात्। निरन्तरो बंधः, अत्र बंधोपरमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः सन्ति। ओघे प्ररूपितत्वात्। अगतिसंयुक्तो बंधः, अपगतवेदेषु चतसृणां गतीनां बंधाभावात्। मनुष्याश्चैव स्वामिनः, अत्र क्षपकोपशामकानामभावात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां त्रिविधो बंधः, ध्रुवत्वाभावात्। यशःकीर्ति-उच्चगोत्रयोः

सभी संसारी जीव चक्षु से देखते हैं। देवगण अवधिज्ञान रूपी नेत्रों से मूर्तिक और सीमित पदार्थों का अवलोकन करते हैं। सभी अर्हंत और सिद्ध भगवान जिनपरमात्मा केवलज्ञानरूपी चक्षु से संपूर्ण चराचर विश्व को देखते हैं।

सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अन्त में ये सोलह प्रकृतियाँ बंध से व्युच्छिन्न होती हैं। कहा भी है—

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान के अंत में प्रथम-ज्ञानावरण पाँच, अंतराय पाँच, दर्शनावरण चार, यशकीर्ति और उच्चगोत्र ये बंध से व्युच्छिन्न होती हैं।

क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत में पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, और पाँच अंतराय की उदयव्युच्छित्ति होती है। सयोगिकेवली गुणस्थान के अंत में यशकीर्ति और उच्चगोत्र की उदय से व्युच्छित्ति होती है।

सयोगी केवली भगवान ज्ञानावरण आदि के अभाव से केवलज्ञान सूर्य होकर संपूर्ण लोक-अलोक को प्रकाशित करते हैं।

कहा भी है श्री गौतमस्वामी ने प्रतिक्रमण सूत्र ग्रंथ में—

जिन्होंने शत्रुओं को भी नमित कर लिया है—झुका लिया है ऐसे अंतरंग-बहिरंग लक्ष्मी से समन्वित श्री वर्धमान भगवान को नमस्कार होवे। जिनके ज्ञान के अंतर्गत हुये ये तीनों लोक गोष्पद—गाय के पैर रखने के स्थानस्वरूप लघु प्रतिभासित होते हैं।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अंतराय, यशकीर्ति और उच्चगोत्र का स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि यहाँ इन प्रकृतियों के ध्रुवोदयित्व देखा जाता है। इनका निरंतर बंध होता है, क्योंकि यहाँ बंध के उपरम का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघ में इनकी प्ररूपणा की जा चुकी है। अगतिसंयुक्त बंध होता है, क्योंकि अपगत वेदियों में चारों गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में क्षपक और उपशमक मुनियों का अभाव है। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा १०१। २. दैवसिकप्रतिक्रमण सिद्धभक्ति।

साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

इतो विस्तरः—यः कश्चित् शुद्धोपयोगी महामुनिः ''शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन शुद्धोऽपि सन् अनादिसन्तानागत-ज्ञानावरणादिकर्मबंधप्रच्छादितत्वाद्वीतरागनिर्विकल्पसहजानन्दैकसुखास्वादमलभमानो व्यवहारनयेन त्रसो भवति, स्थावरो भवति, स्त्रीपुंनपुंसकलिंगो भवति, तेन कारणेन जगत्कर्ता भण्यते, नान्यः कोऽपि परकल्पितपरमात्मेति। अत्रायमेव शुद्धात्मा परमात्मोपलब्धिप्रतिपक्षभूतवेदत्रयोदयजनितं रागादिविकल्पजालं निर्विकल्पसमाधिना यदा विनाशयति तदो पादेयभूतमोक्षसुखसाधकत्वादुपादेयः इति[१]''।

तात्पर्यमेतत्—द्रव्यवेदेन पुरुषः एव भाववेदेन केनापि सहितो यः कश्चित् महामुनिः अहिंसासत्यास्तेय-ब्रह्मचर्यापरिग्रहमहाव्रतान्यनुपालयन् परमब्रह्मणि आत्मनि निरतो भूत्वा स्वशुद्धात्मानं ध्यायति असौ शुद्धोपयोगबलेन अपगतवेदी भवन् सन् केवलज्ञानी संजायते ततः भेदाभेदरत्नत्रयभावना एव भावयितव्या निरन्तरम् अस्माभिरिति।

अधुना सातावेदनीयस्य बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।१८०।।

और पाँच अंतराय इनका तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि इनके ध्रुव बंध का अभाव है। यशकीर्ति और उच्चगोत्र का सादि और अध्रुवबंध है, क्योंकि ये अध्रुवबंधी हैं।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—

जो कोई शुद्धोपयोगी महामुनि शुद्धद्रव्यार्थिक नय से शुद्ध होते हुये भी अनादिपरम्परा से आगत ज्ञानावरण आदि कर्मबंध से प्रच्छादित होने से वीतराग, निर्विकल्प, सहजानंद रूप एक सुखास्वाद को नहीं प्राप्त करते हुए व्यवहारनय से त्रस-स्थावर पर्यायों को प्राप्त करते हैं। स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक हो जाते हैं, इस कारण ये जगत् के—अपनी सृष्टि के कर्ता कहे जाते हैं। अन्य कोई भी पर से कल्पित परमात्मा सृष्टि के कर्ता नहीं हैं। यहाँ यही आत्मा शुद्धात्मा होकर परमात्मा की उपलब्धि के प्रतिपक्षभूत तीन वेदों से उत्पन्न हुये रागादि विकल्प जाल को निर्विकल्प समाधि के द्वारा जब नष्ट कर देता है तब उपादेयभूत मोक्षसुख का साधक होने से उपादेय हो जाता है, ऐसा परमात्मप्रकाश में कहा है।

यहाँ अभिप्राय यह समझना कि—द्रव्यवेद से पुरुष ही कोई महामुनि भाववेदों में से किसी भी भाववेद से सहित हुये अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ऐसे पाँच महाव्रतों को पालन करते हुए परमब्रह्मस्वरूप आत्मा में लीन होकर अपनी आत्मा का ध्यान करते हैं, ऐसे ये महामुनि शुद्धोपयोग के बल से अपगतवेदी होते हुए केवलज्ञानी हो जाते हैं इसलिए निरंतर हमें भेद-अभेद रत्नत्रय की भावना ही भाते रहना चाहिए।

अब सातावेदनीय के बंध-अबंध का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१८०।।

---

१. परमात्माप्रकाश दोहा ४०, टीकांश।

अणियट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१८१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतयोरर्थ उच्यते—सातावेदनीयस्य पूर्वं बंधः पश्चात् उदयो व्युच्छिद्यते, सयोगि-अयोगिचरमसमये बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। स्वोदय-परोदयौ बंधः, परावर्तान्योदयत्वात्—सातावेदनीयस्य परिवर्तनं भूत्वासातावेदनीयस्योदयो दृश्यते। निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधो न भवति। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघे प्ररूपणा कृतास्ति। अगतिसंयुक्तो बंधः, अपगतवेदेषु गतिचतुष्कस्य बंधो न दृश्यते। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र अपगतवेदानामभावोऽस्ति। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमम्। साद्यध्रुवौ बंधः, अध्रुवबंधित्वात्।

इतो विस्तरः—यद्यपि सातावेदनीयस्य बंधः सयोगिजिनस्यापि भवति तथापि स्थित्यनुभागबंधाभावात् एकसमयिकस्थितिबंधमात्रत्वात् तत्क्षणमेव निर्जीर्यते। इन्द्रियजन्यसुखं तस्य भगवतो न विद्यते।

उक्तं— णट्ठा य रायदोसा इंदियणाणं च केवलिम्हि जदो।
तेण दु सादासादजसुहदुक्खं णत्थि इंदियजं।।२७३।।
समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि।।२७४।।

अनिवृत्तिकरण से लेकर सयोगिकेवली तक बंधक हैं। सयोगिकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१८१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—सातावेदनीय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सयोगिकेवली और अयोगिकेवली के अंतिम समय में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि परिवर्तित होकर— सातावेदनीय का परिवर्तन होकर उसमें प्रतिपक्षभूत असाता वेदनीय का उदय पाया जाता है। निरंतर बंध होता है क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघ में उनकी प्ररूपणा की जा चुकी है। अगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि अपगतवेदियों में चारों गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में अपगतवेदियों का अभाव है। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी प्रकृति है।

यहाँ विशेष यह है कि—यद्यपि सातावेदनीय का बंध सयोगिकेवली जिनेंद्र भगवान के होता है फिर भी स्थितिबंध और अनुभागबंध के न होने से तथा एकसमयमात्र का स्थितिबंध होने से उसी क्षण ही वह कर्म निर्जीर्ण हो जाता है, इसलिये इन्द्रिय से उत्पन्न होने वाला सुख उन अर्हंत भगवान के नहीं है।

कहा भी है—केवली भगवान के राग-द्वेष और इंद्रिय ज्ञान नष्ट हो गये हैं, उसी से साता और असाता के निमित्त से होने वाले इंद्रियजन्य सुख और दुःख नहीं हैं। उन केवली भगवान के साता का एक समय की स्थिति वाला बंध ही होता है इस कारण साता के उदयस्वरूप ही है। इसलिये उनके असाता का जो उदय है वह साता के उदय रूप से परिणत हो जाता है। इसी कारण से उन केवली भगवान के साता का ही निरंतर

एदेण कारणेण दु सादस्सेव दु णिरंतरो उदओ।
तेणासादणिमित्ता परीसहा जिणवरे णत्थि[१]।।२७५।।

एतेन कथनेन ये केचित् श्वेतपटाः कथयन्ति यत् 'एकादश जिनाः' इति तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थकथिताधारेण केवलिभगवतां क्षुत्पिपासादिपरीषहाः संभवन्ति तेषां कथनं न सुष्ठु, किं च—असातस्योदयः सातस्वरूपेणैव परिणमति, अन्यच्च इंद्रियजं सुखदुःखमपि तेषां भगवतां न संभवति अतीन्द्रियसुखत्वादिति ज्ञातव्यम्।

संप्रति क्रोधसंज्वलनबंधाबंधकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

कोधसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।।१८२।।

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१८३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतस्यार्थ उच्यते—संज्वलनक्रोधस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, किंच—बंधे व्युच्छिन्ने सति अस्योदयो नोपलभ्यते। स्वोदयपरोदयौ बंधोऽस्य भवति, उभयथापि बंधविरोधो नास्ति। निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। अगतिसंयुक्तोऽत्र चतुर्गतिबंधाभाव एव।**

प्रत्ययाः सुगमाः सन्ति, किंच—ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषो नास्ति। मनुष्या एवास्य स्वामिनः, अन्यत्र गतिषु अपगतवेदिनामभावोऽस्ति। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थानेऽध्वानस्य विरोधात्। अथवा

उदय रहता है, इसलिये असाता के निमित्त से होने वाली परीषह—ग्यारह परिषह जिनेन्द्रदेव में नहीं हैं।।२७३ से २७५।।

इस कथन से यह समझना कि—"जो कोई श्वेताम्बर जैन ऐसा कहते हैं कि "एकादश जिने" तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ के कथन के आधार से केवली भगवान के क्षुधा, तृषा आदि परीषह संभव हैं" उनका ऐसा कथन ठीक नहीं है, क्योंकि उनके असाता का उदय सातास्वरूप से ही परिणमन कर जाता है तथा दूसरी बात यह है कि केवली भगवान के इंद्रियजनित सुख-दुःख भी नहीं है क्योंकि उनके अतीन्द्रिय सुख प्रगट हो चुका है ऐसा जानना चाहिये।

अब क्रोध संज्वलन के बंधकर्ता और अबंधकर्ता का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

संज्वलन क्रोध का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१८२।।

अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशमक व क्षपक बंधक हैं। बादर अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१८३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ कहते हैं—संज्वलन क्रोध का बंध और उदय दोनों एक साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि बंध के व्युच्छिन्न होने पर फिर उदय पाया नहीं जाता। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी बंध होने का विरोध नहीं है। निरंतर बंध होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी हैं। अगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि यहाँ चारों गतियों के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई भेद नहीं है। मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में अपगतवेदियों का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है अथवा

---

१. गोम्मटसार कर्मकाण्ड।

अस्ति, पर्यायार्थिकनयेऽवलम्ब्यमाने अपगतवेदिनामनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनां संख्यातानामुपलंभात् अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातानि खण्डानि कृत्वा तत्र बहुखण्डेषु अतिक्रान्तेषु एकखण्डावशेषे क्रोधसंज्वलनस्य बंधो व्युच्छिन्नो भवति। अस्य त्रिविधो बंधः, ध्रुवबंधित्वादिति ज्ञातव्यं।

मानमायासंज्वलनयोर्बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

माण-मायासंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।१८४।।

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१८५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका— **मानमाययोः प्रकृत्योः बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, बंधे विनष्टे सति उदयो नोपलभ्यते। स्वोदयपरोदयौ बंधः, उभयथापि बंधोपलंभात्। निरन्तरो, ध्रुवबंधित्वात्। अवगतप्रत्यया इमे उपशामकाः क्षपकाश्च, किं च ओघप्रत्ययेभ्यः अविशिष्टप्रत्ययाः सन्ति।**

अगतिसंयुक्तो बंधो भवति, अत्र चतुर्गतिबंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्रापगतवेदाभावात्। बंधाध्वानमत्र नास्ति, द्रव्यार्थिकनयविषये शुद्धसंग्रहे अध्वानानुपपत्तेः। अथवा अध्वानसमन्वितो बंधः, अवलंबितपर्यायार्थिकनयत्वात्।

क्रोधबंधव्युच्छिन्नस्थानात् उपरिमकालस्य संख्यात खण्डानि कृत्वा बहुखण्डेषु अतिक्रान्तेषु

बंधाध्वान है क्योंकि पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन करने पर अपगतवेदी अनिवृत्तिकरणों के संख्यात पाए जाने से अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात खण्ड करके उनमें बहुत खंडों के बीत जाने और एक खंड के शेष रहने पर संज्वलन क्रोध का बंध व्युच्छिन्न होता है। तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है, ऐसा जानना चाहिए।

अब मान और माया संज्वलन के बंधक और अबंधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्वलन मान और माया का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१८४।।

अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरणबादरकाल के शेष व शेष के शेष काल में संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१८५।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका— इन दोनों — मान और माया प्रकृतियों का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि बंध के नष्ट हो जाने पर इनका उदय नहीं पाया जाता। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी बंध पाया जाता है। निरंतर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं। प्रत्यय अवगत है क्योंकि ये उपशामक और क्षपक हैं, ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई विशेषता नहीं है।

अगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि यहाँ चारों गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में अपगतवेदियों का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि द्रव्यार्थिकनय के विषयभूत शुद्ध संग्रहनय में अध्वान नहीं बनता है अथवा पर्यायार्थिकनय का अवलम्बन करने से अध्वान से सहित बंध होता है। क्रोध के बंधव्युच्छित्ति स्थान से ऊपर के काल के संख्यात खण्ड करके बहुत खण्डों को बिताकर एक

एकखण्डावशेषे मानबंधो व्युच्छिद्यते। पुनः शेषस्यैकस्य खण्डस्य संख्यातानि खण्डानि कृत्वा तत्र बहुखण्डेषु अतिक्रान्तेषु एकखण्डावशेषे मायाया बंधो व्युच्छिद्यते।

एतत्कुतोऽवगम्यते ?

''सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण[1]'' शेषं शेषं संख्यातबहुभागं गत्वा इति जिनवचनादवगम्यते।

मानमायासंज्वलनयोः बंधस्त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्।

संप्रति लोभसंज्वलनस्य बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।।१८६।।

अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।१८७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**लोभसंज्वलनस्य बंधः पूर्वमुदयः पश्चाद् व्युच्छिद्यते, अनिवृत्तिकरणगुणस्थानस्य चरमसमये बंधव्युच्छित्तिः सूक्ष्मसांपरायिकचरमसमये उदयव्युच्छित्तिश्च दृश्यते। अस्य स्वोदयपरोदयौ बंधः, उभयथापि उपलभ्यते। निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वकथनात्। पूर्ववत् प्रत्ययो ज्ञातव्यः, ओघप्रत्यय-सामान्यत्वात्। अगतिसंयुक्तो बंधः, चतुर्गतिबंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र त्रिगतिषु क्षपकोपशाम-कानामभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, सूत्रे अनुपदिष्टत्वात्।**

खण्ड के शेष रहने पर मान का बंध व्युच्छिन्न होता है। तत्पश्चात् शेष खण्ड के संख्यात खण्ड करके उनमें बहुत खण्डों को बिताकर एक खण्ड के शेष रहने पर माया का बंध व्युच्छिन्न होता है।

शंका— यह कहाँ से जाना जाता है ?

समाधान— 'शेष शेष में संख्यात बहुभाग जाकर' इस जिनवचन से उक्त बंधव्युच्छित्तिक्रम जाना जाता है। इन संज्वलन मान और संज्वलन माया का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है।

अब लोभ संज्वलन के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्वलन लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१८६।।

अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरणबादरकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।१८७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका— लोभसंज्वलन का बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्परायिक गुणस्थान के अंतिम समय में क्रम से बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। इसका स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों ही प्रकार से बंध पाया जाता है। निरंतर बंध होता है क्योंकि उक्त प्रकृति ध्रुवबंधी है। ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई विशेषता न होने से उक्त प्रकृति के बंध के प्रत्यय अवगत हैं। अगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि यहाँ चारों गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में क्षपक व उपशामकों का अभाव है। बंधाध्वान है नहीं, क्योंकि सूत्र में उसका उपदेश नहीं है।

---

१. षट्खण्डागम पु. ८, पृ. २६८।

सूत्रे किमर्थं नोपदिष्टं ?

द्रव्यार्थिकनयावलम्बनात् नोपदिष्टं।

त्रिविधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्।

इतो विशेषः—ये केचित् षष्ठसप्तमगुणस्थानवर्तिनः साधवः भेदाभेदरत्नत्रयाराधनाबलेन निरन्तरं स्वशुद्धात्मानं चिन्तयंति त एवापगतवेदिनो भूत्वा एतान् कषायान् विजेतुं क्षमाः भवन्ति। तथैवोक्तं श्रीकुंदकुंददेवेन—

णाहं कोहो माणो, ण चेव माया ण होमि लोहो हं।
कत्ता ण हि कारइदा, अणुमंता णेव कत्तीणं[१]।।८१।।

णाहं कोहो माणो ण चेव माया ण लोहो हं होमि—अहं अनंतानुबन्ध्यप्रत्याख्यानप्रत्याख्यानसंज्वलन-चतुर्विधक्रोधकषायोदयेन क्रोधभावेन न परिणमामि। एतच्चतुर्विधमानकषायोदयेन मानरूपोऽपि न भवामि, चतुर्विधमायाकषायोदयेन मायापरिणामेनापि न विपरिणमामि, तथा च चतुर्विधलोभकषायोदयेन न च लोभभावमाददे। इमे सर्वे कषायोदयजनितभावा न च मे स्वभावाः, परनिमित्तोद्भवत्वात्। एतादृशा अन्येऽपि येऽसंख्यातलोकप्रमाणपरिणामास्ते सर्वेऽपि मत्तो भिन्ना एव। एषां भावानां ण हि कत्ता कारइदा कत्तीणं णेव अणुमंता—न खलु कर्ता न कारयिता कर्तृणां नैव अनुमंता भवामि कदाचिदपि।

अमून कषायान् विजेतुमुपायोऽपि श्रीकुंदकुंददेवेनैव कथितम्—

कोहं खमया माणं, समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं, जयदि खु ए चहुविहकसाए[२]।।११५।।

सूत्र में ऐसा क्यों नहीं कहा ?

द्रव्यार्थिकनय का अवलंबन लेने से नहीं कहा है। बंध के तीन भेद हैं, क्योंकि यह ध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं–जो कोई छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती साधुगण भेद-अभेद रत्नत्रय की भावना के बल से निरंतर अपनी शुद्ध आत्मा का चिंतवन करते रहते हैं वे ही साधु अपगतवेदी—वेदरहित होकर इन कषायों को जीतने में सक्षम होते हैं।

श्री कुंदकुंददेव ने यही बात नियमसार प्राभृतग्रंथ में कही है—

मैं क्रोध नहीं हूँ, मैं मान नहीं हूँ, न मैं माया हूँ और न मैं लोभ ही हूँ। न मैं इन क्रोधादि कषायों का कर्त्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न मैं इनके कषायों के करने वालों को अनुमति देने वाला हूँ।।८१।।

इसकी स्याद्वाद चंद्रिका टीका में लिखा है—

मैं अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन इन चारों प्रकार के क्रोध कषाय के उदय से क्रोध भाव से परिणमन नहीं करता हूँ। इन्हीं चार प्रकार के मान कषायों के उदय से मैं मानरूप भी नहीं होता हूँ। चार प्रकार की माया कषाय के उदय से मैं माया परिणाम से भी परिणमन नहीं करता हूँ और उसी प्रकार मैं चार प्रकार के लोभ कषाय के उदय से लोभभाव को भी धारण नहीं करता हूँ। ये सभी कषायों के उदय से होने वाले भाव मेरे स्वभाव नहीं हैं, क्योंकि ये परनिमित्त से उत्पन्न हुये हैं। इसी प्रकार के जो कोई अन्य भी असंख्यात लोकप्रमाण परिणाम हैं वे सभी मेरे से भिन्न ही हैं। इन कषायरूप भावों का न मैं कर्ता हूँ, न कराने वाला हूँ और न मैं कदाचित् भी अनुमोदना करने वाला ही हूँ।

इन कषायों को जीतने के उपाय भी श्री कुंदकुंददेव ने ही कहे हैं—

क्रोध को क्षमा से, मान को मार्दव भाव से, माया को आर्जव से—सरल परिणाम से और लोभ को

---

१. नियमसार प्राभृत अधिकार ५, गाथा ८१, पृ. १८८। २. नियमसार प्राभृत गाथा ११५, पृ. २६१।

एषा तु प्रारम्भिकावस्था कषायजयार्थं पश्चात् मुनयः स्वात्मनि स्थित्वा स्वात्मसुखमनुभवन्ति तदैव घातिकर्माणि निहत्य परमार्हन्त्यावस्थां लभन्ते इति तात्पर्यं ज्ञातव्यम्।

एवं द्वितीयस्थले अपगतवेदानां बंधकाबंधकनिरूपणत्वेन दश सूत्राणि गतानि।

**इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीय-
खण्डे गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां
वेदमार्गणानाम पंचमोऽधिकारः समाप्तः।**

संतोष से, इस प्रकार इन चारों कषायों को जीतना चाहिए।।११५।।

कषायों को जीतने के लिए यह प्रारंभिक अवस्था है, अनंतर महासाधुगण अपनी आत्मा में स्थित होकर अपनी आत्मा के सुख का अनुभव करते हैं, तभी वे घातिया कर्मों का नाश कर परम अर्हंत अवस्था को प्राप्त कर लेते हैं, यहाँ ऐसा तात्पर्य समझना चाहिये।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में अपगतवेदियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए ये दश सूत्र पूर्ण हुये हैं।

**इस प्रकार श्रीषट्खंडागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम वाले
इस तीसरे खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृतसिद्धांत-
चिंतामणिटीका में वेदमार्गणा नाम का यह
पाँचवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।**

अथ कषायमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

उपशान्ता मुनीन्द्राश्च, क्षपका अकषायिनः।
सर्वप्रत्ययशून्यास्तान्, सर्वानपि जिनान् स्तुमः।।१।।

अथ पंचस्थलैः एकोनविंशतिसूत्रैः बंधस्वामित्वविचये कषायमार्गणानाम षष्ठोऽधिकारः प्रारभ्यते। तदनु प्रथमस्थले क्रोधकषायसहितेषु बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''कसायाणुवादेण-'' इत्यादिना षट् सूत्राणि। ततः परं द्वितीयस्थले मानकषायिषु बंधाबंधकथनमुख्यत्वेन ''माणकसाईसु-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तदनंतरं तृतीयस्थले मायाकषायवत्सु बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''मायकसाईसु-'' इत्यादिसूत्रचतुष्टयं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले लोभकषायधारिषु बंधकाबंधनिरूपणत्वेन ''लोभकसाईसु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं पंचमस्थले कषायविरहितजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''अकसाईसु-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका भवति।

अधुना कोधकषायवतां ज्ञानावरणादिएकविंशतिप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

कसायाणुवादेण कोधकसाईसु पंचणाणावरणीय चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१८८।।

अथ कषाय मार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

कषायों के उपशमन से जो — उपशमश्रेणी में चढ़ते हुए ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती उपशान्त महामुनि हैं और कषायों को क्षय कर देने से क्षपक श्रेणी में चढ़कर बारहवें गुणस्थानवर्ती महामुनि एवं कषायों से रहित व सम्पूर्ण कर्म प्रत्ययों से रहित ऐसे जिनेन्द्र भगवन्तों की हम स्तुति करते हैं।।१।।

अब पाँच स्थलों द्वारा उन्नीस सूत्रों से 'बंधस्वामित्वविचय' कषाय मार्गणा का छठाअधिकार प्रारंभ किया जाता है। अब इसके अनंतर प्रथमस्थल क्रोधकषाय सहित में बंध और अबंध का निरूपण करने के लिए "कसायाणुवादेण–" इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। इसके बाद दूसरे स्थल में मानकषाय वाले जीवों में बंधक-अबंधक के कथन करने के लिए "माणकसाईसु–" इत्यादि चार सूत्र हैं। इसके आगे तीसरे स्थल में मायाकषाय वालों में "मायाकसाईसु–" इत्यादि चार सूत्र हैं। इसके पश्चात् चौथे स्थल में लोभ कषायधारियों में बंधक और अबंधकका निरूपण करने के लिए "लोभकसाईसु–" इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके बाद पाँचवें स्थल में कषायरहित महामुनियों के बंध के स्वामी का प्रतिपादन करने हेतु "अकसाईसु" इत्यादि दो सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका कही गई है।

अब क्रोधकषाय वालों के ज्ञानावरण आदि इक्कीस प्रकृतियों के बंधक और अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

कषायमार्गणानुसार क्रोधकषायी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, चार संज्वलन, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१८८।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठि त्ति उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१८९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचज्ञानावरणादिसूत्रकथितैकविंशतिप्रकृतीनां बंध उदयात्पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति परीक्षा नास्त्यत्र, उभय व्युच्छेदाभावात् त्रयाणां कषायाणां नियमेन उदयाभावाच्च। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-क्रोधसंज्वलन-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। सातावेदनीयस्य सर्वत्र स्वोदयपरोदयौ अध्रुवोदयत्वात्। यशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यन्तं, उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टेरारभ्य संयतासंयतपर्यन्तं इति स्वोदयपरोदयौ बंधौ भवतः। उपरि स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षप्रकृत्युदया-भावात्। त्रयाणां संज्वलनानां परोदयेन बंधः, क्रोधोदयप्रधानत्वात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। सातावेदनीयस्य मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति सान्तरो बंधः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेः बंधाभावात्। एवं यशःकीर्त्तेः वक्तव्यम्। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरो बंधः।

कथं निरन्तरः ?

असंख्यातवर्षायुष्क-तिर्यग्मनुष्येषु शुभलेश्यावत्सु संख्यातवर्षायुष्केषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के उपशमक और क्षपक तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक कोई नहीं हैं।।१८९।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—पाँच ज्ञानावरण आदि सूत्र में कथित इक्कीस प्रकृतियाँ हैं। इन प्रकृतियों का बंध उदय से पूर्व या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, इस प्रकार की परीक्षा यहाँ नहीं है क्योंकि इनके दोनों के व्युच्छेद का अभाव है तथा मानादिक तीन कषायों का नियम से यहाँ उदय भी नहीं है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, संज्वलन क्रोध और पाँच अंतराय, इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवोदयी हैं। सातावेदनीय का सर्वत्र स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवोदयी है। यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक तथा उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में इनका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। तीन संज्वलन कषायों का परोदय से बंध होता है क्योंकि यहाँ क्रोध के उदय की प्रधानता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, चार संज्वलन और पाँच अंतराय का निरंतर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। सातावेदनीय का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक सान्तर बंध होता है। आगे के गुणस्थानों में निरंतर बंध होता है क्योंकि वहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति में बंध का अभाव है। इसी प्रकार यशकीर्ति के विषय में भी कहना चाहिए। उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सांतर-निरंतर बंध होता है।

निरंतर बंध कैसे होता है ? क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच और मनुष्यों में तथा शुभ लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्कों में भी उसका निरंतर बंध पाया जाता है। आगे के गुणस्थानों में उसका निरंतर बंध होता है क्योंकि उन गुणस्थानों में उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टौ त्रिचत्वारिंशदुत्तरप्रत्ययाः, सासादने अष्टत्रिंशत्, द्वादशकषायाणां अभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ चतुस्त्रिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टौ सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः, नवनोकषायप्रत्ययाभावात्। संयतासंयतेषु एकत्रिंशत्प्रत्ययाः, षट्कषायाभावात्। प्रमत्तसंयतेषु एकविंशतिप्रत्ययाः, कषायत्रिकाभावात्। अप्रमत्तापूर्वकरणयोः एकोनविंशतिप्रत्ययाः, कषायत्रिकाभावात्। उपरि त्रयोदशादिं कृत्वा एकोनादिक्रमेण प्रत्ययाः ज्ञात्वा वक्तव्याः। शेषं सुगमं।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-चतुःसंज्वलन-पंचान्तरायाणि मिथ्यादृष्टयः चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनाः त्रिगतिसंयुक्तं, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तं अगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति। सातावेदनीय-यशःकीर्ती मिथ्यादृष्टि सासादनाः त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगत्या सह बंधाभावात्। उपरि ज्ञानावरणसदृशभंगः। उच्चगोत्रं मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानवर्तिनः देवमनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, अन्यगतिभिः सह बंधविरोधात्। उपरिमा देवगति संयुक्तं अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्तिनः अगतिसंयुक्तं बध्नन्ति।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। द्विगतिसंयतासंयताः। अवशेषाः मनुष्याः, अन्यत्र तेषामनुपलंभात्। बंधाध्वानं सुगमं। बंधविनाशो नास्ति, बंधोपलंभात्। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। उपरिमगुणस्थानेषु त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में तेतालीस और सासादन गुणस्थान में अड़तीस उत्तरप्रत्यय हैं क्योंकि बारह कषायों का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में यथाक्रम से चौंतीस और सैंतीस उत्तरप्रत्यय हैं क्योंकि यहाँ अप्रत्याख्यानावरण आदि तीनों प्रकार की नौ कषाय प्रत्ययों का अभाव है। संयतासंयतों में इकतीस उत्तरप्रत्यय हैं क्योंकि उनमें प्रत्याख्यानावरण मान आदि छह कषायों का अभाव है। प्रमत्तसंयतों में इक्कीस प्रत्यय हैं क्योंकि उनमें संज्वलन मान आदि तीन कषायों का अभाव है। अप्रमत्त और अपूर्वकरण संयतों के उन्नीस प्रत्यय हैं क्योंकि यहाँ भी उक्त तीन कषायों का अभाव है। ऊपर तेरह को आदि लेकर एक कम, दो कम इत्यादि क्रम से प्रत्ययों को जानकर कहना चाहिए। शेष प्रत्ययप्ररूपणा सुगम है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, चार संज्वलन और पाँच अंतराय को मिथ्यादृष्टि चार गतियों से संयुक्त, सासादनसम्यग्दृष्टि नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा उपरिम जीव देवगति से संयुक्त और गतिसंयोग से रहित होकर बाँधते हैं। सातावेदनीय और यशकीर्ति को मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तीन गतियों से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ इनके बंध का अभाव है। उपरिम गुणस्थानों में ज्ञानावरण के समान प्ररूपणा है। उच्चगोत्र को मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देव व मनुष्यगति से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि अन्य गतियों के साथ उसके बंध का विरोध है। उपरिम जीव देवगति से संयुक्त तथा अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती अगतिसंयुक्त बांधते हैं।

उक्त प्रकृतियों के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं। शेष गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में गुणस्थान नहीं पाए जाते। बंधाध्वान सुगम है। बंधविनाश है नहीं, क्योंकि उनका बंध पाया जाता है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

द्विस्थानिकादीनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

बेट्ठाणी ओघं।।१९०।।

जाव पच्चक्खाणावरणीयमोघं ।।१९१।।

पुरिसवेदे ओघं।।१९२।।

हस्स-रदि-जाव तित्थयरे त्ति ओघं।।१९३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यक्त्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां कर्मणां द्विस्थानिकसंज्ञा वर्तते, द्वयोर्गुणस्थानयोस्तिष्ठन्ति इति व्युत्पत्तेः। एतासां प्ररूपणा ओघतुल्या, विशेषाभावात्। तद्यथा — अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादने तदुभयाभावदर्शनात्। स्त्यानगृद्धित्रिकस्य पूर्वं बंधः पश्चादुयो व्युच्छिद्यते, क्रमेण सासादने बंधव्युच्छित्तिः प्रमत्तसंयते उदयव्युच्छित्तिश्च दृश्यते।**

तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-उद्योत-नीचगोत्राणामेवं चैव। नवरि संयतसंयते उदयव्युच्छित्तिः भवति। एवं स्त्रीवेदस्यापि। नवरि अनिवृत्तिकरणे तदुच्छेदो भवति। चतुःसंस्थान-अप्रशस्तविहायोगति-दुःस्वराणामेवमेव। नवरि अत्रोदयव्युच्छेदो नास्ति। चतुःसंहनननानां एवमेव। नवरि अप्रमत्तसंयतानां द्वितीयतृतीय-संहननयोरूदय-

---

अब द्विस्थानिक आदि के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

द्विस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१९०।।

प्रत्याख्यानावरणीय तक सब प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१९१।।

पुरुषवेद की प्ररूपणा ओघ के समान है।।१९२।।

हास्य व रति से लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।१९३।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — स्त्यानगृद्धित्रय, अनंतानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यगायु, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, इन प्रकृतियों की द्विस्थानिक संज्ञा है क्योंकि ''ये दो गुणस्थानों में रहते हैं इसलिए द्विस्थानिक हैं'' ऐसी इनकी व्युत्पत्ति है। इनकी प्ररूपणा ओघ के समान है क्योंकि इनमें कोई भेद नहीं है। वह इस प्रकार है — अनंतानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि सासादन गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। स्त्यानगृद्धित्रय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और प्रमत्तसंयत गुणस्थानों में क्रम से बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है।

तिर्यगायु, तिर्यग्गति, उद्योत और नीचगोत्र की भी प्ररूपणा इसी प्रकार ही है। विशेषता केवल इतनी है कि संयतासंयत गुणस्थान में उनका उदयव्युच्छेद होता है। इसी प्रकार स्त्रीवेद की भी प्ररूपणा है। विशेष इतना है कि अनिवृत्तिकरण गुणस्थान में उसके उदय का व्युच्छेद होता है। चार संस्थान, अप्रशस्तविहायोगति और दुस्वर की प्ररूपणा भी इसी प्रकार की ही है। विशेष इतना है कि यहाँ उनका व्युच्छेद नहीं है। चार संहननों की प्ररूपणा भी इसी प्रकार ही है। विशेष इतना है कि अप्रमत्तसंयतों में द्वितीय और तृतीय संहनन का उदयव्युच्छेद होता है। चतुर्थ और पंचम संहनन का उदय व्युच्छेद नहीं है क्योंकि उपशांतकषायों में उनके

व्युच्छेदः। चतुर्थपंचमयोर्नास्ति उदयव्युच्छेदः, उपशान्तकषायेषु तदुच्छेददर्शनात्। तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-दुर्भग-अनादेयानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, सासादन-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः क्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्।

अनंतानुबंधिक्रोधस्य स्वोदयो बंधः। त्रयाणां कषायाणां परोदयः, तेषामत्रोदयाभावात्। अवशेषप्रकृतीनां स्वोदयपरोदयौ उभयथाऽपि बंधविरोधाभावात्। स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्त-विहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां बंध सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां द्वयोरपि गुणस्थानयोः सान्तरनिरन्तरो बंधः, तेजोवायुकायिकयोः सप्तपृथिवीनारकेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः सन्ति।

तिर्यगायुः-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतानि तिर्यग्गतिसंयुक्तं बध्नन्ति। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानि मिथ्यादृष्टयश्चतुर्गतिसंयुक्तं, सासादनाः त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, नरकगत्या सह बंधाभावात्। स्त्रीवेदं त्रिगतिसंयुक्तं, नरकगत्या सह बंधो नास्ति। चतुःसंस्थान-चतुःसंहननानि तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति। अन्यगतिभिः सार्धं बंधाभावात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि त्रिगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, देवगत्या सह बंधाभावात्। सासादनाः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नन्ति, एतेषामन्यगतिभ्यां सह विरोधात्।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादनाः स्वामिनः। उपरि सुगमं, बहुशः प्ररूपितत्वात्।

यावत्प्रत्याख्यानावरणीयमोघं।

उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, दुर्भग और अनादेय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध व उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

अनंतानुबंधी क्रोध का स्वोदय बंध होता है। तीन कषायों का परोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ उनके उदय का अभाव है। शेष प्रकृतियों का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी उनके बंध का कोई विरोध नहीं है। स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का दोनों ही गुणस्थानों में सान्तर-निरंतर बंध होता है क्योंकि तेजस्कायिक व वायुकायिक तथा सप्तम पृथिवी के नारकियों में निरंतर बंध पाया जाता है। शेष प्रकृतियों में बंध निरंतर होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं।

तिर्यगायु, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत को तिर्यग्गति से संयुक्त बाँधते हैं। स्त्यानगृद्धित्रय और अनंतानुबन्धिचतुष्क को मिथ्यादृष्टि जीव चार गतिसंयुक्त बाँधते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव तीन गति संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ बंध का अभाव है। स्त्रीवेद को तीन गतियों से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि नरकगति के साथ उसके बंध का अभाव है। चार संस्थान और चार संहननों को तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि अन्य गतियों के साथ उनके बंध का अभाव है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र को तीन गतियों से संयुक्त बाँधते हैं क्योंकि देवगति के साथ इनके बंध का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि इन्हें तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बाँधता है क्योंकि उसके अन्य गतियों के साथ बंध का विरोध है। चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। उपरिम प्ररूपणा सुगम है क्योंकि वह बहुत बार कही जा चुकी है।

यहाँ प्रत्याख्यानावरणीय तक सब प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।

द्विस्थानिकदण्डकं प्ररूप्य पश्चाद् येनेदं सूत्रं प्ररूपितं तेन निद्रादण्डकमादिं कृत्वेति अर्थापत्तेरवगम्यते। निद्रा-असाता-एकस्थानिक-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानदण्डकानां प्ररूपणा ओघवत् वर्तते। सा विचार्यात्र वक्तव्या भवति।

'पुरुषवेदे ओघमिति' सूत्रे एषः पुरुषवेदनिर्देशः येन देशामर्शकस्तेन पुरुषवेददण्डक-मानदण्डक-मायादण्डक-लोभदण्डकानां ग्रहणं भवति। यथ एतेषां दण्डकानामोघे प्ररूपणा कृता तथात्रापि कर्तव्या। नवरि प्रत्ययविशेषो ज्ञातव्यः।

हास्य-रतिसूत्रमादिं कृत्वा तीर्थकरसूत्रमिति तावदेतेषां सूत्राणां ओघप्ररूपणामवहार्य प्ररूपयितव्या।

इतो विस्तरः—यद्यपि शास्त्रे पंचेन्द्रियाणां विषयास्तथैव चत्वारश्च कषायाः प्राणिणां संसारवर्धनपराः सन्ति चर्तुगतिषु भ्रामयन्ति संततं, तथापि क्रोधकषायेन तु महती हानिर्दृश्यते जीवानां वसिष्ठमुनिचरकंसवत्। तद्यथा—

गोवर्द्धनगिरौ उपवासे स्थितं वशिष्ठमुनिमवलोक्य उग्रसेननृपतिना स्वनगर्यां घोषणा कारिता। अहो नागरिका! यूयं वशिष्ठमुनेः प्रतिग्रहणं मां कुरुत, अहमेवास्मै आहारं दास्यामि। पुनश्चाग्रे त्रिवारं कैश्चिन्निमित्तैराहारं न दातुं अशक्नोत्। त्रिमासोपवासानन्तरं अयं वशिष्ठमुनिः कयाचित्-वृद्धया वृत्तातं एतज्ज्ञात्वा तमुग्रसेनं मारयितुं निदानमकरोत्। संक्लेशपरिणामेन मृत्वा च तस्यैवोग्रसेनस्य राज्यः रेवत्या गर्भे समागतः। अयमेव कंसो भूत्वा स्वपितुः कष्टं अदात् अनन्तरं श्रीकृष्णनारायणेन हतः दुर्गतिं च गतः।

द्विस्थानिकदण्डक की प्ररूपणा करके पीछे चूँकि इस सूत्र की प्ररूपणा की गई है अतएव निद्रादण्डक को आदि करके यह अर्थापत्ति से जाना जाता है। निद्रा, असातावेदनीय, एकस्थानिक, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान दण्डकों की प्ररूपणा ओघ के समान है। उसको भी विचार कर यहाँ कहना चाहिए।

पुरुषवेद में ओघ के समान है। सूत्र में यह पुरुषवेद पद का निर्देश चूँकि देशामर्शक है अतः इससे पुरुषवेददण्डक, मानदण्डक, मायादण्डक और लोभदण्डक का ग्रहण करना चाहिए। जिस प्रकार इन दण्डकों की ओघ प्ररूपणा की गई है उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। विशेष इतना है कि प्रत्ययभेद जानना चाहिए।

हास्य-रति सूत्र को आदि करके तीर्थंकर सूत्र तक इन सूत्रों की ओघप्ररूपणा का निश्चय कर प्ररूपणा करना चाहिए।

यहाँ कुछ विस्तार करते हैं—यद्यपि शास्त्रों में पाँच इंद्रियों के विषय हैं उसी प्रकार चार कषायें प्राणियों के संसार की वृद्धि कराने वाली हैं ये हमेशा चारों गतियों में भ्रमण कराती हैं, फिर भी क्रोध कषाय से तो जीवों के महान हानि देखी जाती है, जैसे कि वसिष्ठ मुनि के जीव कंस से हानि हुई। उसे कहते हैं—

गोवर्द्धन पर्वत पर उपवास में स्थित वशिष्ठ मुनि को देखकर राजा उग्रसेन ने अपने नगर में घोषणा करा दी।

हे नागरिकों! आप लोग इन वशिष्ठ मुनिराज को देखकर पड़गाहन नहीं करना, मैं ही इन्हें आहार देऊँगा। पुनः आगे वे राजा तीन बार किन्हीं निमित्तों से आहार नहीं दे सके। तीन माह के उपवास के अनंतर इन वशिष्ठ मुनि ने किसी वृद्धा महिला से ऐसा वृत्तांत जानकर उस राजा उग्रसेन को मारने का निदान कर लिया। पुनः संक्लेश परिणाम से मरण करके उन्हीं उग्रसेन राजा की रेवती रानी के गर्भ में आ गया। यही कंस नाम से प्रसिद्ध होकर अपने पिता को कष्ट देने वाला हुआ है। अनंतर श्री कृष्ण द्वारा मारा गया और दुर्गति में चला गया।

एवं विधानेकक्रोधकषायाविष्टजनानां दुर्गतिं ज्ञात्वा अनंतानुबंधिक्रोधं परिहृत्य प्रतिशोधभावनां त्यक्त्वा शनैः-शनैः अयं क्रोधशत्रुः निर्मूलतः उन्मूलयितव्यः।

एवं कषायाधिकारे प्रथमस्थले क्रोधकषायेषु स्थितानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन षट् सूत्राणि गतानि।

अधुना मानकषायवतां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

माणकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-तिण्णिसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१९४।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियिट्टि उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१९५।।

वेट्ठाणि जवा पुरिसवेद-कोधसंजलणाणमोघं।।१९६।।

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं।।१९७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**प्रथमगुणस्थानादारभ्य नवमगुणस्थानस्यकतिपयभागपर्यन्तमेवास्य मानकषायस्य बंधो भवति न चाग्रे। अतएव कषायेषु अबंधका न भवन्ति, सकषायिषु बंधस्यावश्यंभावित्वात्।**

इस प्रकार के अनेक क्रोध कषायों से आविष्टजनों की दुर्गति को जानकर अनंतानुबंधी क्रोध कषाय को छोड़कर प्रतिशोध—बदला लेने की भावना को त्याग कर शनैः-शनैः इस क्रोध शत्रु का जड़मूल से उन्मूलन करना चाहिए।

इस प्रकार कषाय मार्गणा में प्रथम स्थल में क्रोध कषायों में स्थित जीवों के बंधस्वामित्व को कहने वाले ऐसे छह सूत्र पूर्ण हुए।

अब मान कषाय वाले जीवों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मानकषायी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, तीन संज्वलन, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१९४।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणगुणस्थानवर्ती उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१९५।।

द्विस्थानिक प्रकृतियों को लेकर पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।१९६।।

हास्य व रति से लेकर तीर्थंकर तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।१९७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—प्रथमगुणस्थान से प्रारंभ करके नवमें गुणस्थान के कुछ भाग तक ही मान कषाय का बंध होता है, आगे नहीं है। इसलिये कषायों में अबंधक नहीं होते हैं क्योंकि कषाय सहित जीवों में बंध अवश्यंभावी है।

कश्चिदाह—उपर्युक्तविंशतिप्रकृतिभिः सह संज्वलनक्रोधं किन्न प्ररूपितम् ? आचार्यः परिहरति—न, मानसंज्वलनबंधात्पूर्वमेव क्रोधसंज्वलनस्य बंधो व्युच्छिन्नः, अतो मानादिभिः सह बंधाध्वानं प्रति तस्य प्रत्त्यासत्तेरभावात् ततस्तस्य प्ररूपणात्र न कृता।

अस्य सूत्रस्य प्ररूपणा क्रोधवत् कर्तव्या। विशेषेण—मानस्य बंधस्वोदयः, अन्येषां कषायाणां परोदयः। प्रत्ययेषु मानकषायं मुक्त्वा शेषकषाया अपनेतव्याः। शेषं ज्ञात्वा वक्तव्यम्।

द्विस्थानिकमिति कथिते द्विस्थानिक-असाता-निद्रा-मिथ्यात्व-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानदण्डका गृहीतव्याः देशामर्शकत्वात्। सूत्रे पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनयोरित्युक्ते तस्यैकस्यैव सूत्रस्य ग्रहणं कर्तव्यं। एतेषां सूत्राणामोघप्ररूपणां निश्चित्य व्याख्यानं कर्तव्यम्।

हास्य-रतिप्रकृतिभ्यां यावत् तीर्थकरपर्यन्तं ओघवत्प्ररूपणा गृहीतव्या, बहुशः प्ररूपितत्वात्।

इतो विशेषः—स्वात्मनः स्वाभिमानं गौरवं त्यक्त्वायं बहिरात्मा जात्यादिषु अष्टविधेषु मानं—गर्वं विदधाति ततश्च निंद्यकुयोनिषु भ्रान्त्वा-भ्रान्त्वा नानावमानं सहते, अनादिकालादनन्तकालपर्यन्तं। अयमेवात्मा यदान्तरात्मा भवति तदानीं अनंतानुबंधिमानं विहाय क्रमशः चारित्रबलेन सर्वानपि मानकषायान् निहन्तुं शक्नोति, अतः 'मानो मनागपि हतिं महतीं करोति' इति निश्चित्य स्वात्मतत्त्वस्याचिन्त्यवैभवं चिन्तनीयं

कोई प्रश्न करता है—

यहाँ इन प्रकृतियों के साथ संज्वलन क्रोध की प्ररूपणा क्यों नहीं की गई है ?

अब आचार्यदेव उत्तर देते हैं—

नहीं, क्योंकि संज्वलनमान के बंध से संज्वलन क्रोध का बंध पूर्व में ही व्युच्छिन्न हो जाता है अतएव मानादिकों के साथ बंधाध्वान के प्रति उसकी प्रत्यासत्ति का अभाव है। इसी कारण उसकी प्ररूपणा यहाँ नहीं की गई है।

इस सूत्र की प्ररूपणा क्रोध के समान है। विशेष इतना है कि मान का स्वोदय और अन्य कषायों का परोदय बंध होता है। प्रत्ययों में मानकषाय को छोड़कर शेष कषायों को कम करना चाहिए। शेष प्ररूपणा जानकर कहना चाहिए।

'द्विस्थानिक' ऐसा कहने पर द्विस्थानिक, असातावेदनीय, निद्रा, मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण दण्डकों का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यह देशामर्शक पद है। पुरुषवेद व संज्वलनक्रोध, ऐसा कहने पर उस एक ही सूत्र का ग्रहण करना चाहिए। इन सूत्रों की ओघप्ररूपणा का निश्चय कर व्याख्यान करना चाहिए।

हास्य व रति से लेकर तीर्थंकर तक ओघ के समान प्ररूपणा करना चाहिए। क्योंकि इसके अर्थ की बहुत बार प्ररूपणा की जा चुकी है।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—अपनी आत्मा के स्वाभिमान को—गौरव को छोड़कर यह बहिरात्मा प्राणी जाति, कुल, रूप आदि आठ प्रकार के मान को—गर्व को करता है उसके फलस्वरूप निंद्य कुयोनियों में भ्रमण कर-करके नाना प्रकार के अपमान को सहन करता है यह अपमान अनादिकाल से लेकर अनंतों काल तक आज तक सहन करता आ रहा है। यही आत्मा जब अंतरात्मा हो जाता है तब अनंतानुबंधी मान को छोड़कर क्रम से चारित्र के बल से संपूर्ण भी मान कषायों को नष्ट करने में समर्थ हो जाता है अतएव 'किंचित् भी मान महान हानि को करने वाला है' ऐसा निश्चय करके आप लोगों को अपने आत्मतत्त्व के अचिन्त्य वैभव

निरन्तरं भवद्भिरिति।

एवं द्वितीयस्थले मानकषायवतां बंधाबंधकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतम्।

संप्रति मायाकषायवतां बंधस्वामित्वनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

मायकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-दोण्णि-संजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।१९८।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।१९९।।

बेट्ठाणि जाव माणसंजलणे त्ति ओघं।।२००।।

हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं।।२०१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **उपर्युक्तैकोनविंशतिप्रकृतिबंधका मायाकषायबंधव्युच्छित्तेः पूर्वमेव। अस्य मायाकषायस्य बंधव्युच्छित्तेरनन्तरं क्षपकाणां महामुनीनां पुनर्बंधो नास्ति। उपशामकानां च उपरितनगुणस्थानादवतीर्यमाणानां सकषायभागात् पुनरपि बंध प्रारभ्यते किन्तु अत्र उपरिगुणस्थानापेक्षया अबंधका सन्ति नीचैरवतीर्यमाणापेक्षया पुनरपि बंधका भवन्तीति ज्ञातव्यं।**

का निरंतर चिंतवन करते रहना चाहिए।

इस प्रकार द्वितीय स्थल में मानकषाय वालों के बंध-अबंध के कथन रूप से चार सूत्र पूर्ण हुए।

अब माया कषाय वाले जीवों के बंधस्वामित्व का निरूपण करते हुए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मायाकषायी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, दो संज्वलन, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।१९८।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।१९९।।

द्विस्थानिक प्रकृतियों को लेकर संज्वलन मान तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।२००।।

हास्य व रति से लेकर तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।२०१।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका — ऊपर कही गई उन्नीस प्रकृतियों के बंधक मायाकषाय की बंधव्युच्छित्ति के पहले ही होते हैं। इस मायाकषाय की बंधव्युच्छित्ति के अनंतर क्षपक महामुनियों के पुनः बंध नहीं है। उपशामक मुनियों के ऊपर के गुणस्थान से उतरने वालों के सकषायभाग से पुनःभी बंध शुरू हो जाता है किन्तु यहाँ ऊपर के गुणस्थान की अपेक्षा से अबंधक हैं, नीचे उतरने वाले गुणस्थान की अपेक्षा से पुनः बंधक हो जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

द्विस्थानिक-निद्रा-असाता-एकस्थानिक-अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान-पुरुषवेद-क्रोध-मानसूत्राणां प्ररूपणा गुणस्थानवत् कर्तव्या।

इतो विशेषः—

''माया तैर्यग्योनस्य[१]'' ''इति सूत्रकथितप्रकारेण मायाकषायनिमित्तेन तिर्यक्कुयोनिषु जन्म भवति, अनंतानुबंधिमाया तु अनंतानन्तसंसारसमुद्रे निमज्जयति, अतएव श्री गुणभद्रसूरिणा कथितं—

भेयं मायामहागर्तान्मिथ्याघनमोमयात्।
यस्मिन् लीना न लक्ष्यन्ते क्रोधादिविषमाहयः।।[२]

श्रीरविषेणाचार्येण[१] उक्तं—

गुणनिधिनाम्ना महामुनिः दुर्गगिरेर्मूर्ध्नि चतुराहारान् त्यक्त्वा चतुर्णांमासानां वर्षायोगं जग्राह। तदानीं तस्य स्तुतिः सुरासुरैरपि कृता। अनंतरं चारणर्द्धिरयं मुनिः वर्षायोगं निष्ठाप्य आकाशमार्गेण उत्पपात। तदानीमेव मृदुमतिनामा एको मुनिराहारार्थं आलोकनगरं समाययौ। तदा राजा सह पौरलोकः एतं दृष्ट्वा 'शैलाग्रे स्थितः सुरासुरपूजितो यः सोऽयमिति' ज्ञात्वा विशेषभक्तितः बहुप्रकारैः भक्ष्यैस्तस्मै आहारं दत्वा तं पूजयामास। जिह्वेन्द्रियरतोऽयमपि मनसि मायां भेजे।

पौरलोकेन कथितः—'यः पर्वतस्याग्रे यतिनाथः स्थितः त्रिदशैरपि वंदितः सत्वमेव।' एतच्छ्रुत्वापि स मौनमादाय शिरः अनमयत्। कालान्तरे कालं कृत्वासौ स्वर्गंगतः। तत आयुर्व्यतीत्य पुण्यराशिपरिक्षये च्युत्वा

द्विस्थानिक, निद्रा, असाता, एकस्थानिक, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान, पुरुषवेद, क्रोध, मान सूत्रों की ओघप्ररूपणा का निश्चय कर गुणस्थान के समान प्ररूपणा करना चाहिए।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—

श्री उमास्वामी आचार्य ने कहा है—माया तिर्यंचयोनि के आस्रव का कारण है। इस सूत्र कथित प्रकार से समझना कि माया कषाय के निमित्त से तिर्यंच—कुयोनियों में जन्म होता है, यह अनंतानुबंधी माया अनंत-अनंत संसार में डुबो देती है, इसीलिये श्री गुणभद्रस्वामी ने कहा है—

मिथ्यात्वरूपी घोर अंधकार से व्याप्त माया रूपी महान गड्ढे में गिरने से उतरना चाहिए। जिसमें छिपे हुये क्रोध आदि विषय सर्व नहीं दिख पाते हैं।

पद्मपुराण में श्री रविषेणाचार्य ने कहा है—

गुणनिधि नाम से प्रसिद्ध एक महामुनि ने दुर्गगिरि के ऊपर चार प्रकार के आहार का त्याग करके चार माह का वर्षायोग ले लिया। तब उस समय उन मुनि की स्तुति देवों ने और असुरों ने भी की। अनंतर चारण ऋद्धिधारी ये मुनि वर्षायोग को समाप्त करके आकाशमार्ग से चल गये। उसी समय मृदुमति नाम के एक मुनि आहार के लिए उसी नगर में आ गये। तब राजा ने और पुरुवासी लोगों ने इन मुनि को देखकर ''पर्वत के ऊपर विराजे हुए और देवों-असुरों से पूजित जो मुनि हैं वे ही ये हैं।'' ऐसा जानकर विशेष भक्ति से बहुत प्रकार के भोजन से उन्हें आहार देकर उनकी पूजा की। जिह्वा इंद्रिय के आधीन इन मुनि ने भी मायाचारी की। नगर निवासी लोगों ने कहा—

'जो पर्वत की चोटी पर स्थित इंद्रों से भी वंदित मुनिनाथ थे, वे आप ही हैं।' ऐसा सुनकर भी उन मुनि ने मौन लेकर सिर के इशारे से स्वीकार कर लिया। कालांतर में वे मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में गये। वहाँ की आयु

---

१. तत्त्वार्थसूत्र अ. ६, सूत्र १६। २. आत्मानुशासन।

मायावशेषकर्माक्तः मृदुमतिचरः जम्बूद्वीपेऽत्र निकुंजनाम्नि पर्वते शल्लकीवने जीमूतसदृशो गजराजो बभूव। कस्मिन् काले रावणो विद्याधराधिपः इमं हस्तिनं वशीकृत्य स्वलंकायां नीत्वा तस्य त्रिलोककण्टकमिति नाम चकार।

आचार्यदेवो ब्रवीति—

अज्ञानादभिमानेन दुःखबीजमुपार्जितम्।
स्वादगौरवसक्तेन तेनेदं स्वस्य वञ्चनम्।।१४५।।
एतत्तेन गुरोरग्रे न मायाशल्यमुद्धृतं।
दुःखभाजनतां येन संप्राप्तः परमामिमाम्[१]।।१४६।।

इत्थंभूतान् नानाविधमायाकषायसंजनितान् दोषान् ज्ञात्वा संसारदुःखाद् भीत्वा स्वर्गापवर्गसुखमिच्छद्भिः अस्माभिः मायाकषायः परिहर्तव्यः।

एवं तृतीयस्थले मायाकषायसहितानां बंधाबंधकथनत्वेन सूत्रचतुष्टयं गतं।

अधुना लोभकषायवतां बंधाबंधव्यवस्थापनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

लोभकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सासावेदणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२०२।।

पूर्ण कर पुण्यसमूह के क्षय हो जाने पर वे स्वर्ग से च्युत होकर—मायाचारी के अवशेष पाप से सहित वे मृदुमति मुनि के जीव वहाँ से मरण प्राप्त कर इस जम्बूद्वीप में निकुंज नाम के पर्वत पर शल्लकी वन में मेघ के सदृश काले ऐसे हाथी हो गये। किसी समय विद्याधरों के राजा रावण ने इस हाथी को वश में करके अपनी लंका नगरी में ले जाकर इसका 'त्रिलोककंटक' यह नाम रखा था।

श्री आचार्यदेव कहते हैं—

इस प्रकार भोजन के स्वाद में लीन मृदुमति मुनि ने अज्ञान से और अभिमान से दुःख के बीजस्वरूप इस आत्मवंचना रूप माया का उपार्जन किया। पुनः उन्होंने गुरु के आगे अपनी यह मायाशल्य नहीं निकाली इसलिये वे इस परमदुःख की पात्रता को प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार से नानाविध इन माया कषाय से उत्पन्न होने वाले दोषों को जान करके संसार के दुःख से डरकर स्वर्ग और मोक्ष की इच्छा रखने वाले ऐसे हम और आप सभी को इस माया कषाय का त्याग कर देना चाहिए।

इस प्रकार तीसरे स्थल में माया कषाय से सहित जीवों के बंधक और अबंधक के कथन करने रूप से चार सूत्र हुये हैं।

अब लोभ कषाय वाले जीवों के बंधक-अबंधक की व्यवस्था बतलाने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

लोभकषायी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अंतराय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२०२।।

---

१. पद्मपुराण पर्व ८५, भाग ३, पृ. १४६।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२०३।।

सेसं जाव तित्थयरे त्ति ओघं।।२०४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचज्ञानावरणादि सप्तदशप्रकृतीनां मिथ्यादृष्ट्यादिसूक्ष्मसांपरायगुणस्थानपर्यन्ताः बंधकाः सन्ति उपशमश्रेण्यारोहकाः क्षपकाश्च। तथैव एकेन्द्रियादारभ्य सर्वे संसारिणः बंधका एव, केवलं उपशान्तकषायाः क्षीणकषायाः सयोगिनोऽयोगिनश्च न बध्नन्ति।**

इतो विशेषः—ये केचित् सम्यग्दृष्टयोऽव्रतिनो देशव्रतिनो महाव्रतिनो वा विषयकषायदोषान् परित्यक्तुं इच्छन्ति स्वात्मतत्त्वमनुभवन्तः सन्तः निजातींद्रियसुखं प्राप्तुं पुरुषार्थं कुर्वन्ति त एव परंपरया निजशुद्धात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुचरणरूपाभेदरत्नत्रयं संप्राप्य निजपरमात्मतत्त्वलुब्धकाः अपि सांसारिकसुखशरीरादिषु लोभं परिहृत्य सिद्धिकान्तापतयो भविष्यन्तीति विज्ञाय प्राक् गृहधनकुटुम्बादिषु लोभो त्यक्तव्यः पश्चात् शरीरेऽपि आसक्तिं त्यक्त्वा भेदाभेदरत्नत्रयमेवाराधनीयं भवति।

एवं चतुर्थस्थले लोभकषायवतां बंधाबंधकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति कषायरहितानां बंधव्यवस्थाकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अकसाईसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२०५।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं, ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२०३।।

तीर्थंकर प्रकृति तक शेष प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२०४।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—पाँच ज्ञानावरण आदि सत्रह प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि आदि से लेकर सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यंत बंधक होते हैं, इसमें उपशमश्रेणी में आरोहण करने वाले उपशामक और क्षपक भी हैं। उसी प्रकार से एकेन्द्रिय से आरंभ करके सभी संसारी प्राणी बंधक ही हैं, मात्र इनमें से आगे के महामुनि उपशांतकषाय गुणस्थान वाले, क्षीणकषाय वाले और भगवान सयोगिकेवली और अयोगिकेवली बंध करने वाले नहीं हैं।

यहाँ कुछ विशेष कहते हैं—जो कोई अव्रती सम्यग्दृष्टि, देशव्रती अथवा महाव्रती विषय कषाय दोषों को छोड़ने की इच्छा करते हैं तथा स्वात्मतत्त्व का अनुभव करते हुए अपने अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं वे ही परंपरा से निज शुद्ध आत्मतत्त्व का सम्यक् श्रद्धान, ज्ञान और उसमें अनुचरण—स्थिरतारूप अभेदरत्नत्रय को प्राप्त करके निज परमात्मतत्त्व के लोभी होते हुये भी सांसारिक सुख, शरीर आदि से लोभ का परिहार करके सिद्धिकांता के पति हो जावेंगे, ऐसा जानकर पहले घर, धन, कुटुंब आदि में लोभ का त्याग करना चाहिए पश्चात् शरीर में भी आसक्ति को छोड़कर भेद-अभेद रत्नत्रय की ही आराधना करने योग्य है।

इस प्रकार चतुर्थस्थल में लोभकषाय वाले जीवों के बंध-अबंध के कथनरूप से तीन सूत्र पूर्ण हुये।

अब कषायरहित जीवों की बंधव्यवस्था को कहने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

अकषायी जीवों में सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२०५।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था खीणकसायवीदरागछदुमत्था सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२०६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रयोरर्थः सुगमोऽस्ति। सातावेदनीयस्य पूर्वं सयोगिकेवलिनि बंधव्युच्छित्तिर्जायते पश्चादयोगिकेवलिनि उदयस्य व्युच्छित्तिर्दृश्यते। अस्य स्वोदयपरोदयौ बंधो भवतः उभयथापि बंधस्याविरोधात्। निरन्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्। उपशान्तकषाय-क्षीणकषाययोर्नव योगप्रत्ययाः, मिथ्यात्वाविरतिकषायाणामभावात्। सयोगिनि भगवति सप्त। अगतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्याः स्वामिनः। साद्यध्रुवौ बंधः अध्रुवबंधित्वात्।

विशेषतयोच्यते—

स्वात्मनामहितकरा विषयाः कषायाश्चैव, तद्विपरीतेन्द्रियनिरोधकषाय-जयैरेव जीवानां हितो भवति।

तथैवोक्तं—''शमदमनिलयं स्तौमि शान्तिं शरण्यम्[१]।''

तीर्थंकरभगवान् कषाय-इन्द्रिविषयविरहितः शमदमनिलयो भवति ईदृगेव शान्तिनाथस्तीर्थंकरः भव्यानां शरणदाने कुशलः शरण्यः कथ्यते। एतज्ज्ञात्वा यथा स्यात्तथा प्रशमसंवेगानुकम्पास्तिक्यगुणैः सम्यग्दर्शनशुद्धिं परिपालयन् सम्यग्ज्ञानबलेन स्वात्मतत्त्वं भावयन् सम्यकचारित्रानुष्ठानेन स्वात्मनि तिष्ठन् सन् चाकषायवतां

उपशांतकषाय वीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थ और सयोगिकेवली बंधक हैं। सयोगिकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२०६।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। सातावेदनीय की सयोगी केवली भगवंतों के पहले बंधव्युच्छित्ति होती है, पश्चात् अयोगी केवली भगवान में उदय की व्युच्छित्ति होती है। इनका स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से बंध का विरोध नहीं है। निरंतर बंध है क्योंकि प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। उपशांतकषाय और क्षीणकषाय मुनियों के नव योग प्रत्यय हैं क्योंकि मिथ्यात्व, अविरति और कषाय इन तीन हेतुओं का इनके अभाव है। सयोगिकेवली भगवान में सात प्रत्यय हैं। इनका अगति संयुक्त बंध है। मनुष्य ही स्वामी हैं। इनका सादि और ध्रुव बंध है क्योंकि ये अध्रुवबंधी हैं।

अब विशेष कहते हैं—

अपनी आत्मा के अहित करने वाले विषय और कषाय ही हैं। उनसे विपरीत इंद्रिय निरोध और कषायों के जीतने से ही जीवों का हित होता है।

कहा भी है—शम और दम के स्थानस्वरूप जगत के लिए शरणभूत ऐसे शांतिनाथ भगवान की मैं स्तुति करता हूँ।

तीर्थंकर भगवान कषाय और इंद्रिय के विषयों से रहित हैं अत: वे शम और दम के स्थान हैं। इन गुणों से विशिष्ट ही तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान भव्यों को शरण देने में कुशल होने से 'शरण्य' कहलाते हैं। ऐसा

---

१. चौबीस तीर्थंकर भक्ति।

भक्तिमपि प्रकुर्वन् संसारस्थितिर्हापनीया भवति।

एवं पंचमस्थले अकषायवतां महामुनीनां बंधाबंधकप्रतिपादनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

इति श्रीमत्षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचये गणिनीज्ञानमतीकृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां कषाय-मार्गणानामषष्ठोऽधिकारः समाप्तः।

जानकर जैसे बने वैसे प्रशम, संवेग, अनुकंपा और आस्तिक्य गुणों से सम्यग्दर्शन की शुद्धि को प्राप्त करते हुए सम्यग्ज्ञान के बल से स्वात्मतत्त्व की भावना करते हुए और सम्यक्चारित्र के अनुष्ठान से अपनी आत्मा में स्थिर रहते हुए तथा कषायरहित ऐसे भगवन्तों की भक्ति को करते हुए संसार की स्थिति को घटाते रहना चाहिए।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में अकषायी महामुनियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के तीसरे खण्ड में बंधस्वामित्व-विचय नाम के ग्रंथ में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्त-चिंतामणि टीका में कषायमार्गणा नाम का यह छठा अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ ज्ञानमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

यस्त्र्यज्ञानचतुर्ज्ञानैः, शून्याः कैवल्यज्ञानिनः।
कर्मप्रत्ययनिर्मुक्ता, अर्हन्तस्तान्नुमः सदा।।१।।

अथ स्थलचतुष्टयेनाष्टदशसूत्रैः ''बंधस्वामित्वविचये'' ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले कुमतिकुश्रुतकुअवधिज्ञानिनां बंधाबंधनिरूपणाय ''णाणाणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले मतिश्रुतावधिज्ञानिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनमुख्यत्वेन'' आभिणिबोहिय-'' इत्यादिना सूत्रषट्कं। तदनंतरं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिनां बंधकाबंधककथनमुख्यत्वेन ''मणपज्जव-'' इत्यादिसूत्रसप्तकं। तत्पश्चात् चतुर्थस्थले केवलज्ञानिनां बंधव्यवस्थानिरूपणत्वेन ''केवलणाणीसु'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति समुदायपातनिका भवति।

अधुना मत्यज्ञान्यादित्रिविधाज्ञानिनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु पंचज्ञानावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-सोलसकसाय-अट्ठणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-देवाउ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-

---

ज्ञानमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो तीन अज्ञान व चार ज्ञानों से शून्य केवलज्ञानी हैं, कर्मों के कारणों से रहित अर्हंतदेव हैं, उन भगवन्तों को हम नमस्कार करते हैं।।१।।

अब चार स्थलों से अट्ठारह सूत्रों द्वारा ''बंधस्वामित्वविचय'' में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार प्रारंभ करते हैं—उसमें प्रथम स्थल में कुमति, कुश्रुत और कुअवधिज्ञानियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए ''णाणाणुवादेण-'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में मति-श्रुत-अवधिज्ञानियों के बंधस्वामित्व के प्रतिपादन की मुख्यता से ''आभिणिबोहिय-'' इत्यादि छह सूत्र कहेंगे। इसके बाद तीसरे स्थल में मनःपर्ययज्ञानियों के बंधक-अबंधक के कथन की मुख्यता से ''मणपज्जव-'' इत्यादि सात सूत्र कहेंगे। इसके पश्चात् चौथे स्थल में केवलज्ञानी भगवन्तों के बंध की व्यवस्था का निरूपण करने हेतु ''केवलणाणीसु-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका कही गई है।

अब मति अज्ञानी आदि तीन प्रकार के अज्ञानियों के बंधक-अंबधक का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

ज्ञानमार्गणा के अनुसार मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति,

वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-पंचसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलघुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोव-दोविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२०७।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२०८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका–अत्रोदयात् पूर्वं बंधः पश्चाद्वा व्युच्छिद्यते इति विचारो नास्ति, एतासां प्रकृतीनां बंधोदयव्युच्छेदाभावात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पञ्चान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। देवत्रिक-वैक्रियिकांगोपांगानां परोदयो बंधः, एतासां बंधोदययोरक्रमेण उक्तिविरोधात्। पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-अष्टनोकषाय-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिक-औदारिकद्विक-पंचसंस्थान-पंचसंहनन-उपघात-परघात-उच्छ्वास-उद्योत-द्विविहायोगति-प्रत्येकशरीर-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-नीचोच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधः, द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां बंधविरोधाभावात्। पंचेन्द्रिय-त्रस-बादर-

---

औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक व वैक्रियिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गति, मनुष्यगति व देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीच व ऊँच गोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२०७।।

मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२०८।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि इन प्रकृतियों के बंध व उदय के व्युच्छेद का यहाँ अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है। क्योंकि ये ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है, क्योंकि इन प्रकृतियों के बंध व उदय के एक साथ होने का विरोध है। पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, पाँच संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, तिर्यग्गति व मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, प्रत्येक शरीर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति नीचगोत्र और उच्चगोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों ही प्रकारों से उनके बंध होने में कोई विरोध नहीं है। पंचेन्द्रियजाति, त्रस, बादर

पर्याप्तानां मतिश्रुताज्ञानिषु मिथ्यादृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ बंधः। सासादनसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयश्चैव एतासां प्रतिपक्षप्रकृतीनां तत्रोदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यदेवायुः-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयिकबंधानुपलंभात्। सातासात-पंचनोकषाय-पंचसंस्थान-पंचसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेनापि एतासां बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेदस्य सान्तरनिरंतरौ।

कुतो निरन्तरः ?

पद्म-शुक्ललेश्यावत्तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु पुरुषवेदस्य निरन्तरबंधोपलंभात्।

मनुष्यगतिद्विकस्य सान्तरनिरन्तरौ बंधः।

भवतु सान्तरः, कुतः निरन्तरः ?

न, शुक्ललेश्यिकमिथ्यादृष्टि-सासादनदेवानां निरन्तरबंध उपलभ्यते।

औदारिकद्विकस्य सान्तरनिरन्तरौ।

कथं निरन्तरः ?

न, नारकेषु सनत्कुमारादिदेवेषु च निरन्तरबंधः उपलभ्यते।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-पंचेन्द्रियजाति-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां सान्तरनिरन्तरौ बंधौ भवतः।

और पर्याप्त का मति व श्रुत अज्ञानी मिथ्यादृष्टियों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। सासादन सम्यग्दृष्टियों में स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का वहाँ उदयाभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि इनका एक समयिक बंध नहीं पाया जाता। साता व असाता वेदनीय, पाँच नोकषाय, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद का सान्तर निरन्तर बंध होता है।

शंका — निरन्तर बंध कैसे संभव है ?

समाधान — क्योंकि पद्म और शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों में पुरुषवेद का निरन्तर बंध पाया जाता है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका — इनका सान्तर बंध भले ही हो, पर निरन्तर बंध कैसे संभव है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि शुक्ल लेश्या वाले मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि देवों के निरन्तर बंध पाया जाता है।

औदारिक शरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका — निरन्तर बंध कैसे होता है ?

समाधान — नहीं, क्योंकि नारकियों तथा सनत्कुमारादि देवों में निरन्तर बंध पाया जाता है।

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक शरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, प्रशस्तविहायोगति,

कथं निरन्तरः ?

न, असंख्यातवर्षायुष्कतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिषु तेजःपद्मशुक्ललेश्यावत्संख्यातवर्षायुष्क तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टिसासादनेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टौ बंधौ सान्तरनिरन्तरौ।

कथं निरन्तरः ?

देवनारकेषु असंख्यातवर्षायुष्कतिर्यग्मनुष्येषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादनसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, तत्र प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्, परघात-उच्छ्वासबंधविरोधि-अपर्याप्तस्य बंधाभावाच्च।

तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणामपि बंधौ सान्तरनिरन्तरौ भवतः।

कथं निरन्तरः ?

न, तेजोवायुकायिकमिथ्यादृष्टिषु सप्तमपृथिवीगतमिथ्यादृष्टिसासादनेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः ओघप्रत्ययेभ्यो भेदाभावात्। तिर्यग्गतित्रिक-उद्योतानां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्यत्रिकस्य मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। देवायुः देवगत्यानुपूर्विप्रकृत्योः देवगतिसंयुक्तो बंधः। औदारिकद्विक-पंचसंस्थान-पंचसंहनननानां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः, अन्यगतिभ्यां बंधविरोधात्। विशेषेण— समचतुरस्रसंस्थानस्य त्रिगतिसंयुक्तः नरकगत्या सहाभावात्। वैक्रियिकद्विकस्य मिथ्यादृष्टौ देवगतिनरक-गतिसंयुक्तः, सासादने देवगतिसंयुक्तः। सातावेदनीय-स्त्री-पुरुष-हास्य-रति-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-

---

सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है। निरन्तर बंध कैसे होता है ? नहीं, क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों तथा तेज, पद्म व शुक्ल लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों में निरन्तर बंध पाया जाता है। परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध होता है। निरन्तर बंध कैसे होता है ? क्योंकि, देव, नारकियों और असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच व मनुष्यों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टियों में निरन्तर बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है तथा परघात और उच्छ्वास के बंध के विरोधी अपर्याप्त के भी बंध का अभाव है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का भी बंध सान्तर-निरन्तर होता है। निरन्तर बंध कैसे होता है ? नहीं, क्योंकि तेज व वायुकायिक मिथ्यादृष्टियों तथा सप्तम पृथिवी के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में निरन्तर बंध पाया जाता है।

प्रत्यय सुगम है क्योंकि ओघप्रत्ययों के यहाँ कोई भेद नहीं है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देवायु और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का देवगति से संयुक्त बंध होता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संस्थान और पाँच संहनन का तिर्यंच व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि, अन्य गतियों के साथ उनके बंध का विरोध है। विशेष इतना है कि, समचतुरस्रसंस्थान का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि नरकगति के साथ उनके बंध का अभाव है। वैक्रियिक शरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में देवगति व नरकगति से संयुक्त तथा सासादन गुणस्थान में देवगति से संयुक्त बंध होता है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि नरकगति के साथ इनके

सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्तीणां त्रिगतिसंयुक्तो बंधः, नरकगत्या सहाभावात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां त्रिगतिसंयुक्तो बंधः, देवगत्या सहाभावात्। नवरि सासादने तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। उच्चगोत्रस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तः, अन्यगतिभ्यां सार्धं विरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-असातावेदनीय-षोडशकषाय-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मण-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्गतिसंयुक्तो बंधः। सासादने त्रिगतिसंयुक्तः, नरकगत्या सहाभावात्।

देवत्रिक-वैक्रियिकद्विकानां बंधस्य तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। अवशेषाणां चतुगर्तिकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति, 'अबंधा णत्थि' इति सूत्रोद्दिष्टत्वात्।

ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। सासादने त्रिविधः, ध्रुवत्वाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्। एवमेषा मतिश्रुताज्ञानिनोः प्ररूपणा कृता।

विभंगज्ञानिनामपि एवमेव वक्तव्यम् विशेषाभावात्। नवरि उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां स्वोदयो बंधः, अपर्याप्तकाले विभंगज्ञानाभावात्। त्रसबादरपर्याप्तानां मिथ्यादृष्टौ स्वोदयो बंधः, स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्तेषु विभंगज्ञानाभावात्। तिसृणामानुपूर्विप्रकृतीनां बंधः परोदयः, अपर्याप्तकाले विभंगज्ञानाभावात्।

प्रत्ययेषु विभंगज्ञानिनां औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाः अपनेतव्याः, विभंगज्ञानस्या-

---

बंध का अभाव है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि देवगति के साथ उसके बंध का अभाव है। विशेषता इतनी है कि सासादन गुणस्थान में तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। उच्चगोत्र का देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि अन्य गतियों के साथ उसके बंध का विरोध है। पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, असातावेदनीय, सोलह कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चतुर्गति संयुक्त बंध होता है। सासादन में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि नरकगति के साथ इस गुणस्थान में उनके बंध का अभाव है।

देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के बंध के तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के चारों गतियों के जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम हैं। बंधव्युच्छेद है नहीं, क्योंकि वह 'अबंधक नहीं है' इस प्रकार सूत्रोक्त ही है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का होता है। सासादन गुणस्थान में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं। इस प्रकार यह मति-श्रुत अज्ञानियों की प्ररूपणा की गई है।

विभंगज्ञानियों के भी इसी प्रकार कहना चाहिए, क्योंकि मति-श्रुत अज्ञानियों से इनके कोई विशेषता नहीं है। भेद केवल इतना है कि उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर इनका स्वोदय बंध होता है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में विभंगज्ञान का अभाव है। त्रस, बादर और पर्याप्त का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में स्वोदय बंध होता है, क्योंकि स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्तक जीवों में विभंगज्ञान का अभाव है। तीन आनुपूर्वी नामकर्मों का बंध परोदय होता है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में विभंगज्ञान का अभाव है। प्रत्ययों में विभंगज्ञानियों में औदारिकमिश्र, वैक्रियिक मिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए, क्योंकि विभंगज्ञान का अपर्याप्त

पर्याप्तकालेन सह विरोधात्। अन्योऽपि यद्यस्ति भेदः सः स्मृत्वा वक्तव्यः।

इतो विशेषः—कुमतिकुश्रुतज्ञानिनो जीवाः एकेन्द्रियादारभ्यासंज्ञिपंचेन्द्रियपर्यन्ताः भवन्त्येव। संज्ञिपंचेन्द्रियेषु नारकेषु मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्गुणस्थानयोरेव। पंचेन्द्रियतिर्यक्ष्वपि एतयोर्द्वयोर्गुणस्थानयोः। मनुष्येषु एवमेव। देवानामपि नवग्रैवेयकपर्यन्तेषु देवेषु एतयोर्द्वयोर्गुणस्थानयोः भवन्ति।

विभंगज्ञानिनश्चतुर्गतिष्वपि संभवन्ति, तिर्यक्षु संज्ञिष्वेव नासंज्ञिषु। एतत्सर्वं ज्ञात्वा 'वयं सम्यग्दृष्टयः' नेमानि त्रीण्यपि अज्ञानानि अस्मत्सु कदाचिदपि संभविष्यन्तीति निश्चित्य 'सम्यग्दर्शनात् न कदाचिदपि च्युता भवामः' इति भावना भावयितव्या भवति, किं च ज्ञानानां फलं सौख्यमच्युतं भवति।

उक्तं तथैव श्रीपूज्यपादाचार्येण—

एवमभिष्टुवतो मे, ज्ञानानि समस्तलोकचक्षूंषि।
लघु भवताज्ज्ञानर्द्धि,-र्ज्ञानफलं सौख्यमच्यवनम्[१]।।३०।।

संप्रति एकस्थानिकप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रमवतार्यते —

एक्कट्ठाणी ओघं।।२०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**याः प्रकृतयः एकस्मिन्नेव मिथ्यात्वगुणस्थाने बध्नन्ति तासामेकस्थानिकसंज्ञा कथ्यते। तथाहि—**

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-नरकायुः-नरकगति-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय जाति-हुंडकसंस्थान-

---

काल के साथ विरोध है और भी यदि कोई भेद है, तो उसको स्मरण कर कहना चाहिए।

यहाँ विशेष कहते हैं—कुमतिज्ञानी और कुश्रुतज्ञानी जीव एकेन्द्रिय से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्यंत हैं ही हैं। संज्ञीपंचेन्द्रियों में नरकों में नारकी जीव मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों में कुमति, कुश्रुतज्ञानी ही हैं। पंचेन्द्रियतिर्यंचों में भी इन्हीं दोनों गुणस्थानों में ये अज्ञानी ही हैं। मनुष्यों में भी इन दोनों गुणस्थानों में ये दोनों अज्ञान हैं। नव ग्रैवेयक पर्यंत देवों में भी देवों के इन दो गुणस्थानों में ये दोनों अज्ञान हैं ही हैं।

विभंगज्ञानी चारों गतियों में भी संभव हैं। तिर्यंचों में संज्ञी जीवों में ही विभंगज्ञानी हैं, असंज्ञियों में नहीं हैं। ये सब जान करके—"हम सम्यग्दृष्टी हैं" ये तीनों भी अज्ञान हमारे में कदाचित् भी संभव नहीं हैं, ऐसा निश्चय करके 'सम्यग्दर्शन से हम कभी भी च्युत नहीं होवें' ऐसी भावना भाते रहना चाहिए, क्योंकि ज्ञान का फल अच्युत सुख है।

श्रुतभक्ति में श्री पूज्यपादस्वामी ने यही बात कही है—

संपूर्ण लोक को देखने वाले नेत्रस्वरूप इन पाँचों ज्ञानों की स्तुति करते हुए मुझे शीघ्र 'ज्ञानऋद्धि' प्राप्त होवे, क्योंकि ज्ञान का फल कभी च्युत—नष्ट नहीं होने वाला ऐसा अच्युत—अक्षय सुख ही है।

अब एकस्थानिक प्रकृतियों के बंध के स्वामित्व को कहने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२०९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जो प्रकृतियाँ एक ही मिथ्यात्व गुणस्थान में बंधती हैं, उनको एकस्थानिक संज्ञा है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, नरकायु, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रियजाति, हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, नारकानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण, इनकी एकस्थानिक

---

१. श्रुतभक्ति।

असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-नरकगत्यानुपूर्वि-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानामेकस्थानिकसंज्ञा, एकस्मिन् चैव मिथ्यादृष्टिगुणस्थाने बंधस्वरूपेणावस्थानात्। एतासां प्ररूपणा ओघतुल्या।

विशेषेण—विभंगज्ञानिषु एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारण-नरकानुपूर्विणां परोदयो बंधः, एतेषु विभंगज्ञानिनामभावात्। शेषं सुगमं।

एवं प्रथमस्थले त्रिविधाज्ञानिनां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतं।

संप्रति मतिश्रुतावधिज्ञानिनां ज्ञानावरणादिषोडशप्रकृतीनां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२१०।।

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतानि त्रीण्यपि ज्ञानानि असंयतसम्यग्दृष्टिभ्य आरभ्य द्वादशमगुणस्थानपर्यन्तं भवन्ति। उपरितनकथितषोडशप्रकृतयः दशमगुणस्थानादुपरि न बध्यन्ते।**

एतासामुदयात्पूर्वं बंधो व्युच्छिन्नः, बंधे व्युच्छिन्ने सत्यपि पश्चादुदयदर्शनात्। पंचज्ञानावरणीय-

---

संज्ञा है क्योंकि एक ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में इनका बंधस्वरूप से अवस्थान है। इनकी प्ररूपणा ओघ के समान है। विशेषता यह है कि विभंगज्ञानियों में एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण और नारकानुपूर्वी का परोदय बंध होता है, क्योंकि इनमें विभंगज्ञानी जीवों का अभाव है। शेष प्ररूपणा सुगम है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में तीन प्रकार के अज्ञानियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब मति-श्रुत-अवधिज्ञानियों के सोलह प्रकृतियों के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आभिनिबोधिक, श्रुत और अवधिज्ञानी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२१०।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशम व क्षपक तक बंधक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक काल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२११।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—ये तीन ज्ञान असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर बारहवें गुणस्थान तक होते हैं। ऊपर में कही हुई प्रकृतियाँ दशवें गुणस्थान से ऊपर नहीं बंधती हैं। इन प्रकृतियों का बंध उदय से पूर्व में ही व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि बंध के व्युच्छिन्न हो जाने पर भी पीछे इनका उदय देखा जाता है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है। यशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टि

चतुर्दर्शनावरणीय-पञ्चांतरायाणां स्वोदयो बंधः। यशःकीर्तेः असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयपरोदयौ, प्रतिपक्षस्योदयो दृश्यते। उपरि स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। उच्चगोत्रस्यासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतयोः स्वोदयोपरोदयौ, प्रतिक्षप्रकृतेरुदयदर्शनात्। उपरि स्वोदयश्चैव।

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र बंधोपरमाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानादारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यंतं यशःकीर्तेः बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्ष-प्रकृतेर्बंधाभावोऽस्ति।

प्रत्ययाः सुगमाः। असंयतसम्यग्दृष्टीनां देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरिमेषु देवगतिसंयुक्तः, कुत्रापि-देवगतिबंधव्युच्छित्त्यनन्तरं दशमगुणस्थानेषु पर्यंतं अगतिसंयुक्तो बंधो भवति।

चतुर्गति-असंयतसम्यग्दृष्टयः, द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः। उपरिमा मनुष्याश्चैव।

बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं।

ध्रुवबंधिनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवत्वाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति निद्रा-प्रचलयोः बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

णिद्दा य पलया य ओघं।।२१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अस्मिन् सूत्रेऽपि ''असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्'' इति भणितव्यं। किंच — ओघे मिथ्यादृष्टिप्रभृति इति कथितमस्ति अतएव एष विशेषो ज्ञातव्यः, संज्ञानस्याधस्तनगुणस्थानेष्वभावात्। एतावांश्चैव विशेषः, नास्त्यन्यत्र कश्चिदिति।**

गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति का उदय देखा जाता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि, यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है। उच्चगोत्र का असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि, यहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति का उदय देखा जाता है। ऊपर उसका स्वोदय ही बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है, क्योंकि यहाँ इनके बंधविश्राम का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक यशकीर्ति का बंध सान्तर होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है, क्योंकि वहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं, असंयतसम्यग्दृष्टियों के देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। उपरिम जीवों के देवगति से संयुक्त बंध होता है और कहीं भी देवगति की बंधव्युच्छित्ति के बाद के दसवें तक के गुणस्थान में अगति संयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि और दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंध व्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब निद्रा-प्रचला के बंधक-अबंधक का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

निद्रा और प्रचला की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — विशेषता यहाँ यह है कि इस सूत्र में ''असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर'' कहना चाहिए, क्योंकि ओघ में ''मिथ्यादृष्टि से लेकर'' ऐसा कहा गया है, परन्तु यहाँ ''असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर'' कहना चाहिए क्योंकि, अधस्तन गुणस्थानों में सम्यग्ज्ञान का अभाव है। इतना ही यहाँ विशेष है,

सातावेदनीयबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२१३।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सातावेदनीयस्य बंध उदयात्पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, अत्र मतिश्रुतावधिज्ञानेषु बंधोदययोर्व्युच्छेदाभावात्। अस्य बंधोदयव्युच्छित्तिः क्रमेण सयोग्ययोगिकेवलिनोर्भवति तत्र एतेषां त्रिज्ञानानामभावात्।**

स्वोदयपरोदयौ बंधौ स्तः, अध्रुवोदयत्वात्। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। असंयतसम्यग्दृष्टयो देवमनुष्यगतिसंयुक्तं, उपरिमा देवगतिसंयुक्तमगतिसंयुक्तं च बध्नन्ति स्वाभाविकात्।

चतुर्गति-असंयतसम्यग्दृष्टयो द्विगतिसंयतासंयताश्च स्वामिनः। उपरि मनुष्याश्चैव।

बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदोऽत्र नास्ति 'अबंधा णत्थि' इति सूत्रोद्दिष्टत्वात्। साद्यध्रुवौ बंधः अध्रुवबंधित्वात्।

शेषप्रकृतिबंधाबंधव्यवस्थापनाय सूत्रमवतार्यते —

अन्यत्र कहीं भी और कुछ विशेषता नहीं है।

अब सातावेदनीय के बंधक-अबंधक का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२१३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सातावेदनीय का बंध उदय से पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है, क्योंकि यहाँ उसके बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है। इस सातावेदनीय की बंध और उदय की व्युच्छित्ति क्रम से सयोगिकेवली व अयोगिकेवली के होती है। वहाँ उनके इन तीनों ज्ञानों का अभाव है। स्वोदय-परोदय बंध होता है। क्योंकि, वह अध्रुवोदयी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक उसका बंध सान्तर होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है। क्योंकि वहाँ उसकी प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि जीव देव व मनुष्यगति से संयुक्त बांधते हैं, उपरिम जीव देवगति से संयुक्त और गतिसंयुक्त न होकर बांधते हैं, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि और दो गतियों के संयतासंयत जीव स्वामी हैं। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम हैं। बंधव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि वह 'अबंधक नहीं है' इस प्रकार सूत्र में ही निर्दिष्ट है। सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

अब शेष प्रकृतियों के बंध-अबंध की व्यवस्था को बतलाने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि त्ति भणिदव्वं।।२१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतस्यार्थो यद्यपि सुगमस्तर्ह्यपि संज्ञानपक्षपातेनाक्षिप्तः सूरिः मन्दबुद्धिजनानुग्रहार्थं च पुनरपि प्ररूप्यते—**

असातावेदनीयस्य पूर्वं बंधो व्युच्छिन्नः। उदयव्युच्छेदो नास्ति, केवलज्ञानीष्वपि तदुदयदर्शनात्। एवमस्थिराशुभयोरपि। अरतिशोकयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिन्नः, प्रमत्तापूर्वयोः बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। अयशःकीर्तेः पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिन्नः, प्रमत्तासंयतसम्यग्दृष्ट्योः बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। असातावेदनीय-अरति शोकानां बंधः स्वोदय-परोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। अस्थिराशुभयोः स्वोदयः, ध्रुवोदयत्वात्। अयशःकीर्त्तेः असंयतसम्यग्दृष्टौ बंधः स्वोदयपरोदयौ। उपरि परोदयश्चैव। एतासां प्रकृतीनां सर्वासां अपि बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। प्रत्ययाः सुगमाः। असंयतसम्यग्दृष्टौ सर्वप्रकृतीनां द्विगतिसंयुक्तः, उपरिमाणां देवगतिसंयुक्तो बंधः।

चतुर्गतिकासंयतसम्यग्दृष्टयः, द्विगतिसंयतासंयताः, मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति बंधाध्वानं। प्रमत्तसंयते बंधव्युच्छेदः। एतासां बंधः साद्यध्रुवौ।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वर्जर्षभवज्रनाराचसंहननप्रकृतय एकस्मिन् असंयतसम्यग्दृष्टि-गुणस्थाने बध्यन्ते इति एतासामत्रैकस्थानसंज्ञा। अत्राप्रत्याख्यानचतुष्क-मनुष्यगति-

---

सूत्रार्थ—

शेष प्ररूपणा तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान है। विशेषता केवल इतनी है कि 'असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर' ऐसा कहना चाहिए।।२१५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र का अर्थ यद्यपि सुगम है तो भी सम्यग्ज्ञान के पक्षपात से आक्षिप्तचित्त होकर अर्थात् आकृष्ट होकर और मंदबुद्धि जनों के अनुग्रहार्थ आचार्यवर्य फिर से भी प्ररूपणा करते हैं—असातावेदनीय का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है। उदयव्युच्छेद उसका नहीं है, क्योंकि, केवलज्ञानियों में भी उसका उदय देखा जाता है। इसी प्रकार अस्थिर और अशुभ के विषय में भी कहना चाहिए। अरति व शोक का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है, अयशकीर्ति का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। असातावेदनीय, अरति और शोक का बंध स्वोदय-परोदय होता है, क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। अस्थिर और अशुभ का स्वोदय बंध होता है, क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। अयशकीर्ति का बंध असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय होता है। आगे उसका परोदय ही बंध होता है। इन सब ही प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है, क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय सुगम हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सब प्रकृतियों का दो गतियों से संयुक्त होकर तथा उपरिम जीवों के देवगति से संयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक बंधाध्वान है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंधव्युच्छेद होता है। इन प्रकृतियों का बंध सादि और अध्रुव होता है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, ये प्रकृतियाँ एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंधती हैं अतएव इनकी यहाँ

प्रायोग्यानुपूर्वीणां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, असंयतसम्यग्दृष्टिं मुक्त्वोपरि बंधोदयानुपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनामत्र क्षायोपशमिकज्ञानमार्गणायां बंधव्युच्छेद एव, उदयव्युच्छेदो नास्ति, केवलज्ञानिष्वपि उदयदर्शनात्। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। मनुष्यगतिद्विकौदारिकद्विक-वज्रर्षभसंहनननानां बंधः परोदयः, सम्यग्दृष्टिषु एतासां स्वोदयेन बंधस्य विरोधात्। निरन्तरो बंधः, असंयतसम्यग्दृष्टौ एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। विशेषेण — मनुष्यगतिद्विकौदारिकद्विक-वज्रवृषभनाराचशरीरसंहनननानां असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिककाय- तन्मिश्रकाययोगो न स्तः, तिर्यग्मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टिषु एतासां बंधाभावात्।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। अन्यासां प्रकृतीनां मनुष्यगतिसंयुक्तः, अन्यगतिभिः सह विरोधात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य चतुर्गति-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां देवनारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थाने बहुगुणस्थानजनिताध्वानविरोधात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ बंधो व्युच्छिद्यते। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्कमत्र द्विस्थानिकासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतद्विगुणस्थानयोरेव बंधोपलंभात्। बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, संयतासंयतगुणस्थाने तदुभयावदर्शनात्। स्वोदयपरोदयौ बंधौ, ध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरो बंधो, ध्रुवबंधित्वात्।

एकस्थान संज्ञा है। यहाँ अप्रत्याख्यानचतुष्क और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान को छोड़कर उपरिम गुणस्थानों में इनका बंध और उदय नहीं पाया जाता। शेष प्रकृतियों का यहाँ क्षायोपशमिक ज्ञानमार्गणा में बन्धव्युच्छेद ही है, उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि केवलज्ञानियों में भी उनका उदय देखा जाता है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध स्वोदय-परोदय होता है, क्योंकि वह अध्रुवोदयी है। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन का परोदय बंध होता है, सम्यग्दृष्टि के इन प्रकृतियों का स्वोदय से बंध विरुद्ध है। इनका निरंतर बंध है, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में एक समय से बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेषता इतनी है कि मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन शरीर के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिक और औदारिकमिश्र काययोग प्रत्यय नहीं है, क्योंकि तिर्यंच और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियों में इनके बंध का अभाव है।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा अन्य प्रकृतियों का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि अन्य गतियों के साथ इनके बंध का विरोध है। अप्रत्याख्यानचतुष्क के चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान नहीं है, क्योंकि एक गुणस्थान में बहुत गुणस्थानजनित अध्वान का विरोध है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंधव्युच्छिन्न होता है। अप्रत्याख्यानचतुष्क का तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि उसके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क यहाँ द्विस्थानिक है, क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत इन दो गुणस्थानों में ही उसका बंध पाया जाता है। बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि संयतासंयत गुणस्थान में उन दोनों का अभाव देखा जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि वह ध्रुवोदयी हैं। निरन्तर बंध

प्रत्ययाः सुगमाः।

असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः, संयतासंयतेषु देवगतिसंयुक्तः।

चतुर्गत्यसंयतसम्यग्दृष्टयः द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः।

असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्संयतासंयत इति बंधाध्वानं। संयतासंयते बंधो व्युच्छिद्यते। द्वयोरपि गुणस्थानयोः त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्।

पुरुषवेद-चतुःसंज्वलन-हास्य-रति-भय-जुगुप्सानां स्वोदयपरोदयौ बंधौ। सान्तर-निरन्तर-प्रत्यय-गतिसंयोग-स्वामित्व-अध्वान-बंधविकल्पान् ज्ञात्वा वक्तव्याः।

मनुष्यायुषः पूर्वापरकालसंबंधिबंधोदयपरीक्षा सुगमा। परोदयो बंधो, मनुष्यायुषो बंधोदययोर-संयतसम्यग्दृष्टौ अक्रमेण वृत्तिविरोधात्। निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिक-तन्मिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानामभावात्।

मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। देवनारकाः स्वामिनः। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थानेऽध्वानविरोधात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

देवायुषः पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिद्यते, अप्रमत्तासंयतसम्यग्दृष्ट्योः बंधोदय व्युच्छेदोपलंभात्। परोदयः स्वोदयेन बंधविरोधात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्तेन बिना बंधोपरमाभावात्। प्रत्यया ओघतुल्याः। देवगतिसंयुक्तो बंधः। तिर्यग्मनुष्यासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयता मनुष्यसंयताश्च स्वामिनः, अन्यत्र बंधो नोपलभ्यते। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावदप्रमत्तसंयता इति बंधाध्वानं। अप्रमत्तकालस्य संख्यातभागं गत्वा

होता है, क्योंकि वह ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सुगम हैं। असंयतसम्यग्दृष्टियों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा संयतासंयतों में देवगति से संयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि और दो गति के संयतासंयत स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर संयतासंयत तक बंधाध्वान है। संयतासंयत गुणस्थान में बंध व्युच्छिन्न होता है। दोनों ही गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि ध्रुव बंध का अभाव है। पुरुषवेद, चार संज्वलन, हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का स्वोदय-परोदय बंध होता है। सान्तर-निरन्तरता, प्रत्यय, गतिसंयोग, स्वामित्व, अध्वान और बंधविकल्प, इनको जानकर कहना चाहिए।

मनुष्यायु के पूर्वापर काल संबंधी बंध और उदय के व्युच्छेद की परीक्षा सुगम है। परोदय बंध होता है, क्योंकि मनुष्यायु के बंध और उदय के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में एक साथ अस्तित्व का विरोध है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है। बयालीस प्रत्यय हैं, क्योंकि औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान नहीं है, क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में बंध व्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

देवायु का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि अप्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। परोदय बंध होता है, क्योंकि स्वोदय से उसके बंध का विरोध है। निरन्तर बंध होता है, क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय ओघ के समान हैं। देवगति से संयुक्त बंध होता है। तिर्यंच व मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तथा मनुष्यसंयत स्वामी हैं, क्योंकि अन्य गतियों में उसका बंध पाया नहीं जाता। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधाध्वान है। अप्रमत्तसंयतकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है।

बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

देवगति-गत्यानुपूर्वि-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकांगोपांग-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माणनामकर्माण्युच्यन्ते—देवगति-गत्यानुपूर्वि-वैक्रियिक-द्विकानां पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिद्यते, अपूर्वकरणे बंधव्युच्छित्तिरसंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छित्तिर्भवति। अवशेषत्रयोविंशतिप्रकृतीनामत्रोदयव्युच्छेदो नास्ति, बंधव्युच्छेदश्चैव, केवलज्ञानिषु उदयव्युच्छेदोपलंभात्।

देवगति-वैक्रियिकद्विकानां सर्वगुणस्थानेषु परोदयो बंधः, एतासामुदयबंधयोरक्रमेण वृत्तिविरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माणानां स्वोदयो बंधः। समचतुरस्रसंस्थान-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणामसंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयपरोदयौ बंधौ। उपरिमेषु गुणस्थानेषु स्वोदयश्चैव, तेषामपर्याप्तकालेऽभावात्। नवरि समचतुरस्रसंस्थानस्य सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयपरोदयौ बंधौ। प्रशस्तविहायोगति-सुस्वरयोः सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयपरोदयौ बंधौ। सुभग-आदेययोरसंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदय-परोदयौ। उपरि स्वोदय एव, प्रतिपक्षोदयाभावात्।

स्थिर-शुभयोरसंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयता इति सान्तरो बंधः। उपरि निरन्तरः। अवशेषाणां प्रकृतीनां सर्वगुणस्थानेषु बंधो निरन्तरः, यतः प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधो न भवति।

देवगति-वैक्रियिकद्विकानां वैक्रियिक-तन्मिश्रप्रत्ययौ असंयतसम्यग्दृष्टिगुणस्थानादपनेतव्यौ। शेषप्रकृतीनां

सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और निर्माण नामकर्मों की प्ररूपणा करते हैं—देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि, अपूर्वकरण और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः उनके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। शेष तेईस प्रकृतियों का यहाँ व्युच्छेद नहीं है, केवल बंधव्युच्छेद ही है, क्योंकि केवलज्ञानियों में उनका उदयव्युच्छेद पाया जाता है।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का सब गुणस्थानों में परोदय बंध होता है, क्योंकि इनके उदय और बंध के एक साथ रहने का विरोध है। पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और निर्माण का स्वोदय बंध होता है। समचतुरस्रसंस्थान, उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। उपरिम गुणस्थानों में उनका स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि उनके अपर्याप्तकाल का अभाव है। विशेष इतना है कि समचतुरस्रसंस्थान का सब गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का सब गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। सुभग और आदेय का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि वहाँ उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है।

स्थिर और शुभ का असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक एक सान्तर बंध होत है। ऊपर निरन्तर बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सब गुणस्थानों में निरन्तर बंध होता है, क्योंकि, उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोग प्रत्ययों के असंयतसम्यग्दृष्टि

प्रत्यया ओघतुल्याः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां बंधः सर्वगुणस्थानेषु देवगतिसंयुक्तः। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः असंयतसम्यग्दृष्टौ देवगति-मनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरिमगुणस्थानेषु देवगतिसंयुक्तः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां द्विगतिकासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयता मनुष्यगतिसंयताः स्वामिनः। शेषाणां प्रकृतीनां चतुर्गतिकासंयतसम्यग्दृष्टिजीवा द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावदपूर्वकरणा इति बंधाध्वानं। अपूर्वकरणकालस्य संख्यातबहुभागान् गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। निर्माणस्य त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां बंधौ साद्यध्रुवौ स्तः।

आहारकद्विक-तीर्थकराणामोघप्ररूपणां निश्चित्य भणितव्यम्।

अधुना मनःपर्ययज्ञानिनां पंचान्तरायादिषोडशप्रकृतिबंधस्वामित्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणपज्जवणाणीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२१६।।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइयसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्र एतासां प्रकृतीनां मतिज्ञानमार्गणायां प्रमत्तसंयतप्रभृतिगुणस्थानेषु यथा**

गुणस्थान में कम करना चाहिए। शेष प्रकृतियों के प्रत्यय ओघ के समान हैं। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का बंध सब गुणस्थानों में देवगति से संयुक्त होता है। शेष प्रकृतियों का बंध असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में देवगति व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। उपरिम गुणस्थानों में देवगति से संयुक्त बंध होता है। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के बंध के दो गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि व संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण तक बंधाध्वान है। अपूर्वकरण काल के संख्यातबहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। निर्माण का तीन प्रकार का बंध होता है, क्योंकि उसका ध्रुव बंध नहीं होता। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है।

आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति की प्ररूपणा ओघ प्ररूपणा का निर्णय करके करना चाहिए।

अब मनःपर्ययज्ञानियों के पाँच अन्तराय आदि सोलह प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनःपर्ययज्ञानी जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२१६।।

प्रमत्तसंयत से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। सूक्ष्मसांपरायिकशुद्धिसंयतकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ इन प्रकृतियों की मतिज्ञान मार्गणा में प्रमत्तसंयतादिक गुणस्थानों में

प्ररूपणा कृता तथा प्ररूपयितव्या। नवरि अत्र सर्वत्र स्त्री-नपुंसकवेदौ प्रत्ययौ अपनेतव्यौ, अप्रशस्तवेदोदययुक्तजीवानां मनःपर्ययज्ञानानुपपत्तेः। प्रमत्तप्रत्ययेभ्यः आहारद्विकमपनेतव्यं, मनःपर्ययज्ञानस्य आहारशरीरद्विकोदयेन सह विरोधात्। पुरुषवेदस्य स्वोदयो बंधः। एवमन्योऽपि विशेषो यदि अस्ति सः स्मृत्वा वक्तव्यः।

इतो विस्तरः—यद्यपि भावस्त्रीवेदेन भावनपुंसकवेदेन वा केचिन्मुनयः क्षपकश्रेणिमारुह्य केवलज्ञानमुत्पाद्य मोक्षमपि प्राप्नुवन्ति तथापि तेषां मनःपर्ययज्ञानमाहारकर्द्धि वा नोत्पद्यते, एषा वस्तुव्यवस्था एव। अन्यच्च केषांचिन्महर्षीणां मनःपर्ययज्ञानमन्तरेणापि केवलज्ञानमुत्पद्यते, अतः केवलज्ञानार्थमेव दीक्षाशिक्षातपश्चरणरत्नत्रयाराधना ध्यानाभ्यासश्च न चावधिमनःपर्ययज्ञानप्राप्त्यर्थं। तथापि एतन्मनःपर्ययज्ञानं भावलिंगिनां मुनीनामेव वर्धमानचारित्राणां भवितुमर्हति। ते महामुनयस्तद्भवेनान्यभवेन वा नियमेन मोक्षं लभन्त इति ज्ञात्वा चारित्रशुद्ध्यर्थमेव प्रयत्नो विधेय। ये केचिन्मुनयश्चारित्रं गृहीत्वापि स्वशुद्धात्मानं न भावयन्ति तान् प्रति आचार्यो ब्रवीति—

केण वि अप्पउ वंचियउ सिरु लुंचिवि छारेण।
सयल वि संग ण परिहरिय जिणवर-लिंगधरेण[१]।।९०।।

यतः केनापि मुनिना जिनलिंगधारकेण भस्मना शिरोलुञ्चनं कृत्वापि बाह्याभ्यंतरपरिग्रहकांक्षारूपप्रभृति-समस्तमनोरथ-कल्लोलमालात्यागरूपं मनोमुण्डनं पूर्वमकृत्वा जिनदीक्षारूपं शिरोमुण्डनं कृत्वापि केनाप्यात्मा

जैसे प्ररूपणा की गई है, वैसे प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि यहाँ सर्वत्र स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि अप्रशस्त वेदोदययुक्त जीवों के मनःपर्ययज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती। प्रमत्तसंयत गुणस्थानसंबंधी प्रत्ययों में आहारकद्विक का कम करना चाहिए क्योंकि मनःपर्ययज्ञान का आहारशरीरद्विक के उदय के साथ विरोध है। पुरुषवेद का स्वोदय बंध होता है। इसी प्रकार अन्य भी यदि भेद हैं तो उसको स्मरण कर कहना चाहिए।

यहाँ कुछ विस्तार करते हैं—यद्यपि भावस्त्रीवेद से अथवा भावनपुंसक वेद से कोई महामुनि क्षपकश्रेणी में आरोहण करके, केवलज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, फिर भी उनके मनःपर्यय ज्ञान अथवा आहारकऋद्धि उत्पन्न नहीं होती है, यह वस्तुव्यवस्था ही है। दूसरी बात यह है कि किन्हीं-किन्हीं महर्षियों के मनःपर्ययज्ञान के बिना भी केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है, इसलिए केवलज्ञान के लिए ही दीक्षा, शिक्षा, तपश्चरण, रत्नत्रय की आराधना और ध्यान का अभ्यास है न कि अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति के लिए, फिर भी यह मनःपर्ययज्ञान भावलिंगी मुनियों के ही, जो कि वृद्धिंगत चारित्र वाले हैं उनके ही हो सकता है। वे महामुनि उसी भव से अथवा अन्य भव से नियम से मोक्ष प्राप्त करते हैं ऐसा जानकर चारित्र की शुद्धि के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। जो कोई मुनि चारित्र को ग्रहण करके भी अपनी शुद्ध आत्मा की भावना नहीं करते हैं उनके लिए आचार्यदेव कहते हैं—

किन्हीं ने शिर का लोच करके भी आत्मा की वंचना कर ली कि जिन्होंने जिनवर के लिंग-वेष को—दिगम्बर मुद्रा को धारण करके भी सम्पूर्ण परिग्रह को नहीं छोड़ा है।

क्योंकि किन्हीं मुनि ने जिनलिंग धारण करके भस्म से शिर के केशों का लोंच करके भी बाह्य-अभ्यंतर परिग्रह की कांक्षा आदि सम्पूर्ण मनोरथरूपी कल्लोलसमूह के त्यागरूप मन का मुण्डन नहीं करके जिनदीक्षारूप

---

१. परमात्मप्रकाश-अ. २, दोहकसूत्र ९०।

वञ्चितः, सर्वसंगपरित्यागा-भावात् । अत्रेदं व्याख्यानं ज्ञात्वा स्वशुद्धात्मभावनोत्थ-वीतरागपरमानंदपरिग्रहं कृत्वा तु जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च दृष्टश्रुतानुभूतनिःपरिग्रहशुद्धात्मानुभूति-विपरीतपरिग्रहकांक्षास्त्यक्तव्याः।

ये केचित्साधवः सकलसंयमं गृहीत्वा आर्यिका वोपचारमहाव्रतान्यादाय यावज्जीवं स्वशुद्धात्मानं भावयन्ति त एव ताश्चापि मनुष्यपर्यायस्योपरि सम्यक्त्व-संयम-समाधिमयं स्वर्णमयं कलशारोहणं कुर्वन्ति यथाद्य अत्र सुदर्शनमेरोश्चूलिकाया-मुपरि हैममयं कलशारोहणं कृतं[1] भव्यपुंगवैः श्रावकैरिति।

अधुना निद्राप्रचलासातादिबंधस्वामित्वनिरूपणार्थं सूत्रपंचकमवतार्यते —

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?।।२१८।।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२१९।।

शिरोमुण्डन करके भी आत्मा की वंचना कर ली है क्योंकि सर्वपरिग्रह के परित्याग का उनमें अभाव है।

यहाँ यह व्याख्यान जानकर अपनी शुद्ध आत्मा की भावना से उत्पन्न वीतराग परमानन्द को ग्रहण करके तीनों लोक में और तीनों काल में भी मन, वचन, काय और कृत-कारित-अनुमोदना से देखे, सुने और अनुभव में आये हुए जो कि परिग्रहरहित शुद्धात्मा की अनुभूति से विपरीत हैं ऐसे परिग्रह की आकांक्षा को त्याग देना चाहिए।

जो कोई साधु सकलसंयम को ग्रहण करके अथवा आर्यिका होकर उपचार से महाव्रतों को ग्रहण करके जीवनपर्यंत अपनी शुद्ध आत्मा की भावना करते हैं वे ही मुनिगण और आर्यिकाएं भी मनुष्यपर्याय के ऊपर सम्यक्त्व, संयम और समाधिरूप स्वर्णमयी कलशारोहण करते हैं जैसे कि आज यहाँ सुदर्शनमेरु की चूलिका के ऊपर भव्य श्रेष्ठ श्रावकों ने स्वर्णमयी कलशारोहण किया है।

भावार्थ — आज हस्तिनापुर में वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ चौबीस में आश्विन शुक्ला पंचमी को सुदर्शनमेरु की चूलिका के ऊपर पुराने स्वर्णिम कलश को नवीन स्वर्णमयी करके — नया सोना चढ़ाकर दिल्ली की शकुन्तला जैन उनके पुत्र अशोक कुमार और उनकी पत्नी उषा जैन ने कलशारोहण किया है। उसी दिन मैंने इन २१६-२१७ सूत्रों की टीका लिखी थी। जो कि ईसवी सन् में २५-९-१९९८ का दिन था।

अब निद्रा-प्रचला और सातावेदनीय आदि के बंधस्वामित्व को बतलाने के लिए पाँच सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रा और प्रचला का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२१८।।

प्रमत्तसंयत से लेकर अपूर्वकरणप्रविष्ट उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। अपूर्वकरणकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२१९।।

---

१. अद्य आश्विनशुक्लापंचम्यां चतुर्विंशत्युत्तरपंचविंशतिशततमे वीराब्दे सुदर्शनमेरोश्चूलिकायामुपरि पुरातनस्वर्णकलशान् नूतनस्वर्ण......

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२२०।।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीयराय छदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२२१।।

सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि पमत्तसंजदप्पहुडि त्ति भणिदव्वं।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्राणामर्थः सुगमो वर्तते। सातावेदनीयस्य बधो यद्यपि सयोगिकेवलिनि अपि भवति तथाप्यत्र मनःपर्ययज्ञानिमुनीनां चर्चा वर्ततेऽस्मिन् ज्ञाने क्षीणकषायगुणस्थानपर्यन्तमेव, एतादृशीं बंधव्यवस्थां ज्ञात्वा स्वात्मनामबंधावस्था कदा भवेदिति चिन्तनीयमहर्निशम् मुमुक्षुभिः।**

एवं तृतीयस्थले मनःपर्ययज्ञानिनां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रसप्तकं गतम्।

संप्रति केवलज्ञानिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

केवलणाणीसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२२३।।

सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलि अद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतस्य सातावेदनीयस्य बंधः पूर्वं—सयोगिकेवलिनः चरमसमये व्युच्छिद्यते, पश्चात्-अयोगिकेवलिनि चरमसमये उदयव्युच्छेदो भवति। बंधौ स्वोदय-परोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरः,**

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२२०।।

प्रमत्तसंयत से लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२२१।।

शेष प्ररूपणा तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान है। विशेष इतना है कि 'प्रमत्तसंयत से लेकर' ऐसा कहना चाहिए।।२२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सूत्रों का अर्थ सुगम है। सातावेदनीय का बंध यद्यपि सयोगीकेवली भगवन्तों के भी होता है फिर भी यहाँ मनःपर्ययज्ञानियों की चर्चा है और इस ज्ञान में क्षीणकषाय गुणस्थान पर्यंत ही है ऐसा समझना। इस प्रकार यहाँ ऐसी बंध व्यवस्था को जानकर हम सभी कब अबंध अवस्था को प्राप्त करेंगे ? मुमुक्षु मुनियों को—भव्यात्माओं को हमेशा ऐसा चिंतन करते रहना चाहिए।

इस प्रकार तीसरे स्थल में मनःपर्ययज्ञानियों के बंधस्वामित्व को कहने वाले सात सूत्र पूर्ण हुए।

अब केवलज्ञानियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

केवलज्ञानियों में सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२२३।।

सयोगिकेवली बंधक हैं। सयोगिकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सातावेदनीय का बंध पूर्व में अर्थात् सयोगिकेवली भगवान के चरम समय में व्युच्छिन्न हो जाता है, पश्चात् अयोगिकेवली के चरम समय में उदयव्युच्छित्ति होती है। बंध उसका

प्रतिपक्षप्रकृतेर्बंधाभावात् । सत्यमनोयोगोऽसत्यमृषामनोयोगः, सत्यवचनयोगः असत्यमृषावचनयोगः औदारिककाययोगः औदारिकमिश्रकाययोगः, कार्मणकाययोगश्चेति सप्त एतस्य बंधप्रत्ययाः। बंधोऽगतिसंयुक्तः, अत्र गतिबंधेन विरुद्धबंधात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र केवलिनामभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थानेऽध्वानविरोधात्। सयोगिचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

इतो विस्तरः—केवलिनां भगवतामनन्तचतुष्टयगुणा आविर्भवन्ति ततो मोहनीयकर्माभावात् तेषां कर्मबंधो न संभवति।

उक्तं च श्रीमत्कुंदकुंददेवेन—

जाणंतो पस्संतो ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।
केवलणाणी तह्मा तेण दु सोऽबंधगो भणिदो।।१७२।।
परिणामपुव्ववयणं जीवस्स य बंधकारणं होई।
परिणामरहियवयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७३।।
ईहापुव्वं वयणं जीवस्स य बंधकारणं होई।
ईहारहियं वयणं तम्हा णाणिस्स ण हि बंधो।।१७४।।
ठाणणिसेज्जविहारा ईहापुव्वं ण होइ केवलिणो।
तम्हा ण होइ बंधो, साकट्ठं मोहणीयस्स[१]।।१७५।।

अत्र कश्चिदाशंकते—अत्र सिद्धान्तग्रन्थे केवलिभगवतां एकसाताप्रकृतिबंध उच्यते पुनोऽध्यात्मग्रन्थे

स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि वह अध्रुवोदयी प्रकृति है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। सत्यमनोयोग, असत्य-मृषामनोयोग, सत्यवचनयोग, असत्य-मृषावचनयोग, औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोग ये सात इसके बंधप्रत्यय हैं। बंध गतिबंध रहित होता है क्योंकि यहाँ गतिबंध से विरुद्ध बंध है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में केवलियों का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। सयोगिकेवली के अंतिम समय में बंध व्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी हैं।

यहाँ कुछ विस्तार करते हैं—

केवली भगवन्तों के अनंत चतुष्टय गुण प्रगट हो जाते हैं इसलिए उनके मोहनीयकर्म का अभाव होने से उनके कर्मबंध संभव नहीं है। श्रीमान् कुन्दकुन्ददेव ने कहा है—

केवली भगवान का जानना-देखना इच्छापूर्वक नहीं है इसलिए केवलज्ञानी इसी हेतु से कर्मों के अबंधक कहे गये हैं। जीव के परिणामपूर्वक वचन बंध के कारण होते हैं। ज्ञानी के परिणामरहित वचन होते हैं इसलिए उनके बंध नहीं है। ईहापूर्वक वचन जीव के बंध के कारण होते हैं। केवलज्ञानी के ईहारहित वचन हैं, इसलिए उनके बंध नहीं है। केवली भगवान के ठहरना, बैठना और विहार करना, ये क्रियाएँ इच्छापूर्वक नहीं होती हैं इसलिए उनके बंध नहीं है। मोहनीयसहित के इन्द्रियों के व्यापार में बंध होता है।।१७२-१७५।।

यहाँ कोई आशंका करता है—

यहाँ सिद्धान्तग्रंथों में केवली भगवन्तों के एक साता प्रकृति का बंध किया गया है पुनः अध्यात्म ग्रंथ में

---

१. नियमसार प्राभृत गाथा १७२ से १७५।

कथं निषिद्धियते ?

अत्राचार्यः समाधत्ते—सत्यमुक्तं भवता, किन्तु स बंधोऽस्तित्वमात्रेण नाममात्रेणैव वा।

श्रीनेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्तिदेवेन—

समयट्ठिदिगो बंधो सादस्सुदयप्पिगो जदो तस्स।
तेण असादस्सुदओ सादसरूवेण परिणमदि[1]।।२७४।।

किं च वेदनीयस्य जघन्यापि स्थितिः द्वादशमुहूर्ता। ''अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य'' इति सूत्रात्। ततः स्थित्यनुभागबंधाभावे प्रकृतिप्रदेशबंधौ न कांचिद् हानिं कुरुतः। तेनैव हेतुना केवलिनां कर्मबंधो नास्तीति नियमसारे कथ्यते।

अनयच्च—केचिज्जैनाभासाः केवलिनां साता असातावेदनीयस्योदयेन क्षुधातृषादिबाधा निमित्तेन कवलाहारं रोगादिकमपि मन्यंते न ते सिद्धान्तविदः, किं च—

केवलज्ञानोदयेनानन्तसुखं भवति तदानीं इन्द्रियजन्यसुखदुःखादीनि तेषां न उद्भवन्ति अतो दिगम्बरमतानुसारेण केवलिदेवानां कवलाहारो न विद्यते न च रोगादयोऽपि कदाचिदपि भवितुं शक्नुवन्ति इति विज्ञाय केवलिनां अवर्णवादो न विधेयः, दर्शनमोहनीयस्य कर्मणो बंधाद् भेत्तव्यः।

उक्तं च—''केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य[2] ''।।१३।।

इसका निषेध कैसे किया ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं—

आपने सत्य कहा है किन्तु वह साताप्रकृति का बंध अस्तित्वमात्र से है अथवा नाममात्र से ही है।

श्री नेमिचन्द्रसिद्धान्तचक्रवर्ती आचार्यदेव ने कहा है—

जिस कारण केवली भगवान के एक सातावेदनीय का ही बंध सो भी एक समय की स्थिति वाला ही होता है, इस कारण वह उदयस्वरूप ही है और इसी कारण असाता का उदय भी सातारूप से ही परिणमता है क्योंकि असातावेदनीय सहायरहित होने से तथा बहुत हीन होने से मिष्ट जल में खारे जल की एक बूंद की तरह अपना कुछ कार्य नहीं कर सकता।

दूसरी बात यह है कि वेदनीय कर्म की जघन्य भी स्थिति बारह मुहूर्त की है क्योंकि ''वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है'' ऐसा तत्त्वार्थसूत्र का कथन है। इसलिए स्थिति और अनुभागबंध के अभाव में प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध भी कुछ हानि नहीं कर पाते हैं इसी हेतु से केवली भगवन्तों के कर्मबंध नहीं होता है ऐसा 'नियमसार' ग्रंथ में कहा है।

बात यह है कि—कोई जैनाभासी लोग केवली भगवन्तों के साता और असाता वेदनीय के उदय से भूख, प्यास आदि बाधा के निमित्त से कवलाहार और रोग आदि भी मानते है वे सिद्धान्त के वेत्ता नहीं हैं, क्योंकि केवलज्ञान के प्रगट हो जाने से अनंत सुख प्रगट हो जाता है तब इन्द्रियों से उत्पन्न होने वाले सुख-दु:ख आदि उन भगवन्तों के उत्पन्न नहीं होते हैं इसलिए दिगम्बर जैनमत के अनुसार केवली भगवन्तों के कवलाहार—भोजन नहीं होता है और रोग आदि भी कदाचित् भी उत्पन्न नहीं हो सकते हैं ऐसा जानकर केवली प्रभु का अवर्णवाद नही करना चाहिए तथा दर्शनमोहनीय कर्म के बंध से डरना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में कहा भी है—

केवली भगवान, श्रुत—जैनशास्त्र, संघ—मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, धर्म—'अहिंसा परमोधर्मः'

---

१. गोम्मटसार कर्मकांड गाथा २७४। २. तत्त्वार्थ सूत्र अ. ६, सूत्र १३।

अतोऽनन्तसंसारकारणभूतमोहनीयकर्मबंधोऽस्माकं न भवति, सम्यग्दर्शनधारित्वादिति श्रद्धां कुर्वद्भिः संसारस्थितिर्हापनीया भवद्भिः।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य ग्रन्थे बंधस्वामित्वविचननाम्नि तृतीय खण्डे गणिनीज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां ज्ञानमार्गणानाम सप्तमोऽधिकारः समाप्तः।

स्वरूप जैन धर्म और देव—चार प्रकार के देव इनका अवर्णवाद—इनके प्रति असत्य आरोप लगाने से दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव होता है।

अत: अनंत संसार के लिए कारणभूत ऐसे मोहनीय कर्म का बंध हम लोगों के नहीं है क्योंकि हम सभी सम्यग्दर्शन के धारी हैं ऐसी श्रद्धा करते हुए आप सभी को संसार की स्थिति को घटाना चाहिए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथ में 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में ज्ञानमार्गणा नाम का सातवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ संयममार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

सप्त संयमनिर्मुक्ताः, स्वेषु स्थित्वा स्वयंभुवः।
स्वस्थाः सिद्धा नमस्यन्ते, पूर्णसंयमलब्धये।।१।।

अथ सप्तभिरन्तरस्थलैः अष्टाविंशतिसूत्रैः बंधस्वामित्वविचये संयममार्गणानामाष्टमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यसंयतानां बंधाबंधकथनत्वेन ''संजमाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रत्रयं। ततः परं द्वितीयस्थले सामायिकछेदोपस्थापनासंयमिनां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन ''सामाइय-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तत्पश्चात् तृतीयस्थले परिहारविशुद्धिसंयतानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''परिहासुद्धिसंजदेसु'' इत्यादिनाऽष्ट-सूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपरायसंयमपरिणतमुनीनां बंधाबंधनिरूपणपरत्वेन ''सुहुमसांपराइय-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु पंचमस्थले यथाख्यातसंयमिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''जहाक्खाद-'' इत्यादिसूत्रद्वयं। ततः परं षष्ठस्थले संयतासंयतानां बंधाबंधव्यवस्थानिरूपणत्वेन ''संजदासंजदेसु'' इत्यादिसूत्रद्वयं। पुनश्च सप्तमस्थलेऽसंयतजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''असंजदेसु'' इत्यादिनाष्टौ सूत्राणीति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना सामान्येन संयतानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

संजमाणुवादेण संजदेसु मणपज्ज्वणाणिभंगो।।२२५।।

अथ संयममार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो सातों संयम — पाँच संयम, संयमासंयम एवं असंयम ऐसे सातों से रहित हैं, अपनी आत्मा में स्थित होकर स्वयंभू भगवान पूर्ण स्वस्थ एवं सिद्ध भगवान हो चुके हैं, पूर्ण संयम की प्राप्ति के लिए हम उन सिद्धों को नमस्कार करते हैं।।१।।

अब सात अन्तरस्थलों से अट्ठाईस सूत्रों द्वारा 'बंधस्वामित्वविचय' में संयममार्गणा नाम का यह आठवाँ अधिकार प्रारंभ किया जा रहा है। इसमें प्रथम स्थल में सामान्य संयमियों के बंधक-अबंधक के कथनरूप से 'संजमाणुवादेण-' इत्यादि तीन सूत्र हैं। इसके आगे द्वितीय स्थल में सामायिक और छेदोपस्थापना संयमियों के बंधस्वामित्व के निरूपणरूप से 'सामाइय-' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुनः तीसरे स्थल में परिहारविशुद्धि संयमियों के बंधस्वामित्व के कथन रूप से ''परिहारशुद्धिसंजदेसु-'' इत्यादि आठ सूत्र कहेंगे। अनंतर चौथे स्थल में सूक्ष्मसांपराय संयम से परिणत मुनियों के बंधक-अबंधक का निरूपण करते हुए 'सुहुमसांपराइय-' इत्यादि एक सूत्र है। आगे पाँचवें स्थल में यथाख्यातचारित्रधारी संयमियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए ''जहाक्खाद-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। पुनः छठे स्थल में संयतासंयत — देशव्रतियों के बंध-अबंध की व्यवस्था का निरूपण करते हुए ''संजदासंजदेसु-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। पुनः सातवें स्थल में असंयतजीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करतेहुए ''असंजदेसु'' इत्यादि रूप से आठ सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सामान्यरूप से संयमियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

संयममार्गणानुसार संयत जीवों में मनःपर्ययज्ञानियों के समान प्ररूपणा है।।२२५।।

णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२२६।।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२२७।।

सिद्धांतचिंतामणिटीका—यथा मनःपर्ययज्ञानमार्गणायां प्ररूपणा कृता तथात्र कर्तव्या। विशेषेण प्रत्ययादिविशेषो ज्ञात्वा कथयितव्यः। अत्र सातावेदनीयस्य बंधः प्रमत्तसंयतेभ्यः आरभ्य सयोगिकेवलिपर्यन्तानां भवतीति ज्ञातव्यम्।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसंयतानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति सामायिक-छेदोपस्थापनामुनीनां ज्ञानावरणाद्यष्टादशप्रकृतीनां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-चदुदंसणा-वरणीय-सादावेदणीय-लोभसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२२८।।

पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२२९।।

विशेषता इतनी है कि सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२२६।।

प्रमत्तसंयत से लेकर सयोगकेवली तक बंधक हैं। सयोगकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२२७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार मनःपर्ययज्ञानमार्गणा में प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार यहाँ करना चाहिए। विशेष इतना है कि प्रत्ययादि के भेद को जानकर कहना चाहिए। यहाँ सातावेदनीय का बंध प्रमत्तसंयत मुनि से लेकर सयोगिकेवली भगवान पर्यंत होता है, ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथमस्थल में सामान्य संयमियों के बंधस्वामित्व के कथन करने वाले तीन सूत्र हुए हैं।

अब सामायिक और छेदोपस्थापना संयमधारी मुनियों के ज्ञानावरण आदि अट्ठारह प्रकृतियों के बंध-अबंध का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

सामायिक-छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, संज्वलनलोभ, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२२८।।

प्रमत्तसंयत से लेकर अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२२९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतासां प्रकृतीनां अत्र बंधोदयव्युच्छेदाभावात् 'उदयात् किं पूर्वं पश्चाद्वा बंधो व्युच्छिन्न' इति विचारो नास्ति। पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-यशःकीर्ति-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। सातावेदनीय-लोभसंज्वलनयोः स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। सातावेदनीय-यशःकीर्त्योः प्रमत्तसंयते सान्तरो बंधः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरस्तदभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र निरन्तरः, विवक्षितसंयतेषु बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। एतासां सर्वप्रकृतीनां प्रमत्तसंयतप्रभृति यावदपूर्वकरणकालस्य षट्सप्तभाग इति बंधो देवगतिसंयुक्तः। उपरि अगतिसंयुक्तः, तत्र गतीनां बंधाभावात्। मनुष्या एव स्वामिनः, अन्यत्र संयमाभावात्। बंधाध्वानं सुगमं, सूत्रोद्दिष्टत्वात्। बंधव्युच्छेदो नास्ति, उपरि अपि बंधोपलंभात्। 'अबंधा णत्थि' इति सूत्राद्वा। चतुर्दशानां ध्रुवबंधिनां बंधस्त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।**

शेषप्रकृतीनां मनःपर्ययज्ञानिवद्बंधव्यवस्थानिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

सेसं मणपज्जवणाणिभंगो।।२३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा मनःपर्ययज्ञानिषु शेषप्रकृतीनां प्ररूपणा कृता तथात्रापि कर्तव्या। यत्किमप्यन्तरं तदत्रोच्यते — स्त्री-नपुंसकवेदाहारद्विकप्रत्ययानां तत्रास्तित्वं नास्ति किन्त्वत्र तेषामस्तित्वं दृश्यते।**

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यहाँ इन प्रकृतियों के बंध और उदय का व्युच्छेद न होने से 'उदय से क्या पूर्व में या पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है' यह विचार नहीं है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ इनका ध्रुव उदय है। सातावेदनीय और संज्वलन क्रोध का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि ये अध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। सातावेदनीय और यशकीर्ति का प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सान्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र निरन्तर है क्योंकि विवक्षित संयतों में इनके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई भेद नहीं है। इन सब प्रकृतियों का बंध प्रमत्तसंयत से लेकर अपूर्वकरणकाल के छह सात भाग तक देवगति से संयुक्त होता है। ऊपर अगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में संयतों का अभाव है। बंधाध्वान सुगम है क्योंकि वह सूत्र में निर्दिष्ट है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि ऊपर भी बंध पाया जाता है अथवा 'अबंधक' नहीं है' इस सूत्र से भी बंधव्युच्छेद का अभाव सिद्ध है। चौदह ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध तीन प्रकार का होता है क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब शेष प्रकृतियों की मनःपर्ययज्ञानी के समान बंधव्यवस्था का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतरित होता है —

सूत्रार्थ —

शेष प्रकृतियों की प्ररूपणा मनःपर्ययज्ञानियों के समान है।।२३०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — जिस प्रकार मनःपर्ययज्ञानियों में शेष प्रकृतियों की प्ररूपणा की है। उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। यहाँ कुछ विशेषता भी है क्योंकि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विक के प्रत्यय, जो मनःपर्ययज्ञानियों में नहीं थे, उनका यहाँ अस्तित्व देखा जाता है।

निद्रा-प्रचलयोः पूर्वं बंधो व्युच्छिन्नः, उदयव्युच्छेदो नास्ति, सूक्ष्मसांपरायिक-यथाख्यातसंयतयोरपि तदुदयदर्शनात्। बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरो, ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। देवगतिसंयुक्तः, गत्यन्तरस्य बंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र संयमाभावात्। प्रमत्तसंयतप्रभृति यावदपूर्वकरण इति बंधाध्वानं। अपूर्वकरणकालस्य प्रथमभागचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते।

कथमेतज्ज्ञायते ?

सूत्राविरुद्धाचार्यवचनात्।

त्रिविधो बंधो, ध्रुवाभावात्।

एवमेव पुरुषवेदस्य वक्तव्यं। नवरि बंधाध्वानमनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातबहुभागा इति वक्तव्यं। देवगति-अगतिसंयुक्तो बंधः। द्विविधोऽध्रुवबंधित्वात्।

क्रोधसंज्वलनस्य लोभसंज्वलनवद्भंगो। नवरि बंधाध्वानमनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातबहुभागा इति। एवं मान-मायासंज्वलनयोरपि वक्तव्यं, विशेषेण क्रोधबंधव्युच्छिन्नोपरिमकालस्य संख्यातबहुभागान् गत्वा मानबंधाध्वानं समाप्यते। शेषकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा मायाबंधाध्वानं समाप्यते इति कथयितव्यम्।

हास्य-रति-भय-जुगुप्सानां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, अपूर्वकरणकालस्य चरमसमये तदभावदर्शनात्। बंधौ स्वोदयपरोदयौ अध्रुवोदयत्वात्। हास्य-रत्योः बंधः प्रमत्तगुणस्थाने सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्ष-

---

निद्रा और प्रचला का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है, उनका उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक और यथाख्यातसंयतों में भी उनका उदय देखा जाता है। बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। निरन्तर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई भेद नहीं है। देवगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि संयतों में अन्य गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में संयम का अभाव है। प्रमत्तसंयत से लेकर अपूर्वकरण तक बंधाध्वान हैं। अपूर्वकरणकाल के प्रथम भाग के अंतिम समय में बंधव्युच्छिन्न होता है।

शंका — यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान — सूत्र से अविरुद्ध आचार्यों के वचन से वह जाना जाता है।

उनका तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है।

इसी प्रकार ही पुरुषवेद के भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि बंधाध्वान अनिवृत्तिकरणकाल का संख्यात बहुभाग है, ऐसा कहना चाहिए। देवगतिसंयुक्त और अगतिसंयुक्त बंध होता है। दो प्रकार का बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

संज्वलनक्रोध की प्ररूपणा संज्वलनलोभ के समान है। विशेष इतना है कि बंधाध्वान अनिवृत्तिकरणकाल का संख्यात बहुभाग है। इसी प्रकार संज्वलन मान और माया के भी कहना चाहिए। विशेषता यह है कि संज्वलनक्रोध के बंध के व्युच्छिन्न होने के उपरिम काल का संख्यात बहुभाग बिताकर मानबन्धाध्वान समाप्त होता है। शेष काल के संख्यात बहुभाग जाकर मायाबन्धाध्वान समाप्त होता है, ऐसा कहना चाहिए।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि अपूर्वकरणकाल के अंतिम समय में उनका अभाव देखा जाता है। बंध उनका स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी

प्रकृतिबंधाभावात्। भयजुगुप्सयोः सर्वत्र निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्।

देवगतिसंयुक्तोऽगतिसंयुक्तोऽपि, अपूर्वकरणकालस्य चरमसप्तमभागेगतेर्बंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः। प्रमत्तसंयतादारभ्यापूर्वकरणपर्यंतं इति बंधाध्वानं। अपूर्वकरणचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते। भयजुगुप्स-योस्त्रिविधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, तद्विपरीतबंधात्।

देवायुषः पूर्वापरकालेषु बंधोदयव्युच्छेदपरीक्षा नास्ति, उदयाभावात्।

किं च—सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमौ मनुष्यगतिषु दिगम्बरमुनीनामेव भवतः। अस्यायुषः परोदयो बंधः, स्वाभाविकात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्त्तेन विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। देवगतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्या एव स्वामिनः। प्रमत्ताप्रमत्तसंयता बंधाध्वानं। अप्रमत्तकालस्य संख्यातभागं गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति देवगतिसहगतानां सप्तविंशतिप्रकृतीनां भण्यमाने पूर्वापरकालेषु बंधोदयव्युच्छेदपरीक्षा ज्ञात्वा कर्तव्या। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां बंधः परोदयेन, स्वाभाविकात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां स्वोदयपरोदयौ, संयतस्य प्रतिपक्षप्रकृतीनामपि उदयदर्शनात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः स्वोदयः, ध्रुवोदयत्वात्। स्थिर-शुभयोः प्रमत्तसंयते बंधः सान्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, तदभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधो निरन्तरः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्ययाः सुगमाः।

प्रकृतियाँ हैं। हास्य और रति का बंध प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सान्तर होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। भय और जुगुप्सा का सर्वत्र निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई विशेषता नहीं है। देवगतिसंयुक्त और अगतिसंयुक्त भी बंध होता है क्योंकि अपूर्वकरणकाल के अंतिम सप्तम भाग में गति के बंध का अभाव हो जाता है। मनुष्य स्वामी हैं। प्रमत्तसंयत से लेकर अपूर्वकरण तक बंधाध्वान है। अपूर्वकरण के अंतिम समय में बंधव्युच्छिन्न होता है। भय और जुगुप्सा का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुवबंध होता है क्योंकि वे उनसे विपरीत (अध्रुव) बंध वाली हैं।

देवायु के पूर्वापर काल भावी बंध व उदय के व्युच्छेद की परीक्षा नहीं है क्योंकि यहाँ उसका उदयाभाव है। बात यह है कि—सामायिक और छेदोपस्थापना संयम मनुष्यगति में दिगम्बर मुनियों के ही होता है। इस देवायु का परोदय बंध होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। देवगतिसंयुक्त बंध होता है। मनुष्य ही स्वामी हैं। प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत बंधाध्वान है। अप्रमत्तकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

अब देवगति के साथ रहने वाली परभविक नामकर्म की सत्ताईस प्रकृतियों की प्ररूपणा करते समय पूर्वापर कालों में बंध व उदय के व्युच्छेद की परीक्षा जानकर करना चाहिए। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का बंध परोदय से होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि संयतों में इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का भी उदय देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का बंध स्वोदय होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। स्थिर और शुभ का बंध प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सान्तर होता है क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध निरन्तर होता है क्योंकि यहाँ वे ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सुगम हैं।

सर्वासां प्रकृतीनां बंधो देवगतिसंयुक्तः। मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां प्रकृतीनां त्रिविधः। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ।

असातावेदनीय-अरति-शोक-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्त्तीणां एकस्थानिकानां सान्तरबंधमोघप्रत्ययानां देवगतिसंयुक्तानां मनुष्यस्वामिकानां बंधाध्वानविरहितानां प्रमत्तसंयते व्युच्छिन्नबंधानां बंधेन साद्यध्रुवौ बंधौ, स्वोदयः परोदयः स्वोदयपरोदयौ वा ज्ञात्वा प्ररूपयितव्यः। आहारद्विक तीर्थकराणामपि ज्ञात्वा वक्तव्यः।

एवं द्वितीयस्थले सामायिक-छेदोपस्थापनासंयमिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

अधुना परिहारविशुद्धिसंयमिनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनार्थं सूत्रद्वयमवतार्यते —

परिहारसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरूच्चागोदपंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२३१।।

सब प्रकृतियों का बंध देवगतिसंयुक्त होता है। इनके बंध के स्वामी मनुष्य हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध तीन प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है।

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर और अशुभ तथा अयशकीर्ति, इन एकस्थानिक, सान्तर बंध वाली, ओघप्रत्ययों से युक्त, देवगतिसंयुक्त, मनुष्यस्वामिक, बंधाध्वान से रहित, प्रमत्तसंयत गुणस्थानभावी बंधव्युच्छेद से सहित तथा बंध की अपेक्षा सादि व अध्रुव प्रकृतियों का बंध स्वोदय, परोदय अथवा स्वोदय-परोदय है इसकी प्ररूपणा जानकर करना चाहिए। आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति की भी प्ररूपणा जानकर करना चाहिए।

इस प्रकार सामायिकछेदोपस्थापनासंयमियों के बंधस्वामित्व के प्रतिपादन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब परिहारविशुद्धिसंयमियों के कथन के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

परिहारशुद्धिसंयतों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२३१।।

पमत्त-अपमत्तसंजदा बंधा।एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**षष्ठ-सप्तमगुणस्थानवर्तिनः प्रमत्ताप्रमत्तसंयता एव परिहारशुद्धिसंयमिनो भवन्ति। तेन कारणेन उदयात् पूर्वं बंधः पश्चाद्वा व्युच्छिद्यते इत्यत्र विचारो नास्ति, एतासां बंधव्युच्छेदाभावात्, उदययुक्तप्रकृतीनामुदयव्युच्छेदा-भावाच्च। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-तीर्थकराणां परोदयो बंधः, एतासां बंधोदययोरक्रमवृत्तिविरोधात्। निद्रा-प्रचला-सातावेदनीय-चतुःसंज्वलन-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां स्वोदयपरोदयौ बंधौ एतासां प्रतिपक्षप्रकृतीनामपि उदयदर्शनात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां स्वोदयो बंधः, अत्र एतासां प्रकृतीनां ध्रुवोदयत्वोपलंभात्।**

सातावेदनीय-हास्य-रति-स्थिर-शुभ-यशःकीर्तिप्रकृतीनां प्रमत्तसंयते बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधो निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्त्तेण बिना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। नवरि अत्र परिहारशुद्धिसंयते भावस्त्री-भावनपुंसकवेदप्रत्ययौ न स्तः, अप्रशस्तवेदोदयसहितानां परिहारशुद्धिसंयमाभावात्। आहारद्विकप्रत्ययौ अपि न स्तः, परिहारशुद्धि-संयमेन सह आहारद्विकोदयविरोधात्। अथवा तीर्थकरपादमूलस्थितानां गतसंदेहानां आज्ञाकनिष्ठता—आप्तवचन-संदेहजनितशिथिलिता-असंयमबहुलतादि-आहारशरीरोत्थापनकारणविरहितानां आहार-शरीरोत्पादनासंभवात्।

देवगतिसंयुक्तो बंधः, अत्र संयमेऽन्यगतिबंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र संयमाभावात्। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति, 'अबंधा णत्थि' इति सूत्रनिर्देशात्।

प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत बंधक हैं, ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२३२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—छठे-सातवें गुणस्थानवर्ती प्रमत्त-अप्रमत्त मुनि ही परिहारशुद्धि संयमी होते हैं। उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार यहाँ नहीं है क्योंकि इनके बंधव्युच्छेद का अभाव है तथा उदययुक्त प्रकृतियों के उदयव्युच्छेद का भी अभाव है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकद्विक और तीर्थंकर, इनका परोदय बंध होता है क्योंकि इन प्रकृतियों के बंध और उदय के साथ अस्तित्व का विरोध है। निद्रा, प्रचला, सातावेदनीय, चार संज्वलन, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का भी उदय देखा जाता है। शेष प्रकृतियों का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ इन प्रकृतियों का ध्रुव उदय पाया जाता है।

सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशकीर्ति का प्रमत्तसंयत गुणस्थान में सान्तर बंध होता है। ऊपर उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध निरन्तर होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उनके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई भेद नहीं है विशेष इतना है कि यहाँ परिहारशुद्धि संयत में स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं है क्योंकि प्रशस्तवेदोदययुक्त जीवों के परिहारशुद्धिसंयम का अभाव है। आहारकद्विक प्रत्यय भी नहीं हैं क्योंकि परिहारशुद्धिसंयम के साथ आहारकद्विक के उदय का विरोध है अथवा तीर्थंकर के पादमूल में स्थित, संदेह रहित तथा आज्ञाकनिष्ठता अर्थात् आप्तवचन में सन्देहजनित शिथिलता और असंयमबहुलतादिरूप आहारशरीर की उत्पत्ति के कारणों से रहित परिहारशुद्धिसंयतों के आहारशरीर की उत्पत्ति असंभव है।

देवगति संयुक्त बंध होता है क्योंकि यहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में संयम का अभाव है। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि 'अबंधक नहीं है' ऐसा

ध्रुवबंधिनां बंधस्त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति असातावेदनीयादिषट्प्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२३३।।

पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**असातावेदनीय-अरति-शोकानामत्र बंधव्युच्छेद एव, उदयव्युच्छेदो नास्ति, उपरि तदुदयव्युच्छेदोपलंभात्। अस्थिराशुभयोरपि एवमेव वक्तव्यं, प्रमत्तगुणस्थाने बंधव्युच्छित्तिः सयोगिषु उदयविच्छित्तिर्दृश्यते। अयशःकीर्त्तेः पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिद्यते, प्रमत्तेषु बंधव्युच्छित्तिरसंयतसम्यग्दृष्टिषु उदयव्युच्छित्तिर्दृश्यते।**

अस्थिराशुभयोः स्वोदयः, अयशःकीर्तेः परोदयः, शेषाणां बंधौ स्वोदय-परोदयौ। सान्तरो बंधः, एतासामेकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। स्त्री-नपुंसकवेदाहारद्विकविरहितौघप्रत्ययाः अत्र वक्तव्याः। देवगतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं नास्ति, एकगुणस्थाने तदसंभवात्। प्रमत्तसंयतचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

सूत्र में कहा गया है। इनमें ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध तीन प्रकार का होता है क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और यशकीर्ति नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२३३।।

प्रमत्तसंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२३४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — असातावेदनीय, अरति और शोक का यहाँ बन्धव्युच्छेद ही है, उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि ऊपर उनका उदयव्युच्छेद पाया जाता है। अस्थिर और अशुभ के भी इसी प्रकार कहना चाहिए क्योंकि प्रमत्त और सयोगिकेवली गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है। अयशकीर्ति का पूर्व में उदय और पश्चात् बन्धव्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः उसके बंध और उदय का व्युच्छेद देखा जाता है।

अस्थिर और अशुभ का स्वोदय, अयशकीर्ति का परोदय तथा शेष प्रकृतियों का बंध स्वोदय-परोदय होता है। सान्तर बंध होता है क्योंकि इन प्रकृतियों का एक समय से भी बंधविश्राम देखा जाता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और आहारकद्विक से रहित यहाँ ओघप्रत्यय कहना चाहिए। देवगतिसंयुक्त बंध होता है। मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में उसकी संभावना नहीं है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान के अंतिम समय में बंधव्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं।

देवायुराहारद्विकबंधस्वामिनिरूपणाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।२३५।।

पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२३६।।

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२३७।।

अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अत्र उदयात्पूर्वं बंधः पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, संयतेषु देवायुष उदयाभावात्। परोदयो बंधः, बंधोदययोरक्रमवृत्तिविरोधात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्तेण विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्।

नवरि आहारद्विक-स्त्री-नपुंसकवेदप्रत्यया न सन्ति। देवगतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्याः स्वामिनः। अवगतबंधाध्वानः, अप्रमत्तकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा व्युच्छिन्नबंधः। साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः।

अनयोर्देवायुर्भंगः। नवरि बन्धाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थाने अध्वानासंभवात्। बन्धव्युच्छेदो नास्ति, उपर्यपि बंधोपलम्भात्।

अब देवायु और आहारकद्विक के बंधस्वामित्व का निरूपण करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देवायु का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२३५।।

प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। अप्रमत्तसंयतकाल का संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२३६।।

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२३७।।

अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२३८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार यहाँ नहीं है क्योंकि संयत जीवों में देवायु के उदय का अभाव है। परोदय बंध होता है क्योंकि उसके बंध और उदय के साथ रहने का विरोध है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई विशेषता नहीं है। विशेष इतना है कि आहारकद्विक, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं हैं। देवगतिसंयुक्त बंध होता है। मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान सूत्र से जाना जाता है। अप्रमत्तकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

इन दोनों प्रकृतियों की प्ररूपणा देवायु के समान है। विशेष इतना है कि बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान की संभावना नहीं है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि ऊपर भी बंध पाया जाता है।

तात्पर्यमेतत्—परिहारविशुद्धिसंयतेषु आहारद्विकस्य बंधो भवति, तेन संयमेन सह आहारशरीरस्योदय-विरोधात्। अतएवास्मिन् गुणस्थाने बंधव्युच्छित्तिर्नास्ति, उपरिमगुणस्थानेऽपि बंध उपलभ्यते।

एवं तृतीयस्थले परिहारशुद्धिसंयतानां बंधस्वामित्वकथनत्वेनाष्टौ सूत्राणि गतानि।

अधुना-सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानांबंधाबंधप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२३९।।

सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतासां प्रकृतीनां बंधोदयव्युच्छेदाभावात् उदयात् पूर्वं बंधः पश्चाद्वा व्युच्छिन्नः इति परीक्षा न क्रियते। सातावेदनीयस्य बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अनुदयेऽपि बंधविरोधाभावात्। निरन्तरः सर्वप्रकृतीनां बंधः, अत्र सूक्ष्मसांपरायगुणस्थानेषु बंधोपरमाभावात्।**

कश्चिदाह—एकसमयं स्थित्वा मृतसूक्ष्मसांपरायिकैर्व्यभिचारो दृश्यते ?

तस्य समाधानमाह—नैतद्वक्तव्यं, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थाने इति विशेषणात्।

यहाँ अभिप्राय यह है कि—परिहारविशुद्ध संयमियों में आहारकद्विक का बंध होता है किन्तु उस संयम के साथ आहारकशरीर का उदय नहीं होता है इसलिए इस गुणस्थान में बंधव्युच्छित्ति नहीं है क्योंकि आगे के गुणस्थानों में भी इनका बंध पाया जाता है।

इस प्रकार तृतीय स्थल में परिहारविशुद्धि संयमियों के बंधस्वामित्व को कहने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

अब सूक्ष्मसाम्परायिक संयमियों के बंध-अबंध का प्ररूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२३९।।

सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक और क्षपक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२४०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन प्रकृतियों के बंध व उदय के व्युच्छेद का अभाव होने से उदय से बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या पश्चात् यह परीक्षा यहाँ नहीं की जाती है। सातावेदनीय का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि उदय के न होने पर भी उसके बंध में कोई विरोध नहीं है। इन सब प्रकृतियों का निरन्तर बंध होता है क्योंकि इस सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान में बंधविश्राम का अभाव है।

कोई ऐसा प्रश्न करता है—ऐसा मानने पर एक समय रहकर मृत्यु को प्राप्त हुए सूक्ष्मसांपरायिक संयतों से व्यभिचार होगा ?

आचार्यदेव समाधान देते हैं—यह भी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि 'सूक्ष्मसांपरायिक गुणस्थान में' ऐसा विशेषण दिया गया है। औदारिक काययोग, लोभ कषाय, चार मनोयोग और वचनयोग, ये दश प्रत्यय

औदारिककाययोग-लोभकषाय-चतुर्मनोयोग-वचनयोगा-इति दश प्रत्ययाः। अगतिसंयुक्तो बंधः, अत्र चतुर्गतिबंधाभावात्। मनुष्याः स्वामिनः, अन्यत्र सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानामभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, 'सूक्ष्मसांपरायिकप्रभृति' इति सूत्रेऽनुपदिष्टत्वात्। बंधव्युच्छेदो नास्ति, सूत्रे 'अबंधा णत्थि' इति वचनात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचान्तरायाणां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ।

एवं चतुर्थस्थले सूक्ष्मसांपरायिकसंयतानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति यथाख्यातसंयमिनां बंधाबंधकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२४१।।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सूत्रयोर्द्वयोरर्थः सुगमोऽस्ति। अत्र यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां केवलिभगवतामपि प्ररूपणा केवलज्ञानप्ररूपणा इव ज्ञातव्या।**

तात्पर्यमत्र — यथाख्यात संयमलाभायैव प्रयत्नौ विधातव्योऽस्माभिरिति।

हैं। गतिसंयोग से रहित बंध होता है क्योंकि वहाँ चारों गतियों के बंध का अभाव है। मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में सूक्ष्मसाम्परायिक संयतों का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि 'सूक्ष्मसाम्परायिक आदि' ऐसा सूत्र में निर्देश नहीं किया गया है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि 'अबंधक नहीं है' ऐसा सूत्र का वचन है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय, इनका तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

इस प्रकार चौथे स्थल में सूक्ष्मसांपरायिक मुनियों के बंधस्वामित्व के कथन रूप से दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब यथाख्यातसंयमियों के बंध-अबंध का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों में सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२४१।।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ और सयोगिकेवली बंधक हैं। सयोगिकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२४२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — दोनों सूत्रों का अर्थ सरल है। यहाँ यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों की और केवली भगवन्तों की भी प्ररूपणा केवलज्ञान प्ररूपणा के समान जानना चाहिए। यहाँ अभिप्राय यह है कि हमें और आपको यथाख्यात संयम को प्राप्त करने का ही प्रयत्न करना चाहिए।

उक्तं च श्रीगौतमस्वामिभिः — चारित्रं सर्वजिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं पंचम चारित्रलाभाय।।

एवं पंचमस्थले यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतानां बंधव्यवस्था कथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

संप्रति संयतासंयतानां बंधास्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

संजदासंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-अट्ठकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवाउ-देवगइ-पंचिदिंयजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२४३।।

संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका —**उदयात्पूर्वं पश्चाद्वा बंधो व्युच्छिन्न इति विचारोऽत्र नास्ति, बंधव्युच्छेदाभावात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-**

श्री गौतम स्वामी ने कहा भी है —

सभी तीर्थंकर भगवन्तों ने चारित्र को धारण किया है और सभी शिष्यों के लिए उनका उपदेश दिया है। हम पाँचवें चारित्र की प्राप्ति के लिए इन पाँचों भेदरूप चारित्र को नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार पाँचवें स्थल में यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतों की प्ररूपणा करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब संयतासंयतों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

संयतासंयतों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२४३।।

संयतासंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२४४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन प्रकृतियों का बंध उदय से पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार यहाँ नहीं है क्योंकि उनके बंधव्युच्छेद का अभाव है। पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पंचेन्द्रिय

त्रसचतुष्क-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभगादेय-यशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वोपलंभात्। देवगतित्रिक-वैक्रियिकद्विक-अयशःकीर्ति-तीर्थकराणां परोदयो बंधः, बंधोदययोरन्योन्यविरोधात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-अष्टकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वर-उच्चगोत्राणां बंधौ स्वोदयपरोदयौ स्तः, उभयथापि बंधविरोधाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-अष्टकषाय-पुरुषवेद-भय-जुगुप्सा-देवगतित्रिक-वैक्रियिकद्विक-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-तीर्थकर-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्।

सातासात-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। प्रत्ययाः सुगमाः, सामान्याणुव्रतिनां प्रत्ययेभ्यो भेदाभावात्। सर्वासां प्रकृतीनां देवगतिसंयुक्तो बंधः, अन्यगतीनां बंधाभावात्। द्विगतिकदेशव्रतिनः स्वामिनः, अन्यत्र तेषामभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, एकगुणस्थाने तदसंभवात्। अबंधा सन्ति, पर्यायार्थिकनयावलंबनात्। बंधव्युच्छेदो नास्ति, 'अबंधा णत्थि' इति सूत्रे वचनात्। ध्रुवबंधिनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः, अध्रुवबंधित्वात्।

जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु आदिक चार, त्रसचतुष्क, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ इनका ध्रुव उदय पाया जाता है। देवायु, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अयशकीर्ति और तीर्थंकर का परोदय बंध होता है क्योंकि इनके बंध और उदय का परस्पर में विरोध है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर और उच्चगोत्र का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, आठ कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवायु, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्णादिक चार, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रसादिक चार, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है।

साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि सामान्य अणुव्रती के प्रत्ययों से कोई भेद नहीं है। सब प्रकृतियों का देवगति संयुक्त बंध होता है क्योंकि अन्य गतियों के बंध का वहाँ अभाव है। दो गतियों के देशव्रती स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में उनका अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में उसकी संभावना नहीं है अथवा पर्यायार्थिक नय का अवलम्बन करके बंधाध्वान है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि 'अबंधक नहीं है' ऐसा सूत्र में कहा गया है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुवबंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्वसुखावहम् ।।

पंचषष्टितमे वर्षे मनुष्यपर्यायजीवनस्य सप्तचत्वारिंशत्तमे वर्षे संयमदिवसस्य वा प्रवेशस्य मम सुप्रभातं मंगलं भूयात्।

अधुना असंयतानां ज्ञानावरणादीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-वेउव्वियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२४५।।

श्री प्रथम तीर्थंकर महान् ऐसे ऋषभदेव भगवान के प्रसाद से मेरा यह प्रभात सुप्रभात होवे कि जिन्होंने भव्य जीवों को सुख प्रदान करने वाले ऐसे धर्मतीर्थ का प्रवर्तन किया है।

आज कार्तिक कृष्णा प्रतिपदा तिथि में मेरे मनुष्यपर्याय के पैंसठवें वर्ष के प्रवेश का और संयम दिवस के सैंतालीसवें वर्ष के प्रवेश का यह सुप्रभात मेरे लिए मंगलकारी होवे[१]।

अब असंयतजीवों के ज्ञानावरण आदि के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

असंयतों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक व वैक्रियिक अंगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगति व देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२४५।।

---

१. मैंने सन् १९३४ में शरदपूर्णिमा के दिन जन्म लिया था अत: सन् १९९८ में आज शरदपूर्णिमा के अगले दिन कार्तिक कृष्णा एकम के दिन ६५वें वर्ष का एवं सन् १९५२ में शरदपूर्णिमा के दिन ही आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत एवं गृहत्याग व्रत लेकर दीक्षा का संकल्प लिया था अत: ये आज का दिन मेरे लिए मंगलकारी हो।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अत्रोदययुक्तप्रकृतीनां बंधोदयव्युच्छेदाभावात् उदयाद्बंधः किं पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पञ्चान्तरायाणां स्वोदयो बंधः ध्रुवोदयत्वात्। देवगति-वैक्रियिकशरीर-वैक्रियिकांगोपांग-देवगतिप्रायोग्यानुपूर्विणां परोदयो बंधः, बंधोदययोः परस्परविरोधात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां बंधौ स्वोदयपरोदयौ उभयथापि बंधोपलंभात्।**

मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-औदारिकशरीर-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहननानां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः स्वोदयपरोदयौ बंधौ, उभयथापि बंधोपलंभात्। सम्यमिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्ट्योः परोदयः, स्वोदयेन स्वकबंधस्य तत्र विरोधदर्शनात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्तानां मिथ्यादृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ स्तः। उपरि स्वोदयश्चैव, विकलेन्द्रिय-स्थावर-सूक्ष्मअपर्याप्तकेषु सासादनादीनामभावात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ स्तः। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ स्वोदयश्चैव, अपर्याप्तकाले तस्य गुणस्थानस्याभावात्।

मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२४६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ उदययुक्त प्रकृतियों के बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव होने से उदय की अपेक्षा बंध क्या पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका स्वोदय बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवोदयी प्रकृतियाँ हैं। देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है क्योंकि इनके बंध और उदय का परस्पर विरोध है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनका बंध पाया जाता है।

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वहाँ दोनों प्रकार से भी इनका बंध पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में परोदय बंध होता है क्योंकि अपने उदय के साथ अपने बंध का वहाँ विरोध देखा जाता है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर और पर्याप्त का बंध मिथ्यादृष्टियों में स्वोदय-परोदय होता है। ऊपर इनका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि विकलेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्तकों में सासादन आदिक गुणस्थानों का अभाव है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में उनका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उस गुणस्थान का अभाव है।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पञ्चान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्ययशःकीर्तीणां बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरम उपलभ्यते। देवगतिद्विक-वैक्रियिकशरीरद्विक-समचतुरस्रसंस्थानानां बंधौ मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरौ।

कथं निरन्तरः ?

नैतद् वक्तव्यं, असंख्यातवर्षायुष्कतिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु शुभत्रिलेश्यावत्सु संख्यातवर्षायुष्केषु च निरन्तरबंध उपलभ्यते। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। पुरुषवेदस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरौ बंधौ स्तः।

कथं निरन्तरोऽत्र बंधः ?

पद्म-शुक्ललेश्यावत् तिर्यग्मनुष्येषु पुरुषवेदस्यैव बंध उपलभ्यते। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्ष-प्रकृतिबंधाभावात्।

मनुष्यगति-मनुष्यगत्यानुपूर्विणोः मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः बंधौ सान्तरनिरन्तरौ स्तः।

कथं निरन्तरः ?

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम पाया जाता है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग और समचतुरस्रसंस्थान का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरन्तर होता है।

शंका—निरन्तर बंध कैसे होता है ?

समाधान—ऐसा नहीं कहना चाहिए, क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों में तथा तीन शुभ लेश्या वाले संख्यातवर्षायुष्कों में भी उनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

ऊपर उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पुरुषवेद का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—निरन्तर बंध कैसे होता है ?

समाधान—क्योंकि पद्म और शुक्ल लेश्या वाले तिर्यंच एवं मनुष्यों में पुरुषवेद का ही बंध पाया जाता है। आगे के गुणस्थानों में उसका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—निरन्तर बंध कैसे होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आनतादिक देवों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। आगे के दो गुणस्थानों में उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ वे प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित हैं।

औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टियों और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—इनका निरन्तर बंध कैसे होता है ?

नैतद्, आनतादिदेवेषु निरन्तरबंध उपलभ्यते। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्। औदारिकद्विकस्य मिथ्यादृष्टिषु सासादनसम्यग्दृष्टिषु च सान्तरनिरन्तरौ बंधौ।

कथमत्र निरन्तरः ?

न, देवनारकयोर्निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्। वज्रवृषभसंहननस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्। प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वरादेयोच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरौ, असंख्यातवर्षायुष्केषु निरन्तरबंध उपलभ्यते। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-परघातोच्छ्वासानां बंधौ मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरौ, देवनारकयोर्निरन्तरबंध उपलभ्यते। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्गतिसंयुक्तः, सासादने निरयगत्या बिना त्रिगतिसंयुक्तः, सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। सातावेदनीय-पुरुषवेद-हास्य-रति-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-ओदय-यशःकीर्तीणां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोर्बंधः त्रिगतिसंयुक्तः, आभिः सह नरकगतेरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्ट्योः द्विगतिसंयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। औदारिकद्विकवज्रवृषभसंहननानां मिथ्यादृष्टिसासादनयोर्बंधः तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि देव और नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वह प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित है। वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वह प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित है। प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्कों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वह प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित है। पंचेन्द्रिय जाति, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि देव व नारकियों में इनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ वह प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित हैं।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई विशेषता नहीं है। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में चारों गतियों से संयुक्त, सासादन गुणस्थान में नरकगति के बिना तीन गतियों से संयुक्त तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि इनके साथ नरकगति के बंध का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ नरकगति और तिर्यग्गति का

असंयतसम्यग्दृष्टयोर्मनुष्यगतिसंयुक्तः। मनुष्यगतिद्विकस्य मनुष्यगतिसंयुक्तः। देवगतिद्विकस्य देवगतिसंयुक्तः। वैक्रियिकशरीरद्विकस्य मिथ्यादृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः, तिर्यग्मनुष्यगत्योरभावात्। सासादन-सम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवगतिसंयुक्तः। उच्चगोत्रस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तः, अन्यत्र तस्योदयाभावात्।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। नवरि देवगतिद्विकस्य बंधस्य नारकी जीवः स्वामी नास्ति, बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति। 'अबंधा णत्थि' इति वचनात्। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टिषु चतुर्विधो बंधः। सासादनादिषु त्रिविधः, ध्रुवबंधाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना द्विस्थानिकादीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रषट्कमवतार्यते —

वेट्ठाणी ओघं।।२४७।।

एक्कट्ठाणी ओघं।।२४८।।

मणुस्साउ-देवाउआणं को बंधो को अबंधो ?।।२४९।।

अभाव है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त होता है। सम्यक्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उनका बंध मनुष्यगति से संयुक्त होता है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। देवगति और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध देवगति से संयुक्त होता है।

वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का बंध मिथ्यादृष्टियों में दो गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि उनके साथ तिर्यग्गति और मनुष्यगति के बंध का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देवगति से संयुक्त उनका बंध होता है। उच्चगोत्र का बंध देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त होता है क्योंकि अन्य गतियों में उसके उदय का अभाव है।

चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं किन्तु इतनी विशेषता है कि देवगतिद्विक के बंध के नारकी जीव स्वामी नहीं हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि 'अबंधक नहीं हैं' ऐसा सूत्र में कहा गया है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टियों में चारों प्रकार का होता है। सासनादिकों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब द्विस्थानिक आदि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए छह सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

द्विस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२४७।।

एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२४८।।

मनुष्यायु और देवायु का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२४९।।

मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२५०।।

तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ?।।२५१।।

असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—द्विस्थानिकप्रकृतीनां यथा गुणस्थाने प्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या, विशेषाभावात्। मनुष्यायुर्देवायुषोः सम्यग्मिथ्यादृष्टिं विहाय त्रयोऽप्यसंयता बध्नन्ति। तीर्थंकरप्रकृतेर्बंधका असंयतसम्यग्दृष्टयो भवन्ति, संयताश्च किन्तु अत्र संयतानामधिकाराभावात् न तेषां कथनमस्ति।

एवं सप्तमस्थले असंयतानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्राष्टकं गतम्।

इति श्री षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचये गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संयममार्गणा-नामाष्टमोऽधिकारः समाप्तः।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२५०।।

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२५१।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२५२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—द्विस्थानिक प्रकृतियों की जैसे गुणस्थान में प्ररूपणा कही गई है वैसी ही यहाँ कहना चाहिए, क्योंकि इसमें कोई अन्तर नहीं है। मनुष्यायु और देवायु को सम्यग्मिथ्यादृष्टि को छोड़कर तीनों भी असंयत बांधते हैं। तीर्थंकर प्रकृति के बंध करने वाले असंयतसम्यग्दृष्टि होते हैं और संयमी होते हैं किन्तु यहाँ संयमियों का अधिकार नहीं है इसलिए यहाँ उनका कथन नहीं है।

इस प्रकार सातवें स्थल में असंयतों के बंध-अबंध का निरूपण करने वाले आठ सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के तृतीयखण्ड के ''बंधस्वामित्वविचय'' में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संयममार्गणा नाम का यह आठवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ दर्शनमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

दर्शनत्रयशून्या ये, कैवल्यदृग्भाग्जिनाः।
बंधप्रत्ययनिर्मुक्ता-स्तान् नमामो वयं मुदा।।१।।

अथ स्थलद्वयेन पंचभिः सूत्रैः बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे दर्शनमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुर्दर्शनिनां बंधाबंधप्ररूपणत्वेन ''दंसणाणु-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनिनां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''ओहि-'' इत्यादिसूत्रद्वयम् इति पातनिका सूचिता भवति।

अधुना चक्षुरचक्षुर्दर्शनवतां बंधाबंधकथनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति।।२५३।।

णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२५४।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२५५।।

अथ दर्शनमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो तीन दर्शन से शून्य — रहित हो चुके हैं, सम्पूर्ण बंध के कारणों से रहित हैं, ऐसे केवलदर्शन प्राप्त भगवन्तों को हम हर्षितमना नमस्कार करते हैं।।१।।

अब दो स्थलों द्वारा पाँच सूत्रों से 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड में दर्शनमार्गणा अधिकार प्रारंभ किया जाता है। इसमें पहले स्थल में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वालों के बंध-अबंध का प्ररूपण करने वाले ''दंसणाणु-'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। इसके बाद दूसरे स्थल में अवधिदर्शन-केवलदर्शन वालों के बंधस्वामित्व के कथनरूप से ''ओहि-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यहाँ समुदायपातनिका कही गई है।

अब चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी के बंध-अबंध का कथन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

दर्शनमार्गणानुसार चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवों की प्ररूपणा तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान जानना चाहिए।।२५३।।

इतनी विशेषता है कि सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२५४।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२५५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**चक्षुरचक्षुर्दर्शने द्वे अपि मिथ्यादृष्टिगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषायपर्यंतगुणस्थानवर्तिनां भवतः।**

त्रिजाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां चक्षुर्दर्शनिषु परोदयत्वोपलंभात् ओघमिति न घटते ?

न, द्रव्यार्थिकनयमवलम्ब्य स्थितदेशामर्शकसूत्रेषु विरोधाभावात्। मिथ्यादृष्टेरारभ्य क्षीणकषायनामद्वादशगुणस्थानवर्तिनो मुनयः सातावेदनीयं बध्नन्ति। अग्रेतनगुणस्थानयोः चक्षुरचक्षुर्दर्शनयोरभावादिति ज्ञातव्यं। एवं प्रथमस्थले चक्षुरचक्षुर्दर्शनवतां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

संप्रति अवधिकेवलदर्शनवतां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।।२५६।।

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अवधिज्ञानिनामेवावधिदर्शनं न च विभंगज्ञानिनां। केवलज्ञानिनां भगवतां केवलदर्शनं भवति ते द्वे अपि युगपदेव। तथाहि—**

दंसणपुव्वं णाणं, छदुमत्थाणं ण दुण्णि उवओगा।
जुगवं जह्मा केवलि-णाहे जुगवं तु ते दो वि[१]।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये दोनों ही मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर क्षीणकषायगुणस्थानपर्यंत जीव में पाये जाते हैं।

शंका—तीन जातियाँ, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण प्रकृतियों का चक्षुदर्शनियों में चूँकि परोदय बंध पाया जाता है अतएव 'उनकी प्ररूपणा ओघ के समान है' यह घटित नहीं होता ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन कर स्थित देशामर्शक सूत्रों में विरोध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि जीवों से प्रारंभ करके क्षीणकषाय नामक बारहवें गुणस्थानवर्ती मुनिक सातावेदनीय को बाँधते हैं आगे के सयोगिकेवली-अयोगिकेवली इन दो गुणस्थानों में चक्षुदर्शन अथवा अचक्षुदर्शन का अभाव है। ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन वाले जीवों के बंध और अबंध का निरूपण करने वाले तीन सूत्र हुए।

अब अवधिदर्शन और केवलदर्शन वालों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने केलिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

अवधिदर्शनी जीवों की प्ररूपणा अवधिज्ञानियों के समान है।।२५६।।

केवलदर्शनियों की प्ररूपणा केवलज्ञानियों के समान है।।२५७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अवधिज्ञानियों के ही अवधिदर्शन होता है, विभंगज्ञानियों के अवधिदर्शन नहीं होता है। केवलज्ञानी भगवन्तों के केवलदर्शन होता है इसलिए उनके केवलज्ञान और दर्शन दोनों एक साथ ही होते हैं। कहा भी है—

छद्मस्थ जीवों के दर्शनपूर्वक ज्ञान होता है इसलिए उनके दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते हैं। केवलज्ञानी भगवान में दोनों उपयोग एक साथ पाए जाते हैं, ऐसा जानना चाहिए।

---

१. द्रव्यसंग्रह गाथा ४४।

अवधिदर्शनिनां चतुर्थगुणस्थानादारभ्य क्षीणकषायपर्यंतमहामुनीनां या कर्मणां बंधव्यवस्था सैव मन्तव्या। केवलदर्शनिनां केवलसातावेदनीयस्य बंधमात्र एव, सोऽप्यस्तित्वमात्र एवेति ज्ञातव्यम्।

एवं केवलदर्शनप्राप्तयर्थं केवलः शुद्धात्मैव संततं श्रद्धातव्यो ज्ञातव्योऽनुचरितव्यश्च मुमुक्षुभिरिति। तदभेदरत्नत्रयस्य प्राप्तिर्यावन्न भवेत्तावद्भेदरत्नत्रयमाराधनीयं। तदपि यावन्न लभेत तावद्देशसंयममनुपालयद्भिर्भवद्भिर्भेदाभेदरत्नत्रयभावना कर्तव्या।

एवं द्वितीयस्थले अवधिकेवलदर्शनिनां बंधस्वामित्वकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

**इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनीज्ञानमती-
कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां दर्शनमार्गणानाम
नवमोऽधिकारः समाप्तः।**

अवधिदर्शन वालों के चौथे गुणस्थान से प्रारंभ करके क्षीणकषाय पर्यंत महामुनि तक जो कर्मों के बंध की व्यवस्था है, वही मानना चाहिए। केवलदर्शन वाले भगवन्तों में केवल सातावेदनीय का बंधमात्र ही है अर्थात् वह भी बंध अस्तित्वमात्र ही है, ऐसा जानना चाहिए।

यहाँ अभिप्राय यह है कि केवलदर्शन की प्राप्ति के लिए केवल शुद्धात्मा का ही सतत श्रद्धान करना चाहिए, ज्ञान करना चाहिए और आप मुमुक्षुजनों को उसी का ही आचरण करना चाहिए। वह अभेदरत्नत्रय की प्राप्ति जब तक न हो तब तक भेदरत्नत्रय की आराधना करना चाहिए और वह भेदरत्नत्रय भी जब तक न हो तब तक आप लोगों को देशसंयम का अनुपालन करते हुए भेद-अभेद रत्नत्रय की भावना भाते रहना चाहिए।

इस प्रकार दूसरे स्थल में अवधिदर्शन और केवलदर्शन वालों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

**इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के ''बंधस्वामित्वविचय'' नाम के तीसरे खण्ड में
गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में दर्शनमार्गणा
नाम का यह नवमाँ अधिकार पूर्ण हुआ।**

अथ लेश्यामार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

षड्लेश्याभिर्विनिर्मुक्ताः, सर्वप्रत्ययवर्जिताः।
निर्लेपास्तान् नुमो नित्यं, शुक्लध्यानस्य सिद्धये।।१।।

अथ स्थलत्रयेण सप्तदशसूत्रैर्बंधस्वामित्वविचये लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थलेऽशुभत्रिकलेश्यासु बंधाबंधकथनत्वेन ''लेस्साणुवादेण'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले तेजःपद्मलेश्यावत्सु बंधाबंधव्यवस्थाव्यवस्थापनत्वेन ''तेउलेस्सिय-'' इत्यादिना त्रयोदशसूत्राणि। ततः परं तृतीयस्थले शुक्ललेश्यायां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन ''सुक्क-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका भवति।

संप्रति लेश्यासु अशुभासु बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणमसंजदभंगो।।२५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**कृष्णलेश्यायां तावदुच्यते—पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रत्यरति-शोक-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगति-देवगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकवैक्रियिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-मनुष्यगति-देवगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-**

अथ लेश्यामार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो छहों लेश्याओं से विरहित एवं सर्व कर्म कारणों से छूटकर निर्लेप हो चुके हैं, शुक्लध्यान की सिद्धि के लिए हम उन्हें नित्य ही नमस्कार करते हैं।।१।।

अब यहाँ तीन स्थलों में सत्रह सूत्रों द्वारा ''बंधस्वामित्वविचय'' ग्रंथ में लेश्यामार्गणा नाम का दशवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। इसमें प्रथम स्थल में अशुभ तीन लेश्याओं में बंध और अबंध को कहते हुए 'लेस्साणुवादेण-' इत्यादि एक सूत्र है। इसके बाद दूसरे स्थल में पीत और पद्म लेश्या वालों के बंध और अबंध की व्यवस्था को व्यवस्थापित करते हुए 'तेउलेस्सिय-' इत्यादि तेरह सूत्र हैं। इसके बाद तीसरे स्थल में शुक्ल लेश्या में 'बंधस्वामित्व' का निरूपण करते हुए 'सुक्क-'' इत्यादि तीन सूत्र हैं, इस प्रकार यह समुदायपातनिका हुई है।

अब अशुभलेश्याओं में बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

लेश्यामार्गणानुसार कृष्ण लेश्या वाले, नील लेश्या वाले और कापोत लेश्या वाले जीवों की प्ररूपणा असंयतों के समान है।।२५८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पहले कृष्ण लेश्या की अपेक्षा प्ररूपणा करते हैं — पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक और वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्णादिक चार, मनुष्यगति और देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रसादिक चार, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर,

यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पञ्चान्तरायाणि कृष्णलेश्यावद्भिः चतुर्गुणस्थानवर्तिजीवैः बध्यन्ते।

तत्रोदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति परीक्षा असंयतजीवसमानास्ति।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां बंधः स्वोदयः, ध्रुवोदयत्वात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां परोदयः, बंधोदययोः समानकालवृत्तिविरोधात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ उभयथापि बंधोपलंभात्। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधोपलंभात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयः, स्वोदयबंधयोरेतेषु गुणस्थानेषु अक्रमवृत्तिविरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्तानां मिथ्यादृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ, अत्र प्रतिपक्षप्रकृतीनामपि उदयसंभवात्। उपरि स्वोदयश्चैव, विकलेन्द्रिय-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्तकेषु सासादनादीनामभावात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टिसासादन-सम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ। असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ, षष्ठीपृथिव्या आगतानामपर्याप्तकाले असंयतसम्यग्दृष्टीनां परोदयेन बंधसंभवात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टिषु स्वोदयः, एतेषामपर्याप्तकालाभावात्।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-

---

आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय ये प्रकृतियाँ कृष्ण लेश्या वाले चार गुणस्थानवर्ती जीवों द्वारा बध्यमान हैं। उनमें 'उदय से बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है या पश्चात्' इस प्रकार की परीक्षा यहाँ असंयत जीवों के समान है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का बंध स्वोदय होता है, क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का परोदय बंध होता है, क्योंकि इनके बंध और उदय का एक काल में होने का विरोध है। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनका बंध पाया जाता है। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय, परोदय बंध होता है, क्योंकि इनका यहाँ पर दोनों प्रकार से भी बंध पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उक्त प्रकृतियों का परोदय बंध होता है, क्योंकि इन दोनों गुणस्थानों में उन प्रकृतियों के अपने बंध और उदय का एक साथ होने का विरोध है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर और पर्याप्त का मिथ्यादृष्टियों में स्वोदय, परोदय बंध होता है, क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों का भी उदय संभव है। आगे के गुणस्थानों में इन प्रकृतियों का स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि विकलेन्द्रिय, स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त जीवों में सासादनादिक गुणस्थानों का अभाव है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि छठी पृथ्वी से पीछे आए हुए असंयतसम्यग्दृष्टियों के परोदय से बंध संभव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियों में स्वोदय बंध होता है, क्योंकि, उनमें अपर्याप्तकाल का अभाव है।

कृष्णलेश्या में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण

उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। सातासात-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तीणां सान्तरः, अध्रुवबंधित्वात्। पुरुषवेद-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-समचतुरस्त्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरः। उपरि निरन्तरः, निष्प्रतिपक्षबंधात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरनिरन्तरौ।

कथं निरन्तरः ?

न, आरणाच्युतदेवानां मनुष्येषूत्पन्नानां शुक्ललेश्याविनाशेण कृष्णलेश्यापरिणतानां अंतर्मुहूर्तकालं निरन्तरबंधोपलंभात्।

शुक्ललेश्यायां स्थितः पद्म-तेजः-कापोत-नीललेश्या उल्लंघ्य कथमक्रमेण कृष्णलेश्यापरिणतो भवेत् ?

न, शुक्ललेश्यायाः क्रमेण कापोत-नीललेश्ययोः परिणम्य पश्चात् कृष्णलेश्यापर्यायेण परिणमनाभ्युपगमात्। न च मनुष्यगतिबंधककालः कापोत-नीललेश्याकालात् स्तोकः, तत्तस्तस्य बहुत्वोपलंभात्। अथवा मध्यमशुक्ललेश्यावान् देवो यथा छिन्नायुष्को भूत्वा जघन्यशुक्ललेश्यादिना अपरिणम्य अशुभत्रिकलेश्यासु निपतति तथा सर्वे देवाः मृतक्षणेन एवानियमेनाशुभत्रिलेश्यासु निपतन्ति इति गृहीते पूर्वोक्तकथनं युज्यते। अन्ये पुनः आचार्याः कृष्णलेश्यायां मनुष्यगतिद्विकस्य निरन्तरं बंधं नेच्छन्ति, मनुष्यगतिबंधककालात् कापोतलेश्याबंधककालस्य बहुत्वाभ्युपगमात्।

तदपि कुतः ?

शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का बंध निरन्तर होता है, क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सान्तर बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं। पुरुषवेद, देवगतिद्विक, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, समचतुरस्त्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टियों में सान्तर बंध होता है। आगे निरन्तर बंध होता है, क्योंकि उक्त दोनों गुणस्थान वाले प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध से रहित हैं। मनुष्यगति और मनुष्यगति-प्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर निरन्तर बंध होता है।

निरन्तर बंध कैसे होता है ?

नहीं, क्योंकि मनुष्यों में उत्पन्न हुए आरण-अच्युत देवों के शुक्ललेश्या के विनाश से कृष्णलेश्या में परिणत होने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक निरन्तर बंध पाया जाता है।

शुक्ल लेश्या में स्थित जीव पद्म, तेज, कापोत और नील लेश्याओं को लांघकर कैसे एक साथ कृष्णलेश्या में परिणत हो सकता है ?

यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, शुक्ललेश्या से क्रमशः कापोत और नील लेश्याओं में परिणमन करके पश्चात् कृष्णलेश्या पर्याय से परिणमन स्वीकार किया गया है और मनुष्यगतिबंधककाल कापोत और नील लेश्या के काल से थोड़ा नहीं है, क्योंकि, वह उससे बहुत पाया जाता है। अथवा मध्यम शुक्ल लेश्या वाला देव जिस प्रकार आयु के क्षीण होने पर जघन्य शुक्ल लेश्यादिक से परिणमन न करके अशुभ तीन लेश्याओं में गिरता है, उसी प्रकार सभी देव मृत होने के समय से लेकर ही अनियम से अशुभ तीन लेश्याओं में गिरते हैं, ऐसा ग्रहण करने पर पूर्वोक्त कथन संगत बन जाता है।

परन्तु अन्य आचार्य कृष्णलेश्या में मनुष्यगतिद्विक का निरन्तर बंध नहीं मानते हैं, क्योंकि, उन्होंने मनुष्यगति बंधकाल के भीतर कापोतलेश्या का बंधक काल बहुत स्वीकार किया है।

वह भी कैसे ?

मृतदेवानां सर्वेषामपि कापोतलेश्यायामेव परिणमनाभ्युपगमात्। उपरि निरन्तरः, औदारिकशरीर तदंगोपांगयोः, मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरौ। कुतः ? नारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृति-बंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टिषु सान्तरनिरन्तरौ, नारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्।

प्रत्ययानामोघभंगाः। नवरि असंयतसम्यग्दृष्टिषु प्रत्ययेषु वैक्रियिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। औदारिकद्विक-मनुष्यगतिद्विकानां सम्यग्मिथ्यादृष्टौ औदारिककाययोग-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययैर्विना चत्वारिंशत्प्रत्ययाः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां वैक्रियिक-वैक्रियिकमिश्रप्रत्ययौ सर्वगुणस्थानप्रत्ययेषु सर्वत्रापनेतव्यौ। औदारिकद्विक-मनुष्यगतिद्विकानां असंयतसम्यग्दृष्टौ चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकमिश्र-औदारिकद्विक-कार्मण-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्। वज्रवृषभसंहननस्य सम्यग्मिथ्यादृष्टौ चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिककाययोग-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ चत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणयोग-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्ययानामभावात्।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-अस्थिर-अशुभ-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टौ चतुर्गतिसंयुक्तो बंधः। सासादने

क्योंकि, सभी मृत देवों का कापोतलेश्या में ही परिणमन स्वीकार किया है।

आगे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक उन दोनों प्रकृतियों का निरन्तर बंध होता है। औदारिकशरीर और औदारिक शरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है, क्योंकि, नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है, क्योंकि, वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

प्रत्ययों की प्ररूपणा ओघ के समान है। विशेष इतना है कि असंयतसम्यग्दृष्टि के प्रत्ययों में वैक्रियिकमिश्र काययोग प्रत्यय को कम करना चाहिए। औदारिकद्विक, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में औदारिक काययोग, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्ययों के बिना चालीस प्रत्यय हैं। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्रकाययोग प्रत्ययों में बंध नहीं होता, इसलिए सब गुणस्थानों के प्रत्ययों में इन दो प्रत्ययों को इस अपेक्षा सर्वत्र कम कर देना चाहिए। औदारिकद्विक, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चालीस प्रत्यय हैं, क्योंकि, वैक्रियिकमिश्र, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण काययोग, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्ययों का वहाँ अभाव है। वज्रर्षभसंहनन के सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चालीस प्रत्यय हैं, क्योंकि, औदारिक काययोग, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्ययों का वहाँ अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उसके चालीस प्रत्यय हैं क्योंकि, औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण काययोग, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्ययों का वहाँ अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, अस्थिर, अशुभ, अयशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों गतियों से संयुक्त बंध होता है। सासादन गुणस्थान में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि, वहाँ

त्रिगतिसंयुक्तः, नरकगतेरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः, नरक-तिर्यग्गत्योरभावात्। सातावेदनीय-पुरुषवेद-हास्य-रति-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्तीणां मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु त्रिगतिसंयुक्तः नरकगतेरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य सर्वगुणस्थानेषु बंधो मनुष्यगतिसंयुक्तः। औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनननानां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु मनुष्यगतिसंयुक्तः, अन्यगतिबंधाभावात्। देवगतिद्विकस्य देवगति-संयुक्तः।वैक्रियिकद्विकस्य मिथ्यादृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः, तिर्यग्मनुष्यगत्योरभावात्। सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवगतिसंयुक्तः, अन्यगतिबंधेन संयोगविरोधात्। उच्चगोत्रस्य सर्वगुणस्थानेषु देवगति-मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तराय-उच्चगोत्राणां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादनाः, त्रिगतिसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, देवगतेः कृष्णलेश्याया अभावात्। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयः नरकगतिसम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयश्च

नरकगति का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि वहाँ नरकगति और तिर्यग्गति का अभाव है। सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, समचतुरस्र संस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि वहाँ नरकगति का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि वहाँ नरकगति और तिर्यग्गति का अभाव है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का सब गुणस्थानों में मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। औदारिकशरीर, औदारिक शरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि वहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। देवगतिद्विक का देवगति से संयुक्त बंध होता है। वैक्रियिकद्विक का मिथ्यादृष्टियों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि तिर्यग्गति और मनुष्यगति के बंध का अभाव है। सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देवगति से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि, अन्य गतियों के बंध के साथ उसके संयोग का विरोध है। उच्चगोत्र का सब गुणस्थानों में देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, पाँच अन्तराय और उच्चगोत्र के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तथा तीन गतियों के सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं, क्योंकि यहाँ देवगति में कृष्णलेश्या का अभाव है। मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि जीव और

स्वामिनः। देवगतिद्विकवैक्रियिकद्विकानां द्विगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः, नरक-देवगत्योरभावात्।

बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति ''अबंधा णत्थि'' इति सूत्रवचनात्। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अध्रुवबंधिनां सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अनादिध्रुवयोरसंभवात्।

संप्रति द्विस्थानप्रकृतीनां प्ररूपणा क्रियते—अनंतानुबंधिनां चतुष्कषायानां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, सासादनेः तदुभयव्युच्छेदोपलंभात्। एवं तिर्यग्गत्यानुपूर्वप्रकृतेरपि वक्तव्यं।

कश्चिदाशंकते—असंयतसम्यग्दृष्टावपि तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृतेरुदयोऽस्ति, पुनः सासादने तदुदयव्युच्छेदः कथं संभवेत् ?

तस्य समाधानं क्रियते—नैतद् वक्तव्यं, कृष्णलेश्याया अनुषंगे सति तदुदयासंभवात्। अवशेषाणां प्रकृतीनामुदयव्युच्छेदो नास्ति, केवलं बंधव्युच्छेद एव।

सर्वासां प्रकृतीनां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-तिर्यगायुषां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेयानां बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमोपलंभात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां बंधौ सान्तरनिरन्तरौ।

कुतः ?

सप्तमपृथिवीस्थित-मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु तेजोवायुकायिकमिथ्यादृष्टिषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

नरकगति के सम्यग्मिथ्यादृष्टि व असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बंध के स्वामी हैं। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के दो गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीव बंध के स्वामी हैं, क्योंकि, नरक और देवगति में इनके बंध का अभाव है।

बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि 'अबंधक नहीं हैं', ऐसा सूत्र में कहा गया है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव है। अध्रुवबंधी प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि उनके अनादि और ध्रुव बंध का अभाव है।

अब द्विस्थान प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। इसी प्रकार तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी के भी कहना चाहिए।

कोई शंका करता है—असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में भी तो तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का उदय है, फिर उसका उदय व्युच्छेद सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में कैसे संभव है ?

उसका समाधान करते हैं—ऐसा नहीं है, क्योंकि कृष्णलेश्या का अनुषंग होने पर उसका वहाँ उदय असंभव है। शेष प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद नहीं है, केवल बंधव्युच्छेद ही है। सब प्रकृतियों का बंध स्वोदय-परोदय होता है, क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और तिर्यगायु का बंध निरन्तर होता है, क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है। स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर और अनादेय का बंध सान्तर होता है, क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम पाया जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का बंध सान्तर-निरन्तर होता है। कैसे ? क्योंकि सप्तम

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि तिर्यगायुषो मिथ्यादृष्टौ वैक्रियिकमिश्रकार्मणप्रत्ययौ अपनेतव्यौ। सासादने औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाः अपनेतव्याः। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां बंधश्चतुर्गतिसंयुक्तः। स्त्रीवेदस्य त्रिगतिसंयुक्तो, नरकगतेरभावात्। चतुःसंस्थान-चतुःसंहननानां द्विगतिसंयुक्तः, नरकदेवगत्योरभावात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टिषु त्रिगतिसंयुक्तः, देवगतेरभावात्। सासादने द्विगतिसंयुक्तः, नरकदेवगत्योरभावात्। तिर्यगायुः-तिर्यग्गति-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-उद्योतानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः, स्वाभाविकात्। स्त्यानगृद्धित्रिकादीनां प्रकृतीनां बंधस्य चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, अविरोधात्। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं, ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टिषु चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधः, अनादिध्रुवाभावात्। अवशेषाणां बंधौ साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

एकस्थानप्रकृतीनां प्ररूपणा क्रियते — मिथ्यात्व-एकेन्द्रिय-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-नरकगत्यानुपूर्वि-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, मिथ्यादृष्टौ चैव तदुभय-व्युच्छेदोपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां उदयव्युच्छेदो नास्ति, बंधव्युच्छेद एव। मिथ्यात्वस्य बंधः स्वोदयः। नरकत्रिकस्य परोदयः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि अविरुद्धबंधात्। मिथ्यात्वनिरयायुषोः बंधो निरन्तरः। अवशेषाणां सान्तरः एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि नरकत्रिक-वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्यया न सन्ति,

---

पृथिवी में स्थित मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि नारकियों में तथा तेज व वायुकायिक मिथ्यादृष्टि जीवों में भी उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि तिर्यगायु के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए। सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध चारों गतियों से संयुक्त होता है। स्त्रीवेद का बंध तीन गतियों से संयुक्त होता है, क्योंकि उसके साथ नरकगति के बंध का अभाव है। चार संस्थान और चार संहनन का बंध दो गतियों से संयुक्त होता है, क्योंकि उनके साथ नरकगति और देवगति के बंध का अभाव है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का मिथ्यादृष्टियों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि देवगति का वहाँ अभाव है। सासादन में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ नरकगति और देवगति का अभाव है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और उद्योत का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि ऐसा स्वभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय आदि प्रकृतियों के बंध के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है। बंधाध्वान और बंधविनष्ट स्थान सुगम है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ अनादि और ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि और अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

एकस्थान प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं — मिथ्यात्व, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, नारकानुपूर्वी, आतप, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। शेष प्रकृतियों का उदय व्युच्छेद नहीं है, क्योंकि बंधव्युच्छेद ही है। मिथ्यात्व का बंध स्वोदय होता है। नरकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है क्योंकि अपने उदय के साथ उनके बंध का विरोध है। शेष प्रकृतियों का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी उनके बंध में कोई विरोध नहीं है।

अपर्याप्तकाले एतासां बंधाभावात्। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां वैक्रियिककाययोगप्रत्ययोऽपनेतव्यः। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां वैक्रियिकद्विकप्रत्ययौ अपनेतव्यौ, देवनारकेषु एतयोर्बंधाभावात्। मिथ्यात्वस्य चतुर्गतिसंयुक्तः। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थानयोस्त्रिगतिसंयुक्तः, देवगतेरभावात्। असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-अपर्याप्तयोर्द्विगतिसंयुक्तः, नरकदेवगत्योरभावात्। नरकत्रिकस्य बंधो नरकगतिसंयुक्तः, शेषप्रकृतीनां बंधः तिर्यग्गतिसंयुक्तो भवति। नरकत्रिक-विकलत्रय-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिका-संहननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः।

बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थानेऽध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छेदः सुगमः। मिथ्यात्वस्य बंधश्चतुर्विधः। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मनुष्यायुषो मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु बंधौ स्वोदयपरोदयौ। असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयः। सर्वत्र निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः गुणस्थानसिद्धाः।

नवरि मिथ्यादृष्टौ वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ, सासादने वैक्रियिकमिश्र-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाः, असंयतसम्यग्दृष्टौ औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-स्त्री-पुरुषवेदप्रत्यया अपनेतव्याः, अशुभत्रिलेश्यासु मनुष्यायुर्बध्यमानानां देवासंयतसम्यग्दृष्टीनामनुपलंभात्। न च देवेषु पर्याप्तकेषु अशुभत्रिलेश्याः सन्ति, भवनवासि-वानव्यन्तर-ज्योतिष्केषु अपर्याप्तकदेवेषु एव तासामशुभलेश्यानामुपलंभात्। न च देवा नारका

मिथ्यात्व और नरकायु का बंध निरन्तर होता है। शेष प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है, क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि नरकायु, नरकगति और नारकानुपूर्वी के वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्यय नहीं हैं, क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनके बंध का अभाव है। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर के वैक्रियिककाययोग प्रत्यय कम करना चाहिए। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण शरीर के वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि देव और नारकियों में इनके बंध का अभाव है।

मिथ्यात्व का बंध चारों गतियों से संयुक्त होता है। नपुंसकवेद और हुण्डकसंस्थान का बंध तीन गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि इनके साथ देवगति के बंध का अभाव है। असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और अपर्याप्त का बंध दो गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि इनके साथ नरक और देवगति के बंध का अभाव है। नरकायु और नरकद्विक का बंध नरकगति से संयुक्त होता है। शेष प्रकृतियों का बंध तिर्यग्गति से संयुक्त होता है। नरकायु, नरकद्विक, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण प्रकृतियों के तिर्यंच और मनुष्य स्वामी हैं। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन के स्वामी चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान नहीं है, क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेद सुगम है। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

मनुष्यायु का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में उसका परोदय बंध होता है। सर्वत्र निरन्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय ओघ से सिद्ध हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को, सासादन गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को तथा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में औदारिकद्विक, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण, स्त्रीवेद और पुरुषवेद प्रत्ययों को कम

वा पर्याप्तनामकर्मोदयतिर्यग्मनुष्या अपर्याप्तगताः सन्तः आयुर्बध्नन्ति, तिर्यग्मनुष्यान् अपर्याप्तकान् मुक्त्वाऽन्यत्र तद्बंधानुपलंभात्। मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधो मनुष्यायुषः। त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टयो नरकगतिअसंयतसम्यग्दृष्टयश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति, कृष्णलेश्यायां वर्तमान संयतासंयतानामनुपलंभात्। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

देवायुषः सर्वत्र बंधः परोदयः, बंधोदययोः सतोः क्रमेण उदयबंधयोरत्यन्ताभावावस्थानात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्त्तेण विना बंधोपरमाभावात्। सर्वेषामपि जीवानां वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाः स्व-स्वगुणस्थान-प्रत्ययेभ्योऽपनेतव्याः। अस्य देवायुषो बंधो देवगतिसंयुक्तः। तिर्यग्मनुष्या एव स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति, उपर्यपि बंधोपलंभात्। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

तीर्थकरस्य बंधः परोदयः, बंधे उदयविरोधात् असंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्याष्टमगुणस्थानपर्यन्ता बंधका भवन्ति, उदयस्तु अर्हदावस्थायामेव। निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। ओघप्रत्ययेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकद्विक-कार्मणप्रत्ययाः अपनेतव्याः। देवगतिसंयुक्तो बंधः, कृष्णलेश्यावत्सु नारकेषु तीर्थकरबंधाभावेन मनुष्यगतिसंयुक्तत्वाभावात्। स्वामिनो मनुष्याश्चैव, अन्यत्रासंभवात्। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् असंयतसम्यग्दृष्टिस्थानेऽध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छेदो नास्ति, उपर्यपि बंधदर्शनात्। साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

करना चाहिए, क्योंकि अशुभ तीन लेश्याओं में मनुष्यायु को बांधने वाले देव असंयतसम्यग्दृष्टि पाये नहीं जाते और देव पर्याप्तकों में अशुभ तीन लेश्याएँ होती नहीं हैं, क्योंकि भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिषी अपर्याप्तक देवों में ही वे पाई जाती हैं तथा देव, नारकी अथवा पर्याप्त नाम कर्मोदययुक्त तिर्यञ्च व मनुष्य अपर्याप्त होकर आयु को बांधते नहीं हैं क्योंकि तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकों को छोड़कर अन्यत्र उसका बंध पाया नहीं जाता। मनुष्यायु का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि तथा नरकगति के असंयतसम्यग्दृष्टि भी स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि कृष्णलेश्या में वर्तमान संयतासंयत पाये नहीं जाते। सादि व अध्रुवबंध होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

देवायु का सर्वत्र परोदय बंध होता है, क्योंकि बंध और उदय के होने पर क्रम से उसके उदय और बंध का अत्यन्ताभाव अवस्थित है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। सभी जीवों के वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र, औदारिकमिश्र और कार्मणप्रत्ययों को अपने-अपने ओघ प्रत्ययों में से कम करना चाहिए। देवायु का देवगति संयुक्त बंध होता है। तिर्यञ्च और मनुष्य ही स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि आगे गुणस्थानों में भी बंध पाया जाता है। सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी हैं।

तीर्थंकर प्रकृति का बंध परोदय होता है, क्योंकि बंध के होने पर उसके उदय का विरोध है। असंयत सम्यग्दृष्टि से लेकर आठवें गुणस्थान तक तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाले होते हैं, किन्तु तीर्थंकर प्रकृति का उदय अर्हंत अवस्था में ही होता है। निरन्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। ओघ प्रत्ययों में औदारिकमिश्र काययोग, वैक्रियिक, वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग प्रत्ययों को कम करना चाहिए। देवगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि कृष्णलेश्या वाले नारकियों में तीर्थंकर प्रकृति के बंध का अभाव होने से मनुष्यगति के संयोग का अभाव है। स्वामी मनुष्य ही है, क्योंकि अन्य गतियों के कृष्णलेश्यायुक्त जीवों में उसके बंध की संभावना नहीं है। बंधाध्वान नहीं है, क्योंकि एक असंयतसम्यग्दृष्टि

एवमेव नीललेश्यायां प्ररूपयितव्यं। विशेषेण तु तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां सासादने सान्तरो बंधः, सप्तमपृथिव्याः सासादनजीवान् मुक्त्वा अन्यत्र एतासां सासादनेषु निरन्तरबंधानुपलंभात्। न च सप्तमपृथिव्यां नीललेश्यावन्तः सासादनाः सन्ति, तत्र कृष्णलेश्यां मुक्त्वान्यलेश्याभावात्।

कथं नीललेश्यायां मिथ्यादृष्टीनां निरन्तरो बंधः ?

नैतत्, तेजस्कायिक-वायुकायिकेषु नीललेश्यिकेषु तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां निरन्तरबंधोपलंभात्।

कश्चिदाशंकते—तृतीयपृथिव्यां नीललेश्याया अपि संभवात् तीर्थकरप्रकृतिबंधस्य मनुष्या इव नारका अपि स्वामिनो भवन्तीति किन्न प्ररूप्यते ? आचार्यः प्राह—न प्ररूप्यते, तत्र नीललेश्यायुक्ताधस्तनेन्द्रके तीर्थंकरप्रकृतिसत्कर्मिकमिथ्यादृष्टी-नामुपपादाभावात्। किं च तत्र तस्याः पृथिव्याः उत्कृष्टायुर्दर्शनात्। न च उत्कृष्टायुष्केषु तीर्थकरसत्कर्मिकमिथ्यादृष्टीनामुपपादोऽस्ति, तथोपदेशाभावात्। तीर्थकरप्रकृति-सत्त्वसहितमिथ्यादृष्टीनां नारकेषूत्पद्यमानानां सम्यग्दृष्टीनामिव कापोतलेश्यां मुक्त्वाऽन्यलेश्याऽऽभावात् वा न नील-कृष्णलेश्ययोः, तीर्थकरसत्कर्मिकाः सन्ति।

एवं कापोतलेश्यायामपि वक्तव्यं। विशेषेण तु तीर्थकरप्रकृतेः मनुष्या इव नारका अपि स्वामिनः। मनुष्यदेवगतिसंयुक्तो बंधः। ओघप्रत्ययेषु एकोऽपि प्रत्ययो नापनेतव्यः, वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानां सद्भावात्। औदारिकद्विक-मनुष्यगतिद्विक-वज्रवृषभसंहनननामसंयतसम्यग्दृष्टौ

गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेद नहीं है, क्योंकि ऊपर भी बंध देखा जाता है। सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

इसी प्रकार ही नीललेश्या में प्ररूपणा करना चाहिए। विशेष इतना है कि तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंध होता है, क्योंकि सप्तम पृथिवी के सासादन सम्यग्दृष्टियों को छोड़कर अन्यत्र इनका सासादन सम्यग्दृष्टियों में निरन्तर बंध पाया नहीं जाता और सप्तम पृथिवी में नीललेश्या वाले सासादनसम्यग्दृष्टि हैं नहीं, क्योंकि वहाँ कृष्ण लेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं का अभाव है।

नीललेश्या में मिथ्यादृष्टियों के उनका निरन्तर बंध कैसे होता है ?

नहीं, क्योंकि तेज व वायुकायिक नीललेश्या वाले जीवों में तिर्यग्गतिद्विक और नीचगोत्र का निरन्तर बंध पाया जाता है।

कोई शंका करता है—तृतीय पृथिवी में नीललेश्या की भी संभावना होने से तीर्थंकर प्रकृति के बंध के मनुष्यों के समान नारकी भी स्वामी होते हैं, ऐसा क्यों नहीं कहते ?

आचार्य देव कहते हैं—ऐसा नहीं कहते, क्योंकि वहाँ नीललेश्यायुक्त अधस्तन इन्द्रक में तीर्थंकर प्रकृति के सत्त्व वाले मिथ्यादृष्टियों की उत्पत्ति का अभाव है। इसका कारण यह है कि वहाँ उस पृथिवी की उत्कृष्ट आयु देखी जाती है और उत्कृष्ट आयु वाले जीवों में तीर्थंकरसतकर्मिक मिथ्यादृष्टियों का उत्पाद है नहीं, क्योंकि वैसा उपदेश नहीं है। अथवा नारकियों में उत्पन्न होने वाले तीर्थंकरसत्कर्मिक मिथ्यादृष्टि जीवों के सम्यग्दृष्टियों के समान कापोतलेश्या को छोड़कर अन्य लेश्याओं का अभाव होने से नील और कृष्ण लेश्या में तीर्थंकर की सत्ता वाले जीव नहीं होते।

इसी प्रकार कापोतलेश्या में भी कहना चाहिए। विशेषता इतनी है कि तीर्थंकर प्रकृति के मनुष्यों के समान नारकी भी स्वामी हैं। मनुष्य और देवगति से संयुक्त बंध होता है। ओघ प्रत्ययों में से एक भी प्रत्यय

वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययौ नापनेतव्यौ। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्विप्रकृतेर्बंधः पूर्वमुदयः पश्चात् व्युच्छिद्यते, सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। अन्योऽपि यदि भेदोऽस्ति सोऽपि चिन्तयित्वा वक्तव्यः।

अस्यायमर्थः —ये केचिन्मनुष्याः क्षायोपशमिकसम्यक्त्वेन औपशमिकसम्यक्त्वेन वा तीर्थंकरप्रकृतिं बद्ध्वा प्राग्नरकायुष्कबद्धाः सन्तः द्वितीये तृतीये वा नरके गच्छन्ति तेषां अन्तर्मुहूर्तात् प्रागेव मरणकाले मिथ्यात्वं आयाति सम्यक्त्वं विनश्यति तथापि ते मध्यमस्थितिं संप्राप्यैव नरके प्रयान्ति तत्र पर्याप्तिं समानीय सम्यक्त्वं लभन्ते तेषां कापोतलेश्यैव न च नीललेश्याभवति एतदेवात्र सूचितं वर्तते।

एवं प्रथमस्थलेऽशुभलेश्यावतां बंधाबंधप्ररूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

अधुना तेजःपद्मलेश्यावतां ज्ञानावरणादिकर्मबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-

---

कम नहीं करना चाहिए, क्योंकि वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का यहाँ सद्भाव है। औदारिकद्विक, मनुष्यगतिद्विक और वज्रर्षभसंहनन के असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम नहीं करना चाहिए। तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। अन्य भी यदि भेद है तो उसे भी विचार कर कहना चाहिए।

यहाँ अभिप्राय यह है कि — जो कोई मनुष्य क्षायोपशमिक सम्यक्त्व से या उपशम सम्यक्त्व सहित होकर तीर्थंकर प्रकृति को बांधकर — इससे पूर्व जिन्होंने नरकायु बांध ली थी, ऐसे ये दोनों में से कोई एक सम्यक्त्व सहित वाले जीव यदि वे दूसरे या तीसरे नरक में जाते हैं, तो उनके मरण से पूर्व अन्तर्मुहूर्त पहले ही मिथ्यात्व हो जाता है — सम्यक्त्व छूट जाता है फिर भी वे मध्यम स्थिति को प्राप्त करके ही नरक में जाते हैं वहाँ पर्याप्ति को पूर्ण करके सम्यक्त्व प्राप्त कर लेते हैं। उनके कापोतलेश्या ही होती है न कि नीललेश्या, यही यहाँ पर सूचित किया गया है।

इस प्रकार प्रथम स्थल में अशुभ तीन लेश्या वालों के बंध-अबंध के प्ररूपणरूप से एक सूत्र पूर्ण हुआ है।

अब तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों के ज्ञानावरण आदि कर्मों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

तेजलेश्या और पद्मलेश्या वाले जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास,

उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२५९।।

मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगति-वैक्रियिकद्विकानां पूर्वमुदयः पश्चात् बंधो व्युच्छिद्यते। अवशेषाणां प्रकृतीनां उदयात् बंधः पूर्वं पश्चात् वा व्युच्छिन्न इति परीक्षा नास्ति, अत्र बंधोदयव्युच्छेदाभावात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माण-पञ्चान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातावेदनीय-चतुस्संज्वलन-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वराणां सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयपरोदयौ बंधौ, अध्रुवोदयत्वात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां बंधः परोदयः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टीनां स्वोदयपरोदयौ, अपर्याप्तकाले उदयाभावात्। शेषेषु बंधः स्वोदयः, तेषामपर्याप्तकालस्याभावात्। सुभग-आदेय-यशःकीर्तीणां मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टिः इति बंधौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदयश्चैव,

---

प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक है और कौन अबंधक है ?।।२५९।।

मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं है।।२६०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है। शेष प्रकृतियों के उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह परीक्षा नहीं है, क्योंकि यहाँ उनके बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है, क्योंकि ये ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का सब गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का बंध परोदय होता है, क्योंकि अपने उदय के साथ इनके बंध का विरोध है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येक शरीर का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों के स्वोदय-परोदय होता है, क्योंकि अपर्याप्तकाल में इनके उदय का अभाव है। शेष गुणस्थानों में स्वोदय बंध होता है क्योंकि उनके अपर्याप्तकाल का अभाव है। सुभग, आदेय और यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। उच्चगोत्र

प्रतिपक्षोदयाभावात्। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्संयतासंयता इति बंधौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदयः, प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात्।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-चतुःसंज्वलन-भय-जुगुप्सा-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां बंधो निरन्तरः, अत्र ध्रुवबंधित्वात्। सातावदेनीय-हास्य-रति-स्थिर-शुभ-यशःकीर्त्तीणां मिथ्यादृष्टेरारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तानां सान्तरो बंधः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रसनामकर्मणोर्मिथ्यादृष्टि-जीवेषु बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, तिर्यग्मनुष्येषु सनत्कुमारादिदेवेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। पुरुषवेद-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतीनां बंधाभावात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुस्वर-सुभग-आदेय-उच्चगोत्राणां मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु सान्तरनिरन्तरौ बंधौ स्तः।

कुतः सान्तरः ?

तिर्यग्मनुष्येषु सान्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। नवरि देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां मिथ्यादृष्टिसासादनेषु औदारिकमिश्र-वैक्रियिकद्विक-कार्मणकाययोगप्रत्यया अपनेतव्याः, देवनारकेषु

का मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, चार संज्वलन, भय, जुगुप्सा, देवगतिद्विक, वैक्रियिकद्विक, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय का बंध निरन्तर होता है, क्योंकि यहाँ ये ध्रुवबंधी हैं। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रियजाति और त्रस नामकर्म का मिथ्यादृष्टि जीवों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है, क्योंकि तिर्यंचों, मनुष्यों और सनत्कुमारादि देवों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पुरुषवेद, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय से भी उसका बंध-विश्राम पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है, क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुस्वर, सुभग, आदेय और उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध उपलब्ध होता है। क्यों सान्तर है ? क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्यों में सान्तर बंध पाया जाता है। आगे के गुणस्थानों में निरन्तर बंध होता है, क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृतियों का बंध नहीं होता।

प्रत्यय सुगम हैं, क्योंकि ओघ प्रत्ययों से कोई विशेषता नहीं है। भेद इतना है कि देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकद्विक और कार्मण

अपर्याप्ततिर्यग्मनुष्येषु च एतासां बंधाभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ वैक्रियिककाययोगप्रत्ययः, असंयतसम्यग्दृष्टौ वैक्रियिकद्विकप्रत्ययोऽपनेतव्यः। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु सर्वप्रकृतीनामपि औदारिकमिश्र-प्रत्ययोऽपनेतव्यः, तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले शुभलेश्यानामभावात्।

पंचज्ञानावरण-षड्दर्शनावरण-सातावेदनीय-चतुस्संज्वलन-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-पंचेन्द्रिय-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रसचतुष्क-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-निर्माण-पंचान्तरायाणां मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्दृष्टिषु बंधस्त्रिगतिसंयुक्तः, नरकगतेरभावात्। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। उपरिमेषु देवगतिसंयुक्तः, तत्रान्यगतीनां बंधाभावात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां देवगतिसंयुक्तोऽन्यगतिभिर्बंधविरोधात्। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु देव-मनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तो बंधः।

सर्वासां प्रकृतीनां त्रिगति मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, नरकेषु तेजोलेश्यादिशुभलेश्याभावात्। द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताः स्वामिनः। नवरि वैक्रियिक-चतुष्कस्य तिर्यग्मनुष्यगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयता मनुष्यगति-संयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधोच्छेदो नास्ति, 'अबंधा णत्थि' इति वचनात्। ध्रुवबंधिनां

काययोग प्रत्ययों को कम करना चाहिए, क्योंकि देव-नारकियों तथा अपर्याप्त तिर्यंच व मनुष्यों में भी इनके बंध का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिक काययोग प्रत्यय तथा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में वैक्रियिक और वैक्रियिकमिश्र प्रत्ययों को कम करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सभी प्रकृतियों के औदारिकमिश्र प्रत्यय कम करना चाहिए, क्योंकि तिर्यंच व मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्तकाल में शुभ लेश्याओं का अभाव है। पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता वेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णादिक चार, अगुरुलघु आदिक चार, प्रशस्तविहायोगति, त्रस चतुष्क, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण और पाँच अन्तराय का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि उक्त लेश्याओं में नरकगति का अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है, क्योंकि वहाँ नरकगति और तिर्यग्गति का अभाव है। उपरिम गुणस्थानों में देवगति संयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का देवगति संयुक्त बंध होता है, क्योंकि अन्य गतियों के साथ इनके बंध का विरोध है। उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। ऊपर देवगति से संयुक्त बंध होता है।

सब प्रकृतियों के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं, क्योंकि नारकियों में तेजोलेश्या आदि शुभ लेश्याओं का अभाव है। दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। विशेषता इतनी है कि वैक्रियिकचतुष्क के तिर्यंच और मनुष्यगति के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंध व्युच्छेद नहीं है क्योंकि "अबंधक नहीं है" ऐसा सूत्र में निर्दिष्ट है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का

मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अथ द्विस्थानिक प्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

बेट्ठाणी ओघं।।२६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, सासादने द्वयोर्बंधोदययोर्व्युच्छेद-दर्शनात्। तिर्यग्गत्यानुपूर्विप्रकृतेः पुनः उदय एव नास्ति, तेजोलेश्याधिकारात्। शेषाणां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदश्चैव, उदयव्युच्छेदाभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां स्वोदयपरोदयौ। तिर्यग्गतित्रिक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां द्वयोरपि गुणस्थानयोः बंधौ स्वोदयपरोदयौ। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कतिर्यगायुषां बंधो निरन्तरः। शेषाणां सान्तरः एकसमयेनापि बंधोपरमोपलंभात्। सर्वप्रकृतीनां मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु चतुःपंचाशत्-एकोनपंचाशत् प्रत्ययाः, औदारिकमिश्रप्रत्ययाभावात्। नवरि तिर्यगायुषो औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः, पर्याप्तदेवान् मुक्त्वाऽन्यत्र बंधाभावात्। तिर्यग्गतिद्विक-उद्योत-चतुस्संस्थान-चतुःसंहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां औदारिकद्विक-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः, तिर्यग्मनुष्यान् मुक्त्वा देवानां एतासां प्रकृतीनां पर्याप्तापर्याप्तावस्थासु बंधोपलंभात्।**

तिर्यगायुस्तिर्यग्द्विक-उद्योतानां बंधस्तिर्यग्गतिसंयुक्तः। चतुस्संस्थान-चतुस्संहनन-अप्रशस्तविहायोगति-

---

बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब द्विस्थानिक प्रकृतियों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

द्विस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं, क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। परन्तु तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी का यहाँ उदय ही नहीं है, क्योंकि तेजोलेश्या का अधिकार है। शेष प्रकृतियों का केवल बंधुव्युच्छेद ही है, क्योंकि उनके उदय व्युच्छेद का अभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद का स्वोदय-परोदय बंध होता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्विक, चार संस्थान, चार संहनन, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का दोनों ही गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और तिर्यगायु का बंध निरन्तर होता है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है, क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम पाया जाता है। सब प्रकृतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से चौवन और उनंचास प्रत्यय है, क्योंकि औदारिकमिश्र प्रत्यय का यहाँ अभाव है। विशेष इतना है कि तिर्यगायु के औदारिकद्विक, वैक्रियिकमिश्र व कार्मण काययोग और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए, क्योंकि पर्याप्त देवों को छोड़कर अन्यत्र उसके बंध का अभाव है। तिर्यग्गतिद्विक, उद्योत, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र के औदारिकद्विक एवं नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए, क्योंकि तिर्यंच और मनुष्यों को छोड़कर देवों के पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में इनका बंध पाया जाता है।

तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्विक और उद्योत का बंध तिर्यग्गति से संयुक्त होता है। चार संस्थान, चार संहनन,

दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां द्विगतिसंयुक्तः, नरकदेवगत्योरभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां बंधस्त्रिगतिसंयुक्तः, नरकगतेरभावात्। तिर्यगायुस्तिर्यग्गतिद्विक-उद्योत-चतुस्संस्थान-चतुस्संहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां बंधस्य देवा एव स्वामिनः, शुभत्रिलेश्यावत्सु तिर्यग्मनुष्येषु एतासां बंधाभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेदानां त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादनाः स्वामिनः, नरकगतौ शुभत्रिकलेश्याभावात्। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधः, अनादि-ध्रुवाभावात्। शेषाणां बंधौ सर्वत्र साद्यध्रुवौ स्तः।

संप्रति-असातावेदनीयप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रमवतार्यते —

असादावेदणीयमोघं।।२६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**देशामर्शकसूत्रेणैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते — अयशःकीर्त्तेः पूर्वमुदयः पश्चाद् बंधो व्युच्छिद्यते, प्रमत्तासंयतसम्यग्दृष्ट्योः बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। असातावेदनीय-अरति-शोक-अस्थिराशुभानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, तथोपलंभात्। अस्थिर-अशुभयोर्बंधः स्वोदयः, ध्रुवोदयत्वात्। अयशःकीर्तेर्मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत् असंयतसम्यग्दृष्टिरिति स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदयश्चैव। असातावेदनीय-अरति-शोकानां स्वोदयपरोदयौ, सर्वत्राध्रुवोदयत्वात्। सान्तरो बंधः, सर्वासां एतासामेकसमयेनापि**

अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का बंध दो गतियों से संयुक्त होता है, क्योंकि नरक और देवगति के साथ इनके बंध का अभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद का बंध तीन गतियों से संयुक्त होता है, क्योंकि यहाँ नरकगति के बंध का अभाव है। तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्विक, उद्योत, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र के बंध के देव ही स्वामी हैं, क्योंकि शुभ तीन लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में इनके बंध का अभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं, क्योंकि नरकगति में शुभ तीन लेश्याओं का अभाव है। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है, क्योंकि वहाँ अनादि और ध्रुव बंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र सादि व अध्रुव होता है।

अब असातावेदनीय प्रकृति के बंधस्वामित्व की प्ररूपणा करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस देशामर्शक सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं। वह इस प्रकार है—अयशकीर्ति का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता है क्योंकि प्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर और अशुभ का पूर्व में बंध व पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि वैसा पाया जाता है। अस्थिर और अशुभ का बंध स्वोदय होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। अयशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है। असातावेदनीय, अरति और शोक का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि ये सर्वत्र अध्रुवोदयी हैं। सान्तर बंध होता है क्योंकि इन सबका एक समय से भी

सर्वगुणस्थानेषु बंधोपरमोपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्र-प्रत्ययोऽपनेतव्यः। त्रिगतिसंयुक्तो बंधः, मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तः। त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयो, द्विगतिसंयतासंयताः, मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति अध्वानं। बंधव्युच्छेदस्थानं सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना मिथ्यात्व-अप्रत्याख्यानादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्कमवतार्यते —

मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२६३।।

मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२६४।।

अपच्चक्खाणावरणीयमोघं।।२६५।।

पच्चक्खाणचउक्कमोघं।।२६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मिथ्यात्वस्य बंधौदयौ समं व्युच्छिन्नौ। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्त-सृपाटिकासंहनन-एकेन्द्रिय-आताप-स्थावरनामकर्मणां बंधव्युच्छेद एव, उदयाभावात्। मिथ्यात्वस्य स्वोदयेन**

सब गुणस्थानों में बंधविश्राम पाया जाता है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से यहाँ कोई भेद नहीं है। विशेषता इतनी है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय कम करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है। ऊपर उनका देवगतिसंयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक बंधाध्वान है। बंधव्युच्छेदस्थान सुगम है। सादि व अध्रुव बंध होता है, क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब मिथ्यात्व अप्रत्याख्यानादि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, एकेन्द्रियजाति, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और स्थावर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२६३।।

मिथ्यादृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२६४।।

अप्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६५।।

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं। नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर नामकर्म का केवल बंधव्युच्छेद ही

बंधः, उदयाभावे बंधानुपलंभात्। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां बंधः परोदयः, एतासां देवेषूदयाभावात्। मिथ्यात्वस्य बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। अन्यप्रकृतीनां सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमोपलंभात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्। विशेषेण तु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः, तत्र शुभलेश्याया अभावात्। नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्त सृपाटिकासंहनन-एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां औदारिकद्विक-कार्मण-नपुंसकवेदप्रत्ययाः अपनेतव्याः।

मिथ्यात्वबंधास्त्रिगतिसंयुक्तः। नपुंसकवेद-आताप-स्थावराणां तिर्यग्गतिसंयुक्तः। मिथ्यात्वबंधस्य त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां देवा एव स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य बंधश्चतुर्विधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अप्रत्याख्यानावरणीयानां ओघवत् ज्ञातव्यः। एतद् देशामर्शकसूत्रं। तेनैतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते— अप्रत्याख्यानावरणस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, असंयतसम्यग्दृष्टौ तदुभयव्युच्छेदोपलंभात्। अवशेषाणां बंधव्युच्छेदश्चैव। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य बंधौ स्वोदयपरोदयौ। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रर्षभनाराचसंहननानां बंधः परोदयः, शुभलेश्यावत्-तिर्यग्मनुष्येषु एतासां बंधाभावात्। अप्रत्याख्यानचतुष्क औदारिकशरीराणां बंधो निरन्तरः। मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु सान्तरः। उपरि निरन्तरः। एवं वज्रवृषभसंहननस्यापि वक्तव्यं। औदारिकशरीरांगोपांगस्य

है क्योंकि यहाँ इनके उदय का अभाव है। मिथ्यात्व का स्वोदय से बंध होता है क्योंकि उदय के अभाव में उसका बंध पाया नहीं जाता। नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर का बंध परोदय होता है क्योंकि इनका देवों के उदयाभाव है।

मिथ्यात्व का बंध निरन्तर होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी है। अन्य प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम पाया जाता है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई भेद नहीं है। विशेष इतना है कि यहाँ औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए क्योंकि उसमें शुभलेश्या का अभाव है। नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर के औदारिकद्विक, कार्मण और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए।

मिथ्यात्व का बंध तीन गतियों से संयुक्त होता है। नपुंसकवेद, आतप और स्थावर का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है। मिथ्यात्व के बंध के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव ही स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम है। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अप्रत्याख्यानावरणीय का गुणस्थानवत् जानना चाहिए, क्योंकि यह (२६५वाँ) सूत्र देशामर्शक है। इसलिए इस सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं—

अप्रत्याख्यानावरणीय का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। शेष प्रकृतियों का बंधव्युच्छेद ही है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध स्वोदय-परोदय होता है। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभवज्रनाराचसंहनन का बंध परोदय होता है क्योंकि शुभ लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में इनके बंध का अभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और औदारिकशरीर का बंध निरन्तर होता है। मनुष्यगतिद्विक का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर होता है। ऊपर उसका निरन्तर बंध होता है। इसी प्रकार वज्रर्षभसंहनन के भी कहना चाहिए। औदारिकशरीरांगोपांग का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर होता है। ऊपर निरन्तर होता है क्योंकि

बंधो मिथ्यादृष्टौ सान्तरः। उपरि निरन्तरः, एकेन्द्रियबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य द्वयोर्गुणस्थानयोः औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां औदारिकद्विक-नपुंसकवेदप्रत्ययाः त्रिषु गुणस्थानेषु अपनेतव्याः। सम्यग्मिथ्यादृष्टौ द्वौ एवापनेतव्यौ, औदारिकमिश्रप्रत्ययस्य पूर्वमेवाभावात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु त्रिगतिसंयुक्तो बंधः। उपरि द्विगति संयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य मनुष्यगतिसंयुक्तः। औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां मिथ्यादृष्टि-सासादनाः द्विगतिसंयुक्तं उपरि मनुष्यगतिसंयुक्तं बध्नंति अन्यगतिबंधाभावात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। अन्यत्र त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां बंधौ साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

प्रत्याख्यानचतुष्कस्यापि गुणस्थानवद्व्यवस्था वर्तते। अत्रापि तेजःपद्मलेश्ययोः बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य, संयतासंयतगुणस्थाने तेषां बंधोदययोरक्रमेण व्युच्छेदोपलंभात्। स्वोदयपरोदयौ, द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां बंधाविरोधात्। निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः, अप्रत्याख्यानप्रत्ययतुल्यत्वात्। मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु बंधस्त्रिगतिसंयुक्तः। सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तः।

वहाँ एकेन्द्रिय के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के दो गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन के औदारिकद्विक और नपुंसकवेद प्रत्ययों को तीन गुणस्थानों में कम करना चाहिए। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में दो प्रत्ययों को ही कम करना चाहिए क्योंकि औदारिकमिश्र प्रत्यय का पहले ही अभाव हो चुका है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है। ऊपर दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ नरकगति और तिर्यग्गति का अभाव है। मनुष्यगतिद्विक का मनुष्यगति संयुक्त बंध होता है। औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त तथा ऊपर मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि वहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं। प्रत्याख्यानचतुष्क की भी गुणस्थानवत् व्यवस्था है। यहाँ भी अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि संयतासंयत गुणस्थान में दोनों का एक साथ व्युच्छेद पाया जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों भी प्रकारों से उसके बंध में कोई विरोध नहीं है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि वे अप्रत्याख्यानावरण के प्रत्ययों के समान हैं। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है। ऊपर देवगति से संयुक्त बंध होता है।

त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। द्विगतिसंयतासंयताः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। उपरि त्रिविधः, ध्रुवाभावात्।

अधुना मनुष्यायुर्देवायुषोर्बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

मणुस्साउअस्स ओघभंगो।।२६७।।

देवाउअस्स ओघभंगो।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**मनुष्यायुषो बंधः परोदयः, तेजोलेश्यायां सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयेन बंधविरोधात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्तेण विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः, ओघविशेषात्। नवरि त्रिष्वपि गुणस्थानेषु औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः। मनुष्यगतिसंयुक्तः। देवा एव स्वामिनः। मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिरिति बंधाध्वानं। बंधव्युच्छेदः सुगमः। बंधौ साद्यध्रुवौ।**

देवायुषोऽपि बंधः गुणस्थानवद् ज्ञातव्यः। देवायुषो बंधः परोदय एव, स्वोदयेन बंधविरोधात्। देवगतेश्च्युत्वा कश्चिदपि पुनः देवो न भवितुमर्हति। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्तेण विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्यया ओघतुल्याः। नवरि ओघेऽपि वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययाः अपनेतव्याः। बंधो देवगतिसंयुक्तः। तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अप्रमत्तकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा बंधव्युच्छेदः भवति। अस्यायुषः साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः।

तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम है। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है।

अब मनुष्यायु और देवायु के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

मनुष्यायु की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६७।।

देवायु की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२६८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — मनुष्यायु का बंध परोदय होता है क्योंकि तेजोलेश्या में सब गुणस्थानों में स्वोदय से उसके बंध का विरोध है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि उनमें ओघ से कोई भेद नहीं है। विशेष इतना है कि तीनों ही गुणस्थानों में औदारिकद्विक, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए। मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। देव ही स्वामी हैं। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, यह बंधाध्वान हैं। बंधव्युच्छेद सुगम है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

देवायु का बंध भी गुणस्थान के समान जानना चाहिए। देवायु का बंध परोदय होता ही है क्योंकि स्वोदय से उसके बंध का विरोध है। देवगति से च्युत होकर कोई भी पुनः देव नहीं हो सकता है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय ओघ के समान हैं। विशेषता इतनी है कि ओघ में भी वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मणप्रत्ययों को कम करना चाहिए। देवगतिसंयुक्त बंध होता है। तिर्यंच और मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। अप्रमत्तकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छेद होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है।

संप्रति आहारद्विक-तीर्थकरप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२६९।।

तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ? असंजदसम्माइट्ठी जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२७०।।

पम्मलेस्सिएसु मिच्छत्तदंडओ णेरइय भंगो।।२७१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—आहारद्विकस्य अप्रमत्तसंयत एव बंधकः, उपरि तेजोलेश्याया अभावात्।

तीर्थकरप्रकृतेर्बंधस्य स्वामिनो देवा मनुष्याश्च। एवं तेजोलेश्यामाश्रित्य एषा प्ररूपणा कृता। यथा तेजोलेश्यायां प्ररूपणा कृता तथैव पद्मलेश्यायां अपि कर्तव्या। विशेषेण तु पुरुषवेदस्य यस्मिन् सान्तरो बंधः प्ररूपितस्तत्र सान्तरनिरन्तरौ इति वक्तव्यौ, पद्मलेश्यावत्सु तिर्यग्मनुष्येषु पुरुषवेदं मुक्त्वान्यवेदस्य बंधाभावात्। यासां प्रकृतीनां बंधस्य देवा एव स्वामिनः तासां स्त्रीवेदप्रत्ययोऽपनेतव्यः देवेषु पद्मलेश्यायां स्त्रीवेदानुपलंभात्। पंचेन्द्रियत्रसप्रकृतीनां बंधो निरन्तर इति वक्तव्यः, तेजोलेश्यायां एतासां बंधस्य सान्तरनिरन्तरत्वोपलंभात्। औदारिकशरीरांगोपांगस्य बंधः परोदयः। निरन्तरः, पद्मलेश्यायां अंगोपांगेन विना बंधाभावात्।

अब आहारकद्विक और तीर्थंकर प्रकृति के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ? अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२६९।।

तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ? असंयतसम्यग्दृष्टियों से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२७०।।

पद्मलेश्या वाले जीवों में मिथ्यात्वदण्डक की प्ररूपणा नारकियों के समान है।।२७१।।

सिद्धान्तचिंमामणिटीका — आहारकद्विक के अप्रमत्तसंयत ही बंधक हैं क्योंकि इससे ऊपर के गुणस्थानों में तेजोलेश्या का अभाव है।

विशेष इतना है कि तीर्थंकर प्रकृति के बंध के स्वामी देव व मनुष्य हैं। इस प्रकार तेजोलेश्या का आश्रय कर यह प्ररूपणा की गई है। जिस प्रकार तेजोलेश्या में प्ररूपणा की है, उसी प्रकार पद्मलेश्या में भी करना चाहिए। विशेषता यह है कि पुरुषवेद का जहाँ सान्तर बंध कहा गया है वहाँ 'सान्तर-निरन्तर' ऐसा कहना चाहिए क्योंकि पद्मलेश्यायुक्त तिर्यंच व मनुष्यों में पुरुषवेद को छोड़कर अन्य वेद के बंध का अभाव है। जिन प्रकृतियों के बंध के देव ही स्वामी हैं, उनके स्त्रीवेद प्रत्यय को कम करना चाहिए क्योंकि देवों में पद्मलेश्या में स्त्रीवेद नहीं पाया जाता। पंचेन्द्रिय जाति और त्रस प्रकृतियों का बंध निरन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए क्योंकि तेजोलेश्या में इनके बंध के सान्तर-निरन्तरता पाई जाती है। औदारिकशरीर आंगोपांग का बंध परोदय से होता है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि पद्मलेश्या में आंगोपांग के बिना बंध का अभाव है।

पद्मलेश्यायां प्रकृतिबंधगतभेदप्ररूपणार्थमुच्यते—

पद्मलेश्यावत्सु मिथ्यात्वदण्डको नारकवद्ज्ञातव्यः, एकेन्द्रियातापस्थावराणां बंधाभावात्। एतावांश्चैव भेदोऽन्यो नास्ति। यद्यस्ति तर्हि चिंतयित्वा वक्तव्यो भवति।

एवं तेजःपद्मलेश्यावतां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन त्रयोदशसूत्राणि गतानि।

अधुना शुक्लावतां बंधाबंधनिरूपणाय सूत्रमवतार्यते —

सुक्कलेस्सिएसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो।।२७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतेन सूचितार्थप्ररूपणा क्रियते—पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, सूक्ष्मसांपरायिकेषु बंधव्युच्छित्तिः, क्षीणकषायेषु उदयव्युच्छित्तिरूपलभ्यते। यशकीर्ति उच्चगोत्रयोरपि एवमेव वक्तव्यं। विशेषेण तूदयव्युच्छेदोऽत्र नास्ति, अयोगिकेवलिनि उदयव्युच्छेददर्शनात्।**

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। मिथ्यादृष्टेरारभ्य असंयतसम्यग्दृष्टिपर्यंतं यशःकीर्तेः स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदयश्चैव बंधः, प्रतिपक्षोदयाभावात्। मिथ्यादृष्टेरारभ्य संयतासंयतपर्यन्तं उच्चगोत्रबंधौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदय एव, नीचगोत्रोदयाभावात्।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-पंचान्तरायाणां बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। यशःकीर्तेः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्त इति बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

पद्मलेश्या में प्रकृतिबंधगत भेद के प्ररूपणार्थ आगे कहते हैं—पद्मलेश्या वाले जीवों में मिथ्यात्वदण्डक की प्ररूपणा नारकियों के समान है क्योंकि उनके एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर के बंध का अभाव है। केवल इतना ही भेद है और कुछ भी नहीं है। यदि कुछ भेद है तो उसे विचार कर कहना चाहिए।

इस प्रकार तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालों के बंधस्वामित्व का निरूपण करने वाले तेरह सूत्र पूर्ण हुए।

अब शुक्ललेश्या वालों के बंध-अबंध का निरूपण करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

शुक्ललेश्या वाले जीवों में तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।२७२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इस सूत्र से सूचित अर्थ की प्ररूपणा करते हैं—पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि सूक्ष्मसाम्परायिक और क्षीणकषाय गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। यशकीर्ति और उच्चगोत्र के भी इसी प्रकार कहना चाहिए। विशेष इतना है कि उनका उदय-व्युच्छेद यहाँ नहीं है क्योंकि अयोगिकेवली गुणस्थान में उनका उदयव्युच्छेद देखा जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक यशकीर्ति का स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है। मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक उच्चगोत्र का बंध स्वोदय-परोदय होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ नीचगोत्र के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। यशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी वहाँ

मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु उच्चगोत्रस्य बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, शुक्ललेश्यासहित-तिर्यग्मनुष्येषु निरन्तर बंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि प्रत्ययेषु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः, तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टीनामपर्याप्तकाले शुभत्रिकलेश्यानामभावात्।

मिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानवर्तिषु बंधो देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तश्चैव, अन्यगति-बंधाभावात्। त्रिगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः, द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। सासादनादिषु त्रिविधः, ध्रुवबंधाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

संप्रति एकस्थान-द्विस्थानप्रकृतीः स्थापयित्वा उपरिमास्तावत्प्ररूप्यन्ते—

निद्रा-प्रचलयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, अपूर्वकरणे बंधव्युच्छित्तिः क्षीणकषाये उदयव्युच्छित्तिर्भवति। स्वोदय-परोदयौ बंधौ, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। विशेषेण मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्र-प्रत्ययोऽपनेतव्यः। मिथ्यादृष्ट्यादि-चतुर्गुणस्थानेषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तः। त्रिगतिमिथ्यादृष्ट्यादिचतुर्गुणस्थानपर्यन्ताः,

---

उसका बंधविश्राम देखा जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उच्चगोत्र का बंध सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच और मनुष्यों में उसका निरन्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान के प्रत्ययों में से औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए क्योंकि तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों के अपर्याप्तकाल में शुभ तीन लेश्याओं का अभाव है।

मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। ऊपर देवगति संयुक्त ही बंध होता है क्योंकि वहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चार प्रकार का बंध होता है। सासादनादिक गुणस्थानों में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब एकस्थानिक और द्विस्थानिक प्रकृतियों को छोड़कर उपरिम प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—

निद्रा और प्रचला का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अपूर्वकरण और क्षीणकषाय गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं।

प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। ऊपर देवगति से संयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा

द्विगतिसंयतासंयता, मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अपूर्वकरणकालस्य संख्याततमभागं गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते।

असातावेदनीयस्य पूर्वं बंधो व्युच्छिन्नः। उदयव्युच्छेदो नास्ति। अरतिशोकयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, प्रमत्तगुणस्थाने बंधस्य अपूर्वकरणे उदयस्यव्युच्छित्तिश्चोपलभ्यते। अस्थिर-अशुभयोर्बंधव्युच्छेद एव, शुक्ललेश्येषु सर्वत्रोदयदर्शनात्। अयशःकीर्त्तेः पूर्वमुदयस्य पश्चाद् बंधस्य व्युच्छेदः, प्रमत्तमुनौ बंधव्युच्छित्तिरसंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छित्तिरूपलभ्यते। असातावेदनीय-अरति-शोकानां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। अस्थिराशुभयोः स्वोदयश्चैव, ध्रुवोदयत्वात्। अयशःकीर्त्तेः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयत-सम्यग्दृष्टिरिति स्वोदयपरोदयौ। उपरि परोदय एव, यशःकीर्त्तेर्नियमेनोदयदर्शनात्।

षण्णामपि प्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। प्रत्यया ओघतुल्याः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्र प्रत्ययोऽपनेतव्यः। आद्यचतुर्गुणस्थानवर्तिषु षण्णां प्रकृतीनां बंधो देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तः। त्रिगत्यसंयता द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। बंधौ षण्णामपि साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अप्रत्याख्यानावरणस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, असंयतसम्यग्दृष्टौ द्वयोर्व्युच्छेददर्शनात्। शेषाणां बंधव्युच्छेद एव, उदयव्युच्छेदानुपलंभात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य स्वोदयपरोदयाभ्यामपि बंधः, अध्रुवोदयत्वात्। अवशेषाणां बंधः परोदयः, शुक्ललेश्यायां सर्वगुणस्थानेषु स्वोदयेन एतासां बंधविरोधात्।।

मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। अपूर्वकरणकाल के संख्यातवें भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है।

असातावेदनीय का पूर्व में बंध व्युच्छिन्न होता है। उदयव्युच्छिन्न नहीं है। अरति और शोक का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि अप्रमत्त और अपूर्वकरण गुणस्थानों में क्रम से उनके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। अस्थिर और अशुभ का बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि शुक्ललेश्या वाले जीवों में सर्वत्र उनका उदय देखा जाता है। अयशकीर्ति का पूर्व में उदय का और पश्चात् बंध का व्युच्छेद होता है क्योंकि प्रमत्त मुनि के और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में उसके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। असातावेदनीय, अरति और शोक का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। अस्थिर और अशुभ का स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। अयशकीर्ति का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर परोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ नियम से यशकीर्ति का उदय देखा जाता है।

छहों प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है। प्रत्यय ओघ के समान हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में छहों प्रकृतियों का बंध देव और मनुष्यगति से संयुक्त होता है। ऊपर देवगति से संयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के असंयत, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। छहों प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अप्रत्याख्यानावरणीय का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। शेष प्रकृतियों का बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि उनका उदयव्युच्छेद नहीं पाया जाता। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का स्वोदय-परोदय से बंध होता है क्योंकि वह

अप्रत्याख्यानचतुष्क-मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विकानां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। वज्रवृषभसंहननस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानामौदारिकद्विक-स्त्री-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः, देवेषु एतासामभावात्। अप्रत्याख्यान-चतुष्कस्य द्विगतिसंयुक्तो बंधः। अवशेषाणां मनुष्यगतिसंयुक्तः। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य त्रिगतिजीवाः स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। उपरि त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

प्रत्याख्यानावरणीयस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते, संयतासंयते तदुभयव्युच्छेददर्शनात्। स्वोदय-परोदयौ बंधौ, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः, तिर्यग्मनुष्यमिथ्यादृष्टि-सासादनेषु अपर्याप्तकाले शुभलेश्यानामभावात्। असंयतेषु बंधो देवमनुष्यगति संयुक्तः, संयतासंयतेषु देवगतिसंयुक्तः। त्रिगति-असंयतगुणस्थानानि, द्विगतिसंयतासंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। उपरि त्रिविधो ध्रुवाभावात्।

अध्रुवोदयी हैं। शेष प्रकृतियों का बंध परोदय होता है क्योंकि शुक्ललेश्या में सब गुणस्थानों में स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यगतिद्विक और औदारिकद्विक का बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है। वज्रर्षभसंहनन का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर बंध होता है। ऊपर उसका निरन्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन के औदारिकद्विक, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि देवों में यहाँ इन प्रत्ययों का अभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का दो गतियों से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रत्ययों का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के तीन गतियों के जीव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्न स्थान सुगम हैं। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

प्रत्याख्यानावरणीय का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि संयतासंयत गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवोदयी प्रकृति है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय कम करना चाहिए क्योंकि तिर्यंच और मनुष्य मिथ्यादृष्टि एवं सासादनसम्यग्दृष्टियों में अपर्याप्तकाल में शुभ लेश्याओं का अभाव है। असंयतों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। संयतासंयतों में देवगति से संयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के असंयत गुणस्थान और दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधविनष्टस्थान सुगम हैं। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है।

पुरुषवेद-क्रोधसंज्वलनयोर्बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, अनिवृत्तिकरणगुणस्थाने तदुभयव्युच्छित्तिर्भवति। स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधोपलंभात्। क्रोधसंज्वलनस्य बंधो निरन्तरो, ध्रुवबंधित्वात्। पुरुषवेदस्य आद्ययोर्गुणस्थानयोः सान्तरनिरन्तरौ, शुक्ललेश्यावत्सु तिर्यग्मनुष्येषु पुरुषवेदं मुक्त्वान्यवेदयोर्बंधाभावात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। चतुर्षु असंयतगुणस्थानेषु द्विगतिसंयुक्तः, उपरि देवगतिसंयुक्तो बंधः अगतिसंयुक्तो वा। त्रिगतिअसंयतगुणस्थानानि द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः।

बंधाध्वानं सुगमं। अनिवृत्तिकरणकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। क्रोधसंज्वलनस्य मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। उपरि त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। पुरुषवेदस्य साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मानमायालोभसंज्वलनानां क्रोधसंज्वलनवद्भंगः। विशेषेण तु बंधव्युच्छेदस्थानं ज्ञात्वा वक्तव्यः।

हास्य-रति-भय-जुगुप्सानां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, अपूर्वकरण-चरमसमये तदुभयव्युच्छेददर्शनात्। बंधौ स्वोदयपरोदयौ, अध्रुवोदयत्वात्। मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति हास्यरत्योर्बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। भयजुगुप्सयोर्निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादनेषु औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। चतुर्षु असंयतेषु मनुष्य-देवगतिसंयुक्तः। उपरि

पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि अनिवृत्तिकरणगुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से ही बंध पाया जाता है। संज्वलनक्रोध का बंध निरन्तर होता है क्योंकि वह ध्रुवबंधी है। पुरुषवेद का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में पुरुषवेद को छोड़कर अन्य वेदों के बंध का अभाव है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय कम करना चाहिए। चार असंयत गुणस्थानों में दो गतियों से संयुक्त और ऊपर देवगति से संयुक्त अथवा अगतिसंयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के असंयतगुणस्थान, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। अनिवृत्तिकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। संज्वलनक्रोध का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। पुरुषवेद का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

संज्वलन मान, माया और लोभ की प्ररूपणा संज्वलन क्रोध के समान है। विशेषता इतनी है कि बंधव्युच्छेदस्थान को जानकर कहना चाहिए।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि अपूर्वकरण के अंतिम समय में उन दोनों का व्युच्छेद देखा जाता है। बंध उनका स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक हास्य व रति का सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। भय और जुगुप्सा का निरन्तर बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में मनुष्य और देवगति से संयुक्त बंध होता है। ऊपर देवगतिसंयुक्त और

देवगतिसंयुक्तोऽगतिसंयुक्तश्च। त्रिगतिचतुरसंयता द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। भयजुगुप्सयोर्मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। उपरि त्रिविधः, ध्रुवाभावात्। हास्यरत्योः सर्वत्र साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मनुष्यायुषो बंधव्युच्छेद एव, शुक्ललेश्यायां उदयव्युच्छेदानुपलंभात्। परोदयो बंधः, शुक्ललेश्यायां सर्वत्र स्वोदयेन बंधविरोधात्। निरन्तरः, अन्तमुहूर्त्तेण विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-स्त्रीवेद-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः। मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। देवाः स्वामिनः। मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टय इति बंधाध्वानं। बंधव्युच्छिन्नस्थानं सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधौ, अध्रुवबंधित्वात्।

देवायुषः पूर्वमुदयस्य पश्चाद् बंधस्य व्युच्छेदोऽस्ति, अप्रमत्तासंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। निरन्तरः, अन्तर्मुहूर्तेण विना बंधोपरमाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि मिश्रगुणस्थानवर्जितत्रि-असंयतगुणस्थानेषु वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्यया अपनेतव्याः। देवगतिसंयुक्तः बंधः। मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्संयतासंयता इति तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। उपरि मनुष्याश्चैव। बंधाध्वानं सुगमं। अप्रमत्तकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां पूर्वमुदयस्य पश्चाद्बंधस्य व्युच्छेदः, अपूर्वासंयतसम्यग्दृष्टिषु

अगतिसंयुक्त बंध होता है। तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। भय और जुगुप्सा का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है। हास्य और रति का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

मनुष्यायु का केवल बंधव्युच्छेद ही होता है क्योंकि शुक्ललेश्या में उसका उदयव्युच्छेद नहीं पाया जाता। परोदय बंध होता है क्योंकि शुक्ललेश्या में सर्वत्र स्वोदय से उसके बंध का विरोध है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में औदारिकद्विक, वैक्रियिकमिश्र, कार्मण काययोग, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए। मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। देव स्वामी हैं। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक बंधाध्वान है। बंधव्युच्छेदस्थान सुगम है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

देवायु के पूर्व में उदय का और पश्चात् बंध का व्युच्छेद होता है क्योंकि अप्रमत्त और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से उसके बंध का विरोध है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि अन्तर्मुहूर्त के बिना उसके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों को कम करना चाहिए। देवगतिसंयुक्त बंध होता है। मिथ्यादृष्टि से लेकर संयतासंयत तक तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। ऊपर मनुष्य ही स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। अप्रमत्तकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वह अध्रुवबंधी है।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के पूर्व में उदय का और पश्चात् बंध का व्युच्छेद होता है क्योंकि

बंधोदयव्युच्छेदोपलंभात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदश्चैव, शुक्ललेश्यायामुदयव्युच्छेदानुपलंभात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माणानां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति सुस्वराणां स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधाविरोधात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां मिश्रगुणस्थानवर्जितत्रि-असंयतगुणस्थानवर्तिषु बंधौ स्वोदयपरोदयौ। सुभगादेययोः मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावदसंयतसम्यग्दृष्टिरिति बंधः स्वोदयपरोदयौ। अन्यत्र स्वोदयश्चैव, अपर्याप्तकालाभावात्। नवरि प्रमत्तसंयतेषु परघात-उच्छ्वासयोः स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदय एव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुक-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माणनाम्नां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधित्वोपलंभात्। समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयानां मिथ्यादृष्टि-सासादनयोः सान्तरनिरन्तरौ।

भवतु नाम, शुक्ललेश्यायुक्ततिर्यग्मनुष्येषु देवगतिसंयुक्तं बध्यमानेषु निरन्तरो बंधः, न सान्तरः ?

न, देवेषु शुक्ललेश्यायुक्तेषु सान्तरबंधोपलंभात्। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। स्थिरशुभयोः

अपूर्वकरण व असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रमशः उनके बंध व उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। शेष प्रकृतियों का केवल बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि शुक्ललेश्या में उनका उदय व्युच्छेद नहीं पाया जाता। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। पंचेन्द्रियजाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ और निर्माण का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ ये ध्रुवोदयी हैं। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकारों से ही इनके बंध में कोई विरोध नहीं है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। अन्य गुणस्थानों में स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ अपर्याप्तकाल का अभाव है। विशेषता इतनी है कि प्रमत्तसंयतों में परघात और उच्छ्वास का स्वोदय-परोदय बंध होता है। सुभग और आदेय का मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है।

देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक, तैजस व कार्मण शरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर और निर्माण नामकर्मों का निरन्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ इनमें ध्रुवबंधीपना पाया जाता है। समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर और आदेय का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है।

शंका—इन प्रकृतियों को देवगति से संयुक्त बांधने वाले शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में निरन्तर बंध भले ही हो, परन्तु सान्तर बंध होना संभव नहीं है ?

समाधान—ऐसा नहीं है, क्योंकि शुक्ललेश्या वाले देवों में उनका सान्तर बंध पाया जाता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। स्थिर और शुभ का मिथ्यादृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध

मिथ्यादृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्त इति सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां बंधो देवगतिसंयुक्तः। शेषाणां प्रकृतीनां मिथ्यादृष्टि-सासादन-असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरि देवगतिसंयुक्तः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां द्विगतिमिथ्यादृष्टि-सासादन-मिश्र-असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधस्य त्रिगति मिथ्यादृष्टि-सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। अपूर्वकरणकालस्य संख्यातान् भागान् गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माणानां मिथ्यादृष्टौ बंधश्चतुर्विधः। उपरि त्रिविधः, ध्रुवबंधित्वात्। शेषाणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः।

आहारद्विकस्य ओघवद्भंगः। तीर्थकरप्रकृतेरपि गुणस्थानवद् भंगः, विशेषेण तु द्विगति-असंयतसम्यग्दृष्टयो मनुष्यगति-संयतासंयतादयश्च स्वामिनः सन्ति।

संप्रति सातावेदनीय-द्विस्थानिक-एकस्थानिकप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो।।२७३।।

बेट्ठाणि-एक्कट्ठाणीणं णवगेवज्ज विमाणवासियदेवाणं भंगो।।२७४।।

का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं। देवगति और वैक्रियिकद्विक का बंध देवगतिसंयुक्त होता है। शेष प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। ऊपर देवगति से संयुक्त होता है।

देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के दो गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि व संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम हैं। अपूर्वकरणकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है।

तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, उपघात और निर्माण का मिथ्यादृष्टि गुणस्थानों में चारों प्रकार का बंध होता है। ऊपर तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं, शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुवबंध होता है।

आहारकद्विक की प्ररूपणा ओघ के समान है। तीर्थंकर प्रकृति की भी प्ररूपणा ओघ के समान है। विशेषता इतनी है कि उसके दो गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि और मनुष्यगति के संयतासंयतादिक स्वामी हैं।

अब सातावेदनीय-द्विस्थानिक और एकस्थानिक प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

परन्तु विशेष इतना है कि सातावेदनीय की प्ररूपणा मनोयोगियों के समान है।।२७३।।

द्विस्थानिक और एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों के समान है।।२७४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**सातावेदनीयस्य बंधाबंधव्यवस्था मनोयोगिवद्ज्ञातव्या।**

ओघादत्र को विशेषः ?

ओघे—गुणस्थानेषु सातावेदनीयस्याबंधका उपलभ्यन्ते, अत्र पुनस्ते न सन्ति, अयोगिषु लेश्याभावात्।

का लेश्या नाम ? जीवकर्मणोः संश्लेषकारिणी लेश्या, मिथ्यात्वासंयमकषाययोगाः, इति भणितं भवति। शेषविवरणं यशःकीर्तिसदृशं भवति।

द्विस्थानिकैकस्थानिकप्रकृतीनां नवग्रैवेयकविमानवासिदेवानां सदृशभंगो ज्ञातव्यः।

एतस्य देशामर्शकसूत्रस्यार्थ उच्यते—स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणि द्विस्थानप्रकृतयः सन्ति। अत्र अनंतानुबंधिचतुष्कस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ। शेषाणां प्रकृतीनां पूर्वं बंध पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, तथोपलंभात्। एतासां सर्वासां प्रकृतीनामपि बंधः परोदयः। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्कानां एवमेव। नवरि स्वोदयपरोदयौ।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। स्त्रीवेद-चतुस्संस्थान-चतुस्संहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमोपलंभात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। नवरि औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः। स्त्रीवेद-चतुस्संस्थान-चतुस्संहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां औदारिकद्विक-स्त्री-नपुंसकवेदप्रत्यया अपनेतव्याः, शुक्ललेश्यायां एतासां बंधाभावात्।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—सातावेदनीय के बंध-अबंध की व्यवस्था मनोयोग वालों के समान जानना चाहिए।

शंका—ओघ से यहाँ क्या भेद है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि ओघ—गुणस्थानों में सातावेदनीय के अबंधक पाए जाते हैं किन्तु यहाँ वे नहीं हैं, कारण कि अयोगी जीवों में लेश्या का अभाव है।

शंका—लेश्या किसे कहते हैं ?

समाधान—जो जीव व कर्म का संबंध कराती है, वह लेश्या कहलाती है। अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग, ये लेश्या हैं। शेष विवरण यशकीर्ति के समान है।

द्विस्थानिक और एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा नौ ग्रैवेयक विमानवासी देवों के समान है।

इस देशामर्शक सूत्र का अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है—स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र, ये द्विस्थानिक प्रकृतियाँ हैं। इनमें अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं। शेष प्रकृतियों का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि वैसा पाया जाता है। इन सब ही प्रकृतियों का बंध परोदय होता है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का इसी प्रकार समझना चाहिए। इतनी विशेषता है कि इनका बंध स्वोदय परोदय है। स्त्यानगृद्धित्रिक और अनन्तानुबंधिचतुष्क का बंध निरन्तर होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। स्त्रीवेद का, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंधविश्राम पाया जाता है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए।

स्त्रीवेद, चार संस्थान, चार संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र के

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। शेषाणां मनुष्यगतिसंयुक्तो, देवगत्या सह बंधविरोधात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां त्रिगतिजीवाः स्वामिनः। शेषाणां प्रकृतीनां बंधस्य देवाः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधविनष्टस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधो बंधः। सासादने द्विविधः, अनादिध्रुवाभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानि एकस्थानप्रकृतयः सन्ति। अत्र मिथ्यात्वस्य बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, मिथ्यादृष्टौ चैव तदुभयदर्शनात्। नपुंसकवेद-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननयोः पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, तथोपलंभात्। हुंडसंस्थानस्य बंधव्युच्छेद एव, शुक्ललेश्यायां उदय-व्युच्छेदाभावात्। मिथ्यात्वस्य बंधः स्वोदयः। शेषाणां त्रयाणामपि परोदयः। मिथ्यात्वस्य निरन्तरः। शेषाणां सान्तरः। मिथ्यात्वस्य द्विगतिसंयुक्तः, शेषाणां मनुष्यगतिसंयुक्तः। मिथ्यात्वस्य त्रिगतिकाः स्वामिनः। शेषाणां देवाः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। मिथ्यात्वस्य चतुर्विधो बंधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ स्तः।

इतो विस्तरः क्रियते —

लिंपइ अप्पीकीरइ, एदीए णिय अपुण्णपुण्णं च।
जीवो त्ति होदि लेस्सा, लेस्सागुणजाणयक्खादा।।४८९।।

औदारिकद्विक, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद प्रत्ययों को कम करना चाहिए क्योंकि शुक्ललेश्या में इन प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि देवगति के साथ उनके बंध का विरोध है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क के तीन गतियों के जीव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का बंध होता है। सासादन गुणस्थान में दो प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ अनादि और ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, ये एकस्थान प्रकृतियाँ हैं। इनमें मिथ्यात्व का बंध और उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही वे दोनों देखे जाते हैं। नपुंसकवेद और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि वैसा पाया जाता है। हुण्डसंस्थान का बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि शुक्ललेश्या में उसके उदयव्युच्छेद का अभाव है। मिथ्यात्व का बंध स्वोदय होता है। शेष तीन प्रकृतियों का परोदय बंध होता है। मिथ्यात्व का निरन्तर और शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है। मिथ्यात्व का दो गतियों से संयुक्त बंध होता है, शेष प्रकृतियों का मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। मिथ्यात्व के बंध के तीन गतियों के जीव स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम है। मिथ्यात्व का चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

यहाँ विस्तार से कहते हैं —

गाथार्थ — लेश्या के गुण को — स्वरूप को जानने वाले गणधरादि देवों ने लेश्या का स्वरूप ऐसा कहा है कि जिसके द्वारा अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे — पुण्य और पाप के अधीन करे, उसको लेश्या कहते हैं।।४८९।।

जोगपउत्ती लेस्सा, कसायउदयाणुरंजिया होई।
तत्तो दोण्हं कज्जं, बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं[1]।।४९०।।

अत्र बंधचतुष्कं लेश्यायाः कार्यं कथितं, तथैव श्रीवीरसेनाचार्येण धवलाटीकायां कथितं—'का लेस्सा णाम ? जीव-कम्माणं संसिलेसणयरी, मिच्छत्तासंजम-कषाय-जोगा त्ति भणिदं होदि[2]।'

अतः प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशानां बंधानां कारणानि इमे मिथ्यात्व-असंयमकषाययोगाः भण्यन्ते तत एव लेश्या अपि कथ्यन्ते।

इमाः षडपि लेश्याः स्व-स्वनामानुसारेणैव कार्यं कुर्वन्ति। आसामुदाहरणं कथ्यते—

पहिया जे छप्पुरिसा, परिभट्टारण्णमज्झदेसम्हि।
फलभरियरुक्खमेगं, पेक्खित्ता ते विचिंतंति।।५०७।।
णिम्मूलखंधसाहुव-साहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं।
खाउं फलाइं इदि जं, मणेण वयणं हवे कम्मं[3]।।५०८।।

गुणस्थानापेक्षया एताः लेश्याः कथ्यन्ते—

अयदोत्ति छ लेस्साओ, सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये।
तत्तो सुक्का लेस्सा, अजोगिठाणं अलेस्सं तु[4]।।५३२।।

कषायोदय से अनुरक्त योगप्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं। इस ही लिए दोनों का बंधचतुष्करूप कार्य परमागम में कहा है।।४९०।।

चारों प्रकार के बंध लेश्या के कार्य हैं ऐसा श्री वीरसेनाचार्य ने धवला टीका में कहा है, उसे ही दिखाते हैं—

लेश्या किसे कहते हैं ?

जीव और कर्मों के संश्लेष—संबंध करने वाली लेश्या है। वह मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग इन नामों से कही जाती है। जिस हेतु से प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इन बंधों के कारण ये मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग कहे जाते हैं, उसी हेतु से ये लेश्या भी कही जाती हैं। ये छहों भी लेश्याएं अपने-अपने नाम के अनुसार ही कार्य करती हैं। इनके उदाहरण कहते हैं—

गाथार्थ—कृष्ण आदि छह लेश्या वाले कोई छह पथिक वन के मध्य में मार्ग से भ्रष्ट होकर फलों से पूर्ण किसी वृक्ष को देखकर अपने-अपने मन में इस प्रकार विचार करते हैं और उसके अनुसार वचन कहते हैं। कृष्णलेश्या वाला विचार करता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष को मूल से उखाड़कर इसके फलों का भक्षण करूँगा और नीललेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष को स्कंध से काटकर इसके फल खाऊँगा। कापोतलेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष की बड़ी-बड़ी शाखाओं को काटकर इसके फलों को खाऊँगा। पद्मलेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष के फलों को तोड़कर खाऊँगा। शुक्ललेश्या वाला विचारता है और कहता है कि मैं इस वृक्ष से टूटकर पड़े हुए फलों को खाऊँगा। इस प्रकार जो मनःपूर्वक वचनादि की प्रवृत्ति होती है, वह लेश्या का कर्म है। यहाँ पर यह एक दृष्टान्तमात्र दिया गया है इसलिए इस ही तरह अन्यत्र भी समझना चाहिए।।५०७-५०८।।

अब गुणस्थानों की अपेक्षा लेश्याओं को कहते हैं—

गाथार्थ—चतुर्थगुणस्थानपर्यंत छहों लेश्याएँ होती हैं तथा देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत इन तीन गुणस्थानों में तीन शुभ लेश्याएँ ही होती हैं किन्तु इसके आगे अपूर्वकरण से लेकर सयोगिकेवलीपर्यंत

---

१. गोम्मटसार जीवकांड गाथा ४८९-४९०। २. षट्खण्डागम पु. ८, पृ. ३५६। ३-४. गोम्मटसार जीवकांडे लेश्यामार्गणायां।

कषायरहितगुणस्थानेषु लेश्यास्तित्वं यत् कथ्यते तत्तु भूतपूर्वप्रज्ञापननयापेक्षयैव। तथाहि—

णट्ठकसाये लेस्सा, उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया।
अहवा जोगपउत्ती, मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा[१]।।५३३।।

इत्थं लेश्यामार्गणायां बंधाबंधव्यवस्थां विज्ञाय शुभलेश्याबलेन वयं अन्तिमशुक्ललेश्यां संप्राप्य अस्माद् भवाद् तृतीयभवे शुक्लध्यानं लब्ध्वा लेश्याविरहितावस्थां लप्स्यामहे इति संप्रति भावयामः।

श्रीमद्भगवन्महावीरस्वामिना कार्तिकेकृष्णस्य पक्षस्य त्रयोदश्यां योगं निरुध्य कार्तिककृष्ण-चतुर्दशीनिशान्तेऽमावस्यायां उषावेलायां च चतुर्थशुक्लध्यानबलेनाघातिकर्माणि निहत्य पावापुर्यां उद्यातस्थितसरोवरमध्याद् निर्वाणधाम जगाम।

उक्तं च—

पावापुरस्य-बहिरुन्नतभूमिदेशे, पद्मोत्पलाकुलवतां सरसां हि मध्ये।
श्रीवर्द्धमानजिनेदव इति प्रतीतो, निर्वाणमाप भगवान् प्रविधूतपाप्मा।।२४।।
पद्मवनदीर्घिकाकुल-विविधद्रुमखण्डमण्डितरम्ये।
पावानगरोद्याने, व्युत्सर्गेण स्थितः स मुनिः।।१६।।
कार्तिककृष्णस्यान्ते, स्वातावृक्षे निहत्य कर्मरजः।
अवशेषं संप्रापद्, व्यजरामरमक्षयं सौख्यम्।।१७।।

एक शुक्ललेश्या ही होती है और अयोगिकेवली गुणस्थान लेश्यारहित है।।५३२।।

कषायरहित गुणस्थानों में जो लेश्या का अस्तित्व कहा गया है वह भूतपूर्व प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से ही कहा गया है। जैसे कि—

गाथार्थ—अकषाय जीवों के जो लेश्या बताई है वह भूतपूर्वप्रज्ञापन नय की अपेक्षा से बताई है अथवा योग की प्रवृत्ति को लेश्या कहते हैं, इस अपेक्षा से वहाँ पर मुख्यरूप से भी लेश्या है क्योंकि वहाँ पर योग का सद्भाव है।।५३३।।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा में बंध-अबंध की व्यवस्था को जानकर शुभलेश्या के बल से हम और आप अंतिम शुक्ल लेश्या को प्राप्त करके इस भव से तीसरे भव में शुक्लध्यान को प्राप्तकर लेश्या से रहित ऐसी अवस्था को प्राप्त करेंगे इस प्रकार वर्तमान में भावना करते हैं।

श्रीमान्—अंतरंग अनंतचतुष्टय और बहिरंग समवसरण लक्ष्मी से सुशोभित भगवान श्री महावीर स्वामी ने कार्तिक मास में कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी के दिन योग का निरोध करके कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी की रात्रि के अन्त में अर्थात् अमावस्या की उषा बेला में चौथे शुक्ल ध्यान के बल से अघातिया कर्मों का नाश कर पावापुरी के उद्यान में स्थित सरोवर के मध्य से निर्वाण परमधाम को प्राप्त किया है।

श्री पूज्यपादस्वामी ने निर्वाण भक्ति में कहा भी है—

पावापुरी के बाहर उन्नतभूमि प्रदेश में बहुत से कमलों से सहित ऐसे सरोवर के मध्य विराजमान श्रीवर्द्धमान भगवान संपूर्ण कर्मों से छूटकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं।।२४।।

निर्वाणभक्ति में और भी स्पष्ट कहा है—

खिले हुए कमलों के समूह युक्त सरोवर से सहित, नाना प्रकार के वृक्षों से सुशोभित, सुंदर ऐसे पावापुरी नगरी के उद्यान में भगवान स्थित हुए। कार्तिक कृष्णा के अंत में—अमावस्या के दिन स्वाति नक्षत्र

---

१. गोम्मटसार जीवकांडे लेश्यामार्गणायां।

परिनिर्वृतं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरुरक्तचंदन-कालागुरुसुरभिगोशीर्षैः''।।१८।।
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं, मुकुटानलसुरभिधूपवरमाल्यैः।
अभ्यर्च्य गणधरानपि, गता दिवं खं च वन भवनैः।।१९।।

योगनिरोधस्य समयोऽपि कथ्यते—

आद्यश्चतुर्दशदिनै-र्विनिवृत्तयोगः, षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्द्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशा, मासेन ते यतिवरास्त्वभवन्वियोगा[१]।।२६।।

इन्द्रभूतिगणधरदेवमुखेन श्रीगुणभद्रसूरिणा उत्तरपुराणे एतदेव कथितम्—

इत्याह वचनाभीषु निरस्तान्तस्तमस्ततिः।
इहान्त्यतीर्थनाथोऽपि विहृत्य विषयान् बहून्।।५०८।।
क्रमात्पावापुरं प्राप्य मनोहरवनान्तरे।
बहूनां सरसां मध्ये महामणिशिलातले।।५०९।।
स्थित्वा दिनद्वयं वीतविहारो वृद्धनिर्जरः।
कृष्णकार्तिकपक्षस्य चतुर्दश्यां निशात्यये।।५१०।।
स्वातियोगे तृतीयेद्धशुक्लध्यानपरायणः।
कृतत्रियोगसंरोधः समुच्छिन्नक्रियं श्रितः।।५११।।

में अवशेष कर्मधूलि को नष्ट कर अजर, अमर और अक्षय ऐसे परम सौख्य को प्राप्त कर लिया।।१६-१७।।

भगवान को परिनिर्वाण प्राप्त हुआ है ऐसा जानकर इन्द्रों ने अतिशीघ्र वहाँ आकर देवतरु, लालचंदन, कालागुरु आदि तथा सुरभित चंदन आदि से अग्नि कुमार इंद्र के मुकुट से प्रज्वलित अग्नि से एवं सुरभित धूप, माल्य आदि से जिनेन्द्र भगवान के शरीर की पूजा एवं संस्कार किया पुनः सभी स्वर्गों के देवगण एवं भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी आदि देवगण श्री गणधर देवों की भी पूजा करके अपने-अपने स्थान को चले गये।।१८-१९।।

उसी भक्ति में योगनिरोध का काल भी कहा गया है—

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव ने चौदह दिनों तक योग निरोध किया था। श्री वर्धमान भगवान ने दो दिन का योग निरोध किया था। शेष बाईस तीर्थंकर भगवन्तों ने एक-एक माह का योग निरोधकर घन—निविड़ ऐसे अघातिया कर्म के पाश को नष्ट किया था।।२६।।

श्री गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण में श्री इन्द्रभूति गणधरदेव के मुख से भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण एवं निर्वाणभूमि के विषय में कहलाया है। जैसे कि—

इस प्रकार श्रेणिक राजा के प्रश्न के अनुसार इन्द्रभूति गणधर ने वचनरूपी किरणों के द्वारा अन्तःकरण के अंधकारसमूह को नष्ट करते हुए यह कहा। उन्होंने यह भी कहा कि भगवान महावीर भी बहुत से देशों में विहार करेंगे। अन्त में वे पावापुर नगर में पहुँचेंगे, वहाँ के मनोहर नाम के वन के भीतर अनेक सरोवरों के बीच में मणिमयी शिला पर विराजमान होंगे। विहार छोड़कर निर्जरा को बढ़ाते हुए वे दो दिन तक वहाँ विराजमान रहेंगे और फिर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन रात्रि के अंतिम समय स्वातिनक्षत्र में अतिशय

---

१. निर्वाणभक्ति श्री पूज्यपादस्वामिविरचित।

हताघातिचतुष्कः सन्नशरीरो गुणात्मकः।
गन्ता मुनिसहस्रेण निर्वाणं सर्ववाञ्छितम्[1]।।५१२।।

अद्यतनात् पुरा कियन्ति वर्षाण्यतीतानि इति चेत् ?

अद्य चतुर्विंशत्यधिकपंचविंशतिशतानि संवत्सराण्यभूवन्।

किं चाद्यत्वे एतदेव श्रीवीरनिर्वाणसंवत्सर वर्तते। एषा त्रयोदशी मंगलत्रयोदशीनाम्ना कथाग्रन्थे श्रूयते लोकव्यवहारे धनत्रयोदशीति च। अद्य भगवतः श्रीमहावीरस्वामिनो योगनिरोधदिवसे मनसा वचसा कायेनापि त्रियोगशुद्ध्यर्थं श्रीसिद्धार्थस्यात्मजस्य चरणाम्भोजयोः नंनम्यते अनंतानन्तबारान् भक्तिभावेन।

उपजाति छंदः—

श्रियाभिवृद्धः खलु वर्द्धमानः, श्रीमुक्तिलक्ष्म्या भुवनाधिनाथः।
सर्वार्थसिद्ध्या कृतकृत्यसिद्धः, त्वां नौमि भो वीर! निजात्मसिद्ध्यै।।१।।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनीज्ञानमती-कृतसिद्धान्तचिंतामणिटीकायां लेश्यामार्गणानाम दशमोऽधिकारः समाप्तः।

देदीप्यमान तीसरे शुक्लध्यान में तत्पर होंगे। तदनन्तर तीनों योगों का निरोध कर समुच्छिन्नक्रियाप्रतिपाती नामक चतुर्थ शुक्लध्यान को धारण कर चारों अघातिया कर्मों का क्षय कर देंगे और शरीररहित केवलगुणरूप होकर एक हजार मुनियों के साथ सबके द्वारा वाञ्छनीय मोक्षपद प्राप्त करेंगे।।५०८-५१२।।

भगवान महावीर को मोक्ष प्राप्त करके आज से कितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं ?

आज तक वीर निर्वाण संवत् के पच्चीस सौ चौबीस (२५२४) वर्ष हो चुके हैं क्योंकि आजकल यही श्री वीर निर्वाण संवत्सर चल रहा है। आज की यह त्रयोदशी 'मंगलत्रयोदशी' इस नाम से कथा ग्रंथों में सुनी जाती है और लोकव्यवहार में 'धनत्रयोदशी' कही जाती है। आज भगवान महावीर स्वामी के योगनिरोध के दिन मैं—मेरे द्वारा मन से, वचन से और काय से भी तीनों योगों की शुद्धि के लिए श्री सिद्धार्थ राजा के आत्मज—श्री महावीर स्वामी के चरणकमलों में भक्तिपूर्वक अनन्त-अनन्तबार अतिशयरूप से नमस्कार किया जाता है।

जो अतिशयरूप श्री—अन्तरंग-बहिरंग लक्ष्मी से वृद्धिंगत होने से 'वर्धमान' इस सार्थक नाम वाले हैं। जो मुक्तिलक्ष्मी के साथ रहने से भुवन के अधिनाथ—त्रिभुवन के स्वामी हैं। जो संपूर्ण अर्थ—प्रयोजनों की सिद्धि कर लेने से कृतकृत्य हैं—सिद्ध हैं ऐसे हे वीर भगवन्! मैं अपनी आत्मा की सिद्धि के लिए आपको नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—इस प्रकरण को मैंने हस्तिनापुर में ईसवी सन् १९९८ में कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी—मंगल त्रयोदशी के दिन लिखा है। इसीलिए भगवान महावीर स्वामी की निर्वाण बेला एवं निर्वाणभूमि की वंदना की है।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथराज में 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत ''सिद्धान्तचिंतामणिटीका'' में लेश्यामार्गणा नाम का यह दशवाँ अधिकार पूर्ण हुआ है।

---

१. उत्तरपुराण, पर्व ७६, पृ. ५६३। २. वीर निर्वाण संवत् २५२५ आज प्रारंभ हुआ है।

अथ भव्यमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

कार्तिके कृष्णपक्षेऽन्ते, वीरोऽवाप शिवश्रियम्।
सायंकाले तदा प्राप्नोत्, गौतमः केवलश्रियम्।।१।।
कार्तिके शुक्लपक्षे स्यात्, प्रतिपद् या ततस्त्विदम्।
नवसंवत्सरं कुर्यात्, मे सर्वस्य च मंगलम्।।२।।
पंचद्विपंचद्वयंकेऽब्दे[२], वीरनिर्वाणनाम्नि च।
नववर्ष-प्रभातं मे ह्यावर्षं मंगलं भवेत्।।३।।
भव्याभव्यनिर्मुक्ताः, कर्म प्रत्ययवर्जिताः।
तान् वन्देऽहं सदा भक्त्या-र्हतः सिद्धान् शिवाप्तये।।४।।

अथ द्वाभ्यामन्तरस्थलाभ्यां त्रिभिः सूत्रैर्बंधस्वामित्वविचये भव्यमार्गणानामैकादशोऽधिकारः प्रारभ्यते। तत्र प्रथमस्थले भव्यजीवानां बंधाबंधकथनत्वेन ''भवियाणु-'' इत्यादिना सूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थलेऽभव्यानां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन ''अभवसिद्धि-'' इत्यादिसूत्रद्वयमिति पातनिका सूचिता भवति।

भव्यमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

कार्तिकमास में कृष्ण पक्ष के अंतिम दिन—अमावस्या को श्री महावीर स्वामी ने मोक्ष प्राप्त किया। उसी दिन सायंकाल में श्री गौतम स्वामी ने केवलज्ञान लक्ष्मी प्राप्त की है पुनः कार्तिक शुक्ल पक्ष में जो प्रतिपदा तिथि है, यह वही दिवस नूतन संवत्सर का प्रथम दिवस है, यह नव संवत्सर मेरे लिए और आप सबके लिए मंगलकारी होवे। आज वीर निर्वाण संवत् का २५२५वाँ संवत् प्रारंभ हुआ है। यह नववर्ष का प्रभात मेरे पूरे वर्ष पर्यंत मंगलमयी होवे।।१-२-३।।

जो भव्यत्व और अभव्यत्व से रहित, सर्व कर्मों के प्रत्ययों से छूट चुके हैं ऐसे अर्हन्तों को और सिद्धों को हम सदा मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्तिपूर्वक वन्दन करते हैं।।४।।

भावार्थ—मैंने यह प्रकरण—मंगलाचरण कार्तिक शुक्ला एकम् को लिखा था क्योंकि मैंने इस षट्खण्डागम की सिद्धान्तचिंतामणिटीका को प्रत्येक माह में अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूर्णिमा को नहीं लिखा है चूँकि षट्खण्डागम की नवमीं पुस्तक में इन तिथियों में सिद्धान्त ग्रंथों के अध्ययन-अध्यापन का विशेष निषेध किया गया है। अतः चौदश और अमावस्या को छोड़कर कार्तिक शुक्ल १ को वीर निर्वाण संवत् २५२५वें के नूतन वर्ष के प्रथम दिन लिखा था इसीलिए आगे वर्ष भर मंगल की कामना की है।

अब दो अन्तरस्थलों द्वारा तीन सूत्रों से इस 'बंधस्वामित्वविचय' ग्रंथ में भव्यमार्गणा नाम का यह ग्यारहवाँ अधिकार प्रारंभ हुआ है। उसमें प्रथम स्थल में भव्यों के बंध-अबंध के कथन रूप से 'भवियाणु'- इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। पुनः दूसरे स्थल में अभव्यों के बंधस्वामित्व का निरूपण करते हुए 'अभवसिद्धि-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। इस प्रकार यह पातनिका सूचित की गई है।

संप्रति भव्यमार्गणायां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रमवतार्यते —

भवियाणुवादेण भवसिद्धियामोघं।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भव्यजीवानां चतुर्दशापि गुणस्थानानि भवन्ति अतः ओघव्यवस्थैवात्र युज्यते।

तात्पर्यमेतत् — भव्यमार्गणायां अद्यत्वे पंचमकाले चतुर्थपंचमषष्ठसप्तमगुणस्थानवर्तिनो भव्याः सन्ति, वयमपि व्रतिका अतो भव्या इति निश्चित्य भेदाभेदरत्नत्रयं एकदेशरत्नत्रयं वाराधनीयं भवद्भिरिति।

एवं प्रथमस्थले भव्यानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन सूत्रमेकं गतम्।

संप्रति अभव्यानां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अभवसिद्धिएसु पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-चदुआउ-चदुगइ-पंचजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालिय-वेउव्विय-अंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-चत्तारि आणुपुव्वी-अगुरु-वलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदावुज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-

---

अब भव्यमार्गणा में बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

भव्यमार्गणानुसार भव्यसिद्धिक जीवों की प्ररूपणा ओघ के समान है।।२७५।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — भव्य जीवों के चौदहों भी गुणस्थान होते हैं अतः गुणस्थान के समान व्यवस्था ही यहाँ लगानी चाहिए।

तात्पर्य यह है कि — भव्यमार्गणा में आजकल पंचमकाल में चौथे, पाँचवें, छठे और सातवें गुणस्थानवर्ती भव्य जीव हैं, हम भी व्रती हैं अतः भव्य हैं ऐसा निश्चय करके भेद और अभेद रत्नत्रय की अथवा एकदेश रत्नत्रय की आराधना हम और आप को करते रहना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में भव्यों के बंध-अबंध का निरूपण करते हुए एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अभव्यों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अभव्यसिद्धिक जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, चार आयु, चार गतियाँ, पाँच जातियाँ, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक अंगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारणशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग,

सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२७६।।

एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतयोः देशामर्शकसूत्रयोरर्थप्ररूपणा क्रियते—एतासु प्रकृतिषु अत्र न कासामपि बन्धोदयव्युच्छेदौ स्तः, उपलभ्यमानयोः तयोर्व्युच्छेदविरोधात्। पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधाः। पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-नवनोकषाय-तिर्यग्मनुष्यायुः-तिर्यग्मनुष्यगति-पंचजाति-औदारिकशरीर-षट्संस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-षट्संहनन-तिर्यग्मनुष्यगत्यानुपूर्वि-उपघात-परघात-उच्छ्वास-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्त-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-नीच-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ बंधौ स्तः। देवत्रिक-नरकत्रिक-वैक्रियिकद्विकानां परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-चतुरायुः-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातासात-स्त्री-नपुंसकवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-नरकगति-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-पञ्चसंस्थान-

---

दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीच व ऊँच गोत्र और पाँच अन्तराय इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२७६।।

ये सभी बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२७७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन देशामर्शक सूत्रों के अर्थ की प्ररूपणा करते हैं—इन प्रकृतियों में यहाँ किन्हीं के भी बंध और उदय का व्युच्छेद नहीं है क्योंकि विद्यमान होने से उन दोनों के व्युच्छेद का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, तैजस व कार्मण शरीर, वर्णादिक चार, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अंतराय का स्वोदय बंध होता है। पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, पाँच जाति, औदारिक शरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, तिर्यग्गति व मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्वी, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारण शरीर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और ऊँच व नीच गोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है। देवायु, नारकायु, देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, चार आयु, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, हास्य,

षट्संहनन-नरकगत्यानुपूर्वि-आतापोद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-त्रस-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्त्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेदस्य बंधौ सान्तरनिरन्तरौ स्तः।

कुतः ?

पद्मशुक्ललेश्यावत्सु निरन्तरबंधोपलंभात्।

देवगति-देवगत्यानुपूर्वि-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिकशरीर-तदंगोपांग-समचतुरस्रसंस्थान-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-उच्चगोत्राणां सान्तरनिरन्तरौ बंधौ स्तः।

कुतः ?

असंख्यातवर्षायुष्क-शुभत्रिकलेश्यावत्सु, तिर्यग्मनुष्येषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। मनुष्यगतिद्विकस्य बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, आनतादिदेवेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, तेजोवायुकायिकेषु सप्तमपृथिवीनारकेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। औदारिकद्विकस्य सान्तरनिरन्तरौ, सानत्कुमारादिदेवेषु नारकेषु च निरन्तरबंधोपलंभात्।

सर्वकर्मणां पंचपंचाशत्प्रत्ययाः। विशेषेण तिर्यग्मनुष्यायुषोः त्रिपञ्चाशत्, वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-प्रत्ययोरभावात्। देवनरकायुषोः एकपञ्चाशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्रकार्मण-प्रत्ययाणामभावात्। देवगतिद्विक-नरकगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानामेकपञ्चाशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-

---

रति, अरति, शोक, नरकगति, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, पाँच संस्थान, छह संहनन, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, त्रस, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद का सान्तर-निरन्तर बंध होता है। कैसे ? क्योंकि पद्म और शुक्ललेश्या वाले जीवों में उसका निरन्तर बंध पाया जाता है। देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है। कैसे ? क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क और शुभ तीन लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि आनतादिक देवों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि तेज व वायुकायिक जीवों में तथा सप्तम पृथिवी के नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। औदारिकरशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि सनत्कुमारादि देव व नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

सब कर्मों के पचपन प्रत्यय हैं। विशेष इतना है कि तिर्यगायु और मनुष्यायु के तिरेपन प्रत्यय हैं क्योंकि वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। देवायु और नारकायु के इक्यावन प्रत्यय हैं क्योंकि वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग के इक्यावन प्रत्यय हैं क्योंकि वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त और

कार्मणप्रत्ययाणामभावात्। विकलत्रयजाति-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां त्रिपंचाशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिक-द्विकाभावात्।

सातावेदनीय-स्त्री-पुरुषवेद-हास्य-रति-प्रशस्तविहायोगति-समचतुरस्रसंस्थान-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्त्तीणां त्रिगतिसंयुक्तो बंधः, नरकगतेरभावात्। नरकगतित्रिकस्य नरकगतिसंयुक्तो बंधः। देवगतित्रिकस्य देवगतिसंयुक्तो बंधः। मनुष्यगतित्रिकस्य मनुष्यगतिसंयुक्तः। तिर्यग्गतित्रिक-चतुर्जाति-आतापोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः। वैक्रियिकद्विकस्य देवगति-नरकगतिसंयुक्तः। औदारिकद्विक-चतुःसंस्थान-षट्संहनन-अपर्याप्तनामकर्मणां तिर्यग्गतिमनुष्यगतिसंयुक्तः। हुंडकसंस्थान-अप्रशस्तविहायोगति-अस्थिर-अशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां त्रिगतिसंयुक्तः, देवगतेरभावात्। उच्चगोत्रस्य द्विगतिसंयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधश्चतुर्गतिसंयुक्तो ज्ञातव्यः।

देवगतित्रिक-नरकगतित्रिक-द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रियजाति-वैक्रियिकद्विक-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीराणां बंधस्य तिर्यञ्चो मनुष्याश्च स्वामिनः। एकेन्द्रियजाति-आतापस्थावराणां त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, नारकाणां अभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, तेषां तासां बंधविरोधाभावात्।

बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् गुणस्थानेऽध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छेदोऽपि नास्ति, अत्रोक्ताशेषप्रकृतीनां

साधारण के तिरेपन प्रत्यय हैं क्योंकि उनके वैक्रियिकद्विक का अभाव है।

साता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, प्रशस्तविहायोगति, समचतुरस्रसंस्थान, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि इनके साथ नरकगति के बंध का अभाव है। नारकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का नरकगतिसंयुक्त बंध होता है। देवायु, देवगति और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का देवगतिसंयुक्त बंध होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति व तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी तथा चार जातियाँ, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण का तिर्यंचगतिसंयुक्त बंध होता है। वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग का देव एवं नरकगति से संयुक्त बंध होता है। औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, चार संस्थान, छह संहनन और अपर्याप्त नामकर्मों का तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। हुण्डसंस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि इनके साथ देवगति के बंध का अभाव है। उच्चगोत्र का दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि उसके साथ नरकगति और तिर्यग्गति का बंध नहीं होता। शेष प्रकृतियों का बंध चारों गतियों से संयुक्त होता है।

देवायु, नारकायु, देवगति, नरकगति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, नरकगति व देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारणशरीर, इनके बंध के तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। एकेन्द्रिय जाति, आतप और स्थावर के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नारकियों के इनका बंध नहीं होता। शेष प्रकृतियों के बंध के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि इनके उन प्रकृतियों के बंध का कोई विरोध नहीं है।

बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेद भी नहीं है क्योंकि यहाँ सूत्रोक्त सब प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। बध्यमान प्रकृतियों में ध्रुवबंधी प्रकृतियों का अनादि व ध्रुव बंध

बंधोपलंभात्। बध्यमानप्रकृतिषु ध्रुवबंधिनीनां अनादिः ध्रुवो बंधः। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ च भवतः।

एवं अभव्यजीवानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन द्वे सूत्रे गते।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे बंधस्वामित्वविचयनाम्नि गणिनीज्ञानमती-
कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां भव्यमार्गणानाम
एकादशोऽधिकारः समाप्तः।

होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

इस प्रकार अभव्य जीवों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाले दो सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम ग्रंथराज के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड
में गणिनी ज्ञानमती कृत 'सिद्धान्तचिंतामणिटीका' में भव्यमार्गणा
नाम का यह ग्यारहवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

कुदृक्सासनमिश्राद्यै:, शून्या: क्षायिकदृग्मया:।
तान्नमामो वयं प्रीत्या:, कर्मप्रत्यय हानये।।१।।

अथ स्थलचतुष्टयेन द्विचत्वारिंशत्सूत्रैर्बंधविचयप्रकरणे सम्यक्त्वमार्गणानाम द्वादशोऽधिकार: प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले सामान्यसम्यक्त्व-क्षायिकसम्यक्त्वयो: बंधाबंधप्रतिपादनपरत्वेन ''सम्मत्ताणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रत्रयं। तदनु द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टिषु बंधस्वामित्वकथनपरत्वेन-''वेदयसम्मादिट्ठीसु'' इत्यादिना द्वादश सूत्राणि। तत: परं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टिषु बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''उवसमसम्मादिट्ठीसु'' इत्यादिना चतुर्विंशतिसूत्राणि। तदनंतरं चतुर्थस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यादृष्टि-मिथ्यादृष्टीनां बंधस्वामित्वप्ररूपणत्वेन ''सासण-'' इत्यादिसूत्रत्रयमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना सम्यक्त्वमार्गणायां सामान्यसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रत्रयमवतार्यते —

सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीसु खइयसम्माइट्ठीसु आभिणिबोहियणाणि-भंगो।।२७८।।

णवरि सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२७९।।

सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र आदि से रहित होकर क्षायिक सम्यक्त्व स्वरूप हैं, उन सिद्धों को हम कर्म के कारणों को नष्ट करने के लिए प्रीतिपूर्वक नमस्कार करते हैं।।१।।

अब चार स्थलों में बयालीस सूत्रों द्वारा ''बंधस्वामित्वविचय'' प्रकरण में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का यह बारहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें सर्वप्रथम पहले स्थल में सामान्यसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्व में बंध-अबंध के प्रतिपादन करने वाले ''सम्मत्ताणुवादेण-'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे। पुन: दूसरे स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों में बंधस्वामित्व का कथन करने वाले ''वेदयसम्मादिट्ठीसु-'' इत्यादि बारह सूत्र कहेंगे। अनन्तर तीसरे स्थल में उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों में बंध-अबंध का निरूपण करने वाले ''उवसमसम्मादिट्ठीसु-'' इत्यादि चौबीस सूत्र कहेंगे। इसके बाद चौथे स्थल में सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टियों में बंधस्वामित्व का निरूपण करने वाले ''सासण-'' इत्यादि तीन सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका सूचित की गई है।

अब सम्यक्त्वमार्गणा में सामान्यसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों में बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए तीन सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सम्यक्त्वमार्गणानुसार सम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवों में आभिनिबोधिक-ज्ञानियों के समान प्ररूपणा है।।२७८।।

विशेष यह है कि सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२७९।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजेगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**यथा आभिनिबोधिकज्ञानिनां प्ररूपणा कृता तथा निरवशेषात्र कर्तव्या, विशेषाभावात्। यत्किमप्यन्तरं तदेव कथ्यते—क्षायिकसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतेषु उच्चगोत्रस्य स्वोदयो निरन्तरो बन्धः, तिर्यक्षु क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु संयतासंयतानामनुपलम्भात्। मनुष्यायुषं बध्यमानानां स्त्रीवेदप्रत्ययो नास्ति, देवनारकयोः स्त्रीवेदिक्षायिकसम्यग्दृष्टीनामभावात्। एतावांश्चैव विशेषः। अन्यो यद्यस्ति सोऽत्र चिन्तयित्वा वक्तव्यः।**

असंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्य सयोगिकेवलिपर्यन्ताः सातावदेनीयस्य बंधकाः सन्ति। सयोगिकेवलिभगवतां चरमसमयेऽस्य सातावेदनीयस्य कर्मणो बंधो व्युच्छिद्यते। अतएव एते बंधका भवन्ति, अवशेषाः अयोगिकेवलिनः सिद्धाश्च अबंधका भवन्तीति ज्ञातव्यं।

एवं प्रथमस्थले सामान्यसम्यग्दृष्टि-क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां बंधस्वामित्वकथनत्वेन त्रीणि सूत्राणि गतानि।

संप्रति वेदकसम्यग्दृष्टीनां ज्ञानावरणादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

वेदयसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगंछ-देवगदि-पंचिंदियजादि-

---

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर सयोगिकेवली तक बंधक हैं। सयोगिकेवलिकाल के अंतिम समय को जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२८०।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—जिस प्रकार आभिनिबोधिकज्ञानी जीवों की प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार पूर्णरूप से यहाँ भी करना चाहिए क्योंकि उनसे यहाँ कोई भेद नहीं है। यहाँ जो कुछ भी अन्तर है, उसे ही कहते हैं—क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतों में उच्चगोत्र का स्वोदय एवं निरन्तर बंध होता है क्योंकि तिर्यंच क्षायिकसम्यग्दृष्टियों में संयतासंयत जीव पाए नहीं जाते। मनुष्यायु को बाँधने वाले जीवों के स्त्रीवेद प्रत्यय नहीं है क्योंकि देव व नारकियों में स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टियों का अभाव है। इतनी ही यहाँ विशेषता है। अन्य कोई यदि विशेषता है तो उसे विचारकर कहना चाहिए।

अभिप्राय यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टि से प्रारंभ करके सयोगी केवलीपर्यंत सातावेदनीय के बंध करने वाले होते हैं। सयोगिकेवली भगवन्तों के चरम समय में इस सातावेदनीय कर्म का बंध व्युच्छिन्न होता है इसलिए ये बंधकर्ता हैं अवशेष अयोगिकेवली भगवान और सिद्ध भगवान अबंधक होते हैं ऐसा जानना चाहिए।

इस प्रकार प्रथम स्थल में सामान्यसम्यग्दृष्टि और क्षायिकसम्यग्दृष्टियों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

अब वेदकसम्यग्दृष्टियों के ज्ञानावरण आदि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

वेदकसम्यग्दृष्टियों में पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-

वेउव्विय-तेजा-कम्मइयशरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२८१।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—अत्र अक्षसंचारं कृत्वा चतुर्दशगुणस्थानानि सिद्धांश्चाश्रित्य पंचदशभंगा उत्पादयितव्याः। देवगति-वैक्रियिकद्विकानामसंयतसम्यग्दृष्टौ उदयो व्युच्छिन्नः पूर्वमेव। बंधव्युच्छेदो नास्ति, उपर्यपि बंधोपलंभात्। तीर्थकरस्य नास्त्युदयव्युच्छेदः, एतेषु क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिषु उदयाभावात्। बंधव्युच्छेदोऽपि नास्ति, उपलभ्यमानत्वात्।

अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधोदययोर्द्वयोरपि व्युच्छेदाभावादुदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति परीक्षा न क्रियते।

पञ्चज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिर-शुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-

---

तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय, इनका कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२८१।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२८२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—यहाँ अक्षसंचार करके चौदह गुणस्थान और सिद्धों के आश्रय से एक संयोगी पन्द्रह प्रश्नभंगों को उत्पन्न करना चाहिए।

देवगति और वैक्रियिकद्विक का उदय असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में पूर्व में ही व्युच्छिन्न हो जाता है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि आगे भी बंध पाया जाता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टियों में उसके उदय का अभाव है। उसके बंध का व्युच्छेद भी नहीं है क्योंकि वह पाया जाता है। शेष प्रकृतियों के बंध और उदय दोनों के भी व्युच्छेद का अभाव होने से 'उदय की अपेक्षा बंध पूर्व में अथवा पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह परीक्षा नहीं की जाती है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मणशरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, शुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ

प्रचला-सातावेदनीय-चतु:संज्वलन-पुरुषवेद-हास्य-रति-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्त-विहायोगतिसुस्वराणां स्वोदयपरोदयौ बंधौ स्तः, द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां बंधोपलंभात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-तीर्थकराणां परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रत्येकशरीराणां असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदयश्चैव, तत्रापर्याप्तकालेऽभावात्। नवरि प्रमत्तसंयते परघातोच्छ्वासयोः स्वोदयपरोदयौ स्तः। सुभगादेययशःकीर्त्तीणामसंयतसम्यग्दृष्टौ बंधौ स्वोदय-परोदयौ। उपरि स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। उच्चगोत्रस्यासंयतसम्यग्दृष्टिषु संयतासंयतेषु बंधौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदय एव, प्रतिपक्षोदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-चतु:संज्वलन-पुरुषवेद-भय-जुगुप्सा-देवगतिद्विक-पंचेन्द्रियजाति-वैक्रियिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-तीर्थकर-उच्चगोत्र-पञ्चान्तरायाणां बंधो निरन्तरः एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातावेदनीय-हास्य-रति-स्थिर-शुभ-यशःकीर्त्तीणां असंयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति बंधः सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, ओघप्रत्ययेभ्यो विशेषाभावात्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां देवगतिसंयुक्तः। शेषाणां प्रकृतीनां असंयतसम्यग्दृष्टिषु बंधो द्विगतिसंयुक्तः। उपरिमेषु देवगतिसंयुक्तः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां तिर्यग्मनुष्यासंयतासम्यग्दृष्टिसंयतासंयता मनुष्यसंयताः

ये ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, सातावेदनीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति और सुस्वर का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों भी प्रकारों से उनका बंध पाया जाता है। देवगतिद्विक, वैक्रियिकद्विक और तीर्थंकर का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। उपघात, परघात, उच्छ्वास और प्रत्येकशरीर का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ अपर्याप्तकाल का अभाव है। विशेषता इतनी है कि प्रमत्तसंयत गुणस्थान में परघात और उच्छ्वास का स्वोदय-परोदय बंध होता है। सुभग, आदेय और यशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। उच्चगोत्र का असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयतों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, चार संज्वलन, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, तीर्थंकर, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। सातावेदनीय, हास्य, रति, स्थिर, शुभ और यशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि ओघप्रत्ययों से कोई विशेषता नहीं है। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का देवगतिसंयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का असंयतसम्यग्दृष्टियों में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है।

स्वामिनः। तीर्थकरस्य त्रिगति-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, तिर्यग्गतेरभावात्। उपरिमा मनुष्या एव, तेषामन्यत्राभावात्। शेषाणां प्रकृतीनां चतुर्गति-असंयतसम्यग्दृष्टयो द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः।

बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदो नास्ति, 'अबंधा णत्थि' इति वचनात्। ध्रुवबंधिनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

असातावेदनीयादिषट्कप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

असातावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२८३।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२८४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अत्र प्रश्नभंगा ज्ञात्वा वक्तव्याः। एतयोरर्थ उच्यते — अरति-शोक-असातावेदनीय-अस्थिर-अशुभानां बंधव्युच्छेद एव। उदयव्युच्छेदो नास्ति, उपरितमे उदयस्योपलंभात्। अयशःकीर्त्तेः पूर्वमुदयस्य पश्चात् बंधस्य व्युच्छेदः, प्रमत्तसंयते बंधस्य व्युच्छित्तिर्दृश्यते, असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयस्य व्युच्छित्तिश्च। असातावेदनीय-अरति-शोकानां बंधौ स्वोदय-परोदयौ, द्वाभ्यामपि प्रकाराभ्यां**

उपरिम गुणस्थानों में देवगतिसंयुक्त बंध होता है। देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के तिर्यंच व मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत और मनुष्यसंयत स्वामी हैं। तीर्थंकर प्रकृति के तीन गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं क्योंकि तिर्यग्गति में उसके बंध का अभाव है। उपरिम गुणस्थानवर्ती मनुष्य ही स्वामी हैं क्योंकि उनका अन्य गतियों में अभाव है। शेष प्रकृतियों के चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम है। बंधव्युच्छेद नहीं है क्योंकि 'अबंधक नहीं हैं' ऐसा सूत्र में निर्दिष्ट है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२८३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२८४।।

सिद्धान्तचितामणिटीका — यहाँ प्रश्नभंगों को जानकर कहना चाहिए। इन दोनों सूत्रों का अर्थ कहते हैं — अरति, शोक, असातावेदनीय, अस्थिर और अशुभ का बंधव्युच्छेद ही है। उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि ऊपर उनका उदय पाया जाता है। अयशकीर्ति के पूर्व में उदय का और पश्चात् बंध का व्युच्छेद होता है क्योंकि प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में क्रम से उसके बंध और उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। असाता वेदनीय, अरति और शोक का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों ही प्रकारों से बंध

बंधोपलंभात्। अस्थिराशुभयोः स्वोदयश्चैव, ध्रुवोदयत्वात्। अयशःकीर्तेः असंयतसम्यग्दृष्टौ स्वोदयपरोदयौ। उपरि परोदश्चैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। एतासां षण्णां प्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्।

प्रत्ययाः सुगमाः, बहुशः उक्तत्वात्। देवमनुष्यगतिसंयुक्तः असंयतसम्यग्दृष्टौ, उपरि देवगतिसंयुक्तश्चैव। अन्यगतिबंधाभावात्। चतुर्गति असंयतसम्यग्दृष्टयो द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छित्तिस्थानं च सुगमं। सर्वासां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अप्रत्याख्यानावरणादिप्रकृतीनां बंधाबंधप्ररूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

अपच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोह-मणुस्साउ-मणुसगइ-औरालियसरीर-औरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसाणुपुव्वी-णामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२८५।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मनुष्यगत्यानुपूर्वीणां बंधोदयौ समं व्युच्छिन्नौ, असंयतसम्यग्दृष्टौ तदुभयव्युच्छेदोपलंभात्। मनुष्यगति-मनुष्यायुः-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहनननानां बंधव्युच्छेदश्चैव, उपरि अपि उदयदर्शनात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य बंधौ स्वोदयपरोदयौ। शेषाणां परोदय एव, स्वोदयेन बंधविरोधात्। दशानां प्रकृतीनां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। अप्रत्याख्यान-**

पाया जाता है। अस्थिर और अशुभ का स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। अयशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर परोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है। इन छह प्रकृतियों का बंध सान्तर होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है।

प्रत्यय सुगम हैं क्योंकि वह बहुत बार कहा जा चुका है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में देव और मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। आगे के दो गुणस्थानों में देवगतिसंयुक्त ही बंध होता है क्योंकि यहाँ अन्य गतियों के बंध का अभाव है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत जीव स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्न स्थान सुगम है। सब प्रकृतियों का बंध सादि व अध्रुव होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अप्रत्याख्यानावरणीय आदि प्रकृतियों के बंध-अबंध की प्ररूपणा करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

अप्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया, लोभ, मनुष्यायु, मनुष्यगति, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन और मनुष्यानुपूर्वी नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२८५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२८६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध व उदय दोनों साथ में व्युच्छिन्न होते हैं क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उन दोनों का व्युच्छेद पाया जाता है। मनुष्यगति, मनुष्यायु, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन का केवल बंधव्युच्छेद ही है

चतुष्कस्य षट्चत्वारिंशत्प्रत्ययाः। मनुष्यायुषो द्विचत्वारिंशत्, औदारिकद्विक-वैक्रियिकमिश्र-कार्मण-प्रत्ययानामभावात्। शेषाणां चतुश्चत्वारिंशत् औदारिकद्विकाभावात्। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य देवमनुष्यगति-संयुक्तः। शेषाणां मनुष्यगतिसंयुक्तः, स्वाभाविकात्। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कस्य चतुर्गतिअसंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। शेषाणां देवनारकाणां। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् अध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छिन्नस्थानं सुगमं। अप्रत्याख्यानचतुष्कस्य त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

प्रत्याख्यानचतुष्कप्रकृतिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?।।२८७।।

असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतासां चतुःप्रकृतीनां संयतासंयतेऽक्रमेण बंधोदययोर्व्युच्छित्तिर्भवति, स्वोदयपरोदयाभ्यां सह निरन्तर बंधः। असंयतसम्यग्दृष्टौ षट्चत्वारिंशत्, संयतासंयते सप्तत्रिंशत्प्रत्ययाः। देवमनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः, चतुर्गतिअसंयतसम्यग्दृष्टयः, द्विगतिसंयतासंयताः। असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतानां बंधाध्वानमस्ति, संयतासंयते बंधव्युच्छिन्नो भवति। ध्रुवबंधेण विना त्रिविधो बंधोऽस्ति।**

क्योंकि ऊपर भी उनका उदय देखा जाता है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का बंध स्वोदय-परोदय होता है। शेष प्रकृतियों का परोदय ही बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। दशों प्रकृतियों का बंध निरन्तर होता है क्योंकि एक समय से उनके बंधविश्राम का अभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के बयालीस प्रत्यय हैं। मनुष्यायु के बयालीस प्रत्यय हैं क्योंकि औदारिकद्विक, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रकृतियों के चवालीस प्रत्यय हैं क्योंकि उनके औदारिकद्विक का अभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क के चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के देव व नारकी स्वामी हैं। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छिन्न स्थान सुगम है। अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब प्रत्याख्यानावरणचतुष्क प्रकृतियों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

प्रत्याख्यानावरणीय क्रोध, मान, माया और लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२८७।।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२८८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इन चार प्रकृतियों का बंध और उदय दोनों एक साथ संयतासंयत गुणस्थान में व्युच्छिन्न होते हैं। स्वोदय-परोदय सहित निरन्तर बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में छ्यालीस और संयतासंयत गुणस्थान में सैंतीस प्रत्यय हैं। देव और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि और दो गतियों के संयतासंयत स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत

एषां प्ररूपणा सुगमास्ति।

देवायुः-आहारद्विकानां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।।२८९।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२९०।।

आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२९१।।

अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवायुषः अप्रमत्तसंयते बंधो व्युच्छिद्यते, असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छित्तिर्दृश्यते। परोदयो बंधो निरन्तरश्च, असंयतसम्यग्दृष्टौ वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानामभावात् द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, उपरिमेषु गुणस्थानेषु ओघप्रत्ययः। अस्यायुषः देवगतिसंयुक्तो बंधः। द्विगति-असंयतसम्यग्दृष्टयः संयतासंयताश्च, मनुष्यगतिसंयतस्वामिनः। असंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयत-प्रमत्तसंयत-अप्रमत्तसंयतानां बंधाध्वानं। अप्रमत्तकाले संख्यातबहुभागे गते बंधव्युच्छेदो जायते, साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः। इत्थं देवायुषो बंधप्ररूपणा अवगन्तव्या।

बंधाध्वान हैं। संयतासंयत गुणस्थान में बंधव्युच्छिन्न होता है। ध्रुवबंध के बिना शेष तीन प्रकार का बंध होता है। इस प्रकार इनकी प्ररूपणा सुगम है।

अब देवायु और आहारकद्विक के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

देवायु का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२८९।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अप्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। अप्रमत्तसंयतकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२९०।।

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२९१।।

अप्रमत्तसंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२९२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—देवायु का पूर्व में उदय और पश्चात् बंध व्युच्छिन्न होता हैं। क्योंकि अप्रमत्त गुणस्थान में बंध का और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उदय का व्युच्छेद पाया जाता है। परोदय और निरन्तर बंध होता है, असंयतसम्यग्दृष्टियों में वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग प्रत्ययों का अभाव होने से बयालीस प्रत्यय हैं। उपरिम गुणस्थानों में ओघ के समान प्रत्यय हैं। इस देवायु का देवगतिसंयुक्त बंध होता है। दो गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि व संयतासंयत तथा मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत बंधाध्वान हैं। अप्रमत्तकाल के संख्यात बहुभागों के जाने पर बंधव्युच्छेद होता है, सादि व अध्रुव बंध होता है। इस प्रकार देवायु के बंध की प्ररूपणा जानना चाहिए।

आहारद्विकस्य बंधोऽप्रमत्तसंयतानामेव।

एवं द्वितीयस्थले वेदकसम्यग्दृष्टीनां बंधाबंधकथनत्वेन द्वादशसूत्राणि गतानि।

अधुना उपशमसम्यग्दृष्टीनां ज्ञानावरणादिबंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

उवसमसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।।२९३।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा बंधा, सुहुम-सांपराइयउवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२९४।।

सिद्धान्तंचिंतामणिटीका —**पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-यशःकीर्त्ति-उच्चगोत्र-पञ्चान्तरायाणां बंधव्युच्छेद एव। उदयव्युच्छेदो नास्ति, क्षीणकषायादिष्वपि एतासां प्रकृतीनां उदयदर्शनात्। तेनोदयव्युच्छेदात् बंधव्युच्छेदः पूर्वं पश्चाद्वा भवतीति विचारो नास्ति, सत्त्वासत्त्वयोस्तुल्यत्वविरोधात्। पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरणपंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः। यशःकीर्त्तेः असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदय एव, प्रतिपक्षोदयाभावात्। उच्चगोत्रस्यासंयतसम्यग्दृष्टि-संयतासंयतेषु स्वोदयपरोदयौ। उपरि स्वोदय एव, प्रतिपक्षप्रकृत्युदयाभावात्।**

आहारकद्विक का बंध अप्रमत्तसंयतों के ही होता है।

इस प्रकार दूसरे स्थल में वेदकसम्यग्दृष्टियों के बंध-अबंध के कथन रूप से बारह सूत्र पूर्ण हुए।

अब उपशम सम्यग्दृष्टियों के ज्ञानावरणादि के बंध-अबंध के प्रतिपादन के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

उपशमसम्यग्दृष्टि जीवों में पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२९३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमक तक बंधक हैं। सूक्ष्मसाम्परायिक उपशमकाल के अंतिम समय को जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२९४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, यशकीर्ति, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का बंधव्युच्छेद ही है, उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि क्षीणकषायादिक गुणस्थानों में भी इन प्रकृतियों का उदय देखा जाता है। इसी कारण उदयव्युच्छेद से बंधव्युच्छेद पूर्व में या पश्चात् होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि सत् और असत् की तुलना का विरोध है। पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है। यशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टियों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के उदय का अभाव है। उच्चगोत्र का असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय बंध होता है। ऊपर स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति का उदयाभाव है।

पंचज्ञानावरण-चतुर्दर्शनावरण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां बंधो निरन्तरः, ध्रुवबंधित्वात्। यशःकीर्तेर-संयतसम्यग्दृष्टिप्रभृति यावत्प्रमत्तसंयत इति सान्तरः। उपरि निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। प्रत्ययाः सुगमाः। विशेषेण—असंयतसम्यग्दृष्टिषु औदारिकमिश्र प्रत्ययः, प्रमत्तसंयतेषु आहारद्विकप्रत्ययो नास्ति। असंयतसम्यग्दृष्टिषु एताषां प्रकृतीनां बंधो देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। उपरिमेषु गुणस्थानेषु देवगतिसंयुक्तोऽगतिसंयुक्तो वा। चतुर्गति असंयतसम्यग्दृष्टयः द्विगतिसंयतासंयता मनुष्यगतिसंयताः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। ध्रुवबंधिनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

निद्राप्रचलाप्रकृतिबंधाबंधनिरूपणाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?।।२९५।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरण-उवसमद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।२९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**एतयोः प्रकृत्योः बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते। उदयव्युच्छेदो नास्ति, क्षीणकषायेष्वपि उदयदर्शनात्। स्वोदयपरोदयौ बंधौ, अध्रुवोदयत्वात्। निरन्तरो, ध्रुवबंधित्वात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु पंचचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिकमिश्रप्रत्ययाभावात्। प्रमत्तसंयते द्वाविंशतिप्रत्ययाः, आहारद्विकाभावात्।**

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का बंध निरन्तर होता है क्योंकि वे ध्रुवबंधी हैं। यशकीर्ति का असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंध होता है। ऊपर निरन्तर बंध होता है क्योंकि ऊपर प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है।

प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि असंयतसम्यग्दृष्टियों में औदारिकमिश्र प्रत्यय और प्रमत्तसंयतों में आहारकद्विक प्रत्यय नहीं हैं। असंयतसम्यग्दृष्टियों में इन प्रकृतियों का बंध देव व मनुष्यगतिसंयुक्त होता है। उपरिम गुणस्थानों में देवगतिसंयुक्त या अगतिसंयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्नस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब निद्रा और प्रचला प्रकृतियों के बंध-अबंध का निरूपण करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

निद्रा और प्रचला का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२९५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण उपशमक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण उपशमकाल का संख्यातवाँ भाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।२९६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इनका बंध पूर्व में व्युच्छिन्न होता है, उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि क्षीणकषाय जीवों में भी उनका उदय देखा जाता है। स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवोदयी हैं। निरन्तर बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंधी हैं। असंयतसम्यग्दृष्टियों में पैंतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि औदारिकमिश्र

शेषगुणस्थानेषु ओघप्रत्ययो, विशेषाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टौ देवमनुष्यगतिसंयुक्तः, उपरिमेषु देवगतिसंयुक्तः, चतुर्गत्यसंयतसम्यग्दृष्टि-द्विगतिसंयतासंयत-मनुष्यगतिसंयतस्वामिनः, अपगतबंधाध्वाना, अपूर्वकरणकाले संख्याते भागे व्यतीते गतविनाशः। ध्रुवबंधित्वात् निद्राप्रचलयोस्त्रिविधो बंधोऽस्ति।

सातावेदनीयबंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।।२९७।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीयरागछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।।२९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **सातावेदनीय बंधव्युच्छेदं मुक्त्वा उदयव्युच्छेदाभावोऽस्ति। स्वोदयपरोदयौ बंधौ स्तः। असंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तानां सान्तरो बंधः, उपरि निरन्तरो बंधः। असंयत-सम्यग्दृष्टिप्रमत्तसंयतौ मुक्त्वान्यत्र ओघप्रत्ययेभ्यः समानाः प्रत्ययाः सन्ति।असंयतसम्यग्दृष्टिषु औदारिकमिश्रयोगो नास्ति उपशमसम्यक्त्वे, प्रमत्तसंयतेषु चाहारद्विकाभावोऽस्ति। असंयतसम्यग्दृष्टिषु द्विगतिसंयुक्तो बंधः, उपरि देवगतिसंयुक्तश्च। चतुर्गत्यसंयतसम्यग्दृष्टि-द्विगतिसंयतासंयत-मनुष्यगतिसंयतस्वामिनः सन्ति। साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः। शेषं सुगममस्ति।**

असातावेदनीयादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रचतुष्टयमवतार्यते —

प्रत्यय का वहाँ अभाव है। प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बाईस प्रत्यय हैं क्योंकि वहाँ आहारद्विक का अभाव है। शेष गुणस्थानों में ओघ प्रत्ययों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि ओघ से वहाँ कोई विशेषता नहीं है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में देव व मनुष्यगति से संयुक्त तथा उपरिम गुणस्थानों में देवगतिसंयुक्त बंध होता है। चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टियों, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी हैं। बंधाध्वान ज्ञात ही है। अपूर्वकरणकाल का संख्यातवाँ भाग बीतने पर बंध व्युच्छिन्न होता है। ध्रुवबंधी होने से निद्रा व प्रचला का तीन प्रकार बंध होता है।

अब सातावेदनीय के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

सातावेदनीय का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२९७।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर उपशान्तकषाय वीतरागछद्मस्थ तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, अबंधक नहीं हैं।।२९८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — सातावेदनीय के बंधव्युच्छेद को छोड़कर उदयव्युच्छेद का अभाव होने से, स्वोदय-परोदय बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक सान्तर बंधकर ऊपर निरन्तर बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टि और प्रमत्तसंयतों को छोड़कर अन्यत्र ओघ के समान प्रत्यय होते हैं। असंयतसम्यग्दृष्टियों में औदारिकमिश्र नहीं है। उपशम सम्यक्त्व और प्रमत्तसंयतों में आहारकद्विक का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में दो गतियों से संयुक्त तथा ऊपर देवगतिसंयुक्त बंध है, चारों गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि, दो गतियों के संयतासंयत और मनुष्यगति के संयत स्वामी होते हैं। बंध सादि व अध्रुव है। शेष सुगम है।

अब असातावेदनीय आदि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए चार सूत्र अवतार लेते हैं —

असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।२९९।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३००।।

अपच्चक्खाणावरणीयमोहिणाणिभंगो।।३०१।।

णवरि आउवं णत्थि।।३०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीयादिषट्प्रकृतीनां बंधोऽसंयतसम्यग्दृष्टेरारभ्य प्रमत्तसंयतपर्यन्तं भवति। अप्रत्याख्यानावरणीयानां अवधिज्ञानिवद् भंगो ज्ञातव्यः। अत्र अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क-मनुष्यगतिद्विक-औदारिकशरीरद्विक-वज्रवृषभसंहननानां ग्रहणं कर्तव्यम्, देशामर्षकत्वात् सूत्रस्य। विशेषेण औदारिकमिश्रप्रत्ययोऽपनेतव्यः।

कथं वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाययोरत्रोपलंभः ?

न, उपशमसम्यक्त्वेन उपशमश्रेणिमारुह्य कालं कृत्वा देवेषूत्पन्नानां तदुपलंभात्।

विशेषेणात्र तेषां आयुषां बंधो नास्ति।

कुतः ?

सम्यग्मिथ्यादृष्टेरिव सर्वेषामुपशमसम्यग्दृष्टीनामायुषो बंधाभावात्।

सूत्रार्थ—

असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयशकीर्ति नामकर्मों का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।२९९।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर प्रमत्तसंयत तक बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३००।।

अप्रत्याख्यानावरणीय की प्ररूपणा अवधिज्ञानियों के समान है।।३०१।।

विशेष इतना है कि उनके आयुकर्म का बंध नहीं है।।३०२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—असातावेदनीय आदि छह प्रकृतियों का बंध असंयतसम्यग्दृष्टियों से प्रारंभ करके प्रमत्तसंयत पर्यंत होता है। अप्रत्याख्यानावरण का भंग अवधिज्ञान के समान जानना चाहिए। यहाँ अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क, मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन का ग्रहण करना चाहिए क्योंकि यह सूत्र देशामर्शक है। विशेष इतना है कि औदारिकमिश्र प्रत्यय को कम करना चाहिए।

शंका—वैक्रियिकमिश्र और कार्मणकाययोग यहाँ कैसे पाए जाते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपशमसम्यक्त्व के साथ उपशमश्रेणी चढ़कर और मरकर देवों में उत्पन्न हुए जीवों के वे दोनों प्रत्यय पाए जाते हैं।

विशेष इतना है कि उनके आयुकर्म का बंध नहीं है। क्यों नहीं है ? क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि के समान ही सर्व उपशमसम्यग्दृष्टियों के आयु के बंध का विरोध है।

अधुना प्रत्याख्यानचतुष्कपुरुषवेदक्रोधादीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रदशकमवतार्यते —

पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स को बंधो को अबंधो ?।।३०३।।

असंजदसम्मादिट्ठी बंधा संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३०४।।

पुरिसवेदकोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।३०५।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टि-उवसमद्धाए सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३०६।।

माण-मायसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।।३०७।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणिय-ट्टिउवसमद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३०८।।

लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।।३०९।।

अब प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, पुरुषवेद, क्रोधादि के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दश सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३०३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत बंधक हैं। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३०४।।

पुरुषवेद और संज्वलनक्रोध का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३०५।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणउपशमक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरण-उपशमकाल के शेष में संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३०६।।

संज्वलनमान और माया का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३०७।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणउपशमक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरण-उपशमकाल के शेष-शेष में संख्यात बहुभाग जाकर बंध व्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३०८।।

संज्वलन लोभ का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३०९।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टि-उवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३१०।।

हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?।।३११।।

असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतेषां सूत्राणां अर्थः सुगमो वर्तते। उपशमसम्यक्त्वमेकादशगुणस्थानपर्यन्तं वर्तते, तदपेक्षयैव ज्ञातव्यं।

देवगत्यादिप्रकृतीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्वियतेजाकम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।।३१३।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरणउपशामक तक बंधक हैं। अनिवृत्तिकरणउपशमकाल के अंतिम समय को जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३१०।।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३११।।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण उपशमक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण उपशमकाल के अंतिम समय को प्राप्त होकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३१२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपशम सम्यग्दर्शन ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है, उसी की अपेक्षा से यहाँ कथन जानना चाहिए।

अब देवगति आदि प्रकृतियों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ—

देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियिक-तैजस व कार्मणशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, देवानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर नामकर्म का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३१३।।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—एतयोः सूत्रयोरपि अर्थः सुगमोऽस्ति। उपशमश्रेण्यारूढानामपि कदाचित् तीर्थकरप्रकृतिबंधो जायते।

आहारद्विकबंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रद्वयमवतार्यते—

आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगाणं को बंधो को अबंधो ?।।३१५।।

अप्पमत्तापुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।।३१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमसम्यग्दृष्टय आहारद्विकं बध्नंति अप्रमत्तगुणस्थाने अपूर्वकरणगुणस्थाने वा बंधका भवन्ति। अपूर्वकरणस्य संख्यातबहुभागं गत्वा बंधो व्युच्छिद्यते। बंधव्युच्छिन्नानन्तरं उपशामका अबंधा भवन्ति।

एवं तृतीयस्थले उपशमसम्यग्दृष्टीनां बंधास्वामित्वनिरूपणत्वेन चतुर्विंशतिसूत्राणि गतानि।

असंयतसम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण उपशमक तक बंधक हैं। अपूर्वकरण उपशमकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३१४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—इन दोनों सूत्रों का अर्थ सुगम है। उपशमश्रेणी में आरोहण करने वालों के कदाचित् तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो सकता है।

अब आहारकद्विक के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं—

सूत्रार्थ—

आहारकशरीर और आहारकशरीरांगोपांग का कौन बंधक और कौन अबंधक है ?।।३१५।।

अप्रमत्त और अपूर्वकरण उपशमक बंधक हैं। अपूर्वकरण उपशमकाल के संख्यात बहुभाग जाकर बंधव्युच्छिन्न होता है। ये बंधक हैं, शेष अबंधक हैं।।३१६।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—उपशमसम्यग्दृष्टी महामुनि आहारकद्विक का बंध करते हैं, ये अप्रमत्तगुणस्थान में अथवा अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध करने वाले होते हैं। अपूर्वकरण गुणस्थान के संख्यातबहुभाग जाकर इन दोनों की बंध व्युच्छित्ति हो जाती है। बंध व्युच्छित्ति के बाद ये उपशामक अबंधक हो जाते हैं।

इस प्रकार तीसरे स्थल में उपशम सम्यग्दृष्टियों के बंधस्वामित्व को कहने वाले यहाँ चौबीस सूत्र पूर्ण हुए हैं।

संप्रति सासादनानां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रमवतरति —

सासणसम्मादिट्ठी मदिअण्णाणिभंगो।।३१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका —**पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-अष्टनोकषाय-तिर्यक्त्रिक-मनुष्यत्रिक-देवत्रिक-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकद्विक-वैक्रियिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-पंचसंस्थान-पंचसंहनन-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीच-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयः सासादनसम्यग्दृष्टिभिर्बध्यमानाः सन्ति। एतासामुदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो नास्ति, अत्र एतासां बंधोदयव्युच्छेदाभावात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधो, ध्रुवोदयत्वात्। देवायुः-देवगति-वैक्रियिकद्विकानां परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधोपलंभात्।

पञ्चज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-तिर्यग्मनुष्यदेवायुः पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमानुपलंभात्। सातासात-हास्य-रति-अरति-

---

अब सासादन गुणस्थान वालों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

सासादनसम्यग्दृष्टियों की प्ररूपणा मत्यज्ञानियों के समान है।।३१७।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, आठ नोकषाय, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यग्गति, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, पाँच संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक अंगोपांग, पाँच संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीच व ऊँचगोत्र और पाँच अन्तराय, ये प्रकृतियाँ सासादनसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा बध्यमान हैं। इनका बंध उदय से पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार नहीं है क्योंकि यहाँ इनके बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, त्रस, बादर, पर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवोदयी हैं। देवायु, देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। शेष प्रकृतियों का बंध स्वोदय-परोदय से होता है क्योंकि दोनों प्रकारों से भी उनका बंध पाया जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तिर्यगायु, मनुष्यायु, देवायु, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनका बंध-

शोक-स्त्रीवेद-मध्यमचतुःसंस्थान-पंचसंहनन-उद्योत-द्विविहायोगति-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्त्तीणां सान्तरो बंधः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। पुरुषवेदस्य बंधौ सान्तर-निरन्तरौ, पद्मशुक्ललेश्यावत्सु तिर्यग्मनुष्येषु निरन्तरबंधोपलंभात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-समचतुरस्रसंस्थान-सुभग-सुस्वर-आदेयोच्चगोत्राणां बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, असंख्यातवर्षायुष्केषु शुभत्रिकलेश्यावत्सु तिर्यग्मनुष्येषु च निरन्तरबंधोपलंभात्। मनुष्यगतिद्विकस्य बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, आनतादिदेवेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, सप्तमपृथिवीगतनारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। औदारिकशरीरद्विकस्यापि सान्तरनिरन्तरौ बंधौ, देवनारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्।

देवायुः-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां षट्चत्वारिंशत्प्रयया:, वैक्रियिकद्विक-औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानामभावात्। मनुष्यतिर्यगायुषोः सप्तचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणप्रत्ययानामभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां पञ्चाशत् प्रत्ययाः, पञ्चमिथ्यात्वप्रत्ययानामभावात् सासादनसम्यग्दृष्टीनां।

देवायुः-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां बंधो देवगतिसंयुक्तः। मनुष्यायुः-मनुष्यगतिद्विकानां मनुष्यगतिसंयुक्तः, तिर्यगायुः तिर्यग्गतिद्विकोद्योतानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः। औदारिकद्विक- मध्यमचतुःसंस्थान-पंचसंहनन-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः। उच्चगोत्रस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तो बंधः, तिर्यक्षूच्चगोत्राभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः तिर्यग्गतिसंयुक्तः, नरकगतिबंधाभावात्।

विश्राम नहीं पाया जाता। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्त्रीवेद, मध्यम चार संस्थान, पाँच संहनन, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी इनका बंधविश्राम देखा जाता है। पुरुषवेद का बंध सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि पद्म और शुक्ललेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। देवगतिद्विक, वैक्रियिकद्विक, समचतुरस्रसंस्थान, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र का सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि असंख्यातवर्षायुष्क और शुभ तीन लेश्या वाले तिर्यंच व मनुष्यों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। मनुष्यगतिद्विक का बंध सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि आनतादिक देवों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। तिर्यग्गतिद्विक और नीचगोत्र का बंध सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि सप्तम पृथिवी के नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। औदारिक शरीरद्विक का भी सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि देव व नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

देवायु, देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक ये छ्यालीस प्रत्यय हैं क्योंकि वैक्रियिकद्विक, औदारिकमिश्र और कार्मणकाययोग प्रत्ययों का अभाव है। मनुष्यायु और तिर्यगायु के सैंतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है। शेष प्रकृतियों के पचास प्रत्यय हैं क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों के पाँच मिथ्यात्व प्रत्ययों का अभाव है।

देवायु, देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक का बंध देवगतिसंयुक्त होता है। मनुष्यायु और मनुष्यगतिद्विक का बंध मनुष्यगतिसंयुक्त होता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गतिद्विक और उद्योत का बंध तिर्यग्गतिसंयुक्त होता है। औदारिकशरीर, मध्यम चार संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, पाँच संहनन, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। उच्चगोत्र का देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि तिर्यंचों में उच्चगोत्र का अभाव है। शेष प्रकृतियों का बंध तीन गतियों से संयुक्त

देवायुः-देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। शेषाणां प्रकृतीनां बंधस्य स्वामिनः सासादनाः चतुर्गतिकाः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छेदश्च नास्ति। षट्चत्वारिंशद् ध्रुवबंधिप्रकृतीनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। अवशेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना सम्यग्मिथ्यादृष्टीनां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रमवतरति —

सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।।३१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगतिद्विक-देवगतिद्विक-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकद्विक-वैक्रियिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां प्रकृतयः सम्यग्मिथ्यादृष्टिभिः बध्यमानाः सन्ति। उदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारोऽत्र नास्ति, प्रकृतीनामत्र बंधोदयव्युच्छेदानुपलंभात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-पंचेन्द्रियजाति-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, अत्र ध्रुवोदयत्वात्। निद्रा-प्रचला-सातासात-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां

होता है क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियों के नरकगति के बंध का अभाव है।

देवायु, देवगतिद्विक और वैक्रियिकद्विक के तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के स्वामी चारों गतियों के सासादनसम्यग्दृष्टि हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छेद नहीं है। छ्यालीस ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि उनके ध्रुवबंध का अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुव बंधी हैं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टियों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों की प्ररूपणा असंयत जीवों के समान है।।३१८।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, औदारिक-वैक्रियक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक व वैक्रियक आंगोपांग, वज्रर्षभसंह्नन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगति व देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियाँ सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों द्वारा बध्यमान हैं। उदय से बंध पूर्व में या पश्चात्व्युच्छिन्न होता है, यह विचार यहाँ नहीं है क्योंकि यहाँ उक्त प्रकृतियों के बंध और उदय का व्युच्छेद नहीं पाया जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, पंचेन्द्रिय जाति, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि यहाँ ये ध्रुवोदयी हैं। निद्रा, प्रचला, साता व असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, समचतुरस्रसंस्थान,

बंधौ स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधोपलंभात्। मनुष्यगतिद्विक-देवगतिद्विक-औदारिकद्विक-वैक्रियिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां परोदयो बंधः, स्वोदयेन बंधविरोधात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगतिद्विक-देवगतिद्विक-पंचेन्द्रियजाति-औदारिकद्विक-वैक्रियिकद्विक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-अगुरुलघुचतुष्क-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-सुभग-सुस्वर-आदेय-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, अत्र ध्रुवबंधदर्शनात्। सातासात-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्ति-अयशःकीर्तिप्रकृतीनां बंधः सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्।

मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां द्विचत्वारिंशत् प्रत्ययाः, औदारिककाययोगाभावात्। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां अपि द्विचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, वैक्रियिककाययोगाभावात्। अवशेषाणां त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, पंचमिथ्यात्व-अनंतानुबंधिचतुष्क-औदारिकमिश्र-वैक्रियिकमिश्र-कार्मणकाय-प्रत्ययानामभावात्।

मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां बंधो मनुष्यगतिसंयुक्तः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां देवगतिसंयुक्तः। शेषसर्वप्रकृतीनां देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। मनुष्यगतिद्विक-औदारिकद्विक-वज्रवृषभसंहननानां देवनारकाः स्वामिनः। देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विकानां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। शेषाणां

प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकारों से भी इनका बंध पाया जाता है। मनुष्यगति, देवगति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से इनके बंध का विरोध है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगति व देवगति प्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि यहाँ इनका ध्रुवबंध देखा जाता है। साता व असाता वेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी इनका बंधविश्राम देखा जाता है।

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर, औदारिकशरीरांगोपांग और वज्रर्षभसंहनन के बयालीस प्रत्यय हैं क्योंकि औदारिककाययोग का अभाव है। देवगति, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग के भी बयालीस प्रत्यय हैं क्योंकि यहाँ वैक्रियिककाययोग का अभाव है। शेष प्रकृतियों के तेतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि पाँच मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधिचतुष्क, औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का मिश्रगुणस्थान में अभाव है।

मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक और वज्रर्षभसंहनन का बंध मनुष्यगति से संयुक्त होता है। देवगतिद्विक और वैक्रियकद्विक का बंध देवगतिसंयुक्त होता है। शेष सब प्रकृतियों का बंध देव व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। मनुष्यगतिद्विक, औदारिकद्विक व वज्रर्षभसंहनन के देव व नारकी स्वामी हैं। देवगतिद्विक और

प्रकृतीनां बंधस्य स्वामिनः चतुर्गतिसम्यग्मिथ्यादृष्टयः। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् अध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छेदोऽपि नास्ति, अत्र सर्वासां बंधोपलंभात्। ध्रुवबंधिप्रकृतीनां त्रिविधो बंधः, ध्रुवाभावात्। शेषाणां साद्यध्रुवौ, अध्रुवबंधित्वात्।

अधुना मिथ्यादृष्टीनां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतार्यते —

मिच्छाइट्ठीणमभवसिद्धियभंगो।।३१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतत्सूत्रं सुगमं वर्तते, विशेषाभावात्। यथा अभव्यानामेकमेव गुणस्थानं तथैव मिथ्यादृष्टयः प्रथमगुणस्थानवर्तिनः सन्ति। विशेषेण — ध्रुवबंधिप्रकृतीनां चतुर्विधो बंधः, सादि-सान्तरबंधोपलंभात्।**

तात्पर्यमत्र — सम्यक्त्वमार्गणां पठित्वा मिथ्यात्व सासादन सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्थानेभ्यः अपसृत्य सम्यग्दर्शनं गृहीत्वा संसारमहार्णवपारो गन्तव्यः। किञ्च — सम्यग्दर्शनस्य माहात्म्यचिन्त्यमेव।

उक्तं श्रीमत्समन्तभद्रस्वामिभिः —

न सम्यक्त्व समं किञ्चित् त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्व-समं नान्यत्तनूभृताम्।।३४।।
सम्यग्दर्शनशुद्धा, नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुलविकृताल्पायु-र्दरिद्रतां च न व्रजन्ति चाप्यव्रतिकाः।।३५।।

वैक्रियिकद्विक के तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के बंध के स्वामी चारों गतियों के सम्यग्मिथ्यादृष्टि हैं। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेद भी नहीं है क्योंकि यहाँ सब प्रकृतियों का बंध पाया जाता है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि ध्रुवबंध का यहाँ अभाव है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी हैं।

अब मिथ्यादृष्टियों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

मिथ्यादृष्टि जीवों की प्ररूपणा अभव्यसिद्धिक जीवों के समान है।।३१९।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — यह सूत्र सुगम है क्योंकि यहाँ कोई विशेषता नहीं है। जैसे — अभव्य जीवों के एक ही गुणस्थान है वैसे ही मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम गुणस्थानवर्ती ही होते हैं। विशेष इतना है कि ध्रुवबंधी प्रकृतियों का यहाँ चारों प्रकार का बंध होता है क्योंकि सादि व सान्तर अर्थात् अध्रुवबंध पाया जाता है।

यहाँ तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्वमार्गणा को पढ़कर मिथ्यात्व, सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानों से दूर हटकर — छूटकर सम्यग्दर्शन को ग्रहण करके संसार महासमुद्र को पार करना चाहिए।

क्योंकि सम्यग्दर्शन का माहात्म्य अचिन्त्य ही है।

श्रीमान् समन्तभद्र स्वामी ने कहा भी है —

तीनों लोकों और तीनों कालों में संसारी जीवों के लिए सम्यग्दर्शन के समान श्रेयस्कर — हितकारी कुछ भी नहीं है। वैसे ही मिथ्यादर्शन के समान तीनों लोकों और तीनों कालों में अन्य कुछ भी अश्रेयस्कर — दुःखकारी नहीं है।।३४।।

सम्यग्दर्शन से शुद्ध हुए मनुष्य यदि अव्रती भी हैं तो भी वे आगे नारकी, तिर्यंच, नपुंसक, स्त्री,

पुनः कीदृशानि पदानि लभन्ते? इत्याहुः —

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम् ।
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्च्यनीयम्।।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकम्।
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः[1]।।४१।।

इति ज्ञात्वाहर्निशं सम्यग्दर्शनमेव भावयितव्यं भवद्भिरस्माभिश्च यावत्परमानन्दसौख्यप्राप्तिपर्यन्तम्।

इति चतुर्थस्थले सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व-मिथ्यात्वगुणस्थानेषु बंधस्वामित्वप्ररूपणत्वेन सूत्रत्रयं गतम्।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनी-ज्ञानमतीकृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां सम्यक्त्व-मार्गणा नाम द्वादशोऽधिकारः समाप्तः।

नीचकुली, विकृत अंग वाले, अल्पायु और दरिद्री नहीं होते हैं। चकार से समझना कि वे भवनवासी, व्यंतर और ज्योतिषी भी नहीं होते तथा एकेन्द्रिय और विकलत्रय में भी जन्म नहीं लेते हैं।।३५।।

पुनः वे किन-किन पदों को प्राप्त करते हैं ? सो ही आचार्यदेव कहते हैं —

जो भव्य जीव सम्यग्दृष्टि हैं वे जिनेन्द्रदेव की भक्ति में सदा तत्पर रहते हैं। वे ही देवेन्द्रचक्र — सौधर्म इन्द्र आदि इंद्र पद प्राप्तकर अपरिमित ऐश्वर्य को भोगते हैं। राजा-महाराजा मुकुटबद्ध, राजाओं द्वारा अर्चनीय ऐसे राजेन्द्र चक्र — चक्रवर्ती पद को प्राप्त करते हैं पुनः वे त्रिभुवन में उत्तम ऐसे धर्मेन्द्र चक्र — तीर्थंकर पद को प्राप्तकर धर्मचक्र का प्रवर्तन करते हुए संपूर्ण लोक के द्वारा पूज्य बन जाते हैं अनंतर मुक्तिलक्ष्मी को प्राप्त कर लेते हैं।।४१।।

ऐसा जानकर हमें और आपको परमानंद सौख्यस्वरूप मोक्षसुख की प्राप्ति पर्यंत हमेशा सम्यग्दर्शन की ही भावना करते रहना चाहिए।

इस प्रकार चतुर्थ स्थल में सासादन-सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व गुणस्थानों में बंधस्वामित्व की प्ररूपणा करने वाले तीन सूत्र पूर्ण हुए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत-सिद्धान्तचिंतामणिटीका में सम्यक्त्वमार्गणा नाम का यह बारहवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

---

१. रत्नकरण्डश्रावकाचारः।

अथ संज्ञिमार्गणाधिकारः

मंगलाचरणम्

संज्ञ्यसंज्ञिद्वयैर्हीना, जितेन्द्रिया अनिंद्रियाः।
परमातीन्द्रियं सौख्यं, दिशन्तु मे नमाम्यतः।।१।।

अथ स्थलद्वयेन त्रिभिः सूत्रैर्बंधस्वामित्वविचये संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत् प्रथमस्थले संज्ञिजीवानां बंधाबंधकथनत्वेन ''सण्णियाणुवादेण'' इत्यादिसूत्रद्वयं। तदनु द्वितीयस्थलेऽसंज्ञिजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनत्वेन ''असण्णीसु'' इत्यादिसूत्रमेकमिति समुदायपातनिका।

अधुना संज्ञिजीवानां बंधस्वामित्वकथनाय सूत्रद्वयमवतार्यते —

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो।।३२०।।

णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स चक्खुदंसणीभंगो।।३२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **संज्ञिनां जीवानां तीर्थकरप्रकृतिपर्यन्तं ओघवत्प्ररूपणा कर्तव्या।**

कश्चिदाह — एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां परोदयबंधोपलंभात्, पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादराणां स्वोदयबंधोपलंभात्। नेदं सूत्रं युज्यते ?

संज्ञीमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो संज्ञी और असंज्ञी अवस्था से छूटकर जितेन्द्रिय होकर मनरहित — अतीन्द्रिय हो चुके हैं, वे हमें परम अतीन्द्रिय सौख्य देवें, इसलिए हम उन्हें नमस्कार करते हैं।।१।।

अब दो स्थलों द्वारा तीन सूत्रों से बंधस्वामित्वविचय ग्रंथ में संज्ञीमार्गणा अधिकार नाम का यह तेरहवाँ अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें सर्वप्रथम पहले स्थल में संज्ञी जीवों के बंध-अबंध का कथन करते हुए ''सण्णियाणुवादेण-'' इत्यादि दो सूत्र कहेंगे। पुनः द्वितीय स्थल में असंज्ञी जीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए ''असण्णीसु-'' इत्यादि एक सूत्र कहेंगे, इस प्रकार यह समुदायपातनिका हुई है।

अब संज्ञी जीवों के बंधस्वामित्व का कथन करने के लिए दो सूत्र अवतार लेते हैं —

सूत्रार्थ —

संज्ञिमार्गणानुसार संज्ञी जीवों में तीर्थंकर प्रकृति तक ओघ के समान प्ररूपणा है।।३२०।।

परन्तु विशेषता इतनी है कि सातावेदनीय की प्ररूपणा चक्षुदर्शनी जीवों के समान है।।३२१।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — संज्ञी जीवों के तीर्थंकर प्रकृति पर्यंत ओघ के समान प्ररूपणा करना चाहिए।

यहाँ कोई प्रश्न करता है — चूँकि यहाँ एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण प्रकृतियों का बंध परोदय से और पंचेन्द्रिय जाति, त्रस व बादर का बंध स्वोदय से पाया जाता है, अतएव यह सूत्र युक्त नहीं है ?

आचार्यः प्राह—नैतद् वक्तव्यं, देशामर्शकसूत्रेषु एवंविधभेदाविरोधात्।

विशेषेण सातावेदनीयस्य बंधप्ररूपणा चक्षुर्दर्शनिवत् ज्ञातव्यास्ति।

एवं संज्ञिजीवबंधस्वामित्वकथनत्वेन सूत्रद्वयं गतम्।

अधुना असंज्ञिजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

असण्णीसु अभवसिद्धियभंगो।।३२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—**पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-सातासात-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-नवनोकषाय-चतुरायुः-चतुर्गति-पंचजाति-औदारिक-वैक्रियिक-तैजस-कार्मणशरीर-षट्संस्थान-औदारिक-वैक्रियिकांगोपांग-षट्संहनन-वर्णचतुष्क-चतुरानुपूर्वि-अगुरुलघुचतुष्क-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेयानादेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-नीचोच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयः असंज्ञिभिर्बध्यमानाः सन्ति। उदयाद्बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति परीक्षा नास्त्यत्र एतासां बंधोदयव्युच्छेदाभावात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-नीचगोत्र-पंचान्तराय-तिर्यगायुस्तिर्यग्गतीनां बंधः स्वोदयः। नरकत्रिक[1]-देवत्रिक-वैक्रियिकद्विक-उच्चगोत्र-मनुष्यत्रिकप्रकृतीनां परोदयो बंधः। पंचदर्शनावरणीय-सातासात-षोडशकषाय-

---

आचार्यदेव उत्तर देते हैं—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि देशामर्शक सूत्रों में इस प्रकार की विशेषता विरोध से रहित है।

विशेषतया सातावेदनीय की बंधप्ररूपणा चक्षुदर्शनी जीवों के समान जानना चाहिए।

इस प्रकार संज्ञी जीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करते हुए दो सूत्र पूर्ण हुए।

अब असंज्ञी जीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ—

असंज्ञी जीवों में बंधोदयव्युच्छेदादि की प्ररूपणा अभव्यसिद्धिक जीवों के समान है।।३२२।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका—पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, चार आयु, चार गतियाँ, पाँच जातियाँ, औदारिक, वैक्रियिक-तैजस व कार्मण शरीर, छह संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, चार आनुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, नीच व ऊँच गोत्र और पाँच अन्तराय, ये प्रकृतियाँ असंज्ञी जीवों के द्वारा बध्यमान हैं। उदय में बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह परीक्षा यहाँ नहीं है क्योंकि यहाँ इन प्रकृतियों के बंध और उदय के व्युच्छेद का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण, नीचगोत्र, पाँच अन्तराय, तिर्यगायु और तिर्यग्गति का बंध स्वोदय होता है। नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, नरकगति व

---

१. नरकगति-नरकगत्यानुपूर्वि-नरकायु को नरकत्रिक संज्ञा है।

नवनोकषाय-पंचजाति-औदारिकद्विक-षट्संस्थान-षट्संहनन-तिर्यग्गत्यानुपूर्वि-आताप-उद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्त्तीणां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधविरोधाभावात्। उपघात-परघात-उच्छ्वासानामपि स्वोदयपरोदयौ, अपर्याप्तकाले उदयेन विनापि बंधोपलंभात्।

पंचज्ञानावरणीय-नवदर्शनावरणीय-मिथ्यात्व-षोडशकषाय-भय-जुगुप्सा-चतुरायुः-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, एकसमयेन बंधोपरमाभावात्। सातासात-सप्तनोकषाय-नरकमनुष्यदेवगति-पंचजाति-औदारिकद्विक-वैक्रियिकद्विक-षट्संस्थान-षट्संहनन-नरकमनुष्यदेवगत्यानुपूर्वि-परघातोच्छ्वास-आतापोद्योत-द्विविहायोगति-त्रस-स्थावर-बादर-सूक्ष्म-पर्याप्तापर्याप्त-प्रत्येक-साधारणशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-दुर्भग-सुस्वर-दुःस्वर-आदेयानादेय-यशःकीर्त्ययशःकीर्त्ति-उच्चगोत्राणां सान्तरो बंधः, एकसमयेनापि बंधोपरमदर्शनात्। तिर्यग्गतिद्विक-औदारिकशरीर-नीचगोत्राणां बंधौ सान्तरनिरन्तरौ, तेजोवायुकायिकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्।

असंज्ञिषु पंचचत्वारिंशत्प्रत्ययाः सर्वप्रकृतीनां, वैक्रियिकद्विक-चतुर्विधमनः-त्रिविधवचनयोग-मानसासंयमाभावात्। नरकत्रिक-देवत्रिक-वैक्रियिकद्विकानां त्रिचत्वारिंशत्प्रत्ययाः, औदारिकमिश्र-कार्मणप्रत्यययोरभावात्। मनुष्यतिर्यगायुषोश्चतु-श्चत्वारिंशत् प्रत्ययाः, कार्मणप्रत्ययाभावात्। सातावेदनीय-स्त्रीवेद-पुरुषवेद-हास्य-रति-समचतुरस्रसंस्थान-प्रशस्तविहायोगति-स्थिर-शुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-

---

देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, उच्चगोत्र, मनुष्यायु और मनुष्यगतिद्विक का परोदय बंध होता है। पाँच दर्शनावरणीय, साता व असाता वेदनीय, सोलह कषाय, नौ नोकषाय, पाँच जातियाँ, औदारिकशरीर, छह संस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, छह संहनन, तिर्यगानुपूर्वी, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारण शरीर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का बंध स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का कोई विरोध नहीं है। उपघात, परघात और उच्छ्वास का भी स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि अपर्याप्तकाल में उदय के बिना भी इनका बंध पाया जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, नौ दर्शनावरणीय, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, चार आयु, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय का निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। साता व असाता वेदनीय, सात नोकषाय, नरकगति, मनुष्यगति, देवगति, पाँच जाति, औदारिकशरीर, वैक्रियिकशरीर, छह संस्थान, औदारिक व वैक्रियिक शरीरांगोपांग, छह संहनन, नारकानुपूर्वी, मनुष्यानुपूर्वी, देवानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, दो विहायोगतियाँ, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक व साधारण शरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुस्वर, आदेय, अनादेय, यशकीर्ति और अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी उनका बंधविश्राम देखा जाता है। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर और नीचगोत्र का बंध सान्तर-निरन्तर होता है क्योंकि तेज व वायुकायिक जीवों में इनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

असंज्ञी जीवों में सब प्रकृतियों के पैंतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि उनके वैक्रियिकद्विक, चार प्रकार का मन, अनुभय वचनयोग के बिना तीन प्रकार का वचनयोग और मनजनित असंयम प्रत्ययों का अभाव है। विशेषता यह है कि नरकायु, देवायु, नरकगति, देवगति, नरकगति व देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, वैक्रियिकशरीर और वैक्रियिकशरीरांगोपांग के तेतालीस प्रत्यय हैं क्योंकि औदारिकमिश्र और कार्मण प्रत्ययों का अभाव है।

यशःकीर्तीणां बंधस्त्रिगतिसंयुक्तः, नरकगतावभावात्। नरकत्रिकस्य नरकगतिसंयुक्तः। मनुष्यत्रिकस्य मनुष्यगतिसंयुक्तः। देवगतित्रिकस्य देवगतिसंयुक्तः। तिर्यग्गतित्रिक-एकेन्द्रियादिचतुर्जाति-आतापोद्योत-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणशरीराणां तिर्यग्गतिसंयुक्तो बंधः। वैक्रियिकद्विकस्य देवनरकगतिसंयुक्तः। औदारिकद्विक-मध्यमचतुःसंस्थान-षट्संहनन-अपर्याप्तानां तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां त्रिगतिसंयुक्तो बंधः, देवगतेरभावात्। उच्चगोत्रस्य द्विगतिसंयुक्तः, नरकतिर्यग्गत्योरभावात्। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधः, चतुर्गतिसंबंधः।

तिर्यंचश्चैव स्वामिनः, अन्यत्रासंज्ञिनामभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन् अध्वानविरोधात्। बंधव्युच्छेदोऽपि, बंधोपलंभात्। सप्तचत्वारिंशद् ध्रुवबंधिप्रकृतीनां चतुर्विधो बंधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ, प्रतिपक्षबंधानुपलंभात्।

तात्पर्यमत्र—बंध बंधकारणानि च ज्ञात्वा बंधकारणेभ्यो विरज्य स्वात्मतत्वमनुभवनीयमिति।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनी-ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां संज्ञिमार्गणानाम त्रयोदशाऽधिकारः समाप्तः।

मनुष्यायु और तिर्यगायु के चवालीस प्रत्यय हैं क्योंकि कार्मण प्रत्यय का अभाव है। साता वेदनीय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य, रति, समचतुरस्रसंस्थान, प्रशस्तविहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय और यशकीर्ति का बंध तीन गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि इनके साथ नरकगति के बंध का अभाव है। नरकायु, नरकगति और नरकगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध नरकगतिसंयुक्त होता है। मनुष्यायु, मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। देवायु, देवगति और देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का देवगतिसंयुक्त बंध होता है। तिर्यगायु, तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण शरीर का तिर्यग्गतिसंयुक्त बंध होता है। वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिक शरीरांगोपांग का देवगति व नरकगति से संयुक्त बंध होता है। औदारिक शरीर, औदारिकशरीरांगोपांग, मध्यम चार संस्थान, छह संहनन और अपर्याप्त का तिर्यग्गति व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। नपुंसकवेद, हुण्डकसंस्थान, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का तीन गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि इनके साथ देवगति के बंध का अभाव है। उच्चगोत्र का दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि उसके साथ नरक और तिर्यग्गति का बंध नहीं होता। शेष प्रकृतियों का बंध चारों गतियों से संयुक्त होता है।

तिर्यंच जीव ही स्वामी हैं क्योंकि अन्य गतियों में असंज्ञी जीवों का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेद भी नहीं है क्योंकि बंध पाया जाता है। सैंतालीस ध्रुवबंधी प्रकृतियों का चारों प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि इनके प्रतिपक्ष अर्थात् अनादि व ध्रुव बंध नहीं पाए जाते हैं।

यहाँ तात्पर्य यही है कि बंध और बंध के कारणों को जानकर बंध के कारणों से विरक्त होकर अपने आत्मतत्त्व का अनुभव करना चाहिए।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के ''बंधस्वामित्वविचय'' नाम के तृतीय खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में संज्ञी मार्गणा नाम का यह तेरहवाँ अधिकार पूर्ण हुआ।

अथ आहारमार्गणाधिकार:

मंगलाचरणम्

आहारमार्गणाशून्याः, अनाहारा जिनेश्वराः।
सर्वाहारविनिर्मुक्त्यै, तान् सिद्धांश्च नुमो मुदा।।१।।
सर्वैतन्मार्गणाभिर्यै, न हि मृग्याः स्वयंस्थिताः।
गतिशून्याः स्थिराः सिद्धा-स्तांस्तांस्तुमः स्वसिद्धये।।२।।

अथ सूत्रद्वयेन द्वाभ्यां सूत्राभ्यां आहारमार्गणाधिकारः प्रारभ्यते। तत्र तावत्प्रथमस्थले आहारिणां जीवानां बंधस्वामित्वकथनत्वेन ''आहाराणुवादेण-'' इत्यादिसूत्रमेकं। तदनु द्वितीयस्थले अनाहारिणां जीवानां बंधाबंधनिरूपणत्वेन ''अणाहार-'' इत्यादिसूत्रमेकमिति समुदायपातनिका सूचिता भवति।

अधुना आहारमार्गणायां आहारिजीवानां बंधस्वामित्वप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

आहाराणुवादेण आहारएसु ओघं।।३२३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **एतस्य सूत्रस्य यथा ओघे — गुणस्थानेषु प्ररूपणा कृता तथा कर्तव्या। विशेषेण सर्वत्र कार्मणप्रत्ययोऽपनेतव्यः। चतसृणां आनुपूर्विप्रकृतीनां बंधः परोदयः। उपघातस्य स्वोदयः, इति ज्ञातव्यः।**

आहारमार्गणा अधिकार

मंगलाचरण

जो आहार मार्गणा से रहित अनाहारी जिनेन्द्र भगवान हैं, सर्व प्रकार के आहार से छूटने के लिए हम जिनेन्द्र भगवन्तों को और सिद्धों को हर्षपूर्वक नमस्कार करते हैं।।१।।

जो सभी इन चौदह मार्गणाओं से ढूढ़ने योग्य — जानने योग्य नहीं हैं, स्वयं-स्वयं में स्थित हैं, गति — गमनागमन से रहित हैं, स्थिर हैं — स्थिर सिद्ध पद को प्राप्त हैं, अपनी आत्मा की सिद्धि के लिए हम उन-उन सभी सिद्ध भगवन्तों की स्तुति करते हैं।।२।।

अब दो स्थलों द्वारा दो सूत्रों से आहारमार्गणा अधिकार प्रारंभ होता है। उसमें प्रथम स्थल में आहार वाले जीवों के बंधस्वामित्व का कथन करने वाला "आहाराणुवादेण-" इत्यादि एक सूत्र कहेंगे। इसके बाद दूसरे स्थल में अनाहारक जीवों के बंध-अबंध का निरूपण करने वाला "अणाहार-" इत्यादि एक सूत्र है। इस प्रकार यह समुदायपातनिका हुई है।

अब आहारमार्गणा में आहारक जीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

आहारमार्गणानुसार आहारकजीवों में ओघ के समान प्ररूपणा है।।३१३।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — इस सूत्र की जैसे ओघ में — गुणस्थान में प्ररूपणा की गई है, उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि सर्वत्र कार्मण प्रत्यय को कम करना चाहिए। चार आनुपूर्वियों का बंध परोदय होता है। उपघात का स्वोदय बंध होता है, ऐसा जानना चाहिए।

एवं प्रथमस्थले आहारिजीवानां बंधस्वामित्वनिरूपणत्वेन एकं सूत्रं गतम्।

संप्रति अनाहारिजीवानां बंधाबंधप्रतिपादनाय सूत्रमवतरति —

अणाहारएसु कम्मइयभंगो।।३२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — **पंचज्ञानावरणीय-षट्दर्शनावरणीय-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-मनुष्यगति-पंचेन्द्रियजाति-औदारिक-तैजस-कार्मणशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-वर्णचतुष्क-मनुष्यगत्यानुपूर्वि-अगुरुलघु-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीर-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-सुभग-सुस्वर-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-निर्माण-उच्चगोत्र-पंचान्तरायप्रकृतयः मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-अविरतसम्यग्दृष्टिभिस्त्रिभिर्गुणस्थानवर्तिभिः बध्यमानाः सन्ति। एतासामुदयपूर्वापरकालसंबंधि-बंध-व्युच्छेदपरीक्षा नास्ति, सर्वासामत्र बंधोदयदर्शनात्।**

पंचज्ञानावरणीय-चतुर्दर्शनावरणीय-तैजस-कार्मणशरीर-वर्ण-गंध-रस-स्पर्श-अगुरुलघु-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-निर्माण-पंचान्तरायाणां स्वोदयो बंधः, ध्रुवोदयत्वात्। औदारिकशरीर-समचतुरस्रसंस्थान-औदारिकशरीरांगोपांग-वज्रवृषभसंहनन-उपघात-परघात-उच्छ्वास-प्रशस्तविहायोगति-प्रत्येकशरीर-सुस्वराणां परोदयो बंधः, स्वोदयेनात्र बंधविरोधात्। निद्रा-प्रचला-असातावेदनीय-द्वादशकषाय-पुरुषवेद-हास्य-रति-अरति-शोक-भय-जुगुप्सा-सुभग-आदेय-यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति-उच्चगोत्राणां स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधविरोधाभावात्। मनुष्यगतिद्विकस्य बंधौ, मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयपरोदयौ।

इस प्रकार प्रथम स्थल में आहारक जीवों के बंधस्वामित्व का प्रतिपादन करने वाला एक सूत्र पूर्ण हुआ।

अब अनाहारक जीवों के बंध-अबंध का प्रतिपादन करने के लिए सूत्र अवतार लेता है —

सूत्रार्थ —

अनाहारक जीवों में कार्मणकाययोगियों के समान प्ररूपणा है।।३२४।।

सिद्धान्तचिंतामणिटीका — पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, असाता वेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, औदारिक-तैजस व कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वज्रर्षभसंहनन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, अगुरुलघु, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येकशरीर, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति, निर्माण, उच्चगोत्र और पाँच अन्तराय प्रकृतियाँ तीन मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों द्वारा बध्यमान हैं। इन प्रकृतियों के उदयव्युच्छेद के पूर्वापर काल संबंधी बंधव्युच्छेद की परीक्षा नहीं है क्योंकि सब प्रकृतियों का यहाँ बंध और उदय देखा जाता है।

पाँच ज्ञानावरणीय, चार दर्शनावरणीय, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, निर्माण और पाँच अन्तराय का स्वोदय बंध होता है क्योंकि वे ध्रुवोदयी हैं। औदारिकशरीर, समचतुरस्रसंस्थान, औदारिकशरीरांगोपांग, वर्ज्रषभसंहनन, उपघात, परघात, उच्छ्वास, प्रशस्तविहायोगति, प्रत्येकशरीर और सुस्वर का परोदय बंध होता है क्योंकि स्वोदय से यहाँ इनके बंध का विरोध है। निद्रा, प्रचला, असातावेदनीय, बारह कषाय, पुरुषवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, सुभग, आदेय, यशकीर्ति, अयशकीर्ति और उच्चगोत्र का स्वोदय-परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं है। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि

असंयतसम्यग्दृष्टिषु परोदयश्चैव, स्वोदयेन बंधविरोधात्। पंचेन्द्रियजाति-त्रस-बादर-पर्याप्तानां मिथ्यादृष्टिषु बंधौ स्वोदयपरोदयौ, प्रतिपक्षप्रकृत्युदयदर्शनात्। सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु स्वोदयश्चैव, प्रतिपक्षोदयाभावात्।

पंचज्ञानावरणीय-षड्दर्शनावरणीय-द्वादशकषाय-भय-जुगुप्सा-तैजस-कार्मणशरीर-वर्णचतुष्क-अगुरुलघु-उपघात-निर्माण-पंचान्तरायाणां निरन्तरो बंधः, ध्रुवबंधित्वात्। असातावेदनीय-हास्य-रति-अरति-शोक-स्थिरास्थिर-शुभाशुभ-यशःकीर्त्त्ययशःकीर्त्तीणां सान्तरो बंधः। पुरुषवेदस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु सान्तरः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

एवं समचतुरस्रसंस्थान-वज्रवृषभसंहनन-प्रशस्तविहायोगति-सुभग-सुस्वर-आदेयोच्चगोत्राणां अपि वक्तव्यम्।

मनुष्यगतिद्विकस्य मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिषु सान्तरनिरन्तरौ, आनतादिदेवेषु उत्पद्य विग्रहगतौ वर्तमानेषु निरन्तरबंधोपलंभात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्। पंचेन्द्रियजाति-औदारिकशरीरांगोपांग-परघातोच्छ्वास-त्रस-बादर-पर्याप्त-प्रत्येकशरीराणां मिथ्यादृष्टौ सान्तरनिरन्तरौ, सनत्कुमारादिदेव-नारकेषु निरन्तरबंधोपलंभात्।

विग्रहगतौ कथं निरन्तरता ?

न, शक्तिं प्रतीत्य निरन्तरत्वोपदेशात्। सासादनसम्यग्दृष्टिअसंयतसम्यग्दृष्टिषु निरन्तरः, प्रतिपक्षप्रकृति-बंधाभावात्। एवमौदारिकशरीरस्यापि वक्तव्यम्।

गुणस्थानों में स्वोदय-परोदय होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में परोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ स्वोदय से इनके बंध का विरोध है। पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर और पर्याप्त का बंध मिथ्यादृष्टियों में स्वोदय-परोदय होता है क्योंकि यहाँ इनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों का उदय देखा जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उनका स्वोदय ही बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृतियों के उदय का अभाव है।

पाँच ज्ञानावरणीय, छह दर्शनावरणीय, बारह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस व कार्मण शरीर, वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण और पाँच अन्तराय, इनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि ये ध्रुवबंधी हैं। असातावेदनीय, हास्य, रति, अरति, शोक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, यशकीर्ति और अयशकीर्ति का सान्तर बंध होता है। पुरुषवेद का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में उसका निरन्तर बंध होता है क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। इसी प्रकार समचतुरस्रसंस्थान, वज्रर्षभसंहनन, प्रशस्तविहायोगति, सुभग, सुस्वर, आदेय और उच्चगोत्र के भी कहना चाहिए। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि आनतादिक देवों में उत्पन्न होकर विग्रहगति में वर्तमान जीवों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में निरन्तर बंध होता है क्योंकि उनमें प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है। पंचेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीरांगोपांग, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त और प्रत्येकशरीर का मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि सनत्कुमारादि देव और नारकियों में उनका निरन्तर बंध पाया जाता है।

शंका— विग्रहगति में बंध की निरन्तरता कैसे संभव है ?

समाधान— नहीं, क्योंकि शक्ति की अपेक्षा उसकी निरन्तरता का उपदेश है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों में उनका निरन्तर बंध होता है क्योंकि उनकी प्रतिपक्ष प्रकृतियों के बंध का अभाव है।

मिथ्यादृष्टेस्त्रिचत्वारिंशत्, सासादनस्याष्टत्रिंशत्, असंयतसम्यग्दृष्टेस्त्रिंशत् प्रत्ययाः। मनुष्यगतिद्विकस्य बंधो मनुष्यगतिसंयुक्तः। औदारिकद्विकस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु मनुष्यगतिसंयुक्तः। एवं वज्रवृषभवज्रनाराचशरीरसंहननस्यापि वक्तव्यं। उच्चगोत्रस्य मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु मनुष्यगतिसंयुक्तः, असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। शेषाणां प्रकृतीनां बंधो मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः, एतेषामपर्याप्तकाले देवनरकगत्योर्बंधाभावात्। असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः, तत्रान्यगत्योर्बंधाभावात्।

मनुष्यगतिद्विक-औदारिकशरीरद्विकानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः, देव-नरकगति-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। एवं वज्रवृषभसंहननस्यापि वक्तव्यं। शेषाणां प्रकृतीनां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। बंधाध्वानं सुगमं। बंधव्युच्छेदश्च सुगमः। ध्रुवबंधिनां बंधो मिथ्यादृष्टिषु चतुर्विधः, सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु त्रिविधः। शेषाणां प्रकृतीनां सर्वत्र साद्यध्रुवौ स्तः।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यग्गतिद्विक-चतुःसंस्थान-चतुःसंहनन-उद्योत-अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां द्विस्थानप्रकृतीनां प्ररूपणा क्रियते —

अनंतानुबंधिचतुष्क स्त्रीवेदानां बंधोदयौ समं व्युच्छिद्येते। दुर्भगानादेय-नीचगोत्र-तिर्यक्द्विकानां पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते। अवशेषाणां प्रकृतीनां बंधव्युच्छेदश्चैव, अत्रोदयविरोधात्। अनंतानुबंधिचतुष्क-स्त्रीवेद-तिर्यग्गतिद्विक-दुर्भगानादेय-नीचगोत्राणां बंधौ स्वोदयपरोदयौ, उभयथापि बंधविरोधाभावात्। शेषाणां परोदयो बंधः, अत्रोदयाभावात्।

स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां निरन्तरो बंधः, अनेकसमयबंधशक्तिसंयुक्तत्वात्।

इसी प्रकार औदारिकशरीर के भी कहना चाहिए।

मिथ्यादृष्टि के तेतालीस, सासादनसम्यग्दृष्टि के अड़तीस और असंयतसम्यग्दृष्टि के तेतीस प्रत्यय हैं। मनुष्यगति और मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी का बंध मनुष्यगतिसंयुक्त होता है। औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में तिर्यग्गति व मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में मनुष्यगतिसंयुक्त बंध होता है। इसी प्रकार वज्रर्षभवज्रनाराचशरीरसंहनन के भी कहना चाहिए। उच्चगोत्र का मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में मनुष्यगति संयुक्त तथा असंयतसम्यग्दृष्टियों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियों में तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त होता है क्योंकि इनके अपर्याप्तकाल में देव व नरकगति के बंध का अभाव है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में देव व मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है क्योंकि उनमें अन्य गतियों के बंध का अभाव है।

मनुष्यगति, मनुष्यगतिप्रायोग्यानुपूर्वी, औदारिकशरीर और औदारिकशरीरांगोपांग के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि तथा देवगति व नरकगति के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। इसी प्रकार वज्रर्षभसंहनन के भी कहना चाहिए। शेष प्रकृतियों के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान सुगम हैं। बंधव्युच्छेद भी सुगम है। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टियों में चारों प्रकार का होता है। सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियों में तीन प्रकार का बंध होता है। शेष प्रकृतियों का सर्वत्र सादि व अध्रुव बंध होता है।

स्त्यानगृद्धित्रय, अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यग्गति, चार संस्थान, चार संहनन, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी,

तिर्यग्गतिद्विक-नीचगोत्राणां मिथ्यादृष्टिषु सान्तरनिरन्तरौ, तेजोवायुकायिकेषु विग्रहं कृत्वोत्पन्नानां तत्तो विग्रहगतौ गतानां सप्तमपृथिवीतः विग्रहं कृत्वा निर्गतानां च निरन्तरबंधोपलंभात्। सासादने सान्तरः, एकसमयेनापि बंधोपरमशक्तिदर्शनात्। शेषाणां प्रकृतीनां बंधः सर्वत्र सान्तरः, स्वाभाविकात्।

प्रत्ययाः सुगमाः।

तिर्यग्गतिद्विक उद्योतानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः। चतुःसंस्थान-चतुःसंहननानां तिर्यग्गतिमनुष्यगतिसंयुक्तः। स्त्रीवेदस्य द्विगतिसंयुक्तः, देवनरकगत्योरभावात्। अप्रशस्तविहायोगति-दुर्भग-दुःस्वर-अनादेय-नीचगोत्राणां बंधो मिथ्यादृष्टौ सासादने द्विगतिसंयुक्तः, देवनरकगत्योरभावात्। स्त्यानगृद्धित्रिक-अनंतानुबंधिचतुष्काणां मिथ्यादृष्टौ सासादने द्विगतिसंयुक्तः, नरकदेवगत्योरभावात्।

चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-त्रिगतिसासादनसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः।

बंधाध्वानं बंधव्युच्छेदस्थानं च सुगमं।

ध्रुवबंधिप्रकृतीनां बंधो मिथ्यादृष्टौ चतुर्विधः। सासादने त्रिविधः, ध्रुवाभावात्।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-चतुर्जाति-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणशरीराणामेकस्थानानां प्ररूपणा अधुनोच्यते—

उद्योत, अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र इन द्विस्थान प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—अनन्तानुबंधिचतुष्क और स्त्रीवेद का बंध व उदय दोनों साथ व्युच्छिन्न होते हैं। दुर्भग, अनादेय, नीचगोत्र और तिर्यग्गतिद्विक का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है। शेष प्रकृतियों का केवल बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि यहाँ उनके उदय का विरोध है। अनन्तानुबंधिचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यग्गतिद्विक, दुर्भग, अनादेय और नीचगोत्र का बंध स्वोदय परोदय होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं हैं। शेष प्रकृतियों का परोदय बंध होता है क्योंकि दोनों प्रकार से भी इनके बंध का विरोध नहीं है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का निरन्तर बंध होता है क्योंकि ये अनेक समयरूप बंधशक्ति से संयुक्त हैं। तिर्यग्गति, तिर्यग्गतिप्रायोग्यानुपूर्वी और नीचगोत्र का मिथ्यादृष्टियों में सान्तर-निरन्तर बंध होता है क्योंकि तेजस्कायिक और वायुकायिक जीवों में विग्रह करके उत्पन्न हुए उसके बाद विग्रहगति में गए हुए तथा सप्तम पृथिवी से विग्रह करके निकले हुए जीवों के उनका निरन्तर बंध पाया जाता है। सासादन गुणस्थान में उनका सान्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से भी बंधविश्राम शक्ति देखी जाती है। शेष प्रकृतियों का बंध सर्वत्र सान्तर होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। तिर्यग्गतिद्विक और उद्योत का तिर्यग्गति से संयुक्त बंध होता है। चार संस्थान और चार संहनन का तिर्यग्गति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। स्त्रीवेद का दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि यहाँ उक्त दो गुणस्थानों में देव व नरकगति के बंध का अभाव है। अप्रशस्तविहायोगति, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय और नीचगोत्र का बंध मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दो गतियों से संयुक्त होता है क्योंकि देव व नरकगति के बंध का अभाव है। स्त्यानगृद्धित्रय और अनन्तानुबंधिचतुष्क का मिथ्यादृष्टि व सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में दो गतियों से संयुक्त बंध होता है क्योंकि नरक व देवगति के बंध का अभाव है। चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि और तीन गति के सासादनसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। बंधाध्वान व बंधव्युच्छेदस्थान सुगम हैं। ध्रुवबंधी प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चारों प्रकार का होता है। सासादन गुणस्थान में तीन प्रकार का बंध होता है क्योंकि वहाँ ध्रुवबंध का अभाव है।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, चार जातियाँ, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप, स्थावर, सूक्ष्म,

उदयाद् बंधः पूर्वं पश्चाद्वा व्युच्छिन्न इति विचारो मिथ्यात्व-चतुर्जाति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्तानां नास्ति, अक्रमेण बंधोदयव्युच्छेददर्शनात्। नपुंसकवेदस्य पूर्वं बंधः पश्चादुदयो व्युच्छिद्यते, असंयतसम्यग्दृष्टौ उदयव्युच्छेददर्शनात्। हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप-साधारणशरीराणां बंधव्युच्छेद एव, उदयव्युच्छेदो नास्ति, अभावभावपुरंगमत्वदर्शनात्। न चैतासां प्रकृतीनां विग्रहगतावुदयोऽस्ति, अनुपलंभात्।

मिथ्यात्वस्य बंधः स्वोदयेन, नपुंसकवेद-चतुर्जाति-स्थावर-सूक्ष्म-अपर्याप्तानां स्वोदयपरोदयाभ्यां, हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-आताप साधारणानां परोदयेन।

मिथ्यात्वस्य बंधो निरन्तरः। शेषाणां सान्तरः, नियमाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः।

मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन-अपर्याप्तानां बंधस्तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। चतुर्जाति-आताप-स्थावर-सूक्ष्म-साधारणानां तिर्यग्गतिसंयुक्तः। मिथ्यात्व-नपुंसकवेद-हुंडकसंस्थान-असंप्राप्तसृपाटिकासंहननानां चतुर्गतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः। एकेन्द्रिय-आताप-स्थावराणां त्रिगतिमिथ्यादृष्टयः स्वामिनः, नरकगतेरभावात्। द्वीन्द्रिय-त्रीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-सूक्ष्म-अपर्याप्त-साधारणानां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः, देव-नारकेषु एतासां बंधाभावात्। बंधाध्वानं नास्ति, एकस्मिन्नध्वान विरोधात्। बंधव्युच्छेदस्थानं सुगमं।

मिथ्यात्वबंधश्चतुर्विधः। शेषाणां साद्यध्रुवौ स्तः।

सातावेनीयस्यानाहारिषु बंधव्युच्छेद एव, उदयव्युच्छेदाभावात्। सर्वत्र बंधौ स्वोदयपरोदयौ। मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टिषु सान्तरः, प्रतिपक्षप्रकृतिबंधोपलंभात्। सयोगिकेवलिनि निरन्तरः,

---

अपर्याप्त और साधारणशरीर, इन एकस्थानिक प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—उदय से बंध पूर्व में या पश्चात् व्युच्छिन्न होता है, यह विचार मिथ्यात्व, चार जातियाँ, स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त प्रकृतियों के नहीं है क्योंकि इनके बंध और उदय का व्युच्छेद एक साथ देखा जाता है। नपुंसकवेद का पूर्व में बंध और पश्चात् उदय व्युच्छिन्न होता है क्योंकि असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में उसका उदयव्युच्छेद देखा जाता है। हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और साधारणशरीर का केवल बंधव्युच्छेद ही है, उदयव्युच्छेद नहीं है क्योंकि अभाव भावपूर्वक देखा जाता है और इन प्रकृतियों का विग्रहगति में उदय है नहीं क्योंकि वहाँ वह पाया नहीं जाता।

मिथ्यात्व का बंध स्वोदय से, नपुंसकवेद, चार जातियाँ, स्थावर, सूक्ष्म और अपर्याप्त का स्वोदय-परोदय से तथा हुण्डकसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन, आतप और साधारणशरीर का परोदय से बंध होता है। मिथ्यात्व का बंध निरन्तर होता है। शेष प्रकृतियों का सान्तर बंध होता है क्योंकि उनके बंध का नियम नहीं है। प्रत्यय सुगम हैं।

मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान, असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन और अपर्याप्त का बंध तिर्यगति व मनुष्यगति से संयुक्त होता है। चार जातियाँ, आतप, स्थावर, सूक्ष्म और साधारण का तिर्यग्गतिसंयुक्त बंध होता है। मिथ्यात्व, नपुंसकवेद, हुण्डसंस्थान और असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन के चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं। एकेन्द्रिय, आतप और स्थावर के तीन गतियों के मिथ्यादृष्टि स्वामी हैं क्योंकि नरकगति में इनके बंध का अभाव है। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, सूक्ष्म, अपर्याप्त और साधारण के तिर्यंच और मनुष्य स्वामी हैं क्योंकि देव व नारकियों में इनके बंध का अभाव है। बंधाध्वान नहीं है क्योंकि एक गुणस्थान में अध्वान का विरोध है। बंधव्युच्छेदस्थान सुगम है। मिथ्यात्व का बंध चारों प्रकार का होता है। शेष प्रकृतियों का सादि व अध्रुव बंध होता है।

सातावेदनीय का अनाहारी जीवों में केवल बंधव्युच्छेद ही है क्योंकि वहाँ उसके उदय व्युच्छेद का अभाव है। सर्वत्र उसका स्वोदय-परोदय बंध होता है। मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान में सान्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति का बंध पाया जाता है। सयोगिकेवली गुणस्थान में उसका

प्रतिपक्षप्रकृतिबंधाभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। विशेषेण सयोगिनि कार्मणकाययोगप्रत्यय एक एव, अन्येषां प्रत्ययानामसंभवात्।

मिथ्यादृष्टि-सासादनसम्यग्दृष्टिषु तिर्यग्मनुष्यगतिसंयुक्तः। असंयतसम्यग्दृष्टिषु देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। सयोगिकेवलिषु अगतिसंयुक्तः। चतुर्गतिमिथ्यादृष्टि-असंयतसम्यग्दृष्टयः त्रिगतिसासादनसम्यग्दृष्टयो मनुष्यगतिकेवलिनश्च स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः, स्वाभाविकात्।

देवगतिद्विक-वैक्रियिकद्विक-तीर्थकरनामकर्मणामसंयतसम्यग्दृष्टिना बध्यमानानां प्रकृतीनां प्ररूपणा उच्यते—

एतासां परोदयेन बंधः।

कुतः ?

स्वाभाविकात्। एतासां बंधो निरन्तरः, एकसमयेन बंधोपरमशक्तेरभावात्।

प्रत्ययाः सुगमाः। विशेषेण देवगतिचतुष्कस्य नपुंसकप्रत्ययो नास्ति। तीर्थकरस्य देवमनुष्यगतिसंयुक्तः। शेषाणां देवगतिसंयुक्तः।

तीर्थकरस्य तिर्यग्गतेर्विना त्रिगति-असंयतसम्यग्दृष्टयः स्वामिनः। शेषाणां तिर्यग्मनुष्याः स्वामिनः। बंधाध्वानं बंधव्युच्छिन्नस्थानं च सुगमं। साद्यध्रुवौ बंधौ स्तः, अध्रुवबंधित्वात्।

तात्पर्यमत्र—**अष्टचत्वारिंशदधिकैकशतप्रकृतीनां मध्ये एका तीर्थकरप्रकृतिरेव या स्वयं स्वात्मानसंसारेभ्यः निष्कास्य अनंतप्राणिनामपि अनुग्रहं कर्तुं सक्षमास्ति। अतएव ये तीर्थकरप्रकृतिबंधकास्त एवं धन्याः। एतेषां तीर्थकरप्रकृतिबंधकानां देवाः सौधर्मेन्द्रादयोऽपि वंदनां कुर्वन्ति तेभ्यो नवकेवललब्धि स्वामिभ्यः सर्वतीर्थकरेभ्यो नमो नमः।**

निरन्तर बंध होता है क्योंकि वहाँ प्रतिपक्ष प्रकृति के बंध का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेष इतना है कि सयोगिकेवली गुणस्थान में केवल एक कार्मण काययोग प्रत्यय ही है क्योंकि अन्य प्रत्ययों की वहाँ संभावना नहीं है। मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानों में तिर्यगति व मनुष्यगति से संुयुक्त बंध होता है। असंयतसम्यग्दृष्टियों में देवगति और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। सयोगिकेवली जीवों में गतिसंयोग से रहित बंध होता है। चारों गतियों के मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, तीन गति के सासादनसम्यग्दृष्टि और मनुष्यगति के केवली स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्न स्थान सुगम हैं। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि ऐसा स्वभाव है।

देवगति, वैक्रियिकशरीर, वैक्रियिकशरीरांगोपांग, देवगतिप्रायोग्यानुपूर्वी और तीर्थंकर नामकर्म, इन असंयतसम्यग्दृष्टि जीवों द्वारा बध्यमान प्रकृतियों की प्ररूपणा करते हैं—इनका परोदय से बंध होता है। कैसे ? क्योंकि ऐसा स्वभाव है। निरन्तर बंध होता है क्योंकि एक समय से इनके बंधविश्राम का अभाव है। प्रत्यय सुगम हैं। विशेषता इतनी है कि देवगतिचतुष्क के नपुंसकवेद प्रत्यय नहीं है। तीर्थंकर प्रकृति का देव और मनुष्यगति से संयुक्त बंध होता है। शेष प्रकृतियों का देवगतिसंयुक्त बंध होता है। तीर्थंकरप्रकृति के तिर्यग्गति के बिना तीन गतियों के असंयतसम्यग्दृष्टि स्वामी हैं। शेष प्रकृतियों के तिर्यंच व मनुष्य स्वामी हैं। बंधाध्वान और बंधव्युच्छिन्न स्थान सुगम हैं। सादि व अध्रुव बंध होता है क्योंकि वे अध्रुवबंधी प्रकृतियाँ हैं।

यहाँ इस ग्रंथराज को पढ़ने-पढ़ाने का यही सार है कि—

इन एक सौ अड़तालीस प्रकृतियों के मध्य एक तीर्थंकर नामकर्म की प्रकृति ही है जो स्वयं अपनी आत्मा को संसार के दु:खों से निकालने में और अनंत प्राणियों के ऊपर भी अनुग्रह करने में समर्थ है, इसलिए जो भी महापुरुष तीर्थंकर प्रकृति के बंध करने वाले हैं वे ही धन्य हैं। इन तीर्थंकर प्रकृति के बंधकर्ताओं की देव भी और सौधर्म इन्द्र आदि भी वंदना करते हैं नवकेवललब्धि समन्वित उन सभी तीर्थंकर भगवन्तों को नमस्कार हो, नमस्कार हो।

इति श्रीषट्खण्डागमस्य बंधस्वामित्वविचयनाम्नि तृतीयखण्डे गणिनी-
ज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां आहारमार्गणानाम
चतुर्दशोऽधिकारः समाप्तः।

तीर्थंकरस्नपननीरपवित्रजातः, तुंगोऽस्ति यस्त्रिभुवने निखिलाद्रितोऽपि।
देवेन्द्रदानवनरेन्द्रखगेन्द्रवंद्यः, तं श्रीसुदर्शनगिरिं सततं नमामि।।१।।

इति श्रीमद्भगवत्पुष्पदंतभूतबलिसूरिप्रणीतषट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे श्रीभूतबलिकृत 'बंधस्वामित्वविचयनाम' ग्रन्थस्य श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीकाप्रमुखानेक-ग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यश्चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यवर्यः तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिकागणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्त-चिंतामणिटीकायां मार्गणासु बंधस्वामित्व-विचयप्ररूपो नामायं द्वितीयो महाधिकारः समाप्तः।

इस प्रकार श्रीषट्खण्डागम के ''बंधस्वामित्वविचय'' नाम के तृतीय खण्ड में गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणिटीका में आहारमार्गणा नाम का यह चौदहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

—सुमेरु वन्दना —

जो तीर्थंकर भगवन्तों के न्हवन — जन्माभिषेक के जल से पवित्र है। जो तीनों लोकों में सम्पूर्ण पर्वतों से भी अतिशय ऊँचा है तथ जो सर्व देवेन्द्रों, असुरेन्द्रों और नरेन्द्रों-चक्रवर्तियों-राजा-महाराजाओं के द्वारा और सम्पूर्ण विद्याधर राजाओं द्वारा वन्दनीय है ऐसे श्री सुदर्शनमेरु पर्वतराज को मैं सतत नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ — यहाँ हस्तिनापुर तीर्थ पर निर्मित एक सौ एक फुट उत्तुंग सुमेरु पर्वत को और उसमें विराजमान जिनप्रतिमाओं को भी मैं नमस्कार करता हूँ-करती हूँ।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत और भगवान भूतबलि सूरिवर्यमहान आचार्य द्वारा प्रणीत षट्खण्डागम ग्रंथराज के तृतीय खण्ड में श्री भूतबलि आचार्यकृत ''बंधस्वामित्वविचय'' नाम के ग्रंथ की श्री वीरसेनाचार्य विरचित धवला टीका प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर जी महाराज के प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागराचार्यवर्य की शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि-टीका में मार्गणाओं में बंधस्वामित्वविचय का प्ररूपण करने वाला यह दूसरा महाधिकार पूर्ण हुआ।

।।वर्द्धतां जिनशासनम्।।

उपसंहारः

अधुना अस्य बंधस्वामित्वविचयनाम तृतीयखण्डस्य उपसंहारः क्रियते—

अस्य खण्डस्य 'बंधस्वामित्वविचयो' नाम। बंधस्य स्वामिनो जीवाः तेषां विचयः—विचारणा मीमांसा परीक्षा इति। अस्मिन् तृतीयखंडे कीदृशः कतितमो वा बंधः—कर्मबंधः कस्मिन् कस्मिन् गुणस्थाने पुनश्च कस्यां कस्यां मार्गणायामिति विवेचनास्ति।

बंधस्य व्याख्या—जीवकर्मणोः मिथ्यात्व-असंयम-कषाय-योगैः एकत्वपरिणामो बंधः कथ्यते। अयं बंधोऽनादिकालात् सर्वेषां संसारिजीवानां अनंतानंतानामपि अस्ति। एतस्मात् बंधात् मुक्ताः जीवाः सिद्धाः कथ्यन्ते। सिद्धपदप्राप्त्यर्थमेव एतेषां ग्रन्थानां स्वाध्यायो टीकालेखनमध्ययनं अध्यापनं चिन्तनं अभ्यासादिकं क्रियते।

अस्य ग्रन्थस्य विषयः—

कृति-वेदनादिचतुर्विंशत्यनुयोगद्वारेषु तत्र बंधनं नाम षष्ठमनुयोगद्वारं। तथाहि—'कृति-वेदना-स्पर्शन-कर्म-प्रकृति-बंधन-निबंधन-प्रक्रम-उपक्रम-उदय-मोक्ष-संक्रम-लेश्या-लेश्याकर्म-लेश्यापरिणाम-सातासात-दीर्घह्रस्व-भवधारणीय-पुद्गलात्त-निधत्तानिधत्त-निकाचितानिकाचित-कर्मस्थिति-पश्चिमस्कंध अल्पबहुत्वानि च।

एतेषां चतुर्विंशत्यधिकाराणां क्रमेण वर्णनं 'वेदनानाम' चतुर्थखण्डे 'वर्गणानाम' पंचमखण्डे विस्तरेणास्ति। नवमग्रन्थादारभ्य षोडशग्रंथपर्यंतं इमानि चतुर्विंशत्यनुयोगद्वाराणि कथितानि।

उपसंहार

अब इस 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तीसरे खण्ड का उपसंहार करते हैं—

इस खण्ड का "बंधस्वामित्वविचय" यह नाम है। बंध के स्वामी जीव हैं, उनका विचय अर्थात् उनकी विचारणा मीमांसा और परीक्षा इसी का नाम विचय है। इस तृतीय खण्ड में कैसा अथवा कौन सा बंध होता है? वह कर्मबंध किस-किस गुणस्थान में पुनः किस-किस मार्गणा में होता है? इस ग्रंथ में यही विवेचना की गई है।

अब बंध की व्याख्या बताते हैं—

जीव और कर्मों का मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योगों से जो एकत्व परिणाम है वह बंध कहलाता है। यह कर्मबंध अनादिकाल से अनन्तानन्त भी सभी संसारी जीवों के है। इस बंध से मुक्त हुए जीव "सिद्ध" भगवान कहलाते हैं। इस सिद्धपद की प्राप्ति के लिए इन ग्रंथों का स्वाध्याय, टीकालेखन, अध्ययन, अध्यापन, चिन्तन और अभ्यास आदि किये जाते हैं।

इस ग्रंथ का विषय कहते हैं—

कृति, वेदना आदि चौबीस अनुयोगद्वारों में 'बंधन' नाम का एक छठा अनुयोगद्वार है। जैसे कि—कृति, वेदना, स्पर्शन, कर्म, प्रकृति, "बंधन", निबंधन, प्रक्रम, उपक्रम, उदय, मोक्ष, संक्रम, लेश्या, लेश्याकर्म, लेश्यापरिणाम, सातासात, दीर्घह्रस्व, भवधारणीय, पुद्गलात्त, निधत्तानिधत्त, निकाचितानिकाचित, कर्मस्थिति, पश्चिमस्कंध और अल्पबहुत्व ये चौबीस अनुयोगद्वार हैं।

इन चौबीस अधिकारों का वर्णन क्रम से 'वेदना नाम' के चौथे खण्ड में और वर्गणा नाम के पाँचवें खण्ड में विस्तार से है। नवमें ग्रंथ—नवमी पुस्तक से प्रारंभ करके सोलहवें ग्रंथ—सोलहवीं पुस्तक पर्यंत इन चौबीस अनुयोग द्वारों का कथन है।

अत्र एषु षष्ठबंधननामानुयोगद्वारम् चतुर्विधं विवक्षितं—बंधो बंधको बंधनीयं बधंविधानमिति।

तत्र प्रथमबंधाधिकारो जीवस्य कर्मणां च संबंधं नयापेक्षया निरूपयति। अस्माद् बंधादेव तृतीयो बंधस्वामित्वविचयोऽस्ति। ततश्च विस्तरः—

बंधकोऽधिकार: एकादशानियोगद्वारैः बंधकान् प्ररूपयति। इमे एकादशाधिकाराः—१. एकजीवापेक्षया स्वामित्वानुगमः, २. एकजीवापेक्षया कालानुगमः, ३. एकजीवापेक्षयान्तरानुगमः, ४. नानाजीवापेक्षया भंगविचयानुगमः, ५. द्रव्यप्रमाणानुगमः, ६. क्षेत्रानुगमः, ७. स्पर्शनानुगमः, ८. नानाजीवापेक्षया कालानुगमः, ९ नानाजीवापेक्षया अन्तरानुगमः, १०. भागाभागानुगमः, ११. अल्पबहुत्वानुगमश्चेति।

एतेषां एव एकादशानियोगद्वाराणां क्षुद्रकबंधनाम्नि द्वितीयखण्डे विस्तरोऽस्ति।

बंधननाम्नः चतुर्भेदेषु तृतीयं बंधनीयं भेदोऽस्ति। अत्र त्रयोविंशतिवर्गणाभिः बंधयोग्यमयोग्यं च पुद्गलद्रव्यं कथयति। इमाः त्रयोविंशतिवर्गणाः वर्गणाखण्डे वर्णिता वर्णयिष्यन्ति।

बंधविधानस्यापि चतुर्भेदाः—प्रकृतिबंधः, स्थितिबंधः, अनुभागबंधः प्रदेशबंधश्च। प्रकृतिबंधोऽपि द्विविधः—मूलप्रकृतिबंधः उत्तरप्रकृतिबंधश्च। उत्तरप्रकृतिबंधस्य द्वौ भेदौ एकैकोत्तरप्रकृतिबंधः अव्वोगाढउत्तरप्रकृतिबंधश्च। तत्रापि एकैकोत्तरप्रकृतिबंधस्य चतुर्विंशति अनुयोगद्वाराणि—समुत्कीर्तना[१]-सर्वबंध[२]-नोसर्वबंध-[३] उत्कृष्टबंध[४]-अनुत्कृष्टबंध[५]- जघन्यबंध[६]- अजघन्यबंध[७]-सादिबंध[८]- अनादिबंध[९]-ध्रुवबंध[१०]- अध्रुवबंध[११]- बंधस्वामित्वविचय[१२]- बंधकाल[१३]- बंधान्तर[१४]- बंधसन्निकर्ष[१५]- नानाजीवा-

---

इनमें से यह छठा 'बंधन' नाम का अनुयोगद्वार चार प्रकार से विवक्षित है—बंध, बंधक, बंधनीय और बंधविधान।

उसमें से प्रथम बंधाधिकार जीव और कर्मों के संबंध को नय की अपेक्षा से निरूपित करता है। इस बंध से ही यह तीसरा 'बंधस्वामित्वविचय' बना है।

इसी का विस्तार यह है—

दूसरा बंधक अधिकार ग्यारह अनियोगद्वारों से बंधकों का प्ररूपण करता है। इन ग्यारह अधिकारों के नाम—१. एक जीवापेक्षा से स्वामित्वानुगम २. एक जीव की अपेक्षा से कालानुगम ३. एक जीव की अपेक्षा से अन्तरानुगम ४. नाना जीवों की अपेक्षा से भंगविचयानुगम ५. द्रव्यप्रमाणानुगम ६. क्षेत्रानुगम ७. स्पर्शनानुगम ८. नाना जीवों की अपेक्षा से कालानुगम ९. नाना जीवों की अपेक्षा से अन्तरानुगम १०. भागाभागानुगम और १०. अल्पबहुत्वानुगम।

इन्हीं ग्यारह अनुयोगद्वारों का 'क्षुद्रकबंध' नाम के दूसरे खण्ड में विस्तार से वर्णन किया जा चुका है।

यहाँ जो 'बंधन' अनुयोगद्वार के चार भेदों में बंधनीय नाम का तीसरा भेद है। इसमें तेईस वर्गणाओं के द्वारा बंध के योग्य-अयोग्य पुद्गलद्रव्य का कथन है। ये तेईसों वर्गणाएँ आगे वर्गणाखण्ड में कही जायेंगी।

बंधविधान नाम का जो चौथा भेद है, उसके भी चार भेद हैं—प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध और प्रदेशबंध। प्रकृतिबंध के भी दो भेद हैं—मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध। उत्तरप्रकृति बंध के दो भेद हैं—एकैकोत्तर प्रकृतिबंध और अव्वोगाढ उत्तर प्रकृतिबंध।

इनमें भी एकैकोत्तरप्रकृतिबंध के चौबीस अनुयोगद्वार हैं—१. समुत्कीर्तना, २. सर्वबंध, ३. नोसर्वबंध ४. उत्कृष्टबंध ५. अनुत्कृष्टबंध ६. जघन्यबंध ७. अजघन्यबंध ८. सादिबंध ९. अनादिबंध १०. ध्रुवबंध ११. अध्रुवबंध १२. बंधस्वामित्वविचय १३. बंधकाल १४. बंधान्तर १५. बंधसन्निकर्ष १६. नाना जीवापेक्षया

पेक्षया[१६]- भंगविचय-भागाभागानुगम[१७]- परिमाणानुगम[१८]- क्षेत्रानुगम[१९]- स्पर्शनानुगम[२०]- कालानुगम[२१]- अंतरानुगम[२२]- भावानुगम[२३]- अल्पबहुत्वानुगम*श्चेति[२४] एषु चतुर्विंशतिषु द्वादशोऽयं बंधस्वामित्व-विचयोऽधिकारोऽस्ति।

अस्मिन् ग्रन्थे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि सन्ति। प्रथमे महाधिकारे गुणस्थानेषु द्वितीयमहाधिकारे मार्गणासु प्रश्नोत्तर क्रमेण प्रकृतिबंधादयः प्ररूपिताः सन्ति।

अस्मिन् ग्रन्थे 'बंधः' पदेन बंधको-बंधकर्ता इति भण्यते।

सूत्रे 'को बंधः को अबंधो' इति कथनेन पृच्छा वर्तते।

धवलाटीकाकारैः पृच्छाः त्रयोविंशतिविधाः कथिताः। तथाहि—

१. किं बंधः पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

२. किमुदयः पूर्वं व्युच्छिद्यते ?

३. किं द्वावपि समं व्युच्छिद्येते ?

४. किं सोदयनैतासां बंधः ?

५. किं परोदयेन ?

६. किं स्वपरोदयाभ्याम् ?

७. किं सान्तरो बंधः ?

८. किं निरन्तरो बंधः ?

९. किं सान्तर-निरन्तरो वा ?

बंधविचय १७. भागाभागानुगम १८. परिमाणानुगम १९. क्षेत्रानुगम २०. स्पर्शनानुगम २१. कालानुगम २२. अन्तरानुगम २३. भावानुगम २४. अल्पबहुत्वानुगम।

इन चौबीस अधिकारों में यह बारहवाँ 'बंधस्वामित्वविचय' नाम का अधिकार है।

इस ग्रंथ में तीन सौ चौबीस सूत्र हैं। उनमें दो अधिकार विभक्त किये जा रहे हैं। प्रथम महाधिकार में गुणस्थानों में और द्वितीय महाधिकार में मार्गणाओं में प्रश्नोत्तर के क्रम से प्रकृतिबंध आदि का प्ररूपण है।

इस ग्रंथ में 'बंध' पद से बंधक अर्थात् बंध करने वाले 'बंधकर्ता' कहे जाते हैं। सूत्र में 'को बंधः को अबंधः" इस कथन से पृच्छा—प्रश्न किया है। धवलाटीकाकार श्री वीरसेनाचार्य ने इस पृच्छा को तेईस प्रकार से कहा है। जैसे कि—

१. क्या बंध की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

२. क्या उदय की पूर्व में व्युच्छित्ति होती है ?

३. क्या दोनों की साथ ही व्युच्छित्ति होती है ?

४. क्या अपने उदय के साथ इनका बंध होता है ?

५. क्या पर प्रकृतियों के उदय के साथ इनका बंध होता है ?

६. क्या अपने और पर दोनों के उदय के साथ इनका बंध होता है ?

७. क्या सान्तर बंध होता है ?

८. क्या निरन्तर बंध होता है ?

९. क्या सान्तर-निरन्तर बंध होता है ?

---

* षट्खण्डागम धवला टीका सहित पु. ८, पृ. १२८।

१०. किं सप्रत्ययो बंधः ?

११. किं किमप्रत्ययः ?

१२. किं गतिसंयुक्तः ?

१३. किं अगतिसंयुक्तः ?

१४. कति गतिकाः स्वामिनः ?

१५. कति गतिका अस्वामिनः ?

१६. किं वा बंधध्वानं ?

१७. किं चरमसमये बंध व्युच्छिद्यते ?

१८. किं प्रथमसमये ?

१९. किं वा अप्रथमचरमसमये बंधो व्युच्छिद्यते ?

२०. किं सादिको बंधः ?

२१. किं अनादिकः ?

२२. किं ध्रुव्रोबंधः ?

२३. किमध्रुवो बंधः ?

एताः पृच्छाः सन्ति। उत्तरेषु—

मिथ्यादृष्टिप्रभृति दशमगुणस्थानपर्यन्ताः संयताः बंधकाः शेषाः उपरितनगुणस्थानवर्तिनः सिद्धाश्च अबंधकाः। इत्यादिप्रकारेण अस्मिन् ग्रन्थे विस्तरेण कथिताः सन्ति।

---

१०. क्या सन्निमित्तक बंध होता है ?

११. या क्या अनिमित्तक बंध होता है ?

१२. क्या गतिसंयुक्त बंध होता है ?

१३. या क्या गति संयोग से रहित बंध होता है ?

१४. कितने गति वाले जीव स्वामी होते हैं ?

१५. और कितने गति वाले जीव स्वामी नहीं हैं ?

१६. बंधाध्वान मिलता है-बंध की सीमा किस गुणस्थान से किस गुणस्थान तक है ?

१७. क्या अंतिम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

१८. क्या प्रथम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

१९. या क्या अप्रथम और अचरम समय में बंध की व्युच्छित्ति होती है ?

२०. क्या बंध सादि है ?

२१. या क्या अनादि है ?

२२. क्या बंध ध्रुव होता है ?

२३. या क्या बंध अध्रुव होता है ?

ये तेईस पृच्छाएं "पृच्छासूत्र" के अन्तर्गत हैं, ऐसा जानना चाहिए।

इन पृच्छाओं के उत्तर में—

मिथ्यादृष्टि जीवों से लेकर दशवें गुणस्थान पर्यंत संयत—मुनि बंधक हैं, शेष इनसे ऊपर के गुणस्थानवर्ती—उपशांत कषाय, क्षीणकषाय महामुनि, सयोगिकेवली भगवान एवं अयोगिकेवली भगवान

अस्मिन्नष्टमे ग्रन्थे ये केचिद् विशेषाः तेषां मनाक् प्रकाशः क्रियते—

अत्र प्रथममहाधिकारे तीर्थंकरप्रकृतिबंधकारणभूताः षोडश भावना सन्ति। तेषां नामानि— दंसणविसुज्झदाए[१], विणयसंपण्णदाए[२], सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए[३], आवासएसु अपरिहीणदाए[४], खणलवपडिबुज्झणदाए[५], लद्धिसंवेगसंपण्णदाए[६], जधाथामे तधा तवे[७], साहूणं पासुअपरिचागदाए[८], साहूणं समाहि-संधारणदाए[९], साहूणं वेज्जरवच्चजोगजुत्तदाए[१०], अरहंतभत्तीए[११], बहुसुदभत्तीए[१२], पवयणभत्तीए[१३], पवयणवच्छलदाए[१४], पवयणप्पभावणदाए[१५], अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोग-जुत्तदाए[१६], इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति*।।४१।।

तत्त्वार्थसूत्रग्रन्थे एतासां भावनानां क्रमेषु अन्तरोऽस्ति। कासांचिद् भावनासु परिवर्तनमपि दृश्यते।तथाहि—

''दर्शनविशुद्धि[१]र्विनयसंपन्नता[२] शीतव्रतेष्वनतीचारो[३]ऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग[४]संवेगौ[५] शक्तितस्त्याग[६]तपसी[७] साधुसमा[८]धिर्वैयावृत्यकरण[९]मर्ह[१०]दाचार्य[११]बहुश्रुत[१२]प्रवचनभक्ति[१३]रावश्यकापरिहाणि[१४]र्मार्गप्रभावना[१५] प्रवचनवत्सलत्व[१६]मिति*तीर्थकरत्वस्य।।२४।।

१. दंसणविसुज्झदाए	**१. दर्शनविशुद्धिः**
२. विणयसंपण्णदाए	**२. विनयसंपन्नता**

तथा सिद्ध भगवान अबंधक हैं। इत्यादि प्रकार से इस ग्रंथ में विस्तार से कथन है।

इस ग्रंथ में जो कुछ विशेषताएँ हैं उन पर किंचित् प्रकाश डालते हैं—

इसमें प्रथम महाधिकार में तीर्थंकर प्रकृति के बंध की कारणभूत सोलह भावनाएं कही गई हैं। उनके नाम देखिए—

१. दर्शनविशुद्धता, २. विनयसम्पन्नता ३. शील-व्रतों में निरतिचारता, ४. आवश्यक क्रियाओं में अपरिहीनता-परिपूर्णता, ५. क्षणलवप्रतिबुद्धता ६. लब्धि संवेगसम्पन्नता ७. यथाशक्ति तथातप ८. साधुओं की प्रासुक परित्यागता, ९. साधुओं की समाधिसंधारणता, १०. साधुओं की वैयावृत्तियोगयुक्तता, ११. अरहंतभक्ति १२. बहुश्रुतभक्ति १३. प्रवचन भक्ति १४. प्रवचनवत्सलता १५. प्रवचनप्रभावनता और १६. अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता, इन सोलह कारणों से जीव तीर्थंकर नाम गोत्रकर्म का बंध करते हैं।।४१।।

यहाँ यह ४१वाँ सूत्र है। क्रम से इन सबका विवेचन श्री वीरसेनाचार्य ने टीका में विस्तार से किया है।

श्री उमास्वामी आचार्य द्वारा विरचित तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ में इन भावनाओं के क्रम में अन्तर है तथा किन्हीं-किन्हीं भावनाओं में परिवर्तन भी दिखता है। जैसे कि—

१. दर्शनविशुद्धि २. विनयसम्पन्नता ३. शील-व्रतों में अनतिचार, ४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, ५. संवेग, ६. शक्तितस्त्याग, ७. शक्तितस्तप, ८. साधु समाधि ९. वैयावृत्यकरण १०. अर्हद्भक्ति ११. आचार्यभक्ति, १२. बहुश्रुतभक्ति १३. प्रवचनभक्ति १४. आवश्यक अपरिहाणि १५. मार्गप्रभावना और १६. प्रवचनवत्सलत्व ये तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव के कारण हैं।।२४।।

तत्त्वार्थसूत्र की छठी अध्याय में यह २४वाँ सूत्र है।

दोनों में अन्तर देखिए—

१. दर्शनविशुद्धिता	१. दर्शनविशुद्धि
२. विनयसम्पन्नता	२. विनयसम्पन्नता

* षट्खण्डागम धवला टीका समन्वित पु. ८, पृ. ७९। * तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ६, सूत्र २४।

३. सीलव्वदेसुणिरदिचारदाए	३. शीलव्रतेष्वनतिचारः
४. आवासएसुअपरिहीणदाए	४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोगः
५. खणलवपडिबुज्झणदाए	५. संवेगः
६. लद्धिसंवेगसंपण्णदाए	६. शक्तितस्त्यागः
७. जधा थामे तधा तवे	७. शक्तितस्तपः
८. साहूणं पासुअपरिचागदाए	८. साधुसमाधिः
९. साहूणं समाहिसंधारणदाए	९. वैयावृत्यकरणं
१०. साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए	१०. अर्हद्‌भक्तिः
११. अरहंतभतीए	११. आचार्यभक्तिः
१२. बहुसुदभत्तीए	१२. बहुश्रुतभक्तिः
१३. पवयणभत्तीए	१३. प्रवचनभक्तिः
१४. पवयणवच्छलदाए	१४. आवश्यकापरिहाणि
१५. पवयणप्पभावणदाए	१५. मार्गप्रभावना
१६. अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए	१६. प्रवचनवत्सलत्वं।

अत्र खणलवपडिबुज्झणदाए ' भावनायाः मनाक् अर्थः कथ्यते—

क्षणा लवा नाम कालविशेषाः, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-व्रत-शीलगुणानां उज्वालनं कलंकप्रक्षालनं संधुक्षणं वा प्रतिबोधनं नाम। तस्य भावः प्रतिबोधनता। प्रत्येकक्षणेषु लवेषु प्रतिबोधः 'खणलवपडिवुज्झणदा

---

३. शीलव्रतेषु निरतिचारता	३. शीलव्रतेषु अनतिचार
४. आवश्यकेषु अपरिहीणता	४. अभीक्ष्णज्ञानोपयोग
५. क्षणलवप्रतिबुद्ध्यनता	५. संवेग
६. लब्धिसंवेग सम्पन्नता	६. शक्तितस्त्याग
७. यथाशक्ति तथा तप	७. शक्तितस्तप
८. साधुओं के लिए प्रासुक परित्यागता	८. साधुसमाधि
९. साधुओं की समाधिसंधारणता	९. वैयावृत्यकरण
१०. साधुओं की वैयावृत्य योग्ययुक्तता	१०. अर्हद् भक्ति
११. अरिहंत भक्ति	११. आचार्य भक्ति
१२. बहुश्रुत भक्ति	१२. बहुश्रुत भक्ति
१३. प्रवचन भक्ति	१३. प्रवचन भक्ति
१४. प्रवचन वत्सलता	१४. आवश्यक अपरिहाणि
१५. प्रवचन प्रभावनता	१५. मार्गप्रभावना
१६. अभीक्ष्ण-अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगयुक्तता	१६. प्रवचनवत्सलत्व

यहाँ पर "क्षणलवप्रतिबुद्ध्यनता" भावना का किंचित् अर्थ कहते हैं—

क्षण लव ये शब्द कालविशेष के वाचक हैं। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, व्रत, शील और गुण इनको उज्ज्वल करना, कलंक को प्रक्षालित करना, इनको संधुक्षित करना—जलाना इसी का नाम प्रतिबोधन है और इसके भाव का नाम प्रतिबोधनता है। प्रत्येकक्षण में—लव में प्रतिबोध का होना क्षण लव प्रतिबुद्ध्यनता है। यह

कथ्यते। इयं भावना तत्त्वार्थसूत्रकथितभावनापेक्षया पृथगेवास्ति।

एवमेव षट्खण्डागमे टीकायां जीवाजीव-पुण्य-पाप-आस्रव-संवर-निर्जरा-बंध-मोक्षाः। एषः क्रमो नवपदार्थानामस्ति[२]। श्री गौतमस्वामिमुखकमलविनिर्गतपाक्षिकयतिप्रतिक्रमणेऽपि एवमेव। तथाहि —

''से अभिमद जीवाजीव-उवलद्ध-पुण्णपाव-आसव-संवर-णिज्जर-बंध मोक्खमहिकुसले[१]''।

श्री कुन्दकुन्ददेवैः समयसार-मूलाचारयोरपि एवमेवोक्तं —

भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा य पुण्णपावं च।
आसवसंवरणिज्जर-बंधो मोक्खो य सम्मत्तं[२]।।

तत्त्वार्थसूत्रे तु — 'जीवा जीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वं[३]।।४।।

अस्मिन्नेव द्वौ पदार्थौ पुण्यपापनाभानौ मिलित्वा नव पदार्थाः कथ्यन्ते। एतदन्तरं कथं संजातं नावबुध्यते। वर्तमानकाले तु षोडशभावनाः तत्त्वार्थसूत्रापेक्षयैव प्रसिद्धाः सन्ति।

केचिद् विद्वान्सः यतिप्रतिक्रमणे श्रीगौतमस्वामिकृतपाठं परिवर्तयन्ति, नैतत्सुष्ठु।

इत्थमेव अस्मिन् षट्खण्डागमे धर्म्यध्यानं दशमगुणस्थानपर्यंतं। एकादशादारभ्य शुक्लध्यानानि कथितानि। एवमेव श्री कुंदकुंददेवैरपि मूलाचारे धर्म्यध्यानं दशमगुणस्थानपर्यंतं अग्रे शुक्लध्यानानि मन्यन्ते।

किन्तु सर्वार्थसिद्धि-तत्त्वार्थवार्तिक ज्ञानार्णवादिषु अष्टमगुणस्थानात् श्रेण्यारोहणेषु शुक्लध्यानं मन्यन्ते।

भावना ''तत्त्वार्थसूत्र'' में कथित भावना की अपेक्षा अलग ही है।

इसी प्रकार से षट्खण्डागम में धवला टीका में ''जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नव पदार्थ हैं। यह क्रम नव पदार्थों का है।

श्री गौतमस्वामी के मुखकमल से विनिर्गत जो पाक्षिक प्रतिक्रमण नाम से यतिप्रतिक्रमण है उसमें भी यही क्रम है। जैसे कि —

उसमें अभिमत, जीव, अजीव, उपलब्ध पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, ये नव पदार्थों का क्रम है।

श्री कुंदकुंददेव ने समयसार और मूलाचार में भी इसी प्रकार से कहा है। जैसे कि —

भूतार्थरूप से जाने गये जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष, यही सम्यक्त्व है।

तत्त्वार्थसूत्र में — जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व हैं। इन्हीं में पुण्य-पाप नाम के दो पदार्थों को मिलाकर नव पदार्थ कहे जाते हैं।

यह अन्तर कैसे हुआ, नहीं जाना जाता है। वर्तमानकाल में तो सोलहकारण भावनाएँ तत्त्वार्थसूत्र की अपेक्षा से ही प्रसिद्ध हैं।

कोई-कोई विद्वान् यतिप्रतिक्रमण में श्री गौतमस्वामी कृत पाठ को परिवर्तित कर रहे हैं किन्तु यह ठीक नहीं है।

इसी प्रकार इस षट्खण्डागम ग्रंथराज में धर्म्यध्यान को दशवें गुणस्थान पर्यंत माना है, पुनः ग्यारहवें गुणस्थान से प्रारंभ कर शुक्लध्यान कहे गये हैं। ऐसे श्री कुंदकुंददेव ने भी मूलाचार ग्रंथ में धर्म्यध्यान को दशवें गुणस्थान तक, आगे शुक्लध्यान माना है।

किन्तु सर्वार्थसिद्धि, तत्त्वार्थराजवार्तिक और ज्ञानार्णव आदि ग्रंथों में आठवें गुणस्थान से श्रेणी आरोहण

---

१. पाक्षिक प्रतिक्रमण। २. समयसार गाथा १५। ३. तत्त्वार्थसूत्र अध्याय १, सूत्र ४।

अतएव ग्रन्थेषु परिवर्तनं न विधातव्यं। पृथक्-पृथगाचार्याणां पृथक्-पृथक् मताः ज्ञातव्याः सन्ति। अलं विस्तरेण।

एतानि कर्मणां बंधोदयसत्त्वानि ज्ञात्वा कर्मभ्यः स्वात्मानं पृथक्कर्तुमेवोपायः चिन्तयितव्योऽर्हनिशम्। यद्यपि व्यवहारनयेन वयं संसारिणस्तथापि शुद्धनयापेक्षयाहं शुद्ध एव।

उक्तं च श्रीकुंदकुंददेवैः—

जारिसिया सिद्धप्पा भवमल्लिय जीव तारिसा होंति।
जरमरणविप्पमुक्का अट्ठगुणालंकिया जेण[१]।।४७।।

अतएव सामायिककाले देववन्दनाविधिषु कथितचैत्यपंचगुरुभक्ती पठित्वा ध्यानं कर्तव्यम्। तथाहि—

१. ज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२. दर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३. मोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४. अन्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५. वेदनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६. नामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७. गोत्रकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

में शुक्लध्यान माना है अतएव इन ग्रंथों में परिवर्तन नहीं करना चाहिए। प्रत्युत् भिन्न-भिन्न आचार्यों के पृथक्-पृथक् मत समझना चाहिए, यहाँ विस्तार से बस हो।

इस ग्रंथ में कर्मों के बंध, उदय और सत्त्व को जानकर कर्मों से अपनी आत्मा को पृथक् करने का उपाय अहर्निश चिंतन करते रहना चाहिए।

यद्यपि व्यवहारनय से हम सभी संसारी हैं फिर भी शुद्धनय की अपेक्षा से 'मैं शुद्ध ही हूँ।''

जैसा कि श्रीकुंदकुंददेव ने नियमसार में कहा है—

जैसे सिद्ध भगवान हैं संसार में रहने वाले जीव भी वैसे ही हैं। जिस अपेक्षा से—शुद्धनिश्चयनय से ये सभी संसारी भी जरा, मरण और जन्म से रहित हैं उसी अपेक्षा से ये आठ गुणों से अलंकृत हैं।

अतएव सामायिककाल में 'देववन्दनाविधि' में कही गई चैत्यभक्ति, पंचगुरुभक्ति का पाठ करके ध्यान करना चाहिए। वे ध्यानसूत्र इस प्रकार हैं—

१. मैं ज्ञानावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चिन्मय—चैतन्य चिन्तामणि स्वरूप हूँ।
२. मैं दर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।
३. मैं मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।
४. मैं अन्तरायकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।
५. मैं वेदनीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।
६. मैं नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।
७. मैं गोत्रकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

---

१. नियमसार प्राभृत।

८. अन्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

अथवा विस्तरेणापि अष्टचत्वारिंशदधिकशतप्रकृतीः आश्रित्य भावना भावयितव्या। एतादृशी भावनया मनसि आल्हादो महती कर्मनिर्जरा च जायते। तथाहि—

१. मतिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

२. श्रुतज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

३. अवधिज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

४. मनःपर्ययज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

५. केवलज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

६. चक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

७. अचक्षुर्दर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

८. अवधिदर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

९. केवलदर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

१०. निद्रादर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

११. निद्रानिद्रादर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

१२. प्रचलादर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

१३. प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

१४. स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

८. मैं आयुकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

अथवा विस्तार से भी एक सौ अड़तालिस प्रकृतियों का आश्रय लेकर भावना भाना चाहिए। इस प्रकार की भावना से मन में आल्हाद होता है और महान कर्मों की निर्जरा होती है। जैसे कि—

१. मैं मतिज्ञानावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।

२. मैं श्रुतज्ञानावरणीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणिस्वरूप हूँ।

३. मैं अवधिज्ञानावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

४. मैं मनःपर्ययज्ञानावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

५. मैं केवलज्ञानावरणीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

६. मैं चक्षुदर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

७. मैं अचक्षुदर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

८. मैं अवधिदर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

९. मैं केवलदर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

१०. मैं निद्रादर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

११. मैं निद्रानिद्रादर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

१२. मैं प्रचलादर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

१३. मैं प्रचलाप्रचलादर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणिस्वरूप हूँ।

१४. मैं स्त्यानगृद्धिदर्शनावरणीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।

१५. सातावेदनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१६. असातावेदनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१७. सम्यक्त्वमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१८. मिथ्यात्वमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१९. सम्यक्त्वमिथ्यात्वमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२०. अनंतानुबंधिक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२१. अनंतानुबंधिमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२२. अनंतानुबंधिमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२३. अनंतानुबंधिलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२४. अप्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२५. अप्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२६. अप्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२७. अप्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२८. प्रत्याख्यानावरणीयक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
२९. प्रत्याख्यानावरणीयमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३०. प्रत्याख्यानावरणीयमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३१. प्रत्याख्यानावरणीयलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

१५. मैं सातावेदनीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।
१६. मैं असातावेदनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।
१७. मैं सम्यक्त्वमोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणिस्वरूप हूँ।
१८. मैं मिथ्यात्व मोहनीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणिस्वरूप हूँ।
१९. मैं सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीयकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२०. मैं अनंतानुबंधी क्रोधकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।
२१. मैं अनंतानुबंधी मानकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्य चिंतामणि स्वरूप हूँ।
२२. मैं अनंतानुबंधी माया कषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२३. मैं अनंतानुबंधी लोभकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२४. मैं अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२५. मैं अप्रत्याख्यानावरण मानकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२६. मैं अप्रत्याख्यानावरण मायाकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२७. मैं अप्रत्याख्यानावरण लोभकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२८. मैं प्रत्याख्यानावरण क्रोधकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
२९. मैं प्रत्याख्यानावरण मानकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३०. मैं प्रत्याख्यानावरण मायाकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३१. मैं प्रत्याख्यानावरण लोभकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

३२. संज्वलनक्रोधकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३३. संज्वलनमानकषायवेदनीयमोहनीयकर्म रहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३४. संज्वलनमायाकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३५. संज्वलनलोभकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३६. हास्यनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३७. रतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३८. अरतिनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
३९. शोकनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४०. भयनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४१. जुगुप्सानोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४२. स्त्रीवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४३. पुंवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४४. नपुंसकवेदनोकषायवेदनीयमोहनीयकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४५. नरकायुःकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४६. तिर्यगायुःकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४७.मानुषायुःकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
४८. देवायुःकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

३२. मैं संज्वलन क्रोधकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३३. मैं संज्वलन मानकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३४. मैं संज्वलन मायाकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३५. मैं संज्वलन लोभकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३६. मैं हास्य नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३७. मैं रति नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३८. मैं अरति नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
३९. मैं शोक नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४०. मैं भय नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४१. मैं जुगुप्सा नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४२. मैं स्त्रीवेद नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४३. मैं पुंवेद नोकषाय वेदनीय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४४. मैं नपुंसकवेद नोकषाय मोहनीय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४५. मैं नरक आयुकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४६. मैं तिर्यंच आयुकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४७. मैं मनुष्य आयुकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
४८. मैं देवायु कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

४९. नरकगतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५०. तिर्यग्गतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५१. मनुष्यगतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५२. देवगतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५३. एकेन्द्रियजातिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५४. द्वीन्द्रियजातिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५५. त्रीन्द्रियजातिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५६. चतुरिन्द्रियजातिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५७. पंचेन्द्रियजातिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५८. औदारिकशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
५९. वैक्रियिकशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६०. आहारकशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६१. तैजसशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६२. कार्मणशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६३. औदारिकशरीरांगोपांगनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६४. वैक्रियिकशरीरांगोपांगनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६५. आहारकशरीरांगोपांगनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

४९. मैं नरकगति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५०. मैं तिर्यंचगति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५१. मैं मनुष्यगतिनाम कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५२. मैं देवगति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५३. मैं एकेन्द्रिय जाति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५४. मैं द्वीन्द्रिय जातिनामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५५. मैं त्रीन्द्रिय जातिनामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५६. मैं चतुरिन्द्रिय जाति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५७. मैं पंचेन्द्रियजाति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५८. मैं औदारिकशरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
५९. मैं वैक्रियिकशरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६०. मैं आहारक शरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६१. मैं तैजस शरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६२. मैं कार्मण शरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६३. मैं औदारिक शरीरांगोपांग नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६४. मैं वैक्रियिक शरीरांगोपांग नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६५. मैं आहारकशरीरांगोपांग नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

६६. औदारिकशरीरबंधननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६७. वैक्रियिकशरीरबंधननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६८. आहारकशरीरबंधननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
६९. तैजसशरीरबंधननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७०. कार्मणशरीरबंधननामकर्म रहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७१. औदारिकशरीरसंघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७२. वैक्रियिकशरीरसंघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७३. आहारकशरीरसंघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७४. तैजसशरीरसंघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७५. कार्मणशरीरसंघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७६. समचतुरस्रसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७७. न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७८. स्वातिसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
७९. कुब्जकसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८०. वामनसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८१. हुंडकसंस्थाननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८२. वज्रर्षभनाराचसंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

६६. मैं औदारिक शरीर बंधन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६७. मैं वैक्रियक शरीर बंधन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६८. मैं आहारक शरीर बंधन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
६९. मैं तैजस शरीर बंधन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७०. मैं कार्मण शरीर बंधन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७१. मैं औदारिक शरीर संघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७२. मैं वैक्रियक शरीर संघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७३. मैं आहारक शरीर संघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७४. मैं तैजस शरीर संघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७५. मैं कार्मण शरीर संघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७६. मैं समचतुरस्रसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७७. मैं न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७८. मैं स्वातिसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
७९. मैं कुब्जकसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८०. मैं वामनसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८१. मैं हुण्डकसंस्थान नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८२. मैं वज्रवृषभनाराचसंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

८३. वज्रनाराचसंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८४. नाराचसंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८५. अर्धनाराचसंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८६. कीलिकासंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८७. असंप्राप्तसृपाटिकासंहनननामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८८. स्निग्धस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
८९. रूक्षस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९०. शीतस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९१. उष्णस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९२. गुरुस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९३. लघुस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९४. मृदुस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९५. कर्कशस्पर्शनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९६. मधुररसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९७. अम्लरसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९८. तिक्तरसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
९९. कटुकरसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

८३. मैं वज्रनाराचसंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८४. मैं नाराचसंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८५. मैं अर्द्धनाराचसंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८६. मैं कीलकसंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८७. मैं असंप्राप्तसृपाटिकासंहनन नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८८. मैं स्निग्ध स्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
८९. मैं रुक्षस्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९०. मैं शीतस्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९१. मैं उष्ण स्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९२. मैं गुरु स्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९३. मैं लघु स्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९४. मैं मृदुस्पर्श नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९५. मैं कर्कश नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९६. मैं मधुररस नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९७. मैं अम्ल—खट्टे रस नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९८. मैं तिक्त—चरपरे रस नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
९९. मैं कडुवे रस नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

१००. कषायरसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०१. सुरभिगंधनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०२. असुरभिगंधनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०३. शुक्लवर्णनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०४. रक्तवर्णनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०५. पीतवर्णनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०६. हरितवर्णनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०७. कृष्णवर्णनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०८. नरकगत्यानुपूर्वीनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१०९. तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११०. मनुष्यगत्यानुपूर्वीनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१११. देवगत्यानुपूर्वीनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११२. निर्माणनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११३. अगुरुलघुनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११४. उपघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११५. परघातनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११६. आतापनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

१००. मैं कषायले रस नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०१. मैं सुगंध गंधनामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०२. मैं दुर्गंध गंध नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०३. मैं श्वेतवर्ण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०४. मैं लालवर्ण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०५. मैं पीले वर्ण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०६. मैं हरे वर्ण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०७. मैं काले वर्ण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०८. मैं नरकगति आनुपूर्वी नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१०९. मैं तिर्यंचगति आनुपूर्वी नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११०. मैं मनुष्यगति आनुपूर्वी नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१११. मैं देवगति आनुपूर्वी नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११२. मैं निर्माण नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११३. मैं अगुरुलघु नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११४. मैं उपघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११५. मैं परघात नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११६. मैं आतप नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

११७. उद्योतनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११८. उच्छ्वासनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
११९. प्रशस्तविहायोगतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२०. अप्रशस्तविहायोगतिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२१. साधारणशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२२. प्रत्येकशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२३. स्थावरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२४. त्रसनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२५. सुभगनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२६. दुर्भगनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२७. सुस्वरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२८. दुःस्वरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१२९. शुभनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३०. अशुभनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३१. सूक्ष्मशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३२. बादरशरीरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३३. पर्याप्तनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

---

११७. मैं उद्योत नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११८. मैं उच्छ्वास नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
११९. मैं प्रशस्तविहायोगति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२०. मैं अप्रशस्तविहायोगति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२१. मैं साधारण शरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२२. मैं प्रत्येक शरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२३. मैं स्थावर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२४. मैं त्रसनामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२५. मैं सुभग नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२६. मैं दुर्भग नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२७. मैं सुस्वर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२८. मैं दुःस्वर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१२९. मैं शुभनामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३०. मैं अशुभ नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३१. मैं सूक्ष्मशरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३२. मैं बादरशरीर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३३. मैं पर्याप्त नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

१३४. अपर्याप्तनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३५. स्थिरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३६. अस्थिरनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३७. आदेयनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३८. अनादेयनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१३९. यशःकीर्तिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४०. अयशःकीर्तिनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४१. तीर्थकरत्वनामकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४२. उच्चैर्गोत्रकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४३. नीचैर्गोत्रकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४४. दानान्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४५. लाभान्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४६. भोगान्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४७. उपभोगान्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
१४८. वीर्यान्तरायकर्मरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।
एवमेव बंधापेक्षया उदयापेक्षया सत्त्वापेक्षयापि च मंत्रा ध्यातव्याः।
तथाहि—

---

१३४. मैं अपर्याप्त नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३५. मैं स्थिर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३६. मैं अस्थिर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३७. मैं आदेय नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३८. मैं अनादेय नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१३९. मैं यशःकीर्ति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४०. मैं अयशःकीर्ति नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४१. मैं तीर्थंकर नामकर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४२. मैं उच्चगोत्र कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४३. मैं नीचगोत्र कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४४. मैं दानान्तराय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४५. मैं लाभान्तराय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४६. मैं भोगान्तराय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४७. मैं उपभोगान्तराय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।
१४८. मैं वीर्यान्तराय कर्म से रहित हूँ, शुद्ध चैतन्यचिंतामणि स्वरूप हूँ।

इसी प्रकार से इन १४८ कर्मप्रकृतियों के बंध की अपेक्षा से, उदय की अपेक्षा से और सत्त्व की अपेक्षा से भी मंत्रों का ध्यान करना चाहिए। जैसे कि—

१. ज्ञानावरणीयकर्मबंधरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

कर्मोदयानाश्रित्य—

२. ज्ञानावरणीयकर्मोदयरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

कर्मसत्त्वान्याश्रित्य—

३. ज्ञानावरणीयकर्मसत्त्वरहितोऽहं शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम्।

एभिर्मंत्रैः आत्मा शुद्धो भविष्यतीति निश्चित्य स्वात्मतत्त्वशुद्ध्यर्थं एताः मंत्राः ध्यातव्याः। यावद् ध्यानं न संभवेत् तावत् तदानीं च एषां मंत्राणां जाप्यं पठनं-पाठनं च विधातव्यम्।

---

१. मैं ज्ञानावरणीय कर्मबंध से रहित हूँ, शुद्ध चिन्मय चिंतामणिस्वरूप हूँ।

ऐसे ही कर्मों के उदय की अपेक्षा से—

२. मैं ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से रहित हूँ, शुद्ध चिन्मय चिंतामणिस्वरूप हूँ।

ऐसे ही कर्मों के सत्त्व का आश्रय ले करके भी मंत्रों का स्मरण करना चाहिए—

३. मैं ज्ञानावरणीय कर्म की सत्ता से रहित हूँ, शुद्ध चिन्मय चिंतामणिस्वरूप हूँ।

इन मंत्रों से आत्मा शुद्ध होगा, ऐसा निश्चय करके अपने आत्मतत्त्व की शुद्धि के लिए इन मंत्रों का ध्यान करना चाहिए। जब तक इनका ध्यान संभव नहीं है, तब तक और इस समय इन मंत्रों का जाप्य, पठन और पाठन करते रहना चाहिए।

अन्त्यवन्दना
(प्रशस्तिसमन्विता)

श्रीमत्ऋषभदेवादि-वीरान्तान् प्रणमाम्यहम्।
श्रुतदेवीं च साधूंश्च भक्त्या नित्यं पुनः पुनः।।१।।

पंचद्विपंचद्व्यंकेऽस्मिन् वीराब्दे ज्येष्ठमासके।
शुक्ले च श्रुतपञ्चम्यां सरस्वत्या महोत्सवे।।२।।

राजधान्यां भारतस्य नाम्नि प्रीतविहारके।
श्रीमत् ऋषभदेवस्य रम्ये कमलमन्दिरे।।३।।

सूरेः श्रीधरसेनस्य पूर्वज्ञानांशधारिणः।
शिष्यौ ग्रन्थस्य कर्तारौ, पुष्पदन्त भूतबली।।४।।

एतान् नमामि भक्त्याहं, पूर्वचारित्रलब्धये।
गुरूभक्तिप्रसादाच्च सज्ज्ञानर्द्धिं लभे त्वरम्।।५।।

षट्खण्डागमग्रन्थेषु तृतीयखण्ड आगमः।
तस्य चिन्तामणिष्टीका पूर्यते श्रुतभक्तितः।।६।।

यावद् लोके सुमेरुः स्यात्, जिनधर्मो जगद्धितः।
तावदियं कृतिः स्थेयाद्- नंद्याद् देयाच्च नः श्रियम्।।७।।

अन्त्य वन्दना

श्री—अन्तरंग अनंत चतुष्टय और बहिरंग—समवसरण की लक्ष्मी से समन्वित श्री ऋषभदेव से लेकर श्री महावीर स्वामी पर्यंत चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों को मैं नमस्कार करता हूँ। पुनः श्रुतदेवी को और सर्व साधुओं को भी मैं भक्तिपूर्वक नित्य ही बारम्बार नमन करता हूँ।।१।।

इस वीर निर्वाण संवत् पच्चीस सौ पच्चीस में ज्येष्ठमास की शुक्ला पंचमी—ऐसी श्रुतपंचमी के दिन भारत की राजधानी दिल्ली शहर में प्रीतविहार नाम की कालोनी में अतिशय सुंदर श्री ऋषभदेव के कमल मंदिर में जब सरस्वती का महोत्सव चल रहा था, उस समय मैंने यह ग्रंथ पूर्ण किया है।।२-३।।

पूर्व ज्ञान के अंश को धारण करने वाले श्री धरसेनाचार्य के दो शिष्य—पुष्पदंत और भूतबली नाम के हुए हैं जो कि इस ग्रंथ के कर्ता हुए हैं। पूर्ण चारित्र की प्राप्ति के लिए मैं इन तीनों ही आचार्य देवों को भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ। इसलिए कि इन गुरुओं की भक्ति के प्रसाद से मैं शीघ्र ही सम्यग्ज्ञानरूपी ऋद्धि को प्राप्त कर लूँ।।४-५।।

षट्खण्डागम ग्रंथ में जो 'तृतीय खण्ड आगम है' श्रुतभक्ति से प्रेरित होकर मेरे द्वारा उस तृतीय खण्ड की यह 'सिद्धान्तचिंतामणि' नाम की संस्कृत टीका पूर्ण की जा रही है।।६।।

जब तक इस मध्यलोक में सुमेरु पर्वत विद्यमान है अथवा जब तक यहाँ पर हस्तिनापुर में निर्मित एक सौ एक फुट ऊँचा कृत्रिम सुमेरु पर्वत विद्यमान रहे तथा जब तक जगत् का हित करने वाला जैनधर्म विद्यमान रहे तब तक यह मेरी कृति संस्कृत टीका इस जगत् में स्थित रहे—विद्यमान रहे और हम सभी को अन्तरंग-

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।
श्रीशांतिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम्।।८।।
श्री शान्तिसागराचार्यः, सूरिः श्री वीरसागरः।
वन्द्येते मया सूरी, ज्ञानमत्या स्वसिद्धये।।९।।

इति श्रीमद्भगत्पुष्पदंतभूतबलिसूरिप्रणीतषट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डे श्रीभूतबलिकृत-'बंधस्वामित्वविचय' नामग्रन्थस्य श्रीवीरसेनाचार्य विरचित धवलाटीकाप्रमुखनानाग्रन्थाधारेण विरचितायां विंशतितमे शताब्दौ प्रथमाचार्यः चारित्रचक्रवर्ती श्रीशांतिसागरस्तस्य प्रथमपट्टाधीशः श्रीवीरसागराचार्यस्तस्य शिष्या जंबूद्वीपरचनाप्रेरिका गणिनीज्ञानमतीकृत सिद्धान्तचिंतामणिटीकायां बंधस्वामित्व-विचयोऽयं तृतीयःखण्डः समाप्तः।

समाप्तोऽयं षट्खण्डागमस्यान्तर्गतस्तृतीयः खण्डः।
वर्धतां जिनशासनम्।

बहिरंग श्री — लक्ष्मी प्रदान करती रहे।।७।।

"बंधस्वामित्वविचय" नाम का यह ग्रंथ टीका समेत जगत् में मंगलकारी होवे और सोलहवें तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान सम्पूर्ण जगत् में मंगल करें।।८।।

श्री शांतिसागर आचार्य जो कि बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य हुए हैं और श्री वीरसागर आचार्य जो कि मेरे आर्यिका दीक्षा के गुरु हैं इन दोनों गुरुवर्यों की मेरी स्वात्मसिद्धि के लिए मुझ 'गणिनी ज्ञानमती' के द्वारा वंदना की जा रही है।।९।।

—हिन्दी अनुवाद पूर्णता का मंगलाचरण —

मंगलं पार्श्वनाथोऽर्हन्, त्रयोविंशोजिनेश्वरः।
मंगलं मोक्षकल्याणं, मंगलं मोक्षसप्तमी।।१।।

इस प्रकार श्रीमान् भगवान पुष्पदंत और भूतबलि आचार्य प्रणीत षट्खण्डागम के तीसरे खण्ड में श्री भूतबलि आचार्यकृत 'बंधस्वामित्वविचय' नामक ग्रंथ की श्री वीरसेनाचार्य विरचित 'धवलाटीका' प्रमुख अनेक ग्रंथों के आधार से विरचित बीसवीं शताब्दी के प्रथमाचार्य चारित्रचक्रवर्ती श्री शांतिसागर महाराज हुए हैं, उनके प्रथम पट्टाधीश श्री वीरसागराचार्य हुए, उनकी शिष्या जम्बूद्वीप रचना की प्रेरिका मुझ गणिनी ज्ञानमती कृत सिद्धान्तचिंतामणि टीका में 'बंधस्वामित्वविचय' नामक यह तृतीय खण्ड पूर्ण हुआ।

षट्खण्डागम ग्रंथ के अन्तर्गत यह तृतीय खण्ड पूर्ण हुआ।
जैन शासन वृद्धिंगत होता रहे।

षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डस्य प्रशस्तिः

महावीरजिनं नत्वा, गौतमस्वामिनं पुनः।
द्वादशांगी श्रुतदेवी, भक्त्या चित्तेऽवतार्यते।।१।।

अस्ति जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे भारतदेशस्य राजधानी इन्द्रप्रस्थनाम महानगरं। अस्य निकटे हस्तिनापुरनामतीर्थक्षेत्रं। तत्र मार्गशीर्षशुक्लात्रयोदश्यां वीराब्दे चतुर्विंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे ख्रिष्टाब्दे सप्तनवत्यधिकएकोनविंशतिशततमे षट्खण्डागमस्य तृतीयखण्डस्य अष्टमग्रन्थस्य संस्कृतटीका प्रारभे स्म।

हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्राद् विहृत्याहं संघसहितेन राजधानी दिल्ली महानगरमाजगाम। अत्र आदिब्रह्मणः श्रीऋषभदेवस्य प्रथमतीर्थंकरस्य जन्मजयंतीतिथौ चैत्रकृष्णानवम्यां[१] वीरनिर्वाणसंवत्सर-चतुर्विंशत्यधिक-पंचविंशतिशततमे मंगलदिवसे राजधान्यां लालकिलामैदाननामस्थले नवनिर्मितवृहन्- मण्डपे श्रीऋषभदेव-समवसरणश्रीविहारनाम्नः सुसज्जितरथस्य (प्रतिष्ठितचतुर्मुखऋषभदेवप्रतिमा-समेतस्य) धातुभिर्निर्मित श्रीऋषभदेवसमवसरणस्य विशाल सभायां मध्यान्हे त्रिवादनसमये अस्य समवसरणसमक्षे स्वस्तिकं कृत्वा हर्षोल्लसितचेतसा मया उद्घाटनं विहितं।

पुनश्च अस्य समवसरणस्य श्रीविहारो भूत्वा महत्या प्रभावनया वाद्यरवजयजयारवाकुलैः लक्षाधिकजनैः सह अयं राजधान्याः पहाड़ीधीरजनामोपनगरम् आजगाम। अत्र अस्य समवसरणस्य स्वागतशोभायात्रादिभिः महती प्रभावनाभवत्।

षट्खण्डागम के तृतीय खण्ड की प्रशस्ति

श्लोकार्थ— भगवान महावीर जिनेन्द्र को एवं उनके प्रथम गणधर श्री गौतम स्वामी को नमस्कार करके मैं अपने चित्त—हृदय में द्वादशांगमयी सरस्वती माता को अवतरित करती हूँ— धारण करती हूँ।।१।।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में भारतदेश की राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) नाम से महानगर है। उसके निकट (दिल्ली से ११० किमी. दूर) हस्तिनापुर नाम का तीर्थक्षेत्र है। वहाँ वीर निर्वाण संवत् २५२४ में मगसिर शुक्ला त्रयोदशी, ईसवी सन् १९९७ में षट्खण्डागम के इस तृतीय खण्ड के आठवें ग्रंथ की संस्कृत टीका का लेखन मैंने प्रारंभ किया।

पुनः हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र से विहार करके मैं संघ सहित दिल्ली महानगर पहुँच गई। वहाँ वीर निर्वाण संवत् २५२४ में चैत्र कृष्णा नवमी तिथि (२२ मार्च १९९८) को प्रथम तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव की जन्मजयंती के दिन राजधानी के लालकिला मैदान में निर्मित किये गये विशाल पाण्डाल में श्री ऋषभदेव समवसरण श्रीविहार नाम के सुसज्जित रथ का (प्रतिष्ठित चतुर्मुख वाली ऋषभदेव की प्रतिमा से समन्वित) धातु से निर्मित श्री ऋषभदेव भगवान के समवसरण को उस रथ पर विराजमान करके विशाल सभा में मध्यान्ह ३ बजे इस समवसरण के समक्ष स्वस्तिक बनाकर मैंने हर्षोल्लासपूर्वक उद्घाटन किया।

पुनश्च इस समवसरण का श्रीविहार होकर महती धर्मप्रभावनापूर्वक भारी भीड़ के साथ खूब बैण्ड बाजे एवं भगवान की जय-जयकारों की ध्वनि के साथ लाखों लोगों के साथ राजधानी के 'पहाड़ी धीरज' नामक उपनगर-कालोनी में पहुँचा। वहाँ इस समवसरण का स्वागत एवं शोभायात्रा आदि के द्वारा महती धर्मप्रभावना हुई।

---

१. दिनाँक-२२-३-१९९८।

अनंतरं राजधान्या उपनगरे राजाबाजार-कनाटप्लेस नाम्निस्थले तालकटोरास्टेडियम नाम्नि सभागारे श्रीमहावीरजयंतीतिथौ[१] वित्तराज्यमंत्री श्री वी.धनंजयकुमारजैनस्य अध्यक्षतायां तत्कालीनप्रधानमंत्रिण: श्रीअटलबिहारीवाजपेयीनामधेयस्य करकमलाभ्यां अस्य समवसरणस्य संपूर्ण भारतदेशे विहारार्थं प्रवर्तनं बभूव।

अस्मिन् मध्ये दिल्लीमहानगरस्य अनेकोपनगरेषु मत्संघसांन्निध्ये श्रीसमवसरणस्य स्वागतंपूजा-शोभायात्रा प्रभावनादय: संजाता:।

तदनु वैशाख शुक्ला सप्तम्यां सूर्यनगरात् श्रीसमवसरणस्य श्रीविहारो हरियाणाप्रदेशे 'गुड़गाँवा' नामग्रामे संजात:।

अहमपि स्वसंघसहिता राजधान्या: विहृत्य ज्येष्ठकृष्णाप्रतिपत्तिथौ हस्तिनापुरतीर्थक्षेत्रमाजगाम।

अत्र हस्तिनापुरक्षेत्रे वर्षायोगमध्ये आश्विनशुक्ला चतुर्दशी-पूर्णिमा कार्तिक कृष्णा प्रतिपत्तिथिपर्यंतं त्रिदिवसस्य (४-५-६ अक्टूबरमासि-ख्रिष्टाब्दे अष्टनवति-अधिकएकोनविंशतिशततमे चतु:पंचषट्अक्टूबर मासे) विश्वविद्यालयेभ्य: आगतानां विद्वज्जनशिरोमणीनां कुलपतीनां सम्मेलनं अभवत्। अस्मिन् सम्मेलनमहोत्सवे एकादशोत्तरशतविद्वद्वर्या: अपि सम्मिलिता: आसन्। इदं सम्मेलनं भारतवर्षदेशे संप्रत्यत्र अभूतपूर्वमभवत्।

वर्षायोगं समाप्य पुनरपि अहं राजधानीं प्रत्यागता।

संप्रति अत्र राजधान्यां प्रीतिविहारनाम्नि उपनगरे—'कालोनी' मध्ये श्रीऋषभदेव कमलमंदिरे स्थित्वास्य ग्रन्थस्य सिद्धान्तचिंतामणिटीका पूर्यते द्वितीयज्येष्ठशुक्लापञ्चम्यां वीराब्दे पंचविंशत्यधिक-पंचविंशतिशततमे, ख्रिष्टाब्दे नवनवत्यधिक एकोनविंशतिशततमे[२]।

इसके पश्चात् दिल्ली में ही तालकटोरा स्टेडियम नाम के सभागार में श्री महावीर जयन्ती के दिन (९ अप्रैल १९९८ को) वित्तराज्यमंत्री श्री वी. धनंजय कुमार जैन की अध्यक्षता में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के करकमलों से इस समवसरण का सम्पूर्ण भारतदेश में विहार कराने हेतु प्रवर्तन हुआ।

इस मध्य (२३ मार्च से ८ अप्रैल के बीच में) दिल्ली महानगर की अनेक कालोनियों में मेरे संघ सान्निध्य में समवसरण का स्वागत, पूजा, शोभायात्रा आदि के द्वारा खूब धर्मप्रभावना हुई।

मैं भी अपने संघ के साथ राजधानी से विहार करके ज्येष्ठ कृष्णा एकम् तिथि को हस्तिनापुर तीर्थ (जम्बूद्वीप स्थल) पर आ गई।

यहाँ हस्तिनापुर क्षेत्र पर वर्षायोग के मध्य आश्विन शुक्ला चतुर्दशी-पूर्णिमा और कार्तिक कृष्णा एकम् तिथि तक, ४-५-६ अक्टूबर १९९८ को, तीन दिन तक विश्वविद्यालयों से पधारे विद्वज्जनशिरोमणि कुलपतियों का सम्मेलन हुआ, अर्थात् "भगवान ऋषभदेव राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन" नाम से वृहत् शैक्षणिक कार्यक्रम आयोजित किया गया। इस सम्मेलन महोत्सव में एक सौ ग्यारह (१११) विद्वान् भी सम्मिलित हुए। भारतवर्ष में प्रथम बार ऐसा अभूतपूर्व सम्मेलन जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में सम्पन्न हुआ।

हस्तिनापुर में वर्षायोग समापन करके मैं पुन: दिल्ली राजधानी आ गई। इस समय राजधानी की प्रीतविहार कालोनी में श्री ऋषभदेव कमल मंदिर में बैठकर वीर निर्वाण संवत् २५२५, ईसवी सन् १९९९ में द्वितीय ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी (श्रुतपंचमी) के दिन मैंने इस आठवें ग्रंथ की सिद्धान्तचिंतामणिटीका को

---

१. दिनाँक ९-४-१९९८। २. वी.सं. २५२५, द्वि. ज्येष्ठ शु. ५, दिनाँक-१८-६-१९९९।

अस्मिन् ग्रंथे चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतसूत्राणि, मम लिखित पृष्ठसंख्या त्रिंशदधिकद्विशतानि सन्ति।

अद्य सरस्वती-आराधनाया महत्त्वपूर्णं पर्व वर्तते। सरस्वत्याः मूर्तेः षट्खण्डागमग्रंथस्य च महाभिषेकं कारयित्वा श्रुतावतारकथावाचनामकुर्वम्।

वीराब्दे त्रयोविंशत्यधिकपंचविंशतिशततमे मांगीतुंगीसिद्धक्षेत्रादागत्य सुंदरं कमलमंदिरम-वलोकितं। पूर्वं यस्य कृतेऽत्र यंत्रं स्थापयित्वा यात्रार्थं गताहं। अस्मिन् मन्दिरेऽधुना धातुनिर्मित-पंचविंशति-इंचप्रमाणाश्रीऋषभदेवजिनप्रतिमायाः पंचकल्याणकं अस्मत्सन्निधौ ज्येष्ठ शुक्लादशम्यां ख्रिष्टाब्दे[1] सप्त नवत्यधिकएकोनविंशतिशततमे हर्षोल्लासेन प्रभावनापूर्वकं अभवत्।

प्रथमतः कमलमन्दिरस्य कल्पना हस्तिनापुरक्षेत्रे जम्बूद्वीपस्थले मम फलितासीत्। पुनश्च द्वितीयमिदं कमलमन्दिरं मत्प्रेरणया धर्मनिष्ठ-अनिलकुमारेण स्वगृहस्य प्राङ्गणे विनिर्मापितं।

अंतिमतीर्थंकरभगवन्महतिमहावीरशासने परंपरागतान् सर्वानाचार्योपाध्यायसाधूंश्च प्रणम्य श्रीमूलसंघे कुन्दकुन्दाम्नाये सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे विंशतिशताब्दौ मुनिपरम्परोद्धारकः प्रथमाचार्यः श्रीशान्तिसागर-गुरुस्तस्य प्रथमशिष्यः प्रथमपट्टाधीशाचार्य श्रीवीरसागरश्च ममार्यिकादीक्षागुरुस्तं उभयमपि सिद्धश्रुताचार्य-भक्तीः पठित्वा कृतिकर्मविधिपूर्वकं वन्देऽहं गणिनी ज्ञानमत्यार्यिका। ताभ्यां च गुरुवर्याभ्यां तेभ्यः परम्पराचार्येभ्यश्च कोटिशो नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।

लिखकर पूर्ण किया। इस ग्रंथ में ३२४ सूत्र हैं, मेरे द्वारा लिखित टीका की पृष्ठ संख्या २३० है।

आज सरस्वती आराधना का महत्वपूर्ण पर्व (श्रुतपंचमी पर्व) है। अतः सरस्वती की प्रतिमा और षट्खण्डागम ग्रंथ का (दर्पण में) अभिषेक करवाकर मैंने श्रुतावतार कथा का वाचन किया।

वीर निर्वाण संवत् २५२३ में (सन् १९९७ में) मैंने मांगीतुंगी सिद्धक्षेत्र से वापस दिल्ली आकर यह सुन्दर कमल मंदिर देखा। पहले (दिसम्बर १९९५ में) इसे बनाने हेतु यहाँ यंत्र स्थापित करके मैं मांगीतुंगी की यात्रा करने गई थी। इस मंदिर में अब धातु निर्मित २५ इंच प्रमाण भगवान ऋषभदेव की पद्मासन प्रतिमा विराजमान हैं, जिनका पंचकल्याणक सन् १९९७ में ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को खूब हर्षोल्लास के साथ प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ था।

सर्वप्रथम मेरी कमल मंदिर की कल्पना हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर फलित हुई अर्थात् वहाँ भगवान महावीर की अवगाहना प्रमाण खड्गासन प्रतिमा से समन्वित कमल मंदिर साकार हुआ। पुनश्च द्वितीय कमल मंदिर मेरी प्रेरणा से धर्मनिष्ठ श्रावक अनिल कुमार जैन ने अपने मकान के प्रांगण — लॉन में निर्मित कर दिया।

अंतिम तीर्थंकर भगवान महति महावीर के शासन में परम्परा से चले आ रहे समस्त आचार्य-उपाध्याय और साधुओं को नमन करके श्री मूलसंघ के कुन्दकुन्दाम्नाय में सरस्वतीगच्छ, बलात्कारगण में बीसवीं सदी में मुनिपरम्परा के उद्धारक प्रथमाचार्य श्री शांतिसागर गुरुदेव हुए हैं, उनके प्रथम शिष्य एवं प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज थे, जो मेरे आर्यिका दीक्षा गुरु हुए, उन दोनों गुरुओं को भी सिद्ध-श्रुत-आचार्यभक्ति पढ़कर कृतिकर्मपूर्वक मैं गणिनी ज्ञानमती आर्यिका वन्दना करती हूँ। उन दोनों गुरुवर्य को और उस परम्परा के आचार्यों को मेरा कोटि-कोटि बार नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु है।

---

१. सन् १९९७ में पंचकल्याणक हुआ था। २. वी.सं. २५२५, द्वि. ज्येष्ठ शु. ५, दिनाँक-१८-६-१९९९

संप्रति अन्तर्राष्ट्रीयऋषभदेवनिर्वाणमहामहोत्सव रूपरेखा-योजना चलति। एतन्महामहोत्सवं-कारयितुमहं अत्र प्रत्यागत ? एतन्महामहोत्सवः श्रीऋषभदेवस्य शासनप्रभावनार्थं भवेदिति आशां कुर्वेऽहम्।

अद्यत्वे चर्चा वर्तते यत् श्रीमहावीरस्वामी एव जैनधर्मस्य संस्थापकोऽस्ति एतस्या आशंकाया निर्मूलनार्थं श्रीऋषभदेवो जैनतीर्थंकरपरम्परायां प्रथमस्तीर्थंकरो बभूव। अन्यच्च इमे तीर्थंकरा भगवन्तः न जैनधर्मस्य संस्थापकाः, एतेभ्यः प्रागपि अनंतास्तीर्थंकरा भूतकाले बभूवुः इति ज्ञापनार्थं च मम उद्देश्यः श्रीऋषभदेव-भगवतां प्रभावनाया वर्तते इति ज्ञातव्यं भवद्भिः।

प्रीतविहारकालोनी मध्ये द्वितीयज्येष्ठशुक्लापञ्चम्यां[३] वीराब्दे पंचविंशत्यधिकपञ्चविंशतिशततमे ऋषभदेवकमलमंदिरे सरस्वतीआराधनामहोत्सवकाले अयं टीकाग्रन्थः पूर्णीकृतः।

अधुना भारतदेशस्य राष्ट्रपतिमहामहिम श्री के. आर. नारायनन-प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी- वाजपेयी महानुभावाः, दिल्ली प्रदेशस्य महामहिमराज्यपाल विजय कपूर-मुख्यमंत्री श्रीमती शीला- दीक्षित-इति नामधेयाः गणतंत्रशासनं रक्षन्ति।

अस्मिन् तृतीयखण्डे षोडशकारणभावना अधीत्य इमाः भावना ममात्मनि कदा स्फुरिष्यन्तीति चिन्तनं पुनश्च कर्मबंधस्य वयमेव स्वात्मनः 'कथं कर्मबंधेभ्यः पृथक् भविष्यामः' इत्यपि पुरुषार्थकरणार्थं प्रेरणा वर्धते। ततश्च शुद्धनिश्चयनयेन शुद्धोऽहमिति भावना भावयितव्या-

ज्ञानावरणीयकर्मरहितोऽहं, शुद्धचिन्मयचिन्तामणिस्वरूपोऽहम् इत्यादयः, अष्टचत्वारिंशद-धिकशतमंत्रा विरचिताः स्वात्मशुद्ध्यर्थं मया।

अस्य टीकायां १. हरिवंशपुराणं, २. गोम्मटसारकर्मकाण्डं, ३. तत्त्वार्थसूत्रं, ४. समयसारः,

---

इस समय भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव की रूपरेखा—योजना चल रही हे। यह महामहोत्सव सम्पन्न कराने हेतु मैं यहाँ—दिल्ली आई हूँ। यह महामहोत्सव श्री ऋषभदेव भगवान के जिनशासन की प्रभावना का निमित्त बनेगा, यही मैं आशा करती हूँ।

आजकल यह चर्चा प्रचारित है कि श्री महावीर स्वामी ही जैनधर्म के संस्थापक हैं, इस आशंका को निर्मूल करने के लिए "श्री ऋषभदेव इस कर्मयुग की जैन तीर्थंकर परम्परा में प्रथम तीर्थंकर हुए हैं तथा अन्य भी जो २२ तीर्थंकर भगवान हैं वे कोई भी जैनधर्म के संस्थापक नहीं हैं, क्योंकि इनसे पूर्व भी भूतकाल में अनन्त तीर्थंकर हो चुके हैं" यह बात बतलाने के लिए ही श्री ऋषभदेव भगवान की प्रभावना में मेरा उद्देश्य है, ऐसा आप सभी को जानना चाहिए।

इस समय भारत देश के राष्ट्रपति श्री के.आर. नारायणन हैं, श्री अटल बिहारी वाजपेयी प्रधानमंत्री हैं, दिल्ली प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री विजय कपूर हैं तथा मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित गणतंत्र शासन की रक्षा कर रहे हैं।

इस तृतीय खण्ड में सोलहकारण भावनाओं को पढ़कर ये भावनाएँ मेरी आत्मा में कब प्रगट होंगी ऐसा चिन्तन होता है तथा पुनः हम ही कर्मबंध करने वाले हैं और "इन कर्मों के बंध से कैसे हम पृथक होंगे' इस प्रकार का भी पुरुषार्थ करने की प्रेरणा वृद्धिंगत होती है। इसके पश्चात् शुद्ध निश्चयनय से मैं शुद्ध हूँ, ऐसी भावना भानी चाहिए—

मैं ज्ञानावरणीय कर्म से रहित शुद्ध चैतन्यमयी चिन्तामणिस्वरूप हूँ, इत्यादि एक सौ अड़तालिस (१४८ कर्मों के भेद से रहित के प्रतीक) मंत्र मेरे द्वारा आत्माशुद्धि के लिए बनाये गये हैं।

इस टीका में १. हरिवंशपुराण २. गोम्मटसारकर्मकाण्ड ३. तत्त्वार्थसूत्र ४. समयसार ५. आत्ममीमांसा

५. आप्तमीमांसा, ६. तत्त्वार्थवृत्तिः ७. कसायपाहुड़ग्रंथः, ८. पंचास्तिकायः, ९. तत्त्वार्थसारः, १०. अष्टसहस्त्री, ११. नियमसार प्राभृत-स्याद्वादचन्द्रिकाटीका, १२. गोम्मटसारजीवकाण्डं, १३. पंचसंग्रह, १४. तत्त्वार्थवार्तिकं, १५. वसुनंदिश्रावकाचारः, १६. अनगारधर्मामृतं, १७. जैनव्रतकथासंग्रहः, १८. मुनिचर्या, १९. त्रिलोकसारः, २०. आदिपुराणं, २१. परमात्मप्रकाशः, २२. आत्मानुशासनं, २३. पद्मपुराणं, २४. चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्तिः, २५. श्रुतभक्तिः, २६. बृहद्द्रव्यसंग्रहः, २७. निर्वाणभक्तिः, २८. उत्तरपुराणं, २९. दैवसिकप्रतिक्रमण-मित्यादि- ग्रन्थानामुद्धरणानि वर्तन्ते।

एतानि सिद्धान्तखण्डत्रयाण्यवबुध्य त्रैविद्या भवन्तीति निश्चित्य मय्यापि स्वशुद्धात्मज्ञानज्योतिः स्फुरेत् त्वरमिति मया भाव्यते।

ग्रन्थोऽयं बंधस्वामित्व-विचयो मंगलं क्रियात्।
श्रीशान्तिनाथतीर्थेशः, कुर्यात् सर्वत्र मंगलम्।।१।।

मंगलं श्रीऋषभेशो, वीरः कुर्याच्च मंगलम्।
आचन्द्रतारकं स्थेयात्, ज्ञानमत्याः कृतिर्भुवि।।२।।

।।इति वर्द्धतां जैनशासनम्।।

---

६. तत्त्वार्थवृत्ति ७. कसायपाहुड़ग्रंथ ८. पंचास्तिकाय ९. तत्त्वार्थसार १०. अष्टसहस्त्री ११. नियमसार प्राभृत-स्याद्वादचन्द्रिका टीका १२. गोम्मटसारजीवकाण्ड १३. पंचसंग्रह १४. तत्त्वार्थवार्तिक १५. वसुनंदिश्रावकाचार १६. अनगारधर्मामृत १७. जैनव्रत कथा संग्रह १८. मुनिचर्या १९. त्रिलोकसार २०. आदिपुराण २१. परमात्म प्रकाश २२. आत्मानुशासन २३. पद्मपुराण २४. चतुर्विंशतितीर्थंकर स्तुति २५. श्रुतभक्ति २६. वृहद्द्रव्यसंग्रह २७. निर्वाणभक्ति २८. उत्तरपुराण और २९. दैवसिक प्रतिक्रमण इत्यादि ग्रंथों के उद्धरण दिये गये हैं।

सिद्धान्त ग्रंथ के इन तीन खण्डों का ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानीजन त्रैविद्य संज्ञा को प्राप्त होते हैं ऐसा निश्चय करके मुझमें भी निज शुद्धात्म ज्ञानज्योति शीघ्र प्रस्फुरित होवे, यही भावना भाती हूँ।

श्लोकार्थ — बंधस्वामित्वविचय नाम का यह ग्रंथ मंगल को करे और तीर्थंकर श्री शांतिनाथ भगवान सर्वत्र मंगल करें।।१।।

श्री ऋषभदेव भगवान और महावीर भगवान मंगल करें और जब तक इस संसार में चन्द्रमा और तारे चमकते रहें, तब तक धरती पर गणिनी ज्ञानमती की यह कृति अमर होकर स्थित रहे, यही मंगल कामना है।।२।।

।।जैनशासन सदा वृद्धिंगत होवे।।

हिन्दी टीकाकर्त्री की प्रशस्ति

-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

-मंगलाचरण-

शांतिनाथ भगवान हैं, परम शांतिदातार।
नमूँ नमूँ मैं भक्ति से, पाऊँ सौख्य अपार।।१।।

कमठासुर उपसर्ग के, विजयी पार्श्वजिनेश।
विघ्नहरण मंगलकरण, नमूँ नमूँ परमेश।।२।।

नमूँ वीर भगवान को, जिनका शासन आज।
जिनके वन्दन भक्ति से, मिले स्वात्म साम्राज।।३।।

गौतम गणधर गुरु नमूँ, नमूँ सर्व आचार्य।
जिनशासन के सूरि सब, सूर्यसदृश गणधार्य।।४।।

ऊर्जयंत की गुफा में, श्री धरसेनाचार्य।
दो मुनियों को अध्ययन, करा रहें आचार्य।।५।।

पुष्पदंतगुरु भूतबलि, हुये श्रेष्ठ आचार्य।
षट्खण्डागम ग्रंथ को, रचा सर्वगणमान्य।।६।।

वीरसेन आचार्य की, धवला टीका सिद्ध।
इन सब गुरुओं को नमूँ, होऊँ ज्ञानसमृद्ध।।७।।

मूलसंघ में जगप्रथित, कुंदकुंद आम्नाय।
गच्छ सरस्वति है कहा, बलात्कारगण मान्य।।८।।

इस अन्वय में हैं हुये, शांतिसागराचार्य।
सदी बीसवीं के प्रथम, हैं दिगम्बराचार्य।।९।।

इनके पट्टाचार्य जो, वीरसागराचार्य।
इनकी शिष्या ज्ञानमती, गणिनी जग में मान्य।।१०।।

यह सिद्धान्तचिंतामणि, संस्कृत टीका मान्य।
सरस्वती माँ की कृपा, मैंने लिखा महान्।।११।।

साढ़े ग्यारह वर्ष में, सोलह ग्रंथ प्रपूर्ण।
अतिशायी यह कार्य है, जो अति महिमापूर्ण।।१२।।

अहिच्छत्र वर तीर्थ पर, महामहोत्सव जान।
पौष कृष्ण एकादशी, पार्श्वजन्म कल्याण।।१३।।

षट्खण्डागम ग्रंथ यह, तृतीय खण्ड अमलान।
कहा 'बंधस्वामित्व का विचय' नाम गुणखान।।१४।।

वहीं किया प्रारंभ मैं, भाषामय अनुवाद।
संस्कृत टीका स्वकृत का, किया पूर्ण अनुवाद।।१५।।

वीर अब्द पच्चीस सौ, चौंतिस जगत् प्रसिद्ध।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, मोक्ष सप्तमी सिद्ध।।१६।।

हस्तिनागपुर तीर्थ पर, पूर्ण किया यह ग्रंथ।
शांतिनाथ की कृपा से, हो प्रशस्त शिवपंथ।।१७।।

'परम अहिंसा धर्म' यह, जिनशासन का प्राण।
जब तक इस जग में रहे, करे विश्व कल्याण।।१८।।

जब तक जम्बूद्वीप है, तेरहद्वीप महान।
षट्खण्डागम ग्रंथ भी, तब तक दें सज्ज्ञान।।१९।।

जब तक नभ में रवि शशी, जग में करें प्रकाश।
तब तक भविजन हृदय में, यह 'कृति' करे निवास।।२०।।

'गणिनी ज्ञानमती' रचित, भाषामय अनुवाद।
पढ़ो पढ़ाओ भव्यजन, मिले स्वात्म आल्हाद।।२१।।

—ग्रंथ अनुवाद के मध्य विशेष कार्यकलाप—

मंगलाचरण

शांतिनाथ भगवान् हैं, विश्वशांति करतार।
नमूँ नमूँ नित भाव से, पाऊँ निजसुखसार।।१।।

श्री शांतिनाथ की जन्मभूमि हस्तिनापुर तीर्थ पर वीर निर्वाण संवत् २५३३, ईसवी सन् २००७ का वर्षायोग पूर्ण करके नवसंवत्सर वी. २५३४ कार्तिक शु. षष्ठी को (१६-११-२००७) हस्तिनापुर से अहिच्छत्र तीर्थ में भगवान पार्श्वनाथ का महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न कराने हेतु मेरा ससंघ मंगल विहार हुआ। मवाना, महावीर डेंटल कॉलेज-मुरादाबाद होते हुए मगसिर कृष्णा सप्तमी (३०-११-२००७) को अहिच्छत्र पहुँच गई।

मगसिर कृष्णा त्रयोदशी (७-१२-२००७) को तीर्थ पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महामस्तकाभिषेक महोत्सव का झण्डारोहण सम्पन्न हुआ। प्राचीन मंदिर में 'तिखाल वाले बाबा' के नाम से प्रसिद्ध भगवान पार्श्वनाथ की अतिशयकारी प्राचीन प्रतिमा विराजमान है।

सन् १९९३ में अयोध्या तीर्थ यात्रा के मध्य इस तीर्थ पर मैंने ''तीस चौबीसी'' विराजमान करने की प्रेरणा दी थी। फलस्वरूप ग्यारह शिखर वाले विशाल मंदिर में ७२-७२ पांखुड़ी वाले बड़े-बड़े ऐसे दश कमलों पर तीस चौबीसी की सात सौ बीस (७२०) प्रतिमाएँ विराजमान हो चुकी हैं। उसी मंदिर के निकट

एक नवनिर्मित मंदिर में भगवान पार्श्वनाथ की सात फुट की पद्मासन प्रतिमा विराजमान की गई हैं। इनके आजू-बाजू में धरणेन्द्र यक्ष एवं पद्मावती यक्षी की प्रतिमा स्थापित हैं।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा — वीर निर्वाण संवत् २५३४, मगसिर शुक्ला प्रतिपदा से पंचमी पर्यंत अतीव प्रभावना के साथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। पुनः मगसिर शु.६, को प्राचीन मंदिर में धातु से निर्मित श्री पार्श्वनाथ के चरण समन्वित १००८ कमल मंडल पर स्थापित करके श्री अनिल जैन-दिल्ली, श्री प्रेमचंद जैन-मेरठ, श्री दीपक जैन-वाराणसी आदि श्रावक-श्राविकाओं ने मेरे द्वारा नूतन रचित "भगवान पार्श्वनाथ समवसरण विधान" सम्पन्न किया।

प्रथम महामस्तकाभिषेक — मगसिर शु. ७ (१६-१२-२००७) रविवार को मूलनायक प्रतिमा 'तिखाल वाले बाबा-भगवान पार्श्वनाथ' का महामस्तकाभिषेक प्रारंभ हुआ। आस्था टी.वी. चैनल पर प्रातः ९ से ११ बजे तक सीधा प्रसारण जैन श्रावकों ने तो देखा ही, लाखों-लाखों जैनेतर लोगों ने देखकर भगवान पार्श्वनाथ के दर्शन कर अतिशय पुण्य संपादित किया। पुनः मध्यान्ह २.३० बजे से ४.५० बजे तक सीधा प्रसारण दिखाया गया। इस सीधे प्रसारण से यह अहिच्छत्र तीर्थ लाखों-लाखों भक्तों के मानस पटल पर अंकित हो गया।

इसी मध्य मेरी प्रेरणा से आर्यिका चन्दनामती द्वारा संपादित "भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दि ग्रंथ" का भी विमोचन हुआ, जिसे मैंने प्रभु के चरणों में समर्पित कर अपने जीवन को धन्य किया। यह वृहद् ग्रंथ अपने आप में एक महत्वपूर्ण ग्रंथ बनाया गया है। इसमें भगवान पार्श्वनाथ के गर्भ-जन्म-दीक्षाकल्याणक से पवित्र वाराणसी, केवलज्ञान भूमि अहिच्छत्र एवं निर्वाणभूमि सम्मेदशिखर के साथ ही जितने भी समय पर उपलब्ध हुए हैं उतने अतिशय क्षेत्रों का परिचय एवं उनके चित्र भी दिये गये हैं तथा अड़सठ (६८) प्रकार के व्रतों का भी एक विशेष संग्रह है। उनके मंत्र एवं उन-उन व्रतों की पूजाएँ भी दी गई हैं। यह ग्रंथ लगभग १००० पृष्ठ का है।

पुनः क्रम से द्वितीय मस्तकाभिषेक मगसिर शु. १० को, तृतीय अभिषेक चतुर्दशी को, चतुर्थ अभिषेक पौष कृ. १ को एवं पाँचवाँ मस्तकाभिषेक पौष कृ. ८ (दि. ३१ दिसम्बर) को सम्पन्न हुआ।

इसी दिन रात्रि में प्रभु पार्श्वनाथ की शासन देवी पद्मावती माता की बड़ी आराधना एवं रात्रि जागरण आदि कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

जन्मजयंती महोत्सव — पौष कृष्णा एकादशी वी. नि. सं. २५३४ (दि. ३-१-२००८) को भगवान पार्श्वनाथ का २८८४वाँ जन्मजयंती महोत्सव मनाया गया। मूलवेदी में विराजमान भगवान पार्श्वनाथ का महामस्तकाभिषेक सम्पन्न होने के बाद संघस्थ चैत्यालय के भगवान पार्श्वनाथ को नूतन मंदिर में विराजमान करके उनका पंचामृत अभिषेक व १००८ कलशों से महाभिषेक सम्पन्न हुआ।

मध्यान्ह 'ज्ञानतीर्थ' संस्था से रथयात्रा निकाली गई। पुनः पौष कृ. द्वि ११ (दि. ४-१-२००८) को प्राचीन मंदिर से महोत्सव समापन की रथयात्रा निकाली गई। वापस आकर पांडाल में प्रभु का अभिषेक होकर समापन की सभा में महोत्सव के अध्यक्ष कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन ने आय-व्यय का विवरण देकर सभी कमेटी के लोगों को प्रभावित एवं प्रसन्न कर दिया है।

भगवान पार्श्वनाथ को जन्म लेकर २८८३ वर्ष पूर्ण हो चुके हैं। यह २८८४ वाँ वर्ष का महोत्सव सम्पन्न हुआ है।

इससे पूर्व राजगृही में मगसिर शु. १२ को (सन् २००३) मैंने श्री मुनिसुव्रतनाथ की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के मध्य 'भगवान पार्श्वनाथ का तृतीय सहस्राब्दी महामहोत्सव' कराने की घोषणा की थी। तदनुसार अगले वर्ष पौष कृ. ११ को (दि. ६-१-२००५) भगवान की जन्मभूमि में आकर भगवान के २८८१वें जन्मजयंती के दिन "भगवान पार्श्वनाथ तृतीय सहस्राब्दी महामहोत्सव" का विशेष धर्मप्रभावनापूर्वक उद्घाटन कराया था। इसके बाद टिकैतनगर, अयोध्या आदि में 'धर्मप्रभावना, प्रतिष्ठा, महामस्तकाभिषेक' आदि अनेक कार्यक्रम होते रहे हैं। इन तीन वर्षों में 'सम्मेदशिखर वर्ष' आदि नाम से भगवान पार्श्वनाथ का पूरे भारत में सर्वत्र विशेष जयघोष हुआ है। अधिकतम साधुओं ने एवं श्रावकों ने अतिशायी प्रभावना की है।

इस महोत्सव में मेरी शिष्या प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती, जम्बूद्वीप के पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर तथा क्षुल्लक समर्पणसागर का सान्निध्य एवं मार्गदर्शन रहा है। कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार को अहिच्छत्र के कार्यकर्ताओं ने इस महोत्सव का अध्यक्ष भार सौंपा था, जिसे कि इन्होंने बहुत ही सुन्दर ढंग से निर्वहन कर महाप्रभावनापूर्ण महोत्सव सम्पन्न कराया है।

अनुवाद प्रारंभ—भगवान के जन्मजयंती दिवस मैंने षट्खण्डागम की आठवीं पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रारंभ किया।

इस षट्खण्डागम ग्रंथ की मेरे द्वारा रचित सिद्धान्तचिंतामणि नाम की संस्कृत टीका का हिन्दी अनुवाद मेरी शिष्या आर्यिका चंदनामती कर रही हैं। वे अब तक (सन् २००६ तक) तीन पुस्तकें पूर्णकर चौथी पुस्तक का अनुवाद कर रही हैं।

फिर भी मैंने यहाँ संघ में उपलब्ध आठवीं पुस्तक का अनुवाद प्रारंभ किया।

मानस्तंभ की वेदी प्रतिष्ठा—पुनः पौष कृ. १२ (दि. ५-१-२००८) को अहिच्छत्र से विहार कर हस्तिनापुर आते हुए मार्ग में मेरठ से बड़ागाँव होते हुए 'अमीनगर सराय' पहुँची। यहाँ ज्योतिष विद्वान् पं. धनराज की कई वर्षों की भावना के अनुसार मानस्तंभ का वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न कराया। मानस्तंभ में भगवान विराजमान कराकर अनेक धर्मप्रभावनापूर्वक वहाँ से चलकर बरनावा, सरधना, महलका होते हुए माघ कृ. अष्टमी (दि. ३०-१-२००८) को मैं हस्तिनापुर आ गई।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा—यहाँ हस्तिनापुर में आनंद प्रकाश जैन-दिल्ली वालों द्वारा नवनिर्मित नूतन मंदिर में नवग्रह जिन प्रतिमाओं का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मध्यम रूप में सम्पन्न कराया है।

माघ कृ. ११, रविवार को (३ फरवरी) झण्डारोहण होकर माघ शु. ५ तक (दि. ७ जनवरी से ११ तक) पंचकल्याणक सम्पन्न हुआ है।

विशाल शांतिनाथ प्रतिमा निर्माण कार्य प्रारंभ—वैशाख शु. १५, वीर निर्वाण संवत् २५३५, विक्रम सम्वत् २०६५ को (दि. १९ मई २००८ को) तेरहद्वीप रचना का प्रथम प्रतिष्ठापना दिवस महोत्सव मनाया गया। अभिषेक पूजन के बाद रथयात्रा हुई।

पुनः प्रातः ९ बजे कर्नाटक से मंगाये गये विशाल पाषाण खंड के ऊपर धातु की छोटी प्रतिमा विराजमान कर अभिषेक-पूजन करके श्रेष्ठी महावीर प्रसाद जैन एवं सौ. कुसुमलता जैन, साउथ एक्स.-दिल्ली सपरिवार से चांदी की छेनी से भगवान शांतिनाथ प्रतिमा निर्माण हेतु टंकन विधि प्रारंभ कराई गई।

यह क्षण विशेष ही आनंद का रहा है क्योंकि कई वर्षों से ३१ फुट उत्तुंग विशाल प्रतिमा निर्माण कराने

की भावनानुसार चर्चा एवं प्रयास चल रहे थे, जिन्हें आज साकार होने का महत्वपूर्ण मंगल अवसर प्राप्त हुआ है। इसी दिन से मूर्ति निर्माण कार्य प्रारंभ हो गया।

कई वर्षों से मेरे विहार के मध्य मार्ग में तथा जम्बूद्वीप स्थल पर भी प्रतिदिन भगवान की भक्ति के विधान, अनुष्ठान आदि कार्यक्रम होते रहे हैं। चूँकि मेरा यह विश्वास है कि तीर्थंकर भगवन्तों की भक्ति से आगामी होने वाले सभी कार्य निर्विघ्न सम्पन्न होते हैं।

श्रुतपंचमी—इस ग्रंथ की विशेषता यह रही है कि इस तृतीय खण्ड—ग्रंथ की संस्कृत टीका की पूर्णता वी. नि. सं. २५२५, द्वि. ज्येष्ठ शु. पंचमी—श्रुतपंचमी को ही हुई थी तथा श्रुतपंचमी पर्व इस षट्खण्डागम ग्रंथ की पूर्णता का पर्व है। इसी दिन कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार सरस्वती माता की मूर्ति एवं षट्खण्डागम ग्रंथों को लेकर ऐरावत हाथी (कृत्रिम निर्मित) पर बैठे। सरस्वती जिनवाणी की शोभायात्रा सम्पन्न होकर तेरहद्वीप में पहुँची। वहाँ पर षट्खण्डागम के मुद्रित एवं मेरे हस्तलिखित पृष्ठों का दर्पण में पंचामृत अभिषेक हुआ। श्रुतस्कंध यंत्र एवं सरस्वती मूर्ति का भी अभिषेक सम्पन्न हुआ था।

प्रतिष्ठातिलक ग्रंथ में लिखा है—

"परमागम पुस्तकमालेख्य श्रुतपंचम्यां सुलग्ने वा तद्वत्प्रतिष्ठापयेत्। अत्राकार शुद्ध्यादिकं दर्पणप्रतिबिंबित पुस्तकस्य विदध्यात्[१]।।" इन्हीं प्रमाणों के अनुसार ग्रंथों का अभिषेक दर्पण में प्रतिबिम्बित करके किया जाता है।

श्रुतपंचमी के दिन ब्र. रवीन्द्र कुमार का जन्मदिन है। अत: ये अपने जीवन के ५८ वर्ष पूर्ण कर ५९वें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं। इन्होंने सन् १९६८ में मेरी प्रेरणा से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत लिया था, पुनः सन् १९७२ में आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया है।

ये सप्तम प्रतिमाधारी एवं गृहत्यागी हैं। इनका अगला वर्ष अतिशायी धर्मप्रभावना के कार्यों में एवं मांगीतुंगी में बनाई जा रही १०८ फुट उत्तुंग प्रतिमा के निर्माण में व्यतीत होवे, यशस्वी एवं दीर्घायु हों, यही मेरा उनके लिए मंगल आशीर्वाद है।

अनुवाद की पूर्णता—श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन वीर निर्वाण संवत्सर २५३४ (दि. ८-८-२००८) रविवार को मैने इस आठवीं पुस्तक-षट्खण्डागम ग्रंथ के 'बंधस्वामित्वविचय' नाम के तृतीय खण्ड की स्वरचित सिद्धान्तचिंतामणि टीका का हिन्दी अनुवाद जम्बूद्वीप स्थल पर रत्नत्रय निलय वसतिका, हस्तिनापुर में पूर्ण किया है।

इस समय भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील एवं प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह गणतंत्र शासन के प्रतिपालक हैं। इनके शासन काल में अहिंसा धर्म की प्रभावना होती रहे, यही मंगल भावना है।

षट्खण्डागम का तृतीय खण्ड—यह मेरा अनुवादित ग्रंथ मेरे समीचीन ज्ञान को वृद्धिंगत करते हुए केवलज्ञान के लिए बीजभूत होवे एवं इसके स्वाध्याय करने वाले भव्यात्माओं के लिए भी सन्मार्गप्रदर्शक—मोक्षमार्ग में चलने हेतु दीपक के समान होवे, यही मेरी मंगल कामना है।

ग्रंथ के मूल अर्थकर्ता भगवान महावीर स्वामी के श्रीचरणों में अनंत बार नमस्कार करके द्वादशांग श्री

---

१. प्रतिष्ठातिलक पृ. ३३९।

गौतम स्वामी को नमस्कार करती हूँ। पुनः परम्परा से श्री धरसेनाचार्य, श्री पुष्पदंताचार्य, श्री भूतबली आचार्य एवं श्री वीरसेनाचार्य को कोटि-कोटि वंदन करती हूँ।

बीसवीं सदी के प्रथमाचार्य श्री शांतिसागरसूरि को नमस्कार करके उनके प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागरगुरुवर्य को भी शत-शत नमन करके देव-शास्त्र एवं गुरु के चरणों में प्रार्थना करती हूँ।

यह ग्रंथ सदैव इस भूतल पर विद्यमान रहे, जब तक इस धरा पर सूर्य-चन्द्र अपना प्रकाश फैलाते रहेंगे, तब तक यह ग्रंथ भी भव्यों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश फैलाता रहे, यही मंगलभावना है।

अर्हत्केवलज्ञान का, बीजभूत श्रुतज्ञान।
षट्खण्डागम को नमूँ, मिले स्वात्म विज्ञान।।१।।

ज्ञानमती कैवल्य हो, यही एक अभिलाष।
अर्हद्भक्ती फलेगी, यही पूर्ण विश्वास।।२।।

देव शास्त्र गुरु भक्त को, तीन रत्न दातार।
मुझ रत्नत्रय पूर्ण हों, मिले मोक्षसुखसार।।३।।

तृतीय खण्डस्य सूत्राणि

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१.	जो सो बंधसामित्तविचओ णाम तस्स इमो दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण य।	११
२.	ओघेण बंधसामित्तविचयस्स चोद्दसजीवसमासाणि णादव्वाणि भवंति।	१३
३.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदा-संजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा अणिय-ट्टिबादर-सांपराइयपइट्ठ-उवसमा खवा सुहुमसांपराइयपइट्ठवसमा खवा उवसंतकसाय-वीयरागछदुमत्था खीणकसायवीय-रागछदुमत्था सजोगिकेवली अयोगिकेवली।	१३
४.	एदेसिं चोद्दसण्हं जीवसमासाणं पयडिबंधवोच्छेदो कादव्वो भवदि।	१४
५.	पंचण्हं णाणावरणीयाणं चदुण्हं दंसणावरणीयाणं जसकित्ति-उच्चागोद-पंचण्हमंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	१६
६.	मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइयसुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।	१६
७.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोह-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चरसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।	५०
८.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	५०
९.	णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?।	५८
१०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्व-करणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	५८
११.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।	६०
१२.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए-चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	६१
१३.	असादावेदनीय-अरदि-सोगअथिरअसुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?	६४
१४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	६४
१५.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बेइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय जादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्ट सरीरसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणु-पुव्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?।	७१
१६.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	७१
१७.	अपच्चक्खाणावरणीय-कोध-माण-माया-लोभ-मणुस्सगइ-ओरालि-यसरीर-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसंघडण-मणुस-गइपाओग्गाणुपुव्विणामाणं को बंधो को अबंधो ?।	७५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१८.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	७६
१९.	पच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?	७९
२०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	७९
२१.	पुरिसवेद-क्रोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।	८१
२२.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	८२
२३.	माणमायसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।	८७
२४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टि-बादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जाभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	८७
२५.	लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।	९०
२६.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्ठिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्ठि-बादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	९१
२७.	हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?।	९२
२८.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	९३
२९.	मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।	९४
३०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	९४
३१.	देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?।	९८
३२.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अपमत्तसंजदद्धाए संखेज्जदिभागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	९८
३३.	देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरस-संठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणु-पुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।	१०२
३४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो बोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१०३
३५.	आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?।	१०७
३६.	अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१०७
३७.	तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ?।	११३
३८.	असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	११४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३९.	कदिहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति ?।	११६
४०.	तत्थ इमेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदकम्मं बंधंति।	११९
४१.	दंसणविसुज्झदाए विणयसंपण्णदाए सीलव्वदेसु णिरदिचारदाए आवासएसु अपरिहीणदाए खण-लवपडिबुज्झणदाए लद्धिसंवेगसंपण्णदाए जधाथामे तधा तवे, साहणं पासुअपरिचागदाए साहूणं समाहिसंधारणदाए साहूणं वेज्जावच्चजोगजुत्तदाए अरहंतभत्तीए बहुसुदभत्तीए पवयणभत्तीए पवयणवच्छलदाए पवयणप्पभावणदाए अभिक्खणं अभिक्खणं णाणोवजोगजुत्तदाए इच्चेदेहि सोलसेहि कारणेहि जीवा तित्थयरणामगोदं कम्मं बंधंति।	१२०
४२.	जस्स इणं तित्थयरणामगोदकम्मस्स उदएण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्जा पूजणिज्जा वंदिणिज्जा णमंसणिज्जा णेदारा धम्मतित्थयरा जिणा केवलिणो हवंति।	१४१

बंधस्वामित्वविचय

(अथ द्वितीयो महाधिकारः)

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
४३.	आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु पंचणाणावरण-छदंसणावरण-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगदि-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरि-सहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	१५८
४४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	१५८
४५.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	१६२
४६.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१६२
४७.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ?	१६४
४८.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१६४
४९.	मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।	१६५
५०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१६५
५१.	तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।	१६६
५२.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१६६
५३.	एवं तिसु उवरिमासु पुढवीसु णेयव्वं।	१६७
५४.	चउत्थीए पंचमीए छट्ठीए पुढवीए एवं चेव णेदव्वं। णवरि विसेसो तित्थयरं णत्थि।	१६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
५५.	सत्तमाए पुढवीए णेरइया पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सुर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	१६८
५६.	मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	१६९
५७.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधि कोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओ-ग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।	१७१
५८.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१७१
५९.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-तिरिक्खाउ-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसरीरसंघ-डणणामाणं को बंधो को अबंधो ?।	१७२
६०.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१७२
६१.	मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	१७३
६२.	सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१७३
६३.	तिरिक्खगदीए तिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खा पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्ता पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-अट्ठकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगदिपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	१७४
६४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	१७५
६५.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-चउसंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थ-विहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	१७९
६६.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१७९
६७.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-वीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-णिरयगइपाओग्गाणुपुव्वि-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	१८२

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
६८.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१८२
६९.	अपच्चक्खाणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?	१८३
७०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१८४
७१.	देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?	१८४
७२.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१८४
७३.	पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ता पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुस्साउ-तिरिक्खगइ-मणुस्सगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुसगइपा-ओग्गाणुपुव्वी- अगुरुगलहुग-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदाउज्जोव-दो विहायगइ-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दूभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	१८५
७४.	सव्वे एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	१८६
	अथ मनुष्यगति-अन्तराधिकारः	
७५.	मणुस्सगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरेत्ति। णवरि विसेसो, बेट्ठाणी अपच्चक्खाणावरणीयं जधा पंचिंदियतिरिक्खभंगो।	१८८
७६.	मणुसअपज्जत्ताणं पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।	१९२
	अथ देवगति अन्तराधिकारः	
७७.	देवगदीए देवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ — पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाणं-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहाय-गदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	१९६
७८.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	१९६
७९.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्ख-गइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	१९८
८०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	१९९
८१.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-णामाणं को बंधो को अबंधो ?	२००

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
८२.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२००
८३.	मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?।	२०१
८४.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२०१
८५.	तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।	२०२
८६.	असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२०२
८७.	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवाणं देवभंगो। णवरि विसेसो तित्थयरं णत्थि।	२०३
८८.	सोहम्मीसाणकप्पवासियदेवाणं देवभंगो।	२०४
८९.	सणक्कुमारप्पहुडि जाव सदर-सहस्सारकप्पवासियदेवाणं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं भंगो।	२०४
९०.	आणद जाव णवगेवेज्जविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	२०५
९१.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२०६
९२.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-चउसंठाण-चउसंघडण-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?।	२०७
९३.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२०८
९४.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडणणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२०८
९५.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२०८
९६.	मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?	२०९
९७.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२०९
९८.	तित्थयरणामकम्मस्स को बंधो को अबंधो ?।	२१०
९९.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२१०
१००.	अणुदिस जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुस्साउ-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइय सरीर-समचउरससंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-	२११

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
	णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	
१०१.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा, अबंधा णत्थि।	२११
	अथ इन्द्रियमार्गणाधिकार:	
१०२.	इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता पंचिंदियअपज्जत्ताणं पंचिंदियति- रिक्खअपज्जत्तभंगो।	२१५
१०३.	पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	२२४
१०४.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइय-सुद्धिसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२२४
१०५.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खाउ-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइपाओग्गाणुपुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दूभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	२२९
१०६.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२२९
१०७.	णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?	२३१
१०८.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठसुद्धिसंजदेसु उवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरण-संजदद्धाए संखेजदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३१
१०९.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	२३२
११०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवली अद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३२
१११.	असादावेदणीयस्स-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२३२
११२.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदो त्ति बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३३
११३.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-णिरयाउ-णिरयगइ-एइंदिय-बीइंदिय-तीइंदिय-चतुरिंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-णिरयाणुपुव्विआदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधा को अबंधो ?	२३४
११४.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३४
११५.	अपच्चक्खाणावरणीयकोध-माण-माया-लोभ-मणुसगइ-ओरालिय-सरीर-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहवइरणारायणसरीरसंघडण-मणु-सगइपा-ओग्गाणुपुव्वीणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२३६
११६.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३६
११७.	पच्चक्खाणावरणकोध-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?	२३७
११८.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा अवसेसा अबंधा।	२३७
११९.	पुरिसवेद-कोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?	२३७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१२०.	मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिबादरसांपराइयपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे संखेज्जेसु भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३७
१२१.	माण-माया-संजलणाणं को बंधो को अबंधो ?	२३७
१२२.	मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टि- बादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३७
१२३.	लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?।	२३८
१२४.	मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टि- बादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३८
१२५.	हस्स रदि भय दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?	२३८
१२६.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपविट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरण-द्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३८
१२७.	मणुस्साउअस्स को बंधो को अबंधो ?	२३८
१२८.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंज सम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३८
१२९.	देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?	२३८
१३०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी संजदासंजदा पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३८
१३१.	देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिणणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२३९
१३२.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२३९
१३३.	आहारसरीर-आहारअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२४१
१३४.	अप्पमत्तसंजदा अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२४१
१३५.	तित्थयरणामाए को बंधो को अबंधो ?	२४२
१३६.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२४२

अथ कायमार्गणाधिकार:

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१३७.	कायाणुवादेण पुढविकाइय-आउकाइय-वणप्फदिकाइय-णिगोदजीव-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं बादरवणप्फदिकाइय-पत्तेयसरीर पज्जत्ता-पज्जत्ताणं तसकाइय-अपज्जत्ताणं च पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तभंगो।	२४३

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१३८.	तेउकाइय-वाउकाइय-बादर-सुहुम-पज्जत्तापज्जत्ताणं सो चेव भंगो। णवरि विसेसो मणुस्साउ-मणुसगइ-मणुसगइपाओग्गाणुपुव्वी-उच्चागोदं णत्थि।	२४९
१३९.	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति।	२५१

अथ योगमार्गणाधिकार:

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१४०.	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगीसु ओघं णेयव्वं जाव तित्थयरे त्ति।	२५२
१४१.	सादावेदणीयस्य को बंधो को अबंधो ? मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२५४
१४२.	ओरालियकायजोगीणं मणुसगइभंगो।	२५४
१४३.	णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो।	२५४
१४४.	ओरालियमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदणीय-बारसकषाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगंछा-पंचिंदियजादि-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वण्ण-गंध-रस-फास-अगुरुलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थ-विहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	२५७
१४५.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२५७
१४६.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-ओरालियसरीर-चउसंठाण-ओरालियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-तिरिक्खगइ-मणुसगइपाओग्गाणु- पुव्वी-उज्जोव-अप्पसत्थविहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	२५९
१४७.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२६०
१४८.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	२६१
१४९.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२६२
१५०.	मिच्छत्त-णउंसयवेद-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-चदुजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२६३
१५१.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२६३
१५२.	देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२६४
१५३.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२६४
१५४.	वेउव्वियकायजोगीणं देवगईणं भंगो।	२६५
१५५.	वेउव्वियमिस्सकायजोगीणं देवगईणं भंगो।	२७०
१५६.	णवरि विसेसो, बेट्ठाणियासु तिरिक्खाउअं णत्थि, मणुस्साउअं णत्थि।	२७०

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१५७.	आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणा-वरणीय-सादासाद-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्य-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवाउ-देवगइ-पंचिंदिय जादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयर-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	२७५
१५८.	पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२७५
१५९.	कम्मइयकायजोगीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-असादावेदणीय-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	२७७
१६०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२७८
१६१.	णिद्दाणिद्दा-पयलापयला-थीणगिद्धि-अणंताणुबंधिकोध-माण-माया-लोभ-इत्थिवेद-तिरिक्खगइ-चउसंठाण-चउसंघडण-तिरिक्खगइ-पाओग्गाणुपुव्वि-उज्जोव-अप्पसत्थ-विहायगइ-दुभग-दुस्सर-अणादेज्ज-णीचागोदाणं को बंधो को अबंधो ?	२८१
१६२.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२८२
१६३.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	२८३
१६४.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी सजोगिकेवली बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२८३
१६५.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-चउजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावर-सुहुम-अपज्जत्त-साहारणसरीरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२८४
१६६.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२८४
१६७.	देवगइ-वेउव्वियसरीर-वेउव्वियसरीरांगोवंग-देवगइपाओग्गाणुपुव्वि-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	२८५
१६८.	असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	२८५
	अथ वेदमार्गणाधिकार:	
१६९.	वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णवुंसयवेदएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचांतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	२८७
१७०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	२८७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१७१.	बेट्ठाणी ओघं।	२९०
१७२.	णिद्दा य पयला य ओघं।	२९२
१७३.	असादावेदणीयमोघं।	२९२
१७४.	एक्कट्ठाणी ओघं।	२९३
१७५.	अपच्चक्खाणावरणीयमोघं।	२९४
१७६.	पच्चक्खाणावरणीयमोघं।	२९७
१७७.	हस्स-रदिजाव तित्थयरेत्ति ओघं।	२९७
१७८.	अवगदवेदएसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३०६
१७९.	अणियट्टिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइय-सुद्धिसंज-दद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३०६
१८०.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३०८
१८१.	अणियट्टिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३०९
१८२.	कोधसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?	३१०
१८३.	अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३१०
१८४.	माण-मायासंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?	३११
१८५.	अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३११
१८६.	लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?	३१२
१८७.	अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। अणियट्टिबादरद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३१२
	अथ कषायमार्गणाधिकार:	
१८८.	कसायाणुवादेण कोधकसाईसु पंचणाणावरणीय चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३१५
१८९.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३१६
१९०.	बेट्ठाणी ओघं।	३१७
१९१.	जाव पच्चक्खाणावरणीयमोघं।	३१७
१९२.	पुरिसवेदे ओघं।	३१७
१९३.	हस्स-रदि-जाव तित्थयरे त्ति ओघं।	३१७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
१९४.	माणकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-तिण्णिसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३२१
१९५.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियिट्टि उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३२१
१९६.	वेट्ठाणि जवा पुरिसवेद-कोधसंजलणाणमोघं।	३२१
१९७.	हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं।	३२१
१९८.	मायकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-दोण्णि-संजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	३२३
१९९.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३२३
२००.	बेट्ठाणि जाव माणसंजलणे त्ति ओघं।	३२३
२०१.	हस्स-रदि जाव तित्थयरे त्ति ओघं।	३२३
२०२.	लोभकसाईसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सासावेदणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३२५
२०३.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३२६
२०४.	सेसं जाव तित्थयरे त्ति ओघं।	३२६
२०५.	अकसाईसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।	३२६
२०६.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था खीणकसायवीदरागछदुमत्था सजोगि-केवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३२७
	अथ ज्ञानमार्गणाधिकार:	
२०७.	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु पंचज्ञानावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-सोलसकसाय-अट्ठणोकसाय-तिरिक्खाउ-मणुसाउ-देवाउ-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-पंचसंठाण-ओरालिय-वेउव्वियसरीरअंगोवंग-पंचसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-तिरिक्खगइ-मणुसगइ-देवगइपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलघुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-उज्जोव-दोविहाय-गइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३३०
२०८.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३३०
२०९.	एक्कट्ठाणी ओघं।	३३४
२१०.	आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३३५
२११.	असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुमसांपराइयअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३३५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२१२.	णिद्दा य पलया य ओघं।	३३६
२१३.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३३७
२१४.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३३७
२१५.	सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि त्ति भणि-दव्वं।	३३८
२१६.	मणपज्जवणाणीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३४२
२१७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। सुहुम-सांपराइयसंजदद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३४२
२१८.	णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?	३४४
२१९.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अपुव्वकरणपइट्ठउवसमा खवा बंधा। अपुव्वकरणद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३४४
२२०.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३४५
२२१.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीयराय छदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३४५
२२२.	सेसमोघं जाव तित्थयरे त्ति। णवरि पमत्तसंजदप्पहुडि त्ति भणिदव्वं।	३४५
२२३.	केवलणाणीसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३४५
२२४.	सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलि अद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३४५

अथ संयममार्गणाधिकार:

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२२५.	संजमाणुवादेण संजदेसु मणपज्जवणाणिभंगो।	३४९
२२६.	णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३५०
२२७.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३५०
२२८.	सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-चदुदंसणा-वरणीय-सादावेदणीय-लोभसंजलण-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३५०
२२९.	पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३५०
२३०.	सेसं मणपज्जवणाणिभंगो।	३५१
२३१.	परिहारसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चदुसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियसरीर-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवाणुपुव्वि-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरूच्चागोदपंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३५४

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२३२.	पमत्त-अपमत्तसंजदा बंधा।एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३५५
२३३.	असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?	३५६
२३४.	पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३५६
२३५.	देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?	३५७
२३६.	पमत्तसंजदा अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तसंजदद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३५७
२३७.	आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?	३५७
२३८.	अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३५७
२३९.	सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-सादावेदणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३५८
२४०.	सुहुमसांपराइयउवसमा खवा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३५८
२४१.	जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?।	३५९
२४२.	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था खीणकसायवीयरायछदुमत्था सजोगिकेवली बंधा। सजोगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३५९
२४३.	संजदासंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-अट्ठकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-देवाउ-देवगइ-पंचिदिंयजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइय-सरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपा-ओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३६०
२४४.	संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३६०
२४५.	असंजदेसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादासाद-बारसकसाय-पुरिसवेद-हस्स-रदि-अरदि-सोग-भय-दुगुंछा-मणुसगइ-देवगइ-पंचिंदियजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-ओरालिय-वेउव्वियअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-मणुसगइ-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३६२
२४६.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३६३
२४७.	वेट्ठाणी ओघं।	३६६
२४८.	एक्कट्ठाणी ओघं।	३६६
२४९.	मणुस्साउ-देवाउआणं को बंधो को अबंधो ?	३६६
२५०.	मिच्छाइट्ठी सासणसम्माइट्ठी असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३६७

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२५१.	तित्थयरणामस्स को बंधो को अबंधो ?	३६७
२५२.	असंजदसम्माइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३६७
	अथ दर्शनमार्गणाधिकार:	
२५३.	दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीणमोघं णेदव्वं जाव तित्थयरे त्ति।	३६८
२५४.	णवरि विसेसो, सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	३६८
२५५.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीयरायछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३६८
२५६.	ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो।	३६९
२५७.	केवलदंसणी केवलणाणिभंगो।	३६९
	अथ लेश्यामार्गणाधिकार:	
२५८.	लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सियाणम-संजदभंगो।	३७१
२५९.	तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछा-देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-सरीरअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइ-पाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघादुस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुह-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिणुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	३८२
२६०.	मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	३८२
२६१.	बेट्ठाणी ओघं।	३८५
२६२.	असादावेदणीयमोघं।	३८६
२६३.	मिच्छत्त-णवुंसयवेद-एइंदियजादि-हुंडसंठाण-असंपत्तसेवट्टसंघडण-आदाव-थावरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	३८७
२६४.	मिच्छाइट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३८७
२६५.	अपच्चक्खाणावरणीयमोघं।	३८७
२६६.	पच्चक्खाणचउक्कमोघं।	३८७
२६७.	मणुस्साउअस्स ओघभंगो।	३९०
२६८.	देवाउअस्स ओघभंगो।	३९०
२६९.	आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ? अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३९१
२७०.	तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ? असंजदसम्माइट्ठी जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	३९१
२७१.	पम्मलेस्सिएसु मिच्छत्तदंडओ णेरइयभंअगो।	३९१

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२७२.	सुक्कलेस्सिएसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो।	३९२
२७३.	णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स मणजोगिभंगो।	३९९
२७४.	बेट्ठाणि-एक्कट्ठाणीणं णवगेवज्ज विमाणवासियदेवाणं भंगो।	३९९
	अथ भव्यमार्गणाधिकार:	
२७५.	भवियाणुवादेण भवसिद्धियामोघं।	४०७
२७६.	अभवसिद्धिएसु पंचणाणावरणीय-णवदंसणावरणीय-सादासाद-मिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसाय-चदुआउ-चदुगइ-पंचजादि-ओरालिय-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयसरीर-छसंठाण-ओरालिय-वेउव्विय-अंगोवंग-छसंघडण-वण्ण-गंध-रस-फास-चत्तारि आणुपुव्वी-अगुरु-वलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-आदावुज्जोव-दोविहायगइ-तस-थावर-बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्त-पत्तेय-साहारणसरीर-थिराथिर-सुहासुह-सुभग-दुभग-सुस्सर-दुस्सर-आदेज्ज-अणादेज्ज-जसकित्ति-अजसकित्ति-णिमिण-णीचुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?।	४०८
२७७.	एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	४०८
	अथ सम्यक्त्वमार्गणाधिकार:	
२७८.	सम्मत्ताणुवादेण सम्माइट्ठीसु खइयसम्माइट्ठीसु आभिणिबोहियणाणि-भंगो।	४१२
२७९.	णवरि सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	४१२
२८०.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवली बंधा। सजेगिकेवलिअद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१३
२८१.	वेदयसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय-छदंसणावरणीय-सादावेदणीय-चउसंजलण-पुरिसवेद-हस्स-रदि-भय-दुगुंछ-देवगदि-पंचिंदियजादि-वेउव्विय-तेजा-कम्मइयशरीर-समचउरससंठाण-वेउव्वियअंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवगइपाओग्गाणुपुव्वी-अगुरुवलहुव-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगइ-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-जसकित्ति-णिमिण-तित्थयरुच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	४१४
२८२.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अबंधा णत्थि।	४१४
२८३.	असातावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?	४१६
२८४.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१६
२८५.	अपच्चक्खाणावरणीय कोह-माण-माया-लोह-मणुस्साउ-मणुसगइ-औरालियसरीर-औरालिय-सरीरअंगोवंग-वज्जरिसहसंघडण-मणुसाणुपुव्वी-णामाणं को बंधो को अबंधो ?	४१७
२८६.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१७
२८७.	पच्चक्खाणावरणीयकोह-माण-माया-लोभाणं को बंधो को अबंधो ?।	४१८

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
२८८.	असंजदसम्मादिट्ठी संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१८
२८९.	देवाउअस्स को बंधो को अबंधो ?	४१९
२९०.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा बंधा। अप्पमत्तद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१९
२९१.	आहारसरीर-आहारसरीरंगोवंगणामाणं को बंधो को अबंधो ?	४१९
२९२.	अप्पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४१९
२९३.	उवसमसम्मादिट्ठीसु पंचणाणावरणीय-चउदंसणावरणीय-जसकित्ति-उच्चागोद-पंचंतराइयाणं को बंधो को अबंधो ?	४२०
२९४.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा बंधा, सुहुम-सांपराइय-उवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२०
२९५.	णिद्दा-पयलाणं को बंधो को अबंधो ?	४२१
२९६.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरण-उवसमद्धाए संखेज्जदिमं भागं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२१
२९७.	सादावेदणीयस्स को बंधो को अबंधो ?	४२२
२९८.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीयरागछदुमत्था बंधा। एदे बंधा, अबंधाणत्थि।	४२२
२९९.	असादावेदणीय-अरदि-सोग-अथिर-असुह-अजसकित्तिणामाणं को बंधो को अबंधो ?	४२३
३००.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव पमत्तसंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२३
३०१.	अपच्चक्खाणावरणीयमोहिणाणिभंगो।	४२३
३०२.	णवरि आउवं णत्थि।	४२३
३०३.	पच्चक्खाणावरणचउक्कस्स को बंधो को अबंधो ?।	४२४
३०४.	असंजदसम्मादिट्ठी बंधा संजदासंजदा बंधा। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२४
३०५.	पुरिसवेदकोधसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?।	४२४
३०६.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टि उवसमद्धाए सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२४
३०७.	माण-मायसंजलणाणं को बंधो को अबंधो ?	४२४
३०८.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणिय-ट्टिउवसमद्धाए सेसे सेसे संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२४
३०९.	लोभसंजलणस्स को बंधो को अबंधो ?	४२४
३१०.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टी उवसमा बंधा। अणियट्टि-उवसमद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२५
३११.	हस्स-रदि-भय-दुगुंछाणं को बंधो को अबंधो ?	४२५
३१२.	असंजदसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुव-समद्धाए चरिमसमयं गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२५

सूत्र सं.	सूत्र	पृष्ठ सं.
३१३.	देवगइ-पंचिंदियजादि-वेउव्वियतेजाकम्मइयसरीर-समचउरससंठाण-वेउव्विय-अंगोवंग-वण्ण-गंध-रस-फास-देवाणुपुव्वी-अगुरुअलहुअ-उवघाद-परघाद-उस्सास-पसत्थविहायगदि-तस-बादर-पज्जत्त-पत्तेयसरीर-थिर-सुभ-सुभग-सुस्सर-आदेज्ज-णिमिण-तित्थयरणामाणं को बंधो को अबंधो ?	४२५
३१४.	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अपुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुव-समद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२६
३१५.	आहारसरीर-आहारसरीरअंगोवंगाणं को बंधो को अबंधो ?	४२६
३१६.	अप्पमत्तापुव्वकरणउवसमा बंधा। अपुव्वकरणुवसमद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण बंधो वोच्छिज्जदि। एदे बंधा, अवसेसा अबंधा।	४२६
३१७.	सासणसम्मादिट्ठी मदिअण्णाणिभंगो।	४२७
३१८.	सम्मामिच्छाइट्ठी असंजदभंगो।	४२९
३१९.	मिच्छाइट्ठीणमभवसिद्धियभंगो।	४३१

अथ संज्ञिमार्गणाधिकार:

३२०.	सण्णियाणुवादेण सण्णीसु जाव तित्थयरे त्ति ओघभंगो।	४३३
३२१.	णवरि विसेसो सादावेदणीयस्स चक्खुदंसणीभंगो।	४३३
३२२.	असण्णीसु अभवसिद्धियभंगो।	४३४

अथ आहारमार्गणाधिकार:

३२३.	आहाराणुवादेण आहारएसु ओघं।	४३७
३२४.	अणाहारएसु कम्मइयभंगो।	४३८

षट्खण्डागम स्तुति

-आर्यिका चंदनामती

वन्दन शत शत बार है,
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वन्दन शत शत बार है।
श्री सिद्धान्तसुचिन्तामणि टीका जिसमें साकार है।।
वीर प्रभू के शासन का, सबसे पहला यह ग्रंथ है।
लिखने वाले पुष्पदंत अरु, भूतबली निर्ग्रन्थ हैं।
श्री धरसेनाचार्य से जिनको, मिला ज्ञान भण्डार है।
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वंदन बारम्बार है।।1।।

वीरसेन सूरी ने इस पर, धवला टीका रच डाली।
प्राकृत संस्कृत के वचनों में, मोतीमाल बना डाली।।
गूढ़ रहस्यों सहित ग्रंथ वह, विद्वत्मणि सरताज है।
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वन्दन बारम्बार है।।2।।

गणिनी माता ज्ञानमती ने, नव इतिहास बनाया है।
संस्कृत टीका सरल रची, सिद्धान्तसार समझाया है।।
चिन्तामणि सम चिन्तित फल, देने में जो साकार है।
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वन्दन बारम्बार है।।3।।

श्री धरसेन व पुष्पदंत, आचार्य भूतबलि को वंदन।
वीरसेन गुरु को वंदूँ और, गणिनी ज्ञानमती को नमन।
इनसे ही ''चन्दनामती'' यह मिला जिनागम सार है।
षट्खण्डागम ग्रंथराज को, वन्दन बारम्बार है।।4।।